देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

Sept. 2025

Vol.-22, Issue-3(2)

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

21वीं सदी का साहित्य : नव विमर्श

Special Issue Editor :
Dr. Poornima S.

Special Issue Co-Editor :
Dr. Anuradha P
Ms. V. Amudha

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 22 ISSUE-3(2) (सितम्बर 2025) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :
चौ. एम. सिहाग

विशेषांक सम्पादिका :
डॉ. पूर्णिमा एस.,
डॉ. अनुराधा पी.,
मिस वी. अमुधा

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट
एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

प्रकाशक :
गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : nksihag202@gmail.com

मो. 09466532152

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

<u>*Disclaimer :*</u>

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२
ISSN : 2395-7115
बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका – सितम्बर 2025 – विशेषांक, भाग-1

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	शुभकामना संदेश		12–15
2.	सम्पादकीय	डॉ. पूर्णिमा एस.	16–17
3.	बदलते हुए पर्यावरण से बारिश की अधिकता : वरदान या अभिशाप	डॉ० सीमा कुमारी	18–20
4.	समकालीन सिंधी कहानी में स्त्रीवादी चिंतन	नीतू केवलरामानी	21–24
5.	शहरी बनाम ग्रामीण चेतना : समकालीन साहित्य का परिप्रेक्ष्य	डॉ० मौ० मुजफ्फर अंसारी	25–32
6.	कैलाश वाजपेयी की कविता में पर्यावरण विमर्श	सुबहाना एन	33–36
7.	पर्यावरण विमर्श	डॉ. इंदिरा. वी	37–40
8.	21वीं सदी की हिंदी कविता में किसान विमर्श	कु. आरती पाण्डेय	41–48
9.	21वीं सदी का साहित्य और नारी विमर्श	सोनिया विजय निर्मल	49–54
10.	21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में वर्णित महिला किसानों की स्थिति	गौरव सिंह	55–60
11.	21वीं सदी के हिंदी साहित्यों में स्त्री शिक्षा का चित्रण	कनकलता सिंह, पावक अग्रवाल	61–70
12.	21वीं सदी में किसान और मजदूर विमर्श	डॉ. सुमित्रा देवी	71–77
13.	स्वयं प्रकाश के साहित्य में नारी विमर्श	के विनीता वी, डॉ. उषस पी एस	78–79
14.	सांस्कृतिक विमर्श के संदर्भ में हिन्दी सिनेमा में अभिव्यक्त सूफीवाद का विश्लेषण	अंजली कुमारी, डॉ. आशीष पाण्डेय	80–84
15.	विकास बनाम प्रकृति : अनुपम मिश्र के लेखन में एक गहन विमर्श	अमित त्रिपाठी	85–89
16.	मृदुला सिन्हा के उपन्यासों में विकलांगता और उनकी मनः-स्थिति	कीर्तिका दुबे	90–92

17.	स्त्री-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में महिला आत्मकथा लेखन	डॉ. पूजा पाण्डेय	93-97
18.	आदिवासी विमर्श : लोक जीवन और साहित्य की अंर्तधारा के संदर्भ में एक अध्ययन	डॉ. चन्द्रशेखर सिंह	98-103
19.	**Dalit Discourse and Caste Representation in Francophone Literary Spaces**	**Ravi Shankar Kumar**	**104-109**
20.	**Comparative Study on the Effect of Interval Training and Regular Practice on Basketball Performance**	**Mr. Sandeep Battar**	**110-112**
21.	हिंदी का दलित साहित्य : एक अध्ययन	डॉ. कंचन आर्या	113-118
22.	मृदुला सिंहा के उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश और उससे जूझती नारी	कीर्तिका दुबे	119-121
23.	महादेवी वर्मा के काव्य में नारी विमर्श	सुभाष चंद्र वर्मा	122-128
24.	21वीं सदी के किसान और उनकी समस्या	स्नेहा दीपक वानखेडे	129-133
25.	अमृता प्रीतम कृत उपन्यास 'कोई नहीं जानता' में आधुनिकता बोध	डॉ. वी. गीता मालिनी	134-138
26.	नारी विमर्श : बचत का मनोविज्ञान विशेष रूप से खरीददारी के सन्दर्भ में	डॉ. शिवकरण निमल	139-149
27.	नारी विमर्श	डॉ. सुनीता राठौर	150-154
28.	मन्नु भण्डारी की कहानियों में स्त्री विमर्श	डॉ. धीरेन्द्र सिंह थापा	155-158
29.	मालती जोशी की कहानियों में चित्रित वृद्ध जीवन 'वो तेरा घर ये मेरा घर और विश्रान्ति कहानियों के सन्दर्भ में'	**Dr. P. Ezhil Nachiar**	**159-164**
30.	हाशिये से मुख्यधारा तक : हिन्दी साहित्य और समाज में किन्नर विमर्श का विकास	सेठी आशा दिनबंधु	165-168
31.	उत्तराधुनिक जीवन के संदर्भ में 'गिलिगडु' उपन्यास	डॉ. रम्या एल्	169-171
32.	इक्कीसवीं सदी का स्त्री विमर्श : अल्पना मिश्र और के. आर. मीरा के कथा साहित्य के विशेष सन्दर्भ में	साजिना एम.	172-178
33.	पर्यावरणीय विमर्श के संदर्भ में केदारनाथ सिंह का काव्य	जशन काठपाल, डॉ. शिवचरण शर्मा	179-182

34.	नीरजा माधव के उपन्यासों में स्त्री विमर्श : एक आलोचनात्मक अध्ययन	कल्पना नामा	183-189
35.	किन्नर जीवन की पीड़ा और मानवाधिकार : 'किन्नर कथा' का अध्ययन	कृष्णा संगीता. एस	190-194
36.	कुसुम खेमानी के उपन्यास 'लावण्या देवी' में चित्रित वृद्ध विमर्श	**Saimeera Joshi**	**195-200**
37.	दलित विमर्श : समकालीन साहित्य में स्वर और संवेदना	मरगदवल्ली. बी	201-205
38.	21वीं सदी के खंडकाव्य 'भूमिजा' और 'भस्मांकुर' में स्त्री विमर्श	सौ. शिल्पा शिंदे	206-210
39.	हसीनाबाद उपन्यास में नारी विमर्श	डॉ. अर्चना शर्मा	211-214
40.	**Gender Discrimination in The Dark Holds No Terrors by Shashi Deshpande**	**Priya**	**215-217**
41.	पर्यावरण संरक्षण से संबंधीत मुल समस्या	डॉ. रमेश काशीराम शेंडे	218-221
42.	विकास, विनाश और पर्यावरणीय संकट : इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता का आभ्यंतरीकरण	रेमीसा सी.यु	222-227
43.	आधुनिक काल में नारी विमर्श	डॉ. के. प्रिया नायडू	228-232
44.	21वीं सदी में राजनीतिक विवाद बनाम नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग : नव विचार विमर्श	डॉ. रमेश राम	233-238
45.	समकालीन हिंदी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श : ममता कालिया के कहानी संग्रह 'खुशकिस्मत' के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. रेखा शर्मा	239-243
46.	**The Role of Yoga and Fitness in Enhancing Performance of Hockey Players**	**Mr. Jitender Kumar**	**244-245**
47.	**Revisiting Joanna Russ in the 21st Century : Feminist Science Fiction and New Discourses of Identity**	**Soundara Rajendren Nayagi**	**246-252**
48.	शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में ग्राम्य जीवन का यथार्थ में नारी विमर्श	जयदीप कुमार पाण्डेय	253-254

49.	हरियाणा के अहीरवाल क्षेत्र के लोकगीतों में कृषक दशा : विमर्श एवं अवलोकन	सुनीता कुमारी, प्रो. गीता कपिल	255-264
50.	The Role of Yoga in Pain Management and Rehabilitation	Dr. Surjeet Singh Kaswan, Mr. Vishal Dhaka	265-267
51.	इक्कीसवीं सदी का स्त्री विमर्श : अल्पना मिश्र और के. आर. मीरा के कथा साहित्य के विशेष सन्दर्भ में	सजिना. एम	268-274
52.	साठोत्तरी हिंदी लेखिकाओं की कहानियों में चित्रित नारी के अलग-अलग रूप	प्रा. सुषमा बाळाराम खोत	275-280
53.	संवेदनहीन होती मनुष्यता और हिन्दी कविता की भूमिका	डॉ. वी पद्मावती	281-288
54.	21वीं सदी में किसान और मजदूर विमर्श	डॉ. सुमित्रा देवी	289-296
55.	Effect of Yoga on Kho-Kho Players	Dr. Rakesh Kumar	297-298
56.	अब्दुल बिस्मल्लाह की कहानियों में कृषक संघर्ष	डॉ. आलपाटि भानु प्रसाद	299-301
57.	अभिमन्यु अनत के साहित्य में प्रवासियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. सीमा दास	302-306
58.	आधुनिक कहानी के बदलते सामाजिक परिवेश	प्रा. डॉ. गायके	307-310
59.	'बवंडरों के बीच' आत्मकथा में आधुनिक दलित स्त्री की छवि	आकांक्षा	311-316
60.	आधुनिक हिन्दी कविताओं में प्रकृति चेतना	डॉ. सतीश कुमार श्रीवास्तव	317-322
61.	हिन्दी उपन्यासों में चित्रित किन्नर विमर्श	चिन्मयी राउत, डॉ. वेदुला रामालक्ष्मी	323-326
62.	इक्कीसवीं सदी के हिन्दी काव्य में स्त्री-विमर्श : विविध आयाम	डॉ. मोदुमपल्ली संपत	327-333
63.	इतिहास और कल्पना का मिश्रित रूप 'हुल पहाड़िया'	डॉ. सतीश चन्द्र सी	334-340
64.	मैथिलीशरण गुप्त की काव्य कृतियों में किसान विमर्श	प्रा. डॉ. शर्मिलाबहन सुमंतराय पटेल	341-346
65.	कृष्णा सोबती और महाश्वेता देवी : 21वीं सदी के परिप्रेक्ष्य में स्त्री अस्मिता का तुलनात्मक अध्ययन	अच्छरू कुमार	347-353
66.	गोविंद मिश्र कृत उपन्यास 'लाल पीली जमीन' में नारी चेतना	अविनाश भागवत सानप, प्रो० डॉ० शिवाजी सांगोळे	354-358

67.	गोविंद शर्मा के बाल कथा साहित्य में उभरते नए स्वर और संवेदनाएँ	सोनाली युवराज चित्ते, डॉ० शिल्पा दादाराव जिवरग	359-363
68.	जयशंकर प्रसाद के साहित्य में पर्यावरण विमर्श	S. Rajalakshmi	364-367
69.	डॉ. सुशीला टाकभौरे के काव्य में सामाजिक क्रांति के स्वर	डॉ. मीना सिंह	368-374
70.	डॉ० तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' में स्त्री का स्वरूप	सीमा कुमारी	375-378
71.	तेजेंदर शर्मा की कहानियों में नारी जीवन	रेखा कुमारी	379-383
72.	तेजेन्द्र शर्मा के साहित्य में अभिव्यक्त प्रवासी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	सपना दास	384-387
73.	तेलंगाना क्षेत्र के आदिवासी संस्कृति को दर्शाने वाला अनोखा मेला-नागोबा	आकुनूरि अन्नपूर्णा	388-391
74.	दलित विमर्श : समकालीन साहित्य में आवाज और संवेदनशीलता	डॉ. डी. जयभारती	392-397
75.	पर्यावरण विमर्श : चुनौतियाँ, चिंतन और भविष्य की राह	Abhimanyu Kumar Sharma	398-402
76.	पर्यावरणीय संवेदना एवं सचेतना का प्रतिरूप भक्तिकालीन काव्य	रुद्र प्रताप सिंह	403-409
77.	फिल्म लापता लेडीज : स्त्री जीवन के परिप्रेक्ष्य में	नन्दा पी. नायर	410-413
78.	बाल शिक्षा विषयक ओशो के विचार	डॉ. पार्वती गोसाई	414-416
79.	बाल साहित्य में पर्यावरणीय मानवीकरण और उसका प्रभाव	आर. आर. सौमियाश्री	417-420
80.	'गाँधी और सरलादेवी चौधरानी : बारह अध्याय' उपन्यास में अभिव्यक्त स्त्री अस्मिता	मिनी. एन	421-425
81.	भारतीय ज्ञान परंपरा और लोक संस्कृति का हिंदी साहित्य में महत्व	Vinitha K.	426-428
82.	डॉ. मुकेश कुमार ऋषि वर्मा और डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की कविताओं में सामाजिक यथार्थ और मानवीय चेतना का स्वर	डॉ. सुषमा रानी	429-432
83.	स्वंय प्रकाश की कहानियों में समकालिनता	लूर्द मेरी	433-436
84.	कुसुम खेमानी के उपन्यास 'लावण्या देवी' में चित्रित वृद्ध विमर्श	Saimeera Joshi	437-442
85.	२१वीं सदी की महिला लेखिकाओं के साहित्य में स्त्री विमर्श	पद्मश्री चौगुले	443-445

Greetings to All Distinguished Participants,

It is with profound honor and immense joy that we present this compilation of proceedings from the pivotal two-day International Seminar on "The Literature of the 21st Century: New Discourses", successfully organized by the Department of Hindi, VISTAS, in collaboration with Bohal Shodh Manjusha, Bhiwani (Haryana).

We extend our heartfelt congratulations to the Department of Hindi, VISTAS, and its dedicated faculty members — Dr. Poornima Srinivasan (Assistant Professor & Head), Dr. Anuradha Pakalapat (Assistant Professor), and Ms. Amudha V. (Assistant Professor) — for their exceptional efforts in conceptualizing and executing such a significant academic event. Their commitment has truly enriched the discourse on contemporary literature. The valuable collaboration with Bohal Shodh Manjusha, Bhiwani (Haryana) is very insightful.

The literary landscape of the 21st century is a vibrant tapestry, continuously rewoven by the threads of technological innovation, evolving societal norms, and an increasingly interconnected global consciousness. This dynamic era has not only birthed fresh perspectives and groundbreaking narrative forms but has also amplified diverse voices that boldly challenge conventional literary paradigms. This seminar served as an invaluable forum for collectively exploring these exciting transformations, examining emergent themes, and critically analyzing the compelling new discourses that are actively shaping contemporary literature.

We believe that the insightful presentations, robust discussions, and collaborative spirit fostered during the seminar have deepened our collective understanding of 21st-century literature and inspired new pathways for scholarly inquiry and critical thought. May this compilation serve as a catalyst for intellectual growth and a meaningful contribution to the ongoing evolution of literary studies.

With sincere wishes for continued inspiration and productive scholarly endeavors.

Dr. Ishari K. Ganesh
Founder – Chancellor
Vels Group of Institutions
VISTAS

To All Distinguished Participants and Esteemed Readers,

It is our honour and delight to present this compendium of proceedings from the highly successful two-day International Seminar on "The Literature of the 21st Century: New Discourses." This significant academic event was meticulously organized by the Department of Hindi, VISTAS, in collaboration with Bohal Shodh Manjusha, Bhiwani (Haryana).

We extend our sincere appreciation and warm congratulations to the Department of Hindi, VISTAS, for its exemplary dedication in conceptualizing and executing a seminar of such depth and relevance. The department's unwavering commitment to literary scholarship has undoubtedly enriched contemporary discourse and elevated the academic engagement with modern literature.

The literary landscape of the 21st century is a dynamic and intricate tapestry—continuously shaped by technological innovation, evolving socio-cultural systems, and an increasingly interconnected global consciousness. This transformative era has ushered in new perspectives, experimental narrative forms, and a diverse spectrum of voices that challenge, redefine, and expand traditional literary paradigms. The seminar provided a vital platform to collectively examine these shifts, explore emerging themes, and critically analyse the influential discourses that continue to shape contemporary literature.

We firmly believe that the insightful presentations, vibrant discussions, and spirit of scholarly collaboration fostered during the seminar have significantly deepened our understanding of 21st-century literature. We are confident that this carefully compiled volume will serve as an enduring source of intellectual inspiration and a valuable contribution to ongoing literary scholarship.

With earnest wishes for continued learning, inspiration, and meaningful academic pursuits.

Dr. Preethaa Ganesh
Vice-President –
Vels Group of Institutions,
VISTAS.

Esteemed Participants and Respected Readers,

It is with immense pride and deep intellectual satisfaction that we present this proceedings of the two-day International Seminar on "The Literature of the 21st Century: New Discourses." This significant academic event was conceived and successfully conducted by the Department of Hindi, VISTAS, in collaboration with Bohal Shodh Manjusha Bhiwani (Haryana).

We extend our heartfelt congratulations and profound gratitude to the Department of Hindi, VISTAS, for their exemplary vision, unwavering commitment, and meticulous execution in bringing such a significant academic discourse to fruition. Their collaborative spirit, along with the esteemed partnership of Bohal Shodh Manjusha Bhiwani (Haryana), has undoubtedly enriched the ongoing dialogue on contemporary literature.

The literary landscape of the 21st century is a dynamic and continuously evolving tapestry, constantly being woven with the intricate threads of technological innovation, changing social norms, and an increasingly interconnected global consciousness. This transformative era has not only given birth to novel perspectives and groundbreaking narrative forms but has also empowered countless voices that courageously challenge and reshape traditional literary paradigms. The seminar served as an invaluable platform for scholars and enthusiasts to collectively delve deeply into these exciting changes, explore emerging themes, and critically analyze the captivating new discourses actively shaping modern literature.

We are confident that the profound insights shared, the vibrant and stimulating discussions held, and the nurtured collaborative spirit during the seminar have significantly deepened our collective understanding of 21st-century literature. Furthermore, they have effectively opened new avenues for scholarly inquiry and critical reflection, contributing to the intellectual exchange vital for academic progress. We hope that this carefully compiled collection will serve as a lasting catalyst for intellectual growth and a significant contribution to the ongoing development of literary studies.

With heartfelt wishes for continued inspiration and fruitful academic endeavors!

Dr. A.Jothi Murugan
Pro-Chancellor (Planning&Development)
Vels Group of Institutions
VISTAS

To Our Valued Contributors and Readers,

We are proud to present this compilation of proceedings from the impactful two-day International Seminar on "The Literature of the 21st Century: New Discourses," successfully organized by the Department of Hindi, VISTAS, in collaboration with Bohal Shodh Manjusha Bhiwani (Haryana).

Heartfelt congratulations are extended to the Department of Hindi, VISTAS, for their exemplary work in planning and executing this significant academic event. Their dedication, supported by Bohal Shodh Manjusha Bhiwani (Haryana), has profoundly enriched the dialogue on contemporary literature.

The 21st-century literary landscape, characterized by technological innovation, evolving societal norms, and global interconnectedness, continues to foster new perspectives, narrative forms, and diverse voices. This seminar served as a crucial platform to explore these transformations, emergent themes, and the new discourses shaping modern literature.

We trust that the seminar's insightful presentations, engaging discussions, and collaborative spirit have deepened our understanding of 21st-century literature and inspired further scholarly inquiry. May this compilation contribute significantly to the ongoing evolution of literary studies, offering valuable insights for future research.

With best wishes for continued inspiration!

Prof. Dr. M. Bhaskaran
Vice Chancellor (FAC),
Vels Institute of Science, Technology & Advanced Studies (VISTAS),
Pallavaram, Chennai 600 117
(Chairman, Research Advisory Committee,
Govt. of India - Indian Institute of Seed Science, UP)
Previous Positions Held
Vice Chancellor, Tamil Nadu Open University, Chennai
Director, National Seed Research & Training Centre,
Govt. of India, Ministry of Agriculture, Varanasi, U.P.
Special Officer, Seed Centre &
Professor and Head, Dept. of Seed Science and Technology
Tamil Nadu Agricultural University, Coimbatore.

संपादकीय...

21वीं सदी : नव विमर्श के बहुआयामी परिप्रेक्ष्य

इक्कीसवीं सदी मानव सभ्यता के इतिहास में परिवर्तन, संक्रमण और पुनर्संरचना की सदी है। यह वह कालखंड है जहाँ विचार, तकनीक, समाज और संस्कृति निरंतर गतिशीलता में हैं। ज्ञान की परंपरागत सीमाएँ टूट रही हैं और नए विमर्श जन्म ले रहे हैं। ऐसे समय में "नव विमर्श" केवल एक अकादमिक अवधारणा नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ को समझने और उसे नए दृष्टिकोण से व्याख्यायित करने का सशक्त माध्यम बन गया है।

इसी वैचारिक पृष्ठभूमि में 'VISTAS, चेन्नई' एवं 'गुगनराम एजुकेशनल एंड सोशल वेलफेयर सोसाइटी (रजिस्टर्ड)' के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक '13–14 सितम्बर 2025' को आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार अत्यंत प्रासंगिक एवं विचारोत्तेजक सिद्ध हुआ। इस सेमिनार में प्रस्तुत शोधपत्रों के आधार पर प्रकाशित यह विशेषांक "21वीं सदी : नव विमर्श" विषय की समकालीन प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।

नव विमर्श : अवधारणा और आवश्यकता :

नव विमर्श का आशय केवल नए विषयों से नहीं है, बल्कि दृष्टि, पद्धति और मूल्यांकन के नए मानकों से है। 21वीं सदी में समाज बहुस्तरीय संकटों और संभावनाओं से घिरा हुआ है – वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, तकनीकी वर्चस्व, डिजिटल संस्कृति, पर्यावरणीय संकट, लैंगिक असमानता, हाशिए के समुदायों की आवाज और पहचान की राजनीति जैसे प्रश्न आज विमर्श के केंद्र में हैं।

हिंदी साहित्य और सामाजिक विज्ञानों में नव विमर्श ने उन विषयों को मुख्यधारा में स्थान दिया है जिन्हें लंबे समय तक उपेक्षित रखा गया। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किसान विमर्श, पर्यावरण विमर्श, बाल विमर्श, वृद्ध विमर्श, क्वीयर विमर्श और डिजिटल विमर्श– ये सभी 21वीं सदी की चेतना के अनिवार्य घटक बन चुके हैं।

21वीं सदी का सामाजिक यथार्थ और विमर्श :

21वीं सदी का समाज विरोधाभासों से भरा हुआ है। एक ओर तकनीक ने जीवन को सहज और तीव्र बनाया है, वहीं दूसरी ओर मनुष्य का अकेलापन, मानसिक तनाव और मूल्यगत संकट गहराया है। सामाजिक संरचना में परिवार, रिश्ते और नैतिकता की परिभाषाएँ बदल रही हैं। ऐसे परिवेश में नव विमर्श सामाजिक यथार्थ को केवल दर्ज नहीं करता, बल्कि उसके अंतर्संबंधों और कारणों की विवेचना भी करता है।

इस विशेषांक में सम्मिलित शोध आलेख यह स्पष्ट करते हैं कि नव विमर्श केवल प्रतिरोध की भाषा नहीं, बल्कि पुनर्निर्माण की चेतना भी है। यह विमर्श सत्ता, वर्चस्व और हाशियाकरण के प्रश्नों को नए संदर्भों में समझने का प्रयास करता है।

साहित्य में नव विमर्श की भूमिका :

साहित्य सदैव समाज का दर्पण रहा है, किंतु 21वीं सदी में वह समाज का सक्रिय हस्तक्षेपकर्ता भी बन गया है। कविता, कथा, नाटक और आलोचना सभी विधाओं में नव विमर्श की उपस्थिति स्पष्ट दिखाई देती है। आज का साहित्य शोषित, वंचित और हाशिए पर खड़े व्यक्ति की आवाज को केंद्र में लाने का प्रयास कर रहा है।

इस विशेषांक में प्रकाशित आलेख यह सिद्ध करते हैं कि नव विमर्श ने साहित्य को संवेदनशील, उत्तरदायी और लोकतांत्रिक बनाया है। भाषा, शिल्प और कथ्यकृतीनों स्तरों पर परिवर्तन दिखाई देता है। अनुभव की प्रामाणिकता और जीवन की सच्चाइयाँ साहित्य की केंद्रीय चिंता बन गई हैं।

शोध, अकादमिकता और नव विमर्श :

नव विमर्श ने शोध की परंपरागत सीमाओं को भी विस्तारित किया है। आज शोध केवल ग्रंथों तक सीमित नहीं, बल्कि समाज, मीडिया, डिजिटल मंचों और जनजीवन से जुड़ा हुआ है। यह सेमिनार इसी दृष्टि का उदाहरण है, जहाँ विभिन्न विषयों और अनुशासनों के विद्वानों ने विमर्श को बहुआयामी बनाया।

VISTAS, चेन्नई एवं गुगन राम एजुकेशनल एंड सोशल वेलफेयर सोसाइटी द्वारा आयोजित यह सेमिनार अकादमिक समन्वय और वैचारिक संवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह आयोजन शोधकर्ताओं, शिक्षकों और साहित्यकारों को एक साझा मंच प्रदान करता है।

विशेषांक की प्रासंगिकता :

यह विशेषांक केवल सेमिनार की कार्यवाही नहीं, बल्कि 21वीं सदी के नव विमर्श का दस्तावेज है। इसमें सम्मिलित आलेख समकालीन प्रश्नों पर गंभीर, तथ्यात्मक और वैचारिक दृष्टि प्रस्तुत करते हैं। यह अंक शोधार्थियों, शिक्षकों और साहित्यप्रेमियों के लिए संदर्भ सामग्री के रूप में उपयोगी सिद्ध होगा।

विशेषांक का उद्देश्य विमर्श को स्थिर करना नहीं, बल्कि उसे आगे बढ़ाना है। यह पाठकों को प्रश्न करने, पुनर्विचार करने और नए निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए प्रेरित करता है।

समापन :

अंततः कहा जा सकता है कि 21वीं सदी का नव विमर्श मानव गरिमा, सामाजिक न्याय और समतामूलक समाज की स्थापना की दिशा में एक सशक्त वैचारिक आंदोलन है। यह विशेषांक उसी चेतना का प्रतिनिधित्व करता है।

हम VISTAS, चेन्नई एवं गुगन राम एजुकेशनल एंड सोशल वेलफेयर सोसाइटी (रजिस्टर्ड) के प्रति आभार व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग से यह सेमिनार और यह विशेषांक संभव हो सका। साथ ही, सभी लेखकों, शोधकर्ताओं और संपादकीय सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद, जिनके बौद्धिक योगदान से यह विशेषांक समृद्ध हुआ है।

आशा है कि यह संपादकीय और विशेषांक 21वीं सदी के नव विमर्श को समझने और आगे बढ़ाने में सार्थक भूमिका निभाएगा।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 18-21
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बदलते हुए पर्यावरण से बारिश की अधिकता : वरदान या अभिशाप

डॉ० सीमा कुमारी
सहायक प्राध्यापिका, राजकीय महिला महाविद्यालय, पंचकुला।

भूमिका :-

प्रकृति और मानव का संबंध सदा से गहरा और अटूट रहा है। मनुष्य अपने अस्तित्व के लिए प्रकृति पर ही निर्भर है। सूर्य, वायु, जल, मिट्टी और वनस्पतियाँ मनुष्य जीवन की नींव हैं। इनमें भी जल सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि जल के बिना जीवन की कल्पना ही असंभव है। जल का प्रमुख और सबसे विश्वसनीय स्रोत है वर्षा। प्राचीन काल से ही वर्षा को जीवनदायिनी माना गया है। भारतीय संस्कृति में 'मेघ' को देवताओं के रूप में पूजने की परंपरा रही है। किसान वर्षा का इंतजार करता है, कवि वर्षा की सुंदरता का वर्णन करता है और साधक वर्षा में प्रकृति की शक्ति का अनुभव करता है।

लेकिन आज जब पर्यावरण में बड़े स्तर पर परिवर्तन हो रहे हैं, तब वर्षा का स्वरूप भी असंतुलित होता जा रहा है। कहीं वर्षा बिल्कुल नहीं होती और सूखा पड़ जाता है, तो कहीं आवश्यकता से अधिक वर्षा होकर बाढ़ का कारण बन जाती है। यह स्थिति चिंता का विषय है। बारिश की अधिकता को हम वरदान मानें या अभिशाप, यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र पर पड़ते हैं – चाहे वह कृषि हो, उद्योग हो, स्वास्थ्य हो या सामाजिक व्यवस्था।

वर्षा की अधिकता का वरदान स्वरूप :-

यदि वर्षा पर्याप्त मात्रा में हो और उसे सही ढंग से नियंत्रित एवं उपयोग किया जाए तो यह मानव जीवन के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध होती है।

कृषि की उन्नति होती है : भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ की लगभग 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या सीधे–सीधे कृषि पर निर्भर है। धान, गन्ना, कपास, जूट जैसी कई फसलें पानी की अधिकता चाहती हैं। अधिक वर्षा से खेतों को पर्याप्त जल मिलता है और किसानों की फसलें लहलहा उठती हैं। सिंचाई के साधनों पर खर्च कम हो जाता है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

भूजल स्तर का पुनर्जीवन : आज के समय में भूजल स्तर लगातार गिर रहा है। बड़े–बड़े शहरों में पानी की कमी गंभीर समस्या बन चुकी है। अत्यधिक वर्षा से जलस्रोत पुनःचार्ज होते हैं। कुएँ, तालाब और हैंडपंप जीवित हो जाते हैं। यह भविष्य के लिए जल सुरक्षा की दृष्टि से भी लाभकारी है।

नदियों और झीलों का भराव : अधिक वर्षा से नदियाँ और झीलें पुनः जल से भर जाती हैं। यह न केवल मनुष्यों के लिए बल्कि पशु–पक्षियों और जलीय जीवों के लिए भी जीवनदायी है। मछली पालन जैसी गतिविधियों में भी बढ़ोतरी होती है, जो रोजगार का साधन बनती है।

ऊर्जा उत्पादन : भारत में कई बड़े जलविद्युत परियोजनाएँ वर्षा पर निर्भर करती हैं। बाँधों में जल भरने से बिजली उत्पादन अधिक होता है। इससे न केवल उद्योगों को ऊर्जा मिलती है, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों को भी सस्ती और स्वच्छ बिजली उपलब्ध होती है।

पर्यावरणीय संतुलन :–

अधिक वर्षा से वातावरण में नमी बनी रहती है, तापमान कम होता है और गर्मी से राहत मिलती है। पेड़–पौधों और हरियाली को जीवन मिलता है। यह जैव विविधता को सुरक्षित करती है और प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने में मददगार होती है।

वर्षा की अधिकता का अभिशाप स्वरूप :–

यदि वर्षा अनियंत्रित और अत्यधिक मात्रा में हो, तो यह जीवन के लिए खतरा बन जाती है।

बाढ़ की त्रासदी :–

भारत में हर साल असम, बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में बाढ़ आती है। बाढ़ से गाँव–गाँव डूब जाते हैं, मकान गिर जाते हैं, फसलें नष्ट हो जाती हैं और जन–धन की भारी हानि होती है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में लोग बेघर होकर सड़कों पर आश्रय लेने को मजबूर हो जाते हैं।

भूस्खलन और भूगर्भीय आपदाएँ :–

अत्यधिक वर्षा से पहाड़ी इलाकों में भूस्खलन होता है। उत्तराखंड, हिमाचल और सिक्किम जैसे राज्यों में हर साल सैकड़ों लोग इसकी चपेट में आ जाते हैं। सड़कों और पुलों के टूटने से सम्पर्क कट जाता है और बचाव कार्य कठिन हो जाते हैं।

स्वास्थ्य संकट :–

बाढ़ के पानी के ठहरने से गंदगी फैलती है। मच्छरों की संख्या बढ़ने से डेंगू, मलेरिया जैसी बीमारियाँ फैलती हैं। दूषित पानी पीने से हैजा और टाइफाइड जैसी महामारी फैल सकती है। यह स्वास्थ्य सेवाओं पर बोझ डालती है और ग्रामीणों के जीवन को कठिन बना देती है।

आर्थिक क्षति :–

अत्यधिक वर्षा से जब फसलें नष्ट होती हैं, तो किसानों को भारी घाटा झेलना पड़ता है। सरकार को राहत और पुनर्वास कार्यों में अरबों रुपये खर्च करने पड़ते हैं। परिवहन व्यवस्था ठप हो जाती है, जिससे व्यापार और उद्योग पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सामाजिक अस्थिरता :–

बाढ़ और आपदाओं के बाद बड़ी संख्या में लोग विस्थापित हो जाते हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ बाधित होती हैं। बेरोजगारी और गरीबी बढ़ जाती है। यह सब मिलकर समाज में तनाव और असुरक्षा की भावना पैदा करता है।

आँकड़ों और उदाहरणों के माध्यम से स्थिति :–

- संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट (2023) बताती है कि पिछले 50 वर्षों में दक्षिण एशिया में चरम वर्षा की घटनाएँ 30 प्रतिशत बढ़ चुकी हैं।
- 2022 में पाकिस्तान में आई बाढ़ ने 3.3 करोड़ लोगों को प्रभावित किया और हजारों गाँव जलमग्न हो गए।
- भारत में 2021 की बाढ़ से केवल महाराष्ट्र में ही लगभग 400 लोगों की मृत्यु हुई और लाखों हेक्टेयर फसल बर्बाद हो गई।
- असम और बिहार जैसे राज्यों में लगभग हर वर्ष बाढ़ की विभीषिका देखी जाती है।

ये उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि अधिक वर्षा अपने साथ वरदान और अभिशाप दोनों ही ला सकती है। समाधान और उपाय निकालकर बारिश की अधिकता को केवल वरदान बनाने के लिए हमें ठोस कदम उठाने होंगे।

जल संरक्षण और संचयन से :–

वर्षा जल को संरक्षित करने के लिए हर घर और संस्थान में वर्षा जल संचयन की व्यवस्था करनी होगी।

बाढ़ नियंत्रण योजनाएँ :–

- नदियों पर मजबूत तटबंध, बाँध और बैराज बनाए जाएँ और समय–समय पर उनकी देखभाल की जाए।
- वन संरक्षण और वृक्षारोपण सेवनों की कटाई रोकने और वृक्षारोपण को बढ़ावा देने से भूमि की पकड़ मजबूत होगी और भूस्खलन कम होगा।

शहरी नियोजन :–

- शहरों में जल निकासी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। नालों की सफाई और अवैध निर्माण पर रोक लगाना आवश्यक है।
- जन–जागरूकता और प्रशिक्षण से लोगों को जलवायु परिवर्तन और आपदाओं के प्रति जागरूक करना चाहिए। स्कूल स्तर से ही बच्चों को जल प्रबंधन की शिक्षा दी जानी चाहिए।
- तकनीकी उपयोग मौसम की सटीक भविष्यवाणी के लिए उपग्रह और आधुनिक तकनीक का उपयोग किया जाए ताकि लोग पहले से सावधानी बरत सकें।

सक्षेप में कह सकते हैं कि बदलते हुए पर्यावरण ने वर्षा के स्वरूप को असामान्य बना दिया है। कहीं वर्षा का अभाव तो कहीं वर्षा की अधिकता – यही आज की सबसे बड़ी चुनौती है। वर्षा अपने आप में न तो पूर्णतः वरदान है और न ही अभिशाप। यह तो मात्र एक प्राकृतिक घटना है। इसे वरदान या अभिशाप बनाना मनुष्य के हाथ में है। यदि हम उचित जल प्रबंधन, पर्यावरण संरक्षण और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाएँ, तो अधिक वर्षा हमारे लिए जीवनदायिनी बन सकती है। लेकिन यदि हमने लापरवाही दिखाई, तो यही वर्षा बाढ़ और आपदा का कारण बनकर आने वाली पीढ़ियों को संकट में डाल सकती है।

इसलिए आज आवश्यकता है कि हम वर्षा को केवल वरदान के रूप में स्वीकार करने के लिए सजग, जिम्मेदार और संवेदनशील बनें। यही सतत विकास का मार्ग है और यही मानवता के भविष्य की रक्षा का उपाय।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 21-24
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन सिंधी कहानी में स्त्रीवादी चिंतन

नीतू केवलरामानी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, राष्ट्रसंत तुकड़ोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर।

भूमिका :-

समकालीन सिंधी कहानियों में महिला पात्र अपनी पहचान और अस्तित्व के लिए संघर्ष करती दिखाई देती हैं। उन्हें अब केवल गृहिणी या परंपरागत भूमिकाओं तक सीमित नहीं रखा जा सकता है। सिंधी कहानियों में स्त्री–पुरुष समानता की चेतना प्रबल है। स्त्रियां शिक्षा, रोजगार, सामाजिक निर्णय और रिश्तों में बराबरी की मांग करती हैं। ये स्त्री पात्र पितृसत्ता और रूढ़ियों से टकराते हैं। कई कहानियों में यह द्वंद्व दिखाया गया है कि, किस तरह आधुनिक परिवेश में रहते हुए भी स्त्रियों को पारंपरिक सोच से जूझना पड़ता है। सिंधी कहानियों में स्त्री की भावनाएं, उसकी पीड़ा, उसकी इच्छाएं और सपनों को केंद्र में रखा गया है। यह दृष्टि स्त्री को "वस्तु" नहीं, बल्कि "विषय" के रूप में प्रस्तुत करती है। समकालीन सिंधी कहानियां नारी के प्रतिरोध को स्वर देती हैं। कुल मिलाकर, समकालीन सिंधी कहानियों में स्त्रीवादी चिंतन नारी के आत्मसम्मान, स्वाधिकार और स्वतंत्रता को केंद्र में रखता है और उसे सामाजिक तथा सांस्कृतिक बंधनों से मुक्त करने की कोशिश करता है। ज्यादातर मध्यमवर्गीय शहरी नौकरीपेशा महिलाएं सिंधी कहानियों के केंद्रबिंदु में हैं, क्योंकि विभाजन के बाद मुख्यतः सिंधी समाज भारत के अलग–अलग शहरों में बसा हुआ है। सिंधी कहानीकारों के लिए ग्रामीण स्त्री जीवन को देखना तथा उसे कहानी का विषय बनाना काफी मुश्किल रहा है। अतः बहुतांश सिंधी कहानियों में मध्यम तथा उच्च मध्यमवर्गीय स्त्रियों की समस्याओं का ही चित्रण मिलता है।

पोपटी हीरानंदाणी सिंधी साहित्य में स्त्री चेतना की अग्रणी आवाज मानी जाती हैं। उनकी कहानियों में स्त्री की स्वतंत्रता, स्वाभिमान और सामाजिक बंधनों के विरुद्ध प्रतिरोध प्रमुख रूप से मिलता है। वे स्त्री को केवल 'त्यागमूर्ति' के रूप में नहीं, बल्कि अपने फैसले लेनेवाली सजग इकाई के रूप में प्रस्तुत करती हैं। माया राही की कहानियां शहरी परिवेश में स्त्रियों की मानसिक द्वंद्व, उनके संघर्ष और समानता की खोज को सामने लाती हैं। तारा मीरचंदाणी तथा वीणा श्रृंगी की कहानियों में स्त्रियों की आंतरिक पीड़ा, संवेदनाएं और बदलती सामाजिक परिस्थितियों का गहरा चित्रण है। हरि मीरचंदाणी, वासदेव मोही, शौकत हुसैन शोरो आदि की रचनाओं में भी स्त्री–जीवन की विविध समस्याएं जैसे विवाह की असमानताएं, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर भेदभाव आदि को कथा–वस्तु बनाया गया है।

उद्देश्य :-

प्रस्तुत शोध निबंध में समकालीन सिंधी कहानी में स्त्रीवादी चिंतन का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस

शोध निबंध में उपरोक्त बिंदु का विवेचन करने के लिए चार सिंधी कहानीकारों की कुछ चुनिंदा कहानियों को लिया गया है। इन कहानीकारों में वासदेव मोही, वीणा श्रृंगी, माया राही और शौकत हुसैन शोरो का समावेश है।

सिंधी कहानी में स्त्रीवादी चिंतन :-

1. माया राही की 'खबरदार' कहानी स्त्री चिंतन के संदर्भ में एक प्रतिनिधित्व कहानी मानी जाती है। कहानी की नायिका रमा स्कूल में शिक्षिका है। कई वर्षों से वह नौकरी कर रही है। तड़के चार बजे उठती है और घर एवं दफ्तर की दोहरी जिम्मेदारी निभाती है। बावजूद उसके वेतन पर उसका पति अधिकार रखता है। रमा को आधार मानते हुए माया राही महिलाओं के संघर्ष से हमें अवगत कराती हैं। आधुनिक समाज में जहां महिलाओं का आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना जरूरी हो गया है, वहीं उसके अपने ही यह भूल जाते हैं कि, वह भी इंसान है। आज की स्त्री दोहरे बोझ से पीड़ित है।

"ट्रिन..... ट्रिन..... ट्रिन ..... न. न। रमा ने करवट बदली। बाईं ओर सिरहाने के पास रखे अलार्म क्लॉक को हाथ में लेकर, उसने अलार्म बंद करने वाले नॉब को टटोलना शुरू किया। छोटे से घड़ियाल का छोटा सा नॉब! नॉब प्रेस कर उसने अलार्म बंद कर दिया। घड़ियाल सीधा कर समय देखा। पूरे चार बजे थे। उसके मन में आया कि, करवट बदलकर सो जाए और सचमुच ही वह करवट बदलकर सोने का प्रयत्न करने लगी। उसने अंदाजन मन ही मन में हिसाब लगाया। रात को बारह बजे उसने अलार्म लगाकर बत्ती बुझा दी थी। केवल चार घंटे की नींद और बीस घंटे काम करना है।"[1]

2. वीणा श्रृंगी की 'जन्नत–दोजख' कहानी की नायिका जेबा महानगर में रहनेवाली एक शिक्षित महिला है। वह अपनी योग्यता से अधिक अपने रूप लावण्य से बड़े अफसरों को अपनी ओर आकर्षित कर उच्च पद प्राप्त करने में विश्वास रखती है। ऑफिस का कामकाज भी वह सहकर्मी अंसारी की मदद से पूरा करती है। रोज–रोज की बातचीत दोनों में नजदीकियां बढ़ा देती है। एक दिन दोनों निकाह कर लेते हैं। जेबा एक खुदगर्ज और संवेदनहीन आधुनिक नारी का प्रतीक है, जो अपने मतलब के लिए किसी भी हद तक जा सकती है। सेवानिवृत्ति के बाद अंसारी का स्वास्थ खराब हो जाता है। उस वक्त भी जेबा अंसारी का ख्याल रखने के बजाए उसे नौकरों के हवाले छोड़कर मनमाना जीवन जीती है। अंसारी की मृत्यु पर उसके अंतिम दर्शन के लिए भी वह नहीं जाती है। यह कहानी आधुनिक नारियों की वास्तविकता की ओर इशारा करती है कि, आज के दौर की हर नारी प्रेम, स्नेह और ममता की मूरत नहीं होती।

"अंसारी काफी समय से बीमार थे। जेबा उसे नौकरों के भरोसे छोड़कर खुद बिंदास मौज मस्ती में रहती थी। अंसारी ने जेबा के लिए क्या कुछ नहीं किया, लेकिन उस एहसान फरामोश ने अंसारी का उम्र के इस पड़ाव में साथ छोड़ दिया। यह खबर मिलते ही अंसारी की पहली पत्नी उसे अपने घर लेकर आई। नाहीद से पता चला कि, मरने के बाद भी जेबा उसकी आखिरी बार सूरत देखने नहीं आई।"[2]

2.5. वासदेव मोही की कहानी 'ही मुहिंजो घर आहे' (यह मेरा घर है) समाज के दोहरे मानदंड को उजागर करनेवाली कहानी है। ज्योति का पति मनोज कामकाज के चलते दुबई में रहता है। ज्योति अपने सास–ससुर के साथ भारत में रहती है। ज्योति की सास धनवंती के देहांत के बाद ज्योति ससुर मोहनदास के साथ घर में अकेली रहती है। वह अपने ससुर का बहुत ख्याल रखती है। मगर एक तरफ समाज कहता है कि, बहू को संस्कारी तथा सेवाभावी होना चाहिए। ज्योति जब अपना कर्तव्य पूरी शिद्दत के साथ निभाती है, तब यही समाज

उस पर लांछन लगाता है। मोहनदास तथा ज्योति के संबंधों की अफवाह ज्योति के पिता धर्मदास के कानों तक भी पहुंच जाती है। जिसके बाद वह मोहनदास के घर आकर उससे निवेदन करता है कि, जब तक मनोज दुबई से लौट नहीं आता है, तब तक ज्योति मायके में चलकर रहे। ज्योति एक समझदार, सुशिक्षित और आधुनिक विचारों वाली नारी है। वह मायके जाने से साफ इनकार कर देती है।

"लोग कुछ भी कहें मुझे परवाह नहीं। मुझे अपने आप पर, डैडी पर और मनोज पर पूरा भरोसा है। हम कभी इन बदकार बातों में बह नहीं जाएंगे। समाज के लिए मान है, पर इसका मतलब यह नहीं कि, हर युग में सीता की कहानी दोहराई जाए। न जाने कैसी–कैसी बदगुमानियों से ग्रस्त है अपना समाज! लेकिन बेटा... नहीं पप्पा, मैं आपके साथ बिल्कुल नहीं चलूंगी। मैं यहीं रहूंगी। यह मेरा घर है।"[3]

2.7. शौकत हुसैन शोरो की कहानियों में सिंध (पाक) के समाज के बारे में जाना जा सकता है। आज भी सिंध का समाज पुरानी परंपराओं और जमींदारी व्यवस्था में जकड़ा हुआ है। ऐसे समाज में नारी की स्थिति भी कुछ ज्यादा अच्छी नहीं है।

शौकत शोरो की कहानी 'आसी' की नायिका आसी भी ऐसे पुरुष–प्रधान समाज में होनेव ाले अन्याय व अत्याचार सहनेवाली नारी का उदाहरण है। कहानी ऐसी है कि, आसी के हुस्न पर मोहित होकर अफजल खान उससे विवाह करता है। विवाह पश्चात दोनों के कुछ वर्ष तो प्रेम–मोहब्बत में बीत जाते हैं। आसी की पहली संतान की मृत्यु के बाद वह बहुत दुखी रहने लगती है। उसके बाद आसी की और तीन संतानें होती हैं। वक्त गुजरते–गुजरते अफजल खान का आसी के प्रति प्रेम कम होने लगता है। अब वह बहुत दिनों तक घर से बाहर रहने लगता है। आसी इस बात को लेकर आशंकित रहने लगती है कि, एक दिन अफजल खान अमो नामक नई दुल्हन को अपने साथ घर लेकर आता है। वह घड़ी आसी के लिए वज्रपात से कम नहीं होती है। अफजल खान जमींदार खानदान से है। अपने पूर्वजों की तरह वह भी बहुविवाह पद्धति में विश्वास रखता है। इसके बाद वह जना के साथ तीसरा विवाह कर लेता है। आसी का चरित्र हमें सोचने पर मजबूत कर देता है कि, जहां एक ओर स्त्री–पुरुष समानता, नारी के अधिकारों की बातें हो रही हैं, वहीं समाज में आसी जैसी नारियां भी हैं, जो अपने ही पति द्वारा प्रताड़ित होती हैं। शौकत शोरो की यह कहानी संपूर्ण आदर्शवाद से दूर सिंध के समाज में नारी की वास्तविकता बयां करती है।

"जना की मां ने पता नहीं क्या कान भरे आसी के लिए, जैसे पानी उबलने लगा। तिल का ताड़ बनने लगा, बात–बात में झगड़ा होने लगा। बात जाकर गाली–गलौज तक आ पहुंची। चुप रहना तो आसी के लिए भी मुश्किल था। अफजल खान हमेशा जना की ही तरफदारी करता। आसी को गालियां देकर निकाल देता था। अब घर में आसी की इज्जत बहुत कम हो गई थी। उसका पूरा सर सफेद हो गया। मुंह में झुर्रियां पड़ गई थीं। ठुड्ठी और बांह का मांस लटक गया था। उसे कैदियों की तरह खाना और कपड़ा दिया जाता था। घर के घुटन भरे माहौल में वह यह भूल गई थी कि, बाहर क्या है?"[4]

निष्कर्ष :-

इस शोध आलेख में समकालीन सिंधी कहानी में स्त्रीवादी चिंतन पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। वीणा श्रृंगी ने कलात्मक ढंग से नारी चेतना के अलग–अलग पहलुओं की ओर हमारा ध्यान खींचा है। पति के दूर हो जाने पर अपने ही घर में ससुर के साथ रहना नारी के लिए आलोचना का कारण बन जाता है। नारी स्वयं के

घर में तथा बाहर कितनी असुरक्षित है! वासदेव मोही की कहानियां इस ओर इशारा करती हैं। नारी चाहे शिक्षित हो या आर्थिक रूप से संपन्न, फिर भी वह हर जगह स्वयं को कमजोर और असहाय पाती है। अगर नारी अपने अधिकारों और इच्छाओं की बात करे, तो ऐसी नारी पुरुष–प्रधान समाज को स्वीकार नहीं होती। इसके विपरीत शौकत शोरो की कहानियां सिंध के रूढ़िवादी समाज में रहनेवाली स्त्रियों के कठिनाई भरे जीवन का वर्णन करती हैं। माया राही नारी के मानसिक द्वंद्व पर कलम चलाती हैं। उनके स्त्री पात्र जागरूक, बुद्धिमान तथा समाज में अपनी पहचान बनानेवाले हैं। माया राही की कहानियों में स्पष्ट मत यह होता है कि, स्त्री केवल भोग की वस्तु नहीं है। उनकी भी अपनी इच्छाएं, आकांक्षाएं और सपने हैं, जिनको पूरा करने का उन्हें अधिकार है। वीणा श्रृंगी की कहानियां सामाजिक संदर्भ पेश करती हैं। उनके नारी पात्र सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर सर्वश्रेष्ठ चरित्र हैं। नारी को सही मायने में पहचान बनाने के लिए जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, उन्हें वीणा श्रृंगी ने बखूबी कहानियों का विषय बनाया है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि, सिंधी कहानी नारी–चेतना के अलग ही आयाम प्रस्तुत करती है। ग्रामीण जीवन से आने वाली नारी लगभग अनुपस्थित ही है, क्योंकि सिंधी कहानियों में ग्रामीण जीवन, ग्रामीण नारी भारत में कम ही देखने को मिलती है। अतः समकालीन सिंधी कहानी में मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक विवेचन अधिक पढ़ने को मिलता है।

संदभ ग्रंथ सूची :–

1. माया राही, 'खबरदार', और वह उदास हो गई, ज्वाला पब्लिकेशन, ए–1/60, हेपी वेली, टिंकूजीनी वाड़ी रोड, मानपाड़ा, थाणे (पश्चिम)–400610, पृष्ठ 28
2. वीणा श्रृंगी, 'जन्नत–दोजख', सरहदुन जो स्लेब, प्रकाशक वीणा श्रृंगी, सी–84, इंद्रपुरी, नई दिल्ली–110012, पृष्ठ 96
3. वासदेव मोही, 'ही मुहिंजो घर आहे' (यह मेरा घर है), चेकबुक, व्हाइट फेलकॉन सेल्फ पब्लिशिंग प्लेटफॉर्म (1 जनवरी 2016), पृष्ठ 98
4. शौकत हुसैन शोरो, 'आसी', खोई हुई परछाई, भारतीश्री प्रकाशन 10൯119, पटेल गली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली–110032, पृष्ठ 230

पता – प्लॉट नं. 356, प्रभु प्रकाश प्रिंटिंग प्रेस के सामने, जनता हॉस्पिटल रोड, जरीपटका, नागपुर – 440014

मोबाइल नं. 7756078187

ईमेल – kewalramanineetu81@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 25-32

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शहरी बनाम ग्रामीण चेतना : समकालीन साहित्य का परिप्रेक्ष्य

डॉ० मौ० मुजफ्फर अंसारी
राजनीती विज्ञान, घिस्सुपुरा–हरिद्वार उत्तराखण्ड।

शोध सार- (Abstract) :-

समकालीन भारतीय साहित्य शहरी और ग्रामीण चेतना के बीच उपस्थित अंतःक्रिया, संघर्ष और सामंजस्य की प्रक्रिया को प्रतिबिंबित करता है। शहरी चेतना जहाँ चमचमाती जिंदगी, विदेशी परिधानों को अपनाना या वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, औद्योगिकीकरण और तकनीकी प्रगति से निर्मित है, वहीं ग्रामीण चेतना, एक साथ बैठना–उठना, मिलजुल कर काम करना या सामुदायिकता, पूर्वजों से चली आ रही परंपरा, रीति–रिवाज, मान्यताएँ, जीवन–शैली, और प्रकृति–केन्द्रित जीवन मूल्यों पर आधारित– जिन्हें ग्रामीण समाज पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपनाता और आगे बढ़ाता है, पर आधारित रहती है। भारत के विभिन्न साहित्यों में इन दोनों चेतनाओं का परस्पर संवाद एक नई दृष्टि प्रदान करता है, जो भारतीय समाज के बदलते स्वरूप और सांस्कृतिक संक्रमण को गहराई से दर्शाता है। विशेष रूप से, कथा–साहित्य में यह विमर्श स्पष्ट रूप से उभरता है, जहाँ पात्रों की मानसिकता, कथानक की संरचना और सामाजिक संबंधों में शहरी–ग्रामीण अनुभवों का सम्मिलन दिखाई देता है। इस प्रक्रिया ने "संकर चेतना" की अवधारणा को जन्म दिया है, जो परंपरा और आधुनिकता, स्थानीय और वैश्विक दृष्टिकोण के बीच संतुलन स्थापित करती है। इस शोध–पत्र का उद्देश्य इन्हीं परिवर्तनों का विश्लेषण करना तथा यह दिखाना है कि भारतीय साहित्य किस प्रकार सामाजिक यथार्थ, सांस्कृतिक विविधता और मूल्यगत बदलावों को अभिव्यक्त करता है।

मुख्य शब्द (Keywords) :- शहरी चेतना, ग्रामीण चेतना, तुलनात्मक अध्ययन, सांस्कृतिक द्वंद्व, वैश्वीकरण, संकर चेतना, समकालीन साहित्य, भारतीय कथा–साहित्य।

प्रस्तावना :-

भारतीय साहित्य अपने व्यापक स्वरूप में केवल कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, बल्कि यह समाज की सांस्कृतिक चेतना, ऐतिहासिक अनुभव और सामूहिक स्मृति का जीवंत दर्पण भी है। विशेषकर कथा–साहित्य, भारतीय समाज की गत्यात्मकता, विरोधाभासों और बदलती जीवन–दृष्टियों को अभिव्यक्त करने का सशक्त साधन रहा है। यहाँ शहरी और ग्रामीण चेतना का विमर्श अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यही दोनों धाराएँ मिलकर भारतीय समाज के सांस्कृतिक और सामाजिक स्वरूप का निर्माण करती हैं।

भारतीय ग्रामीण चेतना मूलतः परंपरा, सामुदायिकता और प्रकृति–केंद्रित जीवन–दृष्टि पर आधारित रही है। गाँव का जीवन सामाजिक एकता, सहयोग और साझा श्रम पर टिका हुआ है, शहरों की सोच और जीवन–शैली पर कारखानों और उद्योगों का बड़ा असर पड़ा है। लोग अब ज्यादा से ज्यादा चीजें खरीदने और इस्तेमाल करने लगे हैं। साथ ही, दूर–दराज के देशों और संस्कृतियों से जुड़ाव बढ़ने से नए–नए विचार और तौर–तरीके अपनाए जा रहे हैं। इसी से शहरी चेतना यानी शहर की सोच आधुनिक मूल्यों और जीवन–शैली को सामने लाती है। इन दोनों चेतनाओं के बीच का संवाद, टकराव और समन्वय ही साहित्य को उसकी गहराई और विविधता प्रदान करता है। आज के समय में वैश्वीकरण, लोगों का पलायन (प्रवासन) और नई तकनीक ने हमारी सोच को और जटिल बना दिया है। अब साहित्य में शहर का अनुभव केवल आधुनिक रूप में नहीं दिखता और न ही गाँव का जीवन सिर्फ पुरानी परंपराओं तक सीमित रहता है। इन दोनों के मेल से एक नई तरह की 'मिश्रित चेतना' पैदा हुई है, जिसने भारतीय कहानी और साहित्य को नए दृष्टिकोण और कई स्तर दिए हैं।

शोध का उद्देश्य :–

अतः इस शोध का उद्देश्य शहरी और ग्रामीण चेतना के साहित्यिक आयामों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए यह समझना है कि समकालीन भारतीय साहित्य में शहरी और ग्रामीण जीवन–दृष्टि कैसे दिखाई देती है। इसमें देखा जाएगा कि शहरी जीवन में आधुनिकता, तकनीक और वैश्वीकरण के कारण व्यक्तिवाद, प्रतिस्पर्धा और उपभोक्तावाद बढ़ता है, जबकि ग्रामीण जीवन में सामूहिकता, परंपरा और स्थानीय संस्कृति का महत्व अधिक रहता है। तथा इन दोनों जीवन–दृष्टियों के बीच टकराव और मेल–जोल से एक नई "संकर चेतना" उभरती है, जो साहित्य में नई कहानियों, पात्रों और विषयों को जन्म देती है। इस तरह यह शोध बताएगा कि साहित्य कैसे समाज की वास्तविकताओं और बदलावों को दिखाता है।

शहरी चेतना (Urban Consciousness) :–

भारतीय साहित्य में शहरी चेतना एक महत्त्वपूर्ण विमर्श–क्षेत्र है, क्योंकि यह आधुनिकता, औद्योगिकीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं से गहराई से प्रभावित रही है। शहरी समाज की संरचना व्यक्तिवाद, प्रतिस्पर्धा और तेज जीवन–गति पर आधारित होती है, जहाँ व्यक्ति अपनी पहचान, स्वतंत्रता और सामाजिक प्रतिष्ठा की खोज में निरंतर प्रयत्नशील दिखाई देता है।[1]

साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में शहरी चेतना उन जटिलताओं को उद्घाटित करती है, जिनका सामना आधुनिक मनुष्य करता है।[2] महानगरीय जीवन का शोर, व्यावसायिक दबाव, उपभोक्तावाद और अकेलापनकृ ये सभी तत्व शहरी जीवन के साथ–साथ साहित्य का भी हिस्सा बनते हैं। परिणामस्वरूप, कथानक और पात्रों में आत्म–संघर्ष, अस्तित्वगत संकट और पहचान की बेचौनी जैसी प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं।

समकालीन भारतीय कथा–साहित्य में शहरी चेतना अनेक रूपों में प्रकट होती है। अरुंधति रॉय, अमिताव घोष और चेतन भगत जैसे लेखकों ने अपनी कृतियों में महानगरीय जीवन की तीव्रता, बहुस्तरीय संबंधों और वैश्विक प्रभावों को चित्रित किया है। इन कृतियों में पात्र अक्सर पूँजीवादी समाज की चुनौतियों, तकनीकी परिवर्तनों और नैतिक दुविधाओं से जूझते नजर आते हैं।

सांस्कृतिक स्तर पर शहरी चेतना बहुसांस्कृतिक संपर्क और वैश्विक अनुभवों को आत्मसात करती है। यहाँ पारंपरिक मूल्य और आधुनिक दृष्टिकोण साथ–साथ मौजूद रहते हैं, किंतु इनके बीच संतुलन बनाए रखना

प्रायः कठिन हो जाता है। यही द्वंद्व शहरी साहित्य को मनोवैज्ञानिक गहराई और वैचारिक तीव्रता प्रदान करता है।

अतः कहा जा सकता है कि शहरी चेतना भारतीय साहित्य में केवल महानगरीय जीवन का चित्रण भर नहीं है, बल्कि यह उस मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्ष का प्रतिनिधित्व करती है, जो आधुनिक मनुष्य के अस्तित्व का अनिवार्य हिस्सा बन चुका है।

ग्रामीण चेतना (Rural Consciousness) :-

भारतीय साहित्य की धारा में ग्रामीण चेतना का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह चेतना भारत के गाँव की जड़ों से जुड़ी हुई है, जहाँ प्रकृति, सामूहिकता और परंपरा जीवन के मूल आधार माने जाते हैं। गाँव के लोगो का जीवन सीधे व् भोले भाले, नैतिक मूल्यों से संपन्न और मिलनसार सहयोग पर आधारित होता है। यही कारण है कि ग्रामीण साहित्य में मानवीय संवेदना, परिश्रम, संघर्ष और सामाजिक संबंधों की गहराई प्रमुख रूप से सामने आती है।

साहित्यिक दृष्टि से ग्रामीण चेतना न केवल कृषि–आधारित जीवन को दर्शाती है, बल्कि उस संस्कृति को भी संरक्षित करती है, जिसमें लोकगीत, लोककथाएँ, धार्मिक अनुष्ठान और पारंपरिक कला–रूप गहराई से जुड़े हुए हैं। फणीश्वरनाथ रेणु, प्रेमचंद और महाश्वेता देवी जैसे लेखकों ने अपने साहित्य में गाँव की सामाजिक संरचना, किसानों के संघर्ष और सामुदायिक जीवन की भावनात्मक संवेदनाओं को उजागर किया है।[3]

ग्रामीण चेतना का एक विशिष्ट पक्ष यह है कि यह व्यक्ति से अधिक समाज को प्राथमिकता देती है। यहाँ सामूहिक कल्याण, परंपरा का संरक्षण और नैतिक मूल्य जीवन के प्रमुख आधार बनते हैं। इस चेतना में प्रकृति के साथ मनुष्य का गहरा संबंध दिखाई देता है, जो साहित्य में खेत–खलिहान, ऋतु–परिवर्तन और ग्रामीण उत्सवों के चित्रण के रूप में परिलक्षित होता है।

समकालीन साहित्य में ग्रामीण चेतना अब स्थिर और स्थायी नहीं रही, बल्कि बदलते सामाजिक–आर्थिक परिदृश्यों के साथ इसमें परिवर्तन भी दिखाई देता है।[4] प्रवासन, वैश्वीकरण और तकनीकी हस्तक्षेप ने गाँव की संरचना को प्रभावित किया है, किंतु इसके बावजूद ग्रामीण चेतना अपने मूल्यों और सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने के लिए सतत प्रयत्नशील है।

अतः ग्रामीण चेतना भारतीय साहित्य में केवल ग्रामीण जीवन का चित्रण नहीं है, बल्कि यह उस सांस्कृतिक आत्मा का प्रतिनिधित्व करती है, जो भारतीय समाज की जड़ों को आज भी मजबूत बनाए हुए है।

तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis) :-

शहरी और ग्रामीण चेतना के बीच का अंतर केवल जीवन–शैली का नहीं, बल्कि मूल्य, दृष्टिकोण और सांस्कृतिक आधार का भी है। शहरी समाज में व्यक्तिवाद, प्रतिस्पर्धा और व्यावसायिक महत्वाकांक्षा प्रमुख स्थान रखते हैं, जबकि ग्रामीण समाज सामूहिकता, परंपरा और नैतिक मूल्यों पर आधारित रहता है।[5]

आर्थिक दृष्टि से, शहरी जीवन औद्योगिक ढाँचों और सेवा क्षेत्र पर निर्भर करता है, जहाँ पूँजी और तकनीक का प्रवाह अधिक होता है। इसके विपरीत, ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि और उससे जुड़े पारंपरिक व्यवसायों पर आधारित रहती है, जहाँ श्रम और प्रकृति के संसाधन केंद्रीय भूमिका निभाते हैं।

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में शहरी चेतना आधुनिकता, वैश्विक प्रभाव और बहुसांस्कृतिक संपर्क से प्रभावित

रहती है, जबकि ग्रामीण चेतना लोककला, धार्मिक अनुष्ठानों और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण की ओर उन्मुख होती है।[6] यही कारण है कि साहित्यिक कृतियों में शहरी पात्र अक्सर आत्म–संघर्ष, महत्वाकांक्षा और पहचान की खोज में दिखाई देते हैं, जबकि ग्रामीण पात्र सामुदायिक उत्तरदायित्व, परंपरा और सांस्कृतिक जड़ों के प्रति समर्पित रूप में चित्रित होते हैं।

समकालीन साहित्य में यह विभाजन कथानक और पात्रों की मानसिकता में स्पष्ट झलकता है। शहरी कथानक तेज गति, जटिल घटनाओं और मनोवैज्ञानिक द्वंद्व से भरे होते हैं, जबकि ग्रामीण कथानक सामूहिक संघर्ष, परंपरा और जीवन की सरलता को उभारते हैं। प्रेमचंद, रेणु और महाश्वेता देवी की रचनाएँ इस द्वैत को सशक्त रूप से सामने लाती हैं। इस प्रकार, तुलनात्मक दृष्टि से कहा जा सकता है कि शहरी और ग्रामीण चेतना साहित्य में परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक ध्रुव हैं। दोनों मिलकर भारतीय समाज और साहित्य की व्यापकता, विविधता और जटिलता को परिभाषित करते हैं।

सांस्कृतिक द्वंद्व (Cultural Conflict) :–

भारतीय समाज में शहर और गाँव की सोच और जीवन–शैली के बीच अंतर होना स्वाभाविक है। यह फर्क सिर्फ इस बात तक सीमित नहीं है कि लोग कहाँ रहते हैं या उनकी आर्थिक स्थिति कैसी है। असली अंतर उनकी जीवन–दृष्टि, मूल्यों और सामाजिक व्यवहार में दिखाई देता है। शहरों में लोग तेज जीवन, प्रतिस्पर्धा और व्यक्तिगत उपलब्धियों पर ज्यादा ध्यान देते हैं, जबकि गाँवों में लोग परंपराओं, सामूहिकता और आपसी सहयोग को महत्व देते हैं। इसी वजह से शहरी और ग्रामीण चेतना के बीच सांस्कृतिक टकराव उभरता है।

शहरी चेतना में आधुनिकता, वैश्वीकरण और तकनीकी प्रगति के कारण व्यक्तिवाद, उपभोक्तावादी प्रवृत्तियाँ और प्रतिस्पर्धा प्रमुख हो जाती हैं। दूसरी ओर, ग्रामीण चेतना सामूहिकता, नैतिक परंपरा और स्थानीय संस्कृति के संरक्षण को प्राथमिकता देती है।[7] यही अंतर सामाजिक व साहित्यिक विमर्श में टकराव और तनाव का कारण बनता है।

समकालीन साहित्य में यह द्वंद्व पात्रों के संवाद, कथानक और मानसिक संघर्षों के माध्यम से प्रकट होता है। शहरी पात्र जहाँ महत्वाकांक्षा और वैश्विक प्रभाव के दबाव में जीते हैं, वहीं ग्रामीण पात्र परंपरा और सामुदायिक उत्तरदायित्व से बंधे रहते हैं।

यह द्वंद्व केवल संघर्ष तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके परिणामस्वरूप ष्संकर चेतनाष की संभावना भी जन्म लेती है। आधुनिक साहित्य ने दिखाया है कि शहरी और ग्रामीण मूल्यों के मेल से नई दृष्टि और अनुभवों की संभावनाएँ विकसित होती हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक द्वंद्व भारतीय साहित्य को गहराई और व्यापकता प्रदान करता है।

वैश्वीकरण (Globalization) :–

वैश्वीकरण का मतलब सिर्फ यह नहीं है कि देशों के बीच व्यापार या आर्थिक काम बढ़ गए हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसने समाज, संस्कृति और राजनीतिदृ तीनों को नई तरह से बदलना शुरू कर दिया है।

इसका असर सिर्फ बाजार या पैसों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि लोगों की सोच, उनके रहन–सहन, कला और साहित्य तक पहुँच गया है। भारतीय साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा। अब साहित्य की कहानियों, विषयों और लिखने के ढंग (शिल्प) में वैश्विक प्रभाव साफ दिखाई देता है। लेखक पहले सिर्फ स्थानीय मुद्दों तक

सीमित रहते थे, लेकिन अब वे वैश्विक समस्याओं, आधुनिक जीवन की चुनौतियों और बदलती संवेदनाओं को भी अपनी रचनाओं में शामिल करने लगे हैं। इस तरह वैश्वीकरण ने भारतीय साहित्य को और गहरा, व्यापक और बहुआयामी बना दिया है।

संतोष सारंग लेख 'उत्तर–आधुनिकता का लबादा ओढ़े आज का आम आदमी नगरीय तौर–तरीके अपनाने को आकुल है' में बताया है कि कैसे 'ठेठ देहाती जीवन मूल्यों पर चोट करती अपसंस्कृति...... खेत–खलिहानों व पगडंडियों तक में हो जाती है' – यह दर्शाता है कि पारंपरिक ग्रामीण व शहरी चेतना की सीमाएँ धुंधली हो रही हैं।[8] परिणामस्वरूप शहरी और ग्रामीण चेतना के बीच की पारंपरिक सीमाएँ धीरे–धीरे धुंधली होती गई हैं।

आज के शहरी जीवन पर वैश्वीकरण का गहरा असर दिखाई देता है। शहरों में रहने वाले लोग अब पहले की तरह केवल अपनी जरूरतों तक सीमित नहीं रहते, बल्कि उनके जीवन का बड़ा हिस्सा उपभोक्तावाद यानी ज्यादा से ज्यादा चीजें खरीदने और इस्तेमाल करने की आदत से जुड़ गया है। साथ ही, हर व्यक्ति आगे बढ़ने और बेहतर बनने के लिए कड़ी प्रतिस्पर्धा में लगा रहता है। तकनीकी साधनों – जैसे मोबाइल, इंटरनेट और आधुनिक मशीनों पर निर्भरता भी बहुत बढ़ गई है। इसके अलावा, शहरों में अलग–अलग देशों और संस्कृतियों के लोग आपस में मिलते–जुलते हैं, जिससे बहुसांस्कृतिक संपर्क आम हो गया है। इन्हीं बदलावों का असर साहित्य पर भी पड़ा है। आधुनिक शहरी साहित्य में अक्सर तेजी से बदलती जिंदगी, महत्वाकांक्षा से भरे पात्र, और दुनिया भर में घट रही घटनाओं से जुड़े संघर्ष दिखाए जाते हैं। कहानियों का कथानक भी तेज गति वाला होता है, जिसमें पात्र अपनी इच्छाओं, सपनों और वैश्विक परिस्थितियों से जूझते हुए नजर आते हैं।

ग्रामीण समाज पर इसका प्रभाव द्विमुखी रहा है। एक ओर शिक्षा, संचार और बाजार ने नए अवसर और संसाधन उपलब्ध कराए, वहीं दूसरी ओर पारंपरिक जीवन–शैली, स्थानीय व्यवसाय और सांस्कृतिक पहचान को चुनौती भी मिली। अनेक साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में इन परिवर्तनों को गहराई से चित्रित किया है, जिससे ग्रामीण जीवन के भीतर उभरते तनाव और पुनर्संरचना स्पष्ट होती है।

साहित्यिक दृष्टि से वैश्वीकरण ने 'संकर चेतना' को और बल दिया है। शहरी–ग्रामीण, स्थानीय–वैश्विक तथा पारंपरिक–आधुनिक अनुभव अब मिश्रित रूप में सामने आते हैं। यह प्रवृत्ति न केवल उपन्यास और कहानियों में बल्कि कविता, नाटक और डिजिटल साहित्यिक मंचों पर भी दिखाई देती है।

संकर चेतना (Hybrid Consciousness) :–

जब दो बीज के मिश्रण से तीसरे बीज का निर्माण किया जाता है तो उसे हाईब्रीड कहते है लेकिन ये बीज कारगार या टिकाऊ नही होते हैं। ठीक इसी तरह एक शहरी व गाँव के आपसी मेल मिलाप से या पड़ोसी होने से या लडके की शादी शहर में होने से जब लडकी गाँव में रहने लगती है तो उन दोनो के विचारों से जीवन में जो बदलाव आते है उन्हें ही 'संकर चेतना' कहा जाता है। साधारण शब्दों में, गावों व शहर के रहन सहन, बोलचाल, खानपान, पहनना, ओढ़ना अदि से मिली–जुली जीवन शैली के रूप में 'संकर चेतना' को परिभाषित किया जा सकता है। भारतीय साहित्य में शहरी और ग्रामीण चेतना के बीच टकराव और संवाद से जो नई दृष्टि उभरती है, उसे ही 'संकर चेतना' कहा जा सकता है।

भारतीय साहित्य में शहरी और ग्रामीण चेतना के बीच निरंतर संवाद और टकराव से एक नई दृष्टि निर्मित

होती है। यह दृष्टि न तो पूरी तरह शहरी जीवन की आधुनिकताओं तक सीमित है और न ही केवल ग्रामीण जीवन की परंपराओं तक बंधी हुई है। बल्कि यह दोनों की अंतःक्रिया से उत्पन्न एक मिश्रित चेतना है, जिसे "संकर चेतना" कहा जा सकता है। उत्तर–औपनिवेशिक अध्ययन में होमी के. भाभा ने इस प्रकार की सांस्कृतिक संकरता (Hybridity) को पहचानते हुए यह बताया है कि विभिन्न जीवन–दृष्टियों और सांस्कृतिक प्रभावों के मिलने से एक नई चेतना का उदय होता है।[9] भारतीय कथा–साहित्य में भी यह संकर चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जो शहर और गाँव के अनुभवों को जोड़कर एक बहुस्तरीय साहित्यिक दृष्टिकोण प्रदान करती है।

यह अवधारणा बताती है कि अब अनुभव केवल एकरेखीय या स्थिर नहीं रहे, बल्कि विभिन्न स्तरों और परिप्रेक्ष्यों के मेल से विकसित हो रहे हैं। संकर चेतना के कारण समकालीन कथा साहित्य में पात्रों की मानसिकता और सामाजिक संबंध अधिक जटिल और बहुआयामी हो गए हैं। शहरी पात्र जहाँ वैश्विक संस्कृति, तकनीकी विकास और व्यक्तिवादी महत्वाकांक्षाओं से जूझते हैं, वहीं ग्रामीण पात्र परंपरा, सामुदायिक मूल्यों और सांस्कृतिक जड़ों को बचाए रखने के लिए संघर्षरत दिखाई देते हैं। साहित्यकार इन दोनों प्रवृत्तियों को एक साथ रखकर नए प्रकार का जीवन–दर्शन प्रस्तुत करते हैं।

इस चेतना का प्रभाव केवल पात्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि कथानक और भाषा–शैली में भी दिखता है। वैश्विक अनुभवों और स्थानीय जीवन–स्थितियों का सम्मिलन रचनाओं को नई संवेदनशीलता और बहुस्तरीयता प्रदान करता है। उदाहरणस्वरूप, अमिताव घोष और अरुंधति रॉय जैसे लेखकों के उपन्यासों में स्थानीय और वैश्विक, आधुनिक और पारंपरिक दृष्टिकोण का अनूठा संगम मिलता है।

इस प्रकार, संकर चेतना भारतीय साहित्य को न केवल व्यापक आयाम देती है, बल्कि बहुसांस्कृतिक संवाद और नए मूल्यबोध की संभावनाओं को भी जन्म देती है। यह चेतना शहरी और ग्रामीण जीवन के बीच पुल का कार्य करती है तथा साहित्य को अधिक समकालीन और प्रासंगिक बनाती है।

समकालीन साहित्य (Contemporary Literature) :–

समकालीन भारतीय साहित्य वर्तमान समाज का दर्पण है, जो इक्कीसवीं सदी के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को गहराई से प्रतिबिंबित करता है। वैश्वीकरण, प्रवासन, तकनीकी क्रांति और बहुसांस्कृतिक संपर्क ने इसकी विषयवस्तु और शिल्प दोनों को प्रभावित किया है।[10] इस साहित्य में शहरी और ग्रामीण दोनों चेतनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है, किन्तु अब इनके बीच की पारंपरिक रेखाएँ अधिक धुंधली और तरल हो चुकी हैं।

शहरी परिप्रेक्ष्य पर आधारित समकालीन कृतियाँ महानगरीय जीवन, पूँजीवाद, उपभोक्तावाद, सामाजिक प्रतिस्पर्धा और पहचान के संकट को गहराई से उद्घाटित करती हैं। चेतन भगत, अमिताव घोष, अरुंधति रॉय और गीतांजलि श्री जैसे लेखकों की रचनाएँ शहरी चेतना के भीतर छिपे संघर्ष और अवसरों को नए ढंग से प्रस्तुत करती हैं। इनके कथानक तीव्र गति, बहुस्तरीय पात्रों और वैश्विक विमर्श से जुड़े रहते हैं।

वहीं, ग्रामीण संदर्भ से लिखी गई कृतियाँ महाश्वेता देवी, उदय प्रकाश, विनोद कुमार शुक्ल और नीलिमा चौहान जैसे लेखकों के लेखन में दिखाई देती हैं। इन रचनाओं में भूमंडलीकरण के प्रभाव, प्रवासन की पीड़ा, सामाजिक असमानता और सांस्कृतिक संघर्ष के यथार्थपूर्ण चित्र अंकित हैं। ग्रामीण जीवन यहाँ केवल स्थिर

परंपरा के रूप में नहीं, बल्कि संघर्षशील और परिवर्तनशील रूप में सामने आता है।

समकालीन साहित्य की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है 'संकर चेतना' जिसमें शहरी–ग्रामीण अनुभव, पारंपरिक–आधुनिक मूल्य और स्थानीय–वैश्विक दृष्टिकोण एक साथ जुड़कर साहित्य को नई संवेदनशीलता प्रदान करते हैं। यही कारण है कि आज का साहित्य न केवल यथार्थ का दर्पण है, बल्कि वह नए सांस्कृतिक संवाद और मूल्य निर्माण का सशक्त उपकरण भी बन चुका है।

भारतीय कथा-साहित्य (Indian Fiction) :-

भारतीय कथा–साहित्य अपनी व्यापकता और विविधता में अद्वितीय है। इसकी परंपरा प्राचीन मौखिक लोककथाओं और दंतकथाओं से प्रारंभ होकर आधुनिक उपन्यासों और कहानियों तक फैली हुई है। यह साहित्य भारतीय समाज के बहुरंगी जीवन, सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक प्रवृत्तियों और समयानुसार बदलते हुए मूल्य–बोध का जीवंत दस्तावेज है।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में कथा–साहित्य ने सामाजिक यथार्थवाद, स्वतंत्रता आंदोलन, स्त्री–विमर्श, जातिगत असमानताओं और ग्रामीण जीवन की जटिलताओं को केंद्र में रखा। प्रेमचंद ने अपने लेखन में किसान और ग्रामीण समाज की पीड़ा को स्वर दिया, जबकि जैनेन्द्र कुमार, यशपाल और फणीश्वरनाथ रेणु जैसे लेखकों ने सामाजिक संघर्ष, राजनीतिक चेतना और लोक–संस्कृति की गहराइयों को साहित्यिक रूप प्रदान किया। इन लेखकों ने भारतीय कथा–साहित्य को यथार्थपरक और जनजीवन से जुड़ा हुआ स्वरूप दिया।

इक्कीसवीं सदी में कथा–साहित्य की विषयवस्तु और शैली दोनों में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। अरुंधति रॉय, अमिताव घोष, झुम्पा लाहिड़ी, गीतांजलि श्री और चेतन भगत जैसे लेखकों ने शहरी जीवन की जटिलताओं, वैश्विक प्रवास, सांस्कृतिक संकरता, पहचान के संकट और राजनीतिक अस्थिरता को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। इनके लेखन में न केवल आधुनिकता और वैश्वीकरण के प्रभाव झलकते हैं, बल्कि स्थानीयता और परंपरा के साथ भी गहरा संवाद स्थापित होता है।

समकालीन भारतीय कथा–साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें शहरी और ग्रामीण अनुभव, पारंपरिक और आधुनिक मूल्य, तथा स्थानीय और वैश्विक दृष्टिकोण का सम्मिश्रण मिलता है। यही सम्मिश्रण 'संकर चेतना' की अवधारणा को स्पष्ट करता है, जो साहित्य को बहुस्तरीय और बहुआयामी स्वरूप प्रदान करता है। इस प्रकार भारतीय कथा–साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक विमर्श और ऐतिहासिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम भी है।

निष्कर्ष (Conclusion) :-

इस शोध से यह साफ दिखता है कि हमारे साहित्य में गाँव और शहर दोनों की दुनिया अलग–अलग तो हैं, लेकिन आपस में लगातार बात–चीत, टकराव और मेल–जोल चलती रहती है। शहर के लोग तेज–तेज भागते हैं, तकनीक और पैसा उनके जीवन का हिस्सा है, और पहचान, दिखावा व महत्वाकांक्षा और मुकाबले में उलझे रहते हैं। गाँव के लोग परंपरा, भाईचारा और प्रकृति के साथ जुड़ाव को ज्यादा महत्व देते हैं, लेकिन अब गाँव भी नए जमाने के असर और बदलाव से बदल रहा है। साहित्य सिर्फ यह नहीं दिखाता कि ये अलग हैं, बल्कि यह भी दिखाता है कि कहाँ मिलते हैं, कैसे एक–दूसरे को समझते हैं और नई राह बनाते हैं। इसी मिलन से जो नई सोच निकलती है, उसे हम "संकर चेतना" कहते हैं। यह चेतना गाँव और शहर, परंपरा और

आधुनिकता, स्थानीय और वैश्विक अनुभव को जोड़कर नई कहानियाँ, नए पात्र और नए रंग पैदा करती है।

भविष्य में, डिजिटल कहानियाँ, प्रवासी लेखक और अलग–अलग संस्कृतियों का मेल इसे और भी मजेदार और जीवंत बनाएगा। यही कारण है कि शहरी और ग्रामीण जीवन का अध्ययन सिर्फ किताब में पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि हमारे बदलते समाज और हमारी संस्कृति को महसूस करने और समझने का असली तरीका है।

संधर्भ सूची :–

1. सिंह, नामवर. 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ', (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009)
2. आचार्य, नंदकिशोर. 'आधुनिकता और उत्तर–आधुनिकता का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य', (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2010)
3. फणीश्वरनाथ रेणु. 'मैला आँचल', (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1954)
4. नंदकिशोर आचार्य, 'आधुनिकता और उत्तर–आधुनिकता का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य', (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2010)
5. शर्मा, रामविलास. 'भारतीय साहित्य और संस्कृति की समस्या', (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1998)
6. त्रिपाठी, विश्वनाथ. 'समकालीन साहित्य और संस्कृति', (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2012)
7. रामविलास शर्मा, 'भारतीय साहित्य और संस्कृति की समस्या', (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1998)
8. सारंग, संतोष. "उत्तर–आधुनिकता का लबादा ओढ़े आज का आम आदमी नगरीय तौर–तरीके अपनाने को आकुल है।" 'आँच.पत्रिका', (2023), उपलब्ध : https://www.aanch.org (पहुंच की तारीख : 5 सितम्बर 2025)
9. भाभा, होमी के. 'द लोकेशन ऑफ कल्चर', (लंदन : रूटलेज, 1994)
10. वात्स, निधि. "वैश्वीकरण और भारतीय अनुभव : साहित्यिक निरूपण एवं अस्मिता–निर्माण का अध्ययन।" शोधकोश : दृश्य. एवं प्रदर्शन कलाओं का जर्नल 4, संख्या 2 (दिसंबर 2023)

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 33-36

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कैलाश वाजपेयी की कविता में पर्यावरण विमर्श

सुबहाना एन
शोधार्थी, केरल विश्वविद्यालय कार्यवट्टम।

पर्यावरण को मानव जीवन का आधार कहा जा सकता है। मानव के स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक शुद्ध हवा, पानी और भोजन पर्यावरण से हमें मिलते हैं। पेड़–पौधे, नदियाँ, पहाड़ और वायुमंडल आदि पर्यावरण में शामिल हैं। यह मनुष्य के जैविक, भौतिक और सांस्कृतिक जीवन केलिए अनिवार्य है। पर्यावरण को सुरक्षित रखना मानव का कर्तव्य है। लेकिन आजकल बातें उलटा हो रहा है। प्रकृति को सुरक्षित रखने के बजाय मानव उसका शोषण कर रहा है। प्रकृति पर होने वाले इन अन्यायों को कैलाश वाजपेयी ने अपनी कविताओं के जरिए पर्दाफाश करने की कोशिश कर रहा है।

समकालीन कवि प्रकृति की सृजनशीलता और प्रकृति पर मानव का दुर्व्यवहार आदि से परिचित है। कैलाश जी की कविताओं में वर्तमान पर्यावरण संकट की झलक देखने को मिलती है। कवि की दृष्टि में वर्तमान पर्यावरणीय असंतुलन का मुख्य कारण मनुष्य का विकसित अहं की भावना है। अपने जीवन सुविधाओं को बढ़ाने के लिए मानव बिना किसी संकोच से प्रकृति पर आधिपत्य स्थापित कर रखा है। इसका परिणाम जंगलों की सफाई, नदियों का प्रदूषण, पर्वतों के अनुपस्थिति आदि में देख सकते हैं। मानव विकास का नारा लगाकर शोषण की आग को जलाती है। आज का मानव धन और विकास तथा भौतिक दंभ–लोभ के पीछे दौड़ रहे हैं। अपने आगामी पीढ़ी के लिए प्रकृति को बचाए रखने के बजाय वे केवल अपने स्वार्थ के लिए जी रहे हैं। जीवन सुविधा बढ़ाने की इस अंधी दौड़ में अपने चारों तरफ विद्यमान इस पर्यावरण को वे अनदेखा करते हैं। मनुष्य के ऐसी दुर्व्यवहार एवं अत्याचार प्रकृति के असंतुलन का कारण बन गया है। कटे हुए पेड़, सूखे हुए नदियाँ और कारखानों से भरे हुए पृथ्वी आदि मानव के ही क्रियाकलापों का परिणाम है। कैलाश जी ने लिखा है कि –"सारी की सारी वस्तुएँ / नीचे से ऊपर की ओर गिरें / कागज की तरह जलें नदियाँ / दुर्भिक्ष ऐसा पड़े कि हवा सड़ जा / मिट्टी में दबा बीज बने कोयला –– / सूर्य कहीं ऊपर / ऊपर ही ऊपर टकराए।"[1]

प्रकृति के कण–कण में जैविकता का अंश है। मानव सब कुछ उपयोगवादी दृष्टि से देख रहा है। एक पेड़ को देखने पर उसमें निहित जीवन का स्पंदन, उसकी हरियाली, उसकी छाया और फल–फूल जैसे जैविक अंशों से मनुष्य अपरिचित्त होता है। मनुष्य उस पेड़ में केवल लकड़ी और उससे बनाने वाले घर द्वार, मेज, कुर्सी, खाट जैसे फर्निचरों को ही देखते हैं। लेकिन वह यह बात भूल गया है कि पेड़ प्राणवायु का आधार है, इस धरती की जीवन लीला को रचने में उसकी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। वास्तव में पेड़ जीवंतता और प्रेम का पर्याय है। वह अपनी काया और छाया द्वारा दूसरों की सेवा करती है तथा अपने फल–फूल से अन्य जीवों की

रक्षा भी करते हैं।

वर्तमान युग में पूंजीवादी विकास सम्पूर्ण प्रकृति को बाजारी माल के रूप में तब्दील कर दिया। केवल अपने स्वार्थ एवं लाभ के लिए आज का मानव प्रकृति के सीमातीत दोहन में जुड़ा हुआ है और इसका परिणाम प्रकृति की जैविकता के विनाश के रूप में देखा जा सकता है। कैलाश वाजपेयी अपने 'माँ' नामक कविता में यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि तितलियों को मारने से फूल के जन्म लेने की संभावना किस प्रकार समाप्त होती है। उन्होंने लिखा है कि– "बच्चा तितली पकड़ रहा है/बच्चा नादान है/होगा बच्चे तो होते ही है/तुमने वह चीख भी देखी/नई तरह से क्या सुना/इस दृश्य को/बच्चा हथियारा है वह किसी फूल के पैदा होने की संभावना/खत्म कर रहा है।"[2]

प्रकृति पर मानव के हस्तक्षेप के कारण जंगल, नदी, पहाड़ जैसे प्राकृतिक संपदाओं का नाश हो रहा है। आज नदियाँ अधिक प्रदूषित होता है और पानी के स्रोत नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार नदियों का खो जाना जीवमंडल का बर्बाद होना है। कैलाश वाजपेयी ने लिखा है कि "मैं कैलाश वाजपेयी /हिन्दी कविता का झिलमिल /हस्ताक्षर/दिन ब दिन घटती साँसों से बा खबर/वर्षों पहले जिस घर में मैं जन्मा था/वह घर अब वहाँ नहीं है/जिस नदी के तट पर मेरा बचपन बीता/प्रदूषण खा गया उसकी नीलाई।"[3]

यह पृथ्वी मात्र मानव का निवास स्थान नहीं है। इसमें जिस प्रकार मानव का अधिकार होता है, उसी प्रकार अन्य जीव जंतुओं का भी अधिकार है। लेकिन मानव ने यह भूल कर पृथ्वी पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता है। अपनी स्वार्थता के बल पर दूसरों का शोषण करना घोर अपराध है। धन और भोग की अंधी दौड़ में कितनी प्राकृतिक सपत्ति का नाश् हुआ है, कितनी जीवजंतु इस पृथ्वी से गायब हो गई है, इन सब बातों पर मनुष्य अज्ञानी है। उनका लक्ष्य केवल जीवन सुविधा बढ़ाना है। प्रकृति के साथ मनुष्य के बुरे व्यवहार का चित्रण करके 'आभासी यथार्थ' नामक कविता में कैलाश जी लिखा है कि – "क्या क्या नहीं किया मनुष्य जाति ने/वनस्पतियों या कि सब इतर जीवों के साथ?/हम सबकी समवेत पीड़ा का/काम जिक्र/मिलता है/तुम्हारे समाज में/अपने आरे/से अज्ञान से तुमने अपने से नीचे के/हर जीवधारी को/मिटा दिया बाधा मानकर जब कि हर निरीह, सिर्फ इसलिए था कि/तुम्हें आहार मिलता रहे/पवन भरपूर प्राणवायु दे/सूर्य दे ऊष्मा/धरती झर मिटकर लगातार देती रहे अपनी हर संपदा।"[4]

हमारी यह प्रकृति लाखों सालों की जैविक प्रक्रिया का परिणाम है। लेकिन पूंजीवादी सभ्यता प्रौद्योगिकी का सहारा लेकर विकास के नाम पर उसका नाश कर रहा है। प्रकृति को बनाए रखने में पेड़, पौधे, कीट, पतंग, परिंदे सब का अपना महत्व होता है। यह सब मिलकर इस पृथ्वी को पृथ्वी बनाता है। लेकिन मानव केवल अपने जिंदगी के बारे में सोच रहा है। अपने आवास बनाए रखने के लिए अन्य प्राणियों को आवासहीन बना लिया है। कैलाश जी ने लिखा है कि– "बेदर्दी से काटकर मेरी और मुझ जैसी/हर प्रगति को/जितनी देर में बखान किया /हानिकर/मेरी कई प्रजातियाँ/लुगदी बन–छपकर/रही अखबार बनकर/कभी पूछता क्यों बढ़ रही तटत्व /सिर्फ मनुष्य–जाति क्यों/नहीं तितली या मधुमक्खियाँ/तुम्हारे यंत्रवादी/विकास ने भटका दिया– मधुमक्खियों को/यहाँ वे करें/अपना काम/उनकी उड़ान की ध्वनि तरंगों को काटकर/तुमने बना लिए ध्वनियाँ उनकी/ उड़ान की लकीरे चुराकर/अब मधुमक्खियाँ भटक रहीं ———/कुछ भी खा लेने में सिद्धहस्त तुम टिड्डिया खा लोगे भूलकर/गाना गाती एक चिड़िया को मारकर अंडे ईल के/असल में तुम जिसे विकास कहते हो वह

सत्यानाश है/क्यों नहीं दिखतीं बियर बहूटियाँ/जब पहला पानी बरसता है/नदियों का बढ़ता पानी/शर्माता है यह बताने में/वह तेजाब में क्योंकर बदल गया/यंत्र दैत्य जब तक चार न डालें/सब वन–संपदा/आग्नेय अस्त्र राख न कर दें/सर न चकराये आकाश का/प्राणवायुग्रस्त हो जाएगा/श्वास रोग से/जब तक यह सब नहीं घटे/कैसे फटेगा पर्दा/आभासी यथार्थ का।"[5]

मनुष्य की अमानवीय व्यवहारों के कारण पृथ्वी और आकाश का नाश हो रहा है। मनुष्य द्वारा किए जा रहे दोहन और अत्याचारों के कारण धरती काँप रही है। मानव के करतूतों के कारण अन्य प्राणियाँ धरती से अप्रत्यक्ष हो रहे हैं। कैलाश जी ने लिखा है कि– "क्यों नहीं तितली या मधुमक्खियाँ/तुम्हारे यंत्रवादी विकास ने / भटका दिया / मधुमक्खियों को / यहाँ वे करें अपना काम / उनकी उड़ान की ध्वनि तरंगों को काटकर / तुमने बना लिए / ध्वनियाँ उनकी उड़ान की / लकीरे चुराकर / अब मधुमक्खियाँ भटक रहीं।"[6] आधुनिक मानव की दृष्टि केवल अर्थ और लाभ पर केंद्रित है। मानव में न आपसी प्रेम है और न प्रकृति प्रेम। प्रकृति मनुष्य एवं अन्य प्राणियों के लिए सारी सुविधाएँ प्रदान करती है। लेकिन अन्य प्राणियों के अलावा मनुष्य प्रकृति को अपने नियंत्रण में रखना चाहता है और उसका शोषण करता है। जंगलों को काटकर सब जीव जंतुओं को आवासहीन बना लिया है। इसके परिणाम स्वरूप प्राकृतिक आपदाएँ होती है। "तुम्हारी नासमझी से लगातार नष्ट होता / सुनो! मैं जंगल बोल रहा हूँ / पृथ्वी की कोख से / मिट्टी तोड़कर मैं अपने–आप जन्म था / मेरे इस छाया–राज्य में अंगिन जीवधारी पलते हैं / सब को शरण देना मेरा स्वभाव है / मैं बुलाता हूँ तब बादल आता है / तुम्हारे खेतों / में अन्न मेरी वजह से होता है / मेरी ही फल–फूलों के रस से तुम्हारे चेहरे पर ललाई है / क्या–क्या नहीं दिया मैंने, / क्या–क्या नहीं देता हूँ, और तो और, मेरी ही दी हुई साँस / तुम लेते हो / यह जो सुबह–सुबह पड़ते हो तुम मेरी ही / खाल है यह जो तुम्हें रात–दिन घुमाते–झुलाते हैं ये पहिये मेरी ही छाती का खून हैं / तेज धारवाले औजार से / तुम जो मेरा वध कर रहे हो / तुमको नहीं पता / दरअसल तुम आत्मघात कर रहे हो।"[7]

आज के मानव प्रकृति विरोधी कृत्यों एवं अमानवीय व्यवहारों द्वारा पर्वतों, बहती हुई नदियों और वनस्पतियों तथा स्वच्छंद प्राणियों के प्राकृतिक जीवन में अवरोध उत्पन्न कर पारिस्थितिक तंत्र प्रभावित कर रहे है। "पोली सुरक्षित पहाड़ियाँ / अब भी उगलती है / ठोस पानी / शहर की लावारिस / मैदान–सड़कों पर / भरती है अब भी / समुद्र (बेदिमाग) को ! मगर आसमान अब / लगातार खुलते क्षितिजों का / मंच नहीं / एक निष्प्रयोजन हवाई दबाव है / डाँवाँडोल पृथ्वी / नहीं अन्नपूर्ण / किन्हीं सर्प / तथ्यों का अहेतुक भराव है करोड़ गति–वर्षों / जी भर कर / इस बेसहारा भीड़ ने / अब कहीं जाकर पहिचाना है / यह शताब्दी / इतिहास का अंतिम पड़ाव है।"[8] पिछले कुछ वर्षों से औद्योगीकरण एवं शहरीकरण की दौर में जलवायु के आवश्यक तत्वों में व्यापक परिवर्तन हुआ है। आज पानी के बहाव का क्षेत्र इतना सीमित है कि पानी का दुर्लभ अधिक हो गया है। कैलाश जी ने लिखा है कि "बेतरतीब ऊँचाइयों का माया / बेहिसाब चाँदी से मढ़ा हुआ है / नहीं ———/ लगता है पत्थर और पानी में झगड़ा हुआ है / कहीं फट गई है कमीज पानी की / कहीं मार खाकर बर्फ की पहाड़ का बच्चा / उकड़ूँ पड़ा हुआ है / यह भी क्या कहने की बात है / यहाँ सब कुछ खूबसूरत है / यह सब पी लेने के लिए रोम–रोम में / आँख की जरूरत है / न जाने कहाँ भागी जाती नदी / एकदम सिरफिरी है / देखो न ! वहाँ– बैठी थी / घोड़े पर शहजादी और यहाँ जैसे / भहरा कर

चुने की / इमारत गिरी है / न जाने किसके हुक्म से तनात है पेड़ / पेड़ ही पेड़ सदियों से खड़े हैं / और पत्थर—नहीं पण्डे / बैठे हैं पहरे पर / जबकि चश्मे / अभी अभी जन्मे / मेमने की आँख खोले पड़े हैं / माना कि फूल यहाँ हरियाली में टँके / और तारे यहाँ पर्वतों पर / जड़े हैं, / लेकिन / सवाल यह है / कि हम क्यों यहाँ मुँह बाए खड़े हैं !"[9] प्रकृति मानव जीवन के एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। लेकिन मानव प्रकृति के कण—कण पर शोषण कर रहा है। प्रकृति के इस बुरी हालत पर कवि अधिक दुखी है। 'बीमार पर्दे पर' नामक कविता में वे कहते है कि— "वन दीख पड़ते हैं / बधिया किए गए / फिर याद आती हैं / मारी गई पीढ़ियाँ / उन चिड़ियों चौपायों की / जिन्हें मेरी नस्ल / के से लोग खा गए / कसकर भोगी गई / फटेहाल नदियों की आत्मकथा पढ़ता मैं।"[10] एक समय ऐसा था जब भारत अपने वन्य जीव संपदा और जैव विविधता केलिए विख्यात था। लेकिन आज प्रकृति पर मानव के प्रभुता के कारण यह सब खो गई है। कैलाश जी ने लिखा है कि— "अरावली कट रही / कट रहे पन्ने इतिहास के / गायब हुई जा रही / अरावली / मशीनों के जबड़े / पचाकर अरावली का चूर / भर रहे घर / नगर बन रहे / बीच के कुण्ड़ और / हरा आसपास / अब कहाँ / वहाँ सिर्फ मरी घास / न कहीं प्रताप किसी राणा का / न बन न बिलाव / सिर्फ दो तीतर / आखिरी / भूखे डरे—डरे रह—रहकर होते विस्फोट से।"[11]

निष्कर्ष :–

कैलाश वाजपेयी ने अपने कविताओं में देशकाल और परिस्थिति से संबंधित अनेक प्रकार की समस्याओं, मुद्दों और अन्य आवश्यक पहलुओं पर लेखनी चलाई है। मानव प्रकृति पर करने वाले शोषणों के प्रति वह दुखी है। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति पर करने वाले अमानवीय व्यवहार का उन्होंने खूब विरोध किया है। कैलाश जी ने हमें यह उपदेश देता है कि भविष्य को सुरक्षित रखने के लिए प्रकृति को सुरक्षित रखना हमारा कर्तव्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. वाजपेयी कैलाश, संक्रांत, भारतीय ज्ञानपीठ, 2003, पृ—102
2. वाजपेयी कैलाश, सूफीनामा, वाणी प्रकाशन, 2010, पृ—89
3. वाजपेयी कैलाश, हँस अकेला, भारतीय ज्ञानपीठ, 2003, पृ—134
4. वही, पृ—112
5. वही, पृ—114—115
6. वही, पृ—113
7. कैलाश वाजपेयी, भविष्य घट रहा है, भारतीय ज्ञानपीठ, 1999, पृ—93
8. कैलाश वाजपेयी, देहांत से हटकर, वाणी प्रकाशन, 2010, पृ—80
9. कैलाश वाजपेयी, देहांत से हटकर, वाणी प्रकाशन, 2010, पृ—86—87
10. कैलाश वाजपेयी, सूफीनामा, वाणी प्रकाशन, 2010, पृ—35
11. कैलाश वाजपेयी, भविष्य घट रहा है, भारतीय ज्ञानपीठ, 1999, पृ—78—79

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 37-40
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरण विमर्श

डॉ. इंदिरा. वी
सहायक प्रोफेसर, प्रेसिडेंसी, केंपापुरा, हेब्बाल, बेंगलूरू–५६००२४

पर्यावरण से मनुष्य का अटूट संबंध है। पर्यावरण के अंदर मानव के लिए अत्यावश्यक प्राणवायु आक्सीजन है। पर्यावरण का अर्थ है–हमारे चारों ओर का वातावरण, जिसमे वायु, जल और थल है। जब मिट्टी, जल और वायु प्रदूषित हो जाये तो इसे ही पर्यावरण प्रदूषण कहा जाता है। पर्यावरण हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले प्रत्येक जीव से जुड़ा हुआ है। जैविक संघटको में कीडे–मकोड़े, सभी जीव–जन्तु और पेड–पौधे आ जाते है। समस्त प्रकृति एक ही इकाई है। आज की सदी में पर्यावरण की रक्षा हम सब की जिम्मेदारी है। आज का युग पर्यावणीय चेतना का युग बन गया है। कला, साहित्य, विग्यान, आम जनता सभी पर्यावरण के प्रति जागरुक हो रहे है। पर्यावरण प्रकृति से मानव को उपहार है।

पिछले कुछ दशकों से पर्यावरण प्रदूषण की समस्या ने बहुत गंभीर रूप धारण कर लिया है। यह समस्या हर गांव, शहर और देश से जुडी है। जन सामान्य की शब्दों में प्रदूषण का तात्पर्य है–पर्यावरण में हानिकारक, अवांत अपशिष्ट पदार्थों का पैदा होना।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति से पर्यावरण से संतुलन कराने का प्रयास किया जा रहा है। प्राचीन शिक्षा प्रणाली प्रक्रुति की गोद में हुआ करती थी। प्रकृति के विविध रूपों के साथ मानव ने शिक्षा ग्रुहण की है। मानव जीवन का आधार एवं प्रेरणा पर्यावरण है। वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत के साथ हिंदी भाषा के साहित्य में प्रकृति का अस्तित्व पाया जाता है। हिंदी साहित्य मे भी पर्यावरण का चित्रण सहज, सुंदर, सुमधुर एवं सरस तरीके से हुआ है। हिदी साहित्य के हर काल मे प्रकृति का चित्रण हुआ है। महाकवि जायसी ने पद्मावत में नागमती वियोग वर्णन पर्यावरण को आधार बनाकर किया है। कबीर ने पेड, फूल जैसे प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया है। सूरदास ने भी वृंदावन, मथुरा के रमणीय स्थलों एवं पर्यावरण का वर्णन किया है। रहीम ने पानी के महत्व को इंगित किया है। भारत ही नही समस्त दुनिया के सामने जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण आदि पर्यावरण संबंधी समस्याओं को सुलझाने के भरसक प्रयास किए जा रहे है। इसमें साहित्य ने भी अपना योगदान दिया है।

साहित्य और पर्यावरण का आंतरिक संबंध है दोनो एक–दूसरे को बल प्रदान करते है। साहित्यकार प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त करता है। हमारी वेद प्रकति संरक्षण की कहानी कहता है। समस्त शुभ काम से पहले प्रकृति से शांत रहने की प्रार्थना की जाती है। आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण मे अरण्य को अत्यधिक महत्व दिया। आदिकाल से प्रकृति मानव के सुख–दुख की संगिनी रही है। प्रकृति के वर्णन में तुलसी की अपनी विशेषता रही

है। किष्किंधा कांड में वर्षा और शरद ऋतुओं के वर्णन में तुलसी ने प्रकृति के माध्यम से जो उपदेश दिए हैं वे हिंदी साहित्य की अद्वितीय निधि है। हिंदी साहित्यकारों ने इसके हर रूप का बखूबी चित्रण किया है।

यह एक अच्छी बात है कि समकालीन हिंदी साहित्य में पर्यावरणीय चिंतन दृष्टिगोचर हो रही है। पृथ्वी पर सिर्फ हरियाली बढ़ाकर ही प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है। जब तक संसार हरे–भरे वनों एवं पहाडों से युक्त रहेगा मानव संतान का पालन–पोषण होता रहेगा। साहित्य ने जीवन के हर पहलू को छुआ है। आज के साहित्यकार काल्पनिक दुनिया से हटकर वास्तविक दुनिया को हमारे सामने रख रहे है। साहित्यकार समाज, देश, वातावरण की चर्चा कर रहे है। हिमालय की महिमा के क्या कहने, तपस्विनी की साधना इसी पावन गिरि में चलती है।

पर्यावरण और हम इस विचारात्मक निबंध में डा. राजीव गर्ग ने पर्यावरण के पहलू पर बहुत व्यापक प्रकाश डाला है। बहुत ही अच्छे तरीके से लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि किस तरह ८० प्रतिशत से अधिक शहरी जनता विषैली गैस में सांस ले रही है। नदियों का पानी दूषित हो गया है, विश्व के देशों में हानिकारक बैक्टीरिया की मात्रा बहुत अधिक हो रही है। अगर कार्बन–डाईआक्साइड की मात्रा पर नियंत्रण नही हुआ तब अगले १०० साल में भूमि की सतह का तापमान ३ से ६ डिग्री बढ जायेगा। पर्यावरण के दूषित होने से समस्त पारिस्थितिक तंत्र भी प्रभावित होता है। प्रकृति के सुंदर दृश्य विकृत और छिन्न–भिन्न हो जाते है। प्रकृति की खाद्य श्रृंखला, नाईट्रोजन चक्र तथा कार्बन डाईआक्साइड चक्र और आक्सीजन–चक्र के सामान्य प्रक्रमों में बाधा पड़ती है। प्रदूषण का प्रभाव भव्य इमारतों पर भी पड़ता है। ताजमहल इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

विष्णु प्रभाकर जी ने कश्मीर को धरती का स्वर्ग कहा है। वे कहते है कि भू–स्वर्ग कश्मीर की यात्रा से नेत्रों को जो आनंद प्रदान होते है उसके क्या कहने। केसर की सुरभि, शाली की महक और फलों की सुगंध हर क्षण मनुष्य का मन लुभाया करती है। यहीं कालिदास, मम्मट, सोमदेव और क्षेमेन्द्र ने काव्य की प्रेरणा पाई है। जहांगीर ने मृत्यु के पहले यही कहा था, कश्मीर के अलावा कुछ नही। लेखक भी यही कहते है–आओ भाई आओ, दो क्षण की शान्ति के लिए ही यहां आकर देखो, ये झीलें तुम्हे संजीवनी से भर देंगी। सुई दो रानी, डोरा दो रानी इस यात्रा–वृतांत में लेखिका महादेवी वर्मा जी ने बदरीनाथ तथा हिमालय की वादियों का वर्णन किया है। लेखिका ने इस बात का उल्लेख किया है कि यहां असंख्य यात्री आते है, परंतु स्थल की स्वच्छता पर कोई ध्यान नहीं देता। लेखिका को तब बहुत निराशा हुई जब उन्होनें यहां की दुगंध गलियों को देखा। हवा में भी कुच विशेष सर्दी नहीं थी। लेखिका गंभीर होकर यात्रियों से यह सवाल करती है कि क्या कभी किसी यात्री ने इसकी दुर्व्यवस्था के कारण पर विचार किया, क्योंकि एसा ही चलता रहा तो यह स्थल पुरात्तत्वेत्तों की खोज का विषय बनकर रह जायेगा।

साना–साना हाथ जोडि इस लेख में मधु कांकरिया जी गंगटोक की प्राकृतिक खूबियों का वर्णन करती हैं और इस बात का जिक्र भी करती है कि यहां लेखिका को यत्र–तत्र थिंक ग्रीन का बोर्ड दिखाई दिया। इस तरह यहां के लोग पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए पूरी तरह से जाग्रत है। लेखिका इस पाठ में यह टिप्पणी

करती है कि प्रकृति में पेड, पोधे, पशु और आदमी सब अपनी–अपनी लय, ताल और गति में है। हमारी पीढ़ी ने प्रकृति की इस लय, ताल और गति खिलवाड़ कर अक्षम्य अपराध किया है।

यह धरती कितना देती है इस कविता में विशेषताओं को वर्णित करते हुए कहा है कि सेम के बीज को जब मिट्टी में कुछ दिनों बाद जब देखा तब उस जगह बौने पौधे कि पलटन खडी थी। लेखक कहते है कि यह धरती अपने पुत्रों को कितना देती है और हम इसके महत्व को नहीं समझ पाते है।

प्रेमतः इस पाठ में सुदर्शन जी नें सुलक्खी का बेरी के पौधे से प्रेम को दर्शाया है। पेड़ में जब मीठा बेर निकलता है तो गांव में सब को बांटते है। जब एक जजमान हाडीराम को बेर न मिला तो वह पेड को ही काट डालता है। दुख से सुलक्खी बेरी की चिंता बनाकर उसमें कूद जाती है। पेड–पौधे से इस तरह का प्रेम अपने–आप में बहुत ही मनोहर है। ठेले पर हिमालय इस यात्रा–वृतांत में डा. धर्मवीर भारती ने नैनीताल से कौसानी तक की यात्रा का रोचक वर्णन किया है। यहां की प्रकृति ने लेखक का मन मोह लिया। मगर कहीं–कहीं पर्यावणीय वास्तविकता को भी दर्शाया है क्योंकि इन्हें कुछ रास्ते बड़े कष्टप्रद, सूखे और कुरूप लगे। कुछ जगहों में पानी का कहीं ना–निशान नहीं, सूखे भूरे पहाड़ हरियाली का नाम नहीं। लेखक ने यह भी याद दिलाया है कि एक जमाने में पुराने साधकों ने दैहिक, दैविक और भौतिक कष्टों को ताप कहा था। और उसे सुकून पहुंचाने के लिए वे हिमालय आते थे। ये हिमालय की चोटियां ही है, जिसे देखकर तुलसीदास ने कहा था–कबहु कहौ यहि रहनि रहौंगो। ये हिमालय एक एसी चोटी है जहां आकर हर मचलता हुआ मन शांत हो जाता है।

बंदर की व्यथा इस कविता में पर्यावरण के मुख्य अंग जीव–जानवरों में बंदर जैसे जीव का उदाहरण देते हुए बंदर की व्यथा को हमारे सामने रखते है और हमें सचेत करते हुए कहते है कि आखिर इस नगरीकरण के विकास के फलस्वरूप प्राणी जाए तो कहां जाए, क्योंकि इनके आवास को मानव अपना आवास बना ले रहा है। बढ़ते शोर का गहराता संकट यह लेख राजेंद्र कुमार राय तथा रवींद्र कुमार वर्मा द्वारा लिखित गंभीर पर्यावरण–प्रदूषण चिंतन–परक लेख है। आधुनिक जीवन में शोर की मात्रा लगातार बढ रही है, जिससे रक्तचाप, बहरापन आदि कई प्रकार के रोग मनुष्य को पीड़ित कर रहे है। शोर–प्रदूषण जहरीले रसायन से भी खतरनाक है। इसलिए यह चिंता का विषय बन गया है। इसी तरह गंगा का अतीत जितना गौरवपूर्ण है, उससे कम इसका वर्तमान नहीं है। हिमालय की गोद से निकलकर देश को अपना आशीर्वाद देती हुई चलती रहती है। यही कारण है कि पुराण, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास, केशवदास, रसखान गुप्त सभी ने अपनी कविताओं को मां गंगा के चरणों में अर्पित किया है। आज के विवेकशील प्राणी गंगा को प्रदूषित कर रहे है। नगरों की गंदी नालियों का अर्ध्य दे रहे है। साहित्यकार हमेशा समाज का हितैषी रहा है। पर्यावरण की समस्या से पाठक को सचेत करने की जिम्मेदारी भी साहित्यकार निभा रहे है।

बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सेवाएं और वस्तुएं बढ रही हैं इसका पर्यावरण पर असर पड़ रहा है। अपने विकास के नाम पर अन्य प्राणियों के साथ–साथ हम अपने वजूद को खतरे में डाल रहे है। यह बात मनुष्य अब धीरे–धीरे जान रहा है। पर्यावणीय चेतना हमारे समाज के लिए एक जरूरी विषय है। इसी से हम इसकी सुरक्षा, संरक्षण और विकास के लिए उपाय ढूंढ सकते है। ताकि हमारी पीढी सुरक्षित

रह सके।

संदर्भ :–

1. निबंध भास्कर–वचन्देव कुमार–भारती भवन।
2. काव्य–रंजन–डा. शेखर, डा. मुहम्मद, डा. रोहिणी–प्रसारंग प्रकाशन।
3. कथा संकल्प–संपादक–डा. शाकिरा, डा. शैलजा, डा, सुलोचना–प्रसारंग प्रकाशन।
4. गध्य–भंडार–संपादक–डा प्रभु उपासे–प्रसारंग प्रकाशन।

Email : vindiraramesh@gmail.com
M. 9482213975

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 41-48
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी की हिंदी कविता में किसान विमर्श

कु. आरती पाण्डेय
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया 277001 (उ0प्र0)

सारांश :-

आज का युग विमर्शों का युग है। वर्तमान समाज की विभिन्न समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक चिंतन मनन एवं विचार विमर्श किया जा रहा है। आधुनिक काल में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, मजदूर विमर्श, किन्नर विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, आदिवासी विमर्श, किसान विमर्श आदि विभिन्न प्रकार के विमर्शों पर लेखन और साहित्य में उनका मूल्यांकन होता रहा है। किसान विमर्श भी इनमें से एक है। कृषक और कृषि से जुड़े विभिन्न मुद्दों, सामाजिक – आर्थिक समस्याओं, किसान जीवन की विसंगतियों, संघर्षों, चुनौतियों आदि का यथार्थ अंकन और सजग मूल्यांकन किसान विमर्श के अंतर्गत किया जाता है। किसानों के शोषण, उत्पीड़न और उनके प्रति समाज और शासन व्यवस्था के उपेक्षात्मक दृष्टिकोण को उजागर करना किसान विमर्श का उद्देश्य है।आधुनिककाल के हिंदी साहित्य में किसान जीवन को बखूबी जगह मिला है। किसान विमर्श गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में प्रमुखता से उठाया गया है। आधुनिक हिंदी साहित्य में लेखकों ने साहित्य की विभिन्न विधाओं यथा उपन्यास, कहानी और कविता के माध्यम से किसान जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया है।

21वीं सदी की कविताओं में किसान विमर्श एक मुख्य विषय के रूप में उभरा है।आज का कवि किसान को सिर्फ अन्नदाता के रूप में महिमामंडित नहीं करता बल्कि उसके जीवन के यथार्थ, संघर्ष और अस्तित्व संकट को केंद्र रखकर प्रश्न खड़े करता है। आधुनिक कवि यह मानता है कि कविता का आधार केवल वही होना चाहिए जो वास्तविक हो,अनुभूत हो, यथार्थ अनुभव से जन्मा हो। उसकी कविता गांव, खेत और किसान की सच्ची जिंदगी से जन्म लेगी, जिसे वह जीता और देखता है। वह अपने अनुभव के साथ ईमानदार रहेगा और वास्तविकता को ही कविता बनाएगा। इक्कीसवीं सदी में किसान विमर्श का स्वरूप पहले से भिन्न दिखाई देता है। अब कवि किसान को सिर्फ अन्नदाता के रूप में महिमामंडित नहीं करता बल्कि उनके जीवन के यथार्थ, संघर्ष और अस्तित्व संकट को केंद्र में रखकर प्रश्न उठाता है। आज की कविता में किसान का केवल प्रकृति से जुड़ा सरल चरित्र, प्रकृति–गान और ग्राम्य–प्रेम ही नहीं उभरता बल्कि उसका संघर्षशील और जुझारू व्यक्तित्व, व्यवस्था की मार और शोषण तथा अस्तित्व संकट भी उभरकर आता है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में किसान विमर्श अन्नदाता किसान के जीवन की विडंबना, अभावग्रस्तता, ऋणग्रस्तता, शोषण, सत्ता की नीतिगत असफलता और किसान की आत्महत्या पर केंद्रित है।

प्रस्तावना –

आज का युग विमर्शों का युग है। वर्तमान समाज की विभिन्न समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक चिंतन मनन एवं विचार विमर्श किया जा रहा है। आज समाज के हर ज्वलंत मुद्दों, हर समस्याओं और समाज के प्रत्येक वर्ग की स्थितियों–परिस्थितियों के प्रति लोगों का सचेत दृष्टिकोण देखने को मिल रहा है।

''विमर्श का तात्पर्य है–समाज की किसी भी समस्या पर चर्चा–परिचर्चा, संवाद, तर्क–वितर्क आदि। जब व्यक्ति किसी समूह में किसी विषय पर चिंतन अथवा परिचर्चा करता है तो उसे विमर्श कहा जाता है। विभिन्न शब्दकोशों में विद्वानों ने विमर्श शब्द को परिभाषित किया है। डॉ भोलानाथ के अनुसार विमर्श का अर्थ है– ''तबादला–ए–खयाल, परामर्श, मशविरा राय–बात, विचार–विनियम, विचार–विमर्श, सोच–विचार।'' ज्ञान शब्दकोश में विमर्श का तात्पर्य–विचार, विवेचन, परीक्षण, समीक्षा तर्क, ज्ञान आदि के रूप में अंकित किया गया है। मानक हिंदीकोश में विमर्श का अर्थ इस प्रकार है–सोच विचार कर तथ्य या वास्तविकता का पता लगाना। किसी बात या विषय पर कुछ सोचना समझना। विचार करना। गुण दोष आदि की आलोचना या मीमांसा करना। जांचना और परखना। किसी से परामर्श या सलाह करना आदि।''[1]

आधुनिक काल में स्त्री विमर्श,दलित विमर्श, मजदूर विमर्श, किन्नर विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, आदिवासी विमर्श, किसान विमर्श आदि विभिन्न प्रकार के विमर्शों पर लेखन और साहित्य में उनका मूल्यांकन होता रहा है। किसान विमर्श भी इनमें से एक है।

''किसानों की समस्याओं को लेकर लिखे गए साहित्य को किसान विमर्श कहते हैं। किसान विमर्श में किसानों के जीवन की विविध छबियां मिलती है। किसानों के जीवन में होने वाली समस्याओं को उजागर करके इन पर ध्यान आकर्षित करने का मकसद किसान विमर्श है।''[2]

कृषक और कृषि से जुड़े विभिन्न मुद्दों, सामाजिक–आर्थिक समस्याओं, किसान जीवन की विसंगतियों, संघर्षों, चुनौतियों आदि का यथार्थ अंकन और सजग मूल्यांकन किसान विमर्श के अंतर्गत किया जाता है। किसानों के शोषण, उत्पीड़न और उनके प्रति समाज और शासन व्यवस्था के उपेक्षात्मक दृष्टिकोण को उजागर करना किसान विमर्श का उद्देश्य है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यह गांवों का देश है। यहां लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या जीविकोपार्जन हेतु कृषि कर्म पर निर्भर है। किसान इस देश की रीढ़ हैं जो दिन–रात कठोर परिश्रम करके डेढ़ अरब वाले इस विशाल देश के भरण पोषण का दायित्व उठाते हैं। यह किसान ही है जो दुनिया भर के लोगों के भोजन के लिए खेतों में हाड़–तोड़ परिश्रम करके अनाज, फल, सब्जियां उगाते हैं। किसान अन्नदाता है लेकिन आज का सच यह है कि पूरी दुनिया का पेट भरने वाले किसान खुद गरीबी और भूख से मरते हैं। अभाव और कर्ज तले दबकर घुट–घुट मरते हैं। कभी सूखा तो कभी बाढ़ के प्रकोप को झेलते हैं। कभी बर्बाद हुए फसल के वियोग से तो कभी कर्ज के बोझ से, कभी सेठ–साहूकारों या जमीदारों के अत्याचार और शोषण से ऊबकर किसान आत्महत्या करने तक को मजबूर हो जाते हैं। तमाम तरह के अभावों को झेलते तथा प्रकृति के प्रकोप से लड़ते किसानों को शासन–प्रशासन या सरकार की ओर से जो मदद मुहैया कराई जाती है वह पर्याप्त मात्रा में नहीं होती। कई बार तो किसानों की समस्याओं और उनकी मांगों की सरकारें उपेक्षा कर जाती हैं। किसी दौर में किसान होना ,खेतीहर होना एक गर्व का विषय हुआ करता था। आज के इस आधुनिक युग में तकनीकी संसाधनों के बिना

और आर्थिक अभाव में खेती करना अत्यंत ही दुष्कर है। आज कृषक होना किसी अभिशाप की तरह हो गया है।

21वीं सदी में बढ़ते भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, जलवायु परिवर्तन, औद्योगिकीकरण और शहरीकरण ने कृषक और किसान कर्म के समक्ष अनेक चुनौतियां खड़ी कर दी है। सिंचाई हेतु उचित जल प्रबंधन की कमी, प्राकृतिक आपदाओं—सूखा और बाढ़ का कहर, बढ़ती लागत, घटती कृषि योग्य भूमि, महंगाई और आर्थिक अभावों ने किसानों को बेबस और लाचार बनाकर छोड़ दिया है।

किसानों की दयनीय दशा को यथार्थपूर्ण ढंग से उजागर करना, शासन प्रशासन तथा आमजन को किसानों की समस्याओं के प्रति जागरूक करना तथा संवेदनशील बनाना किसान विमर्श का उद्देश्य है। साहित्य अपने इस दायित्व का बखूबी निर्वहन करता आया है। आधुनिककाल के हिंदी साहित्य में किसान जीवन को बखूबी जगह मिला है। किसान विमर्श गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में प्रमुखता से उठाया गया है। आधुनिक हिंदी साहित्य में लेखकों ने साहित्य की विभिन्न विधाओं यथा उपन्यास, कहानी और कविता के माध्यम से किसान जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया है।

आधुनिक हिंदी कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', माखनलाल चतुर्वेदी, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, नागार्जुन, धूमिल, केदारनाथ सिंह आदि ने अपनी कविताओं में किसान के रहन—सहन, उनके कठोर परिश्रम, किसान जीवन की समस्याओं, उनके शोषण, उपेक्षा और सामाजिक असमानता का वास्तविक चित्र खींचा है। इन कवियों ने किसान जीवन के यथार्थ को उजागर करते हुए उनके पक्ष में अपनी आवाज बुलंद की है।

21वीं सदी की कविताओं में किसान विमर्श :–

''इक्कीसवीं सदी की कविता की चर्चा की जाए तो बीसवीं सदी के अंतिम तीन दशकों को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। क्योंकि इस कविता का बीजांकुर इन्हीं दशकों की कविताओं में निहित है। इस सदी की हिंदी कविता में जितने भी महत्वपूर्ण कवि हुए हैं उनकी साहित्यिक पृष्ठभूमि बीसवीं सदी के उतरार्द्ध में ही बन गई थी। इस सदी की हिंदी कविता को बीसवीं सदी के उतरार्द्ध की हिंदी कविता का विस्तार समझा जाए तो अनुचित नहीं होगा।''[3]

21वीं सदी की हिंदी कविता में स्व० केदारनाथ सिंह, स्व० शरद बिल्लौरे, मंगलेश डबराल, लीलाधर जागुड़ी, चंद्रकांत देवताले, विनोद कुमार शुक्ल, अरुण कमल, अशोक वाजपेयी, कुमार विमल, रमाशंकर विद्रोही, अष्टभुजा शुक्ल, हरीशचंद्र पाण्डेय, यतींद्र मिश्र, गगन गिल, प्रयाग शुक्ल जैसे प्रतिष्ठित कवियों की सक्रियता के साथ साथ ही नए युवा कवि भी बेहतरीन काव्य रचना कर रहे हैं। इन कवियों में रमाशंकर सिंह, बसंत त्रिपाठी, अनुराग अनंत, विहाग वैभव, कमलजीत चौधरी, अमन दलपुरा आदि कवि शामिल हैं।

21वीं सदी के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए प्रभाकर श्रोत्रिय कहते हैं, ''अपनी सदी की ओर हम कई संभावनाओं, आशंकाओं और प्रश्नों से देख रहे हैं। यह प्रश्न विज्ञान, विचार, राजनीति, अर्थशास्त्र, जाति, धर्म, पर्यावरण, सूचना, प्रोद्योगिकी, कला, संस्कृति, हमारी मिट्टी, हमारी जनता से जुड़े हैं और ये सभी चीजें साहित्य से जुड़ी हैं क्योंकि इन्हीं सब तत्वों और उपादानों से साहित्य अपना कथ्य और प्राणवायु ग्रहण करता है।''[4]

21वीं सदी की कविताओं में किसान विमर्श एक मुख्य विषय के रूप में उभरा है। आज का कवि किसान को सिर्फ अन्नदाता के रूप में महिमामंडित नहीं करता बल्कि उसके जीवन के यथार्थ, संघर्ष और अस्तित्व संकट को केंद्र रखकर प्रश्न खड़े करता है। आधुनिक कवि यह मानता है कि कविता का आधार केवल वही होना चाहिए जो वास्तविक हो, अनुभूत हो, यथार्थ अनुभव से जन्मा हो। उसकी कविता गांव, खेत और किसान की सच्ची जिंदगी से जन्म लेगी, जिसे वह जीता और देखता है। वह अपने अनुभव के साथ ईमानदार रहेगा और वास्तविकता को ही कविता बनाएगा। कवि से जब कोई प्रश्न करता है कि वह गांव, खेत और अटेलू मेटलू में क्यों पड़े रहता है तो उसका जवाब यह है कि –

''जो खाऊँगा वही बताऊँगा
जहाँ गया वही जगह
जिससे मिला उसी का नाम
पसीना गिराया तो खून नहीं बता सकता
सहयोग को सहायता नहीं कह सकता
समझौते को सहअस्तित्व पुकारना मेरे बस की बात नहीं।''[5]

किसान का जीवन उसके खेतों की समृद्धि पर निर्भर करता है अगर खेत सूख गए तो किसानों की सांसे भी सूख जाएंगी। फसलों की अच्छी उपज के लिए किसान मूलतः प्रकृति पर निर्भर है। अनुकूल मौसम उसके खेतों में प्राण सींचते हैं। बारिश केवल फसल उगाने की जरूरत नहीं बल्कि कृषक के जीवन का आधार है। कृषक के लिए खेतों की हरियाली, संध्या का गीलापन, भोर की ताजगी और पूजा की बेला का उल्लास सब कुछ बारिश पर टीका है। अतः वह पूरी आस्था और प्रार्थना के साथ बादलों को बुलाता है–

''धान उगेंगे कि प्रान उगेंगे
उगेंगे हमारे खेत में,
आना जी बादल जरूर!''[6]

प्रकृति की अनिश्चितता और प्रकृति का प्रकोप किसने को बहुत भारी पड़ता है। अतिवृष्टी या अनावृष्टि उनके फसलों को बर्बाद कर देती है, यदि समय पर वर्षा ना हो और फसल पकाने के बाद बदल आ जाए तो ऐसी स्थिति में फसल और फसल के साथ साथ किसानों का जीवन भी बर्बाद हो सकता है। प्रकृति की अनिश्चितता कृषकों के लिए बहुत कष्टदायी होती है। किसानों के इन सूक्ष्म मनोभावों को गंवई कवि अष्टभुजा शुक्ल अपनी कविता 'चैत के बादल' में व्यक्त करते हैं –

''माघ में
जब सींचना था
तब नहीं लौके
जब बयाना हो गई घर की मसूर
जब फसल पक कर हुई तैयार
तब फूँकने खलिहान
आये हैं

राशि की राशि सड़ाने, गड़गड़ाने
चौधराहट दिखाने
चैत के
इन गीदड़रोएँ बादलों को देख कर
याद आते हैं
भाद्रपद के वे घने काले मतंगों की तरह
मेल्हते, एंडते, मुड़ियाए चले जाते
सघन–घन, पनिगर और बतधर।''[7]

'अन्न का ढेर लगाता हुआ' कविता में प्रयाग शुक्ल ने किसान की परिश्रमशीलता, उसके त्याग और समाज में उसकी अनिवार्य भूमिका को दर्शाया है। किसान जल के साथ जल, बीज के साथ बीज, हवा के साथ हवा और धूप के साथ धूप बनकर जीवन का आधार रचता है। अन्न का ढेर उसके दिन रात के निरंतर और अनथक परिश्रम का परिणाम है जो शिशुओं से लेकर बूढों तक सबको जीवन देता है। किसान समाज के अस्तित्व और जीवन का आधार है–

''दिन हूँ, रात हूँ,
सुबह दुपहर शाम हूँ,
अनथक बेचैन हूँ,
आपका और अपना चैन हूँ,
अन्न के ढेर लगाता हुआ।
नन्हे दुध–मुहों के मुँह से
बूढ़े बुजुर्ग–मुहों तक
मैं ही तो हूँ,
दुखी या मुस्काता हुआ।''[8]

भारतीय किसान के लिए अनाज केवल भोजन नहीं है बल्कि जीवन जीने की उम्मीद और सपने हैं। कृषक के घर का राशन, तेल, गुड़, नमक, कपड़ा, जूता, शादी–ब्याह, त्यौहार, उत्सव सब कुछ गेहूं (अनाज) पर ही निर्भर है। किन्तु विडंबना यह है कि खलिहान से निकलते ही गेहूं कागजी दस्तावेज हो जाता है। पैसा और लेन देन बन जाता है। कोटवारी, पटवारी, जमींदार जैसे शोषणकारी तंत्र उसकी उपज पर हक जमा लेते हैं। किसान की मेहनत से उपजा गेहूं जो घर भर का पेट भरने वाला था वह बाजार और व्यवस्था की भेंट चढ़ जाता है –

''खलिहान से बाहर निकलते ही
कागज हो जाता है।
तेल, गुड़, नमक, मिर्च, कपड़ा, जूता
कितना कुछ नहीं होना पड़ता गेहूँ को
कोटवार, पटवारी, दरोगा, लेवी

कितने रूप रखता है गेहूँ।
बाकी का
जो नत्थू के घर जाना था
कहाँ गया है
जिससे उसे पेट भरना था
वह गेहूँ कहाँ भरा है।''[9]

किसान धरती से जुड़ा है, धरती के प्रति प्रेम और लगाव उसे झुकाए रखता है। प्रकृति और पर्यावरण से उसका आत्मीय रिश्ता है। पेड़—पौधे, नदियां उसके परिजन हैं, मित्र हैं, आराध्य हैं। लेकिन उसका जीवन सदैव अनिश्चितता, उपेक्षा और अभाव से ग्रस्त रहता है।वह उमंगित होकर फसल उगाता है लेकिन जब फसल तैयार होने लगती है तो वह चुप और असहज हो जाता है। बाजार का भाव—ताव, फसलों तथा उसके जीवन की अनिश्चितता उसे निराश और असहज का देती है। ऐसी स्थिति में किसान की मृत्यु चाहे किसी दुर्घटना से हो या मजबूरी में की गई आत्महत्या हो लेकिन वह हर स्थिति में समाज की अव्यवस्था, अनीति और उपेक्षा का शिकार है। उसकी मृत्यु, चाहे हत्या हो या आत्महत्या, कोई निजी घटना नहीं बल्कि सामाजिक और आर्थिक संरचना की विफलता है। सभी कष्टों और विपदाओं को झेलते हुए किसान मृत्यु के क्षण तक मुस्कुराता रहता है। संघर्षों से जूझते हुए उसकी आत्मा कभी नहीं हारती, शरीर भले ही हार जाए। यह कृषक का जुझारू व्यक्तित्व है —

''अब यह हत्या थी
या आत्महत्या—इसे आप पर छोड़ता हूँ
वह तो अब सड़क के किनारे
चकवड़ घास की पत्तियों के बीच पड़ा था
और उसके होंठों में दबी थी
एक हल्की—सी मुस्कान!
उस दिन वह खुश था।''[10]

प्रश्न यह है कि धर्मगुरुओं ने जब प्रवचनों में आत्महत्या को नर्क जाने वाला बताया है फिर भी किसान आत्महत्या क्यों करते हैं? क्या उनकी खेती और जीवन की परिस्थितियां नर्क से भी बदत्तर हो गई हैं? वे कभी कर्ज के दलदल में धंसकर, कभी व्यवस्था की मार से तो कभी दुर्नीतियों का शिकार होकर आत्महत्या करने को मजबूर हो जाते हैं। किसान की मौतें वास्तव में शोषण, व्यवस्था और नीतिगत गलतियों द्वारा की गई हत्या ही है। जिन्हें समाज और सत्ता आत्महत्या कहकर पल्ला झाड़ लेती है —

''उन्हें धर्मगुरुओं ने बताया था प्रवचनों मे
आत्महत्या करने वाला सीधे नर्क जाता है
तब भी उन्होंने आत्महत्या की
क्या नर्क से भी बदतर हो गई थी उनकी खेती
वे क्यों करते आत्महत्या

कितना आसान है हत्या को आत्महत्या कहना
और दुर्नीति को नीति।''[11]

कृषक जीवन इतने कठिनाइयों और संकटों से भरा है की आज किसान का केवल जीवित रह जाना भर ही एक बहादुर माना जा सकता है। 'ईश्वर को किसान होना चाहिए' कविता में कवि 'विहाग वैभव– किसान की दयनीय दशा को देखते हुए यह व्यंग्यात्मक स्वर में यह कहते हैं कि ईश्वर इतिहास में कभी सेनानायक, कभी न्यायाधीश, कभी राजा, कभी ज्ञानी बनकर अवतरित होता रहा है। लेकिन आज जब किसानों की स्थिति सबसे अधिक दयनीय और चुनौतीपूर्ण गई है तब ईश्वर को धरती पर किसान बनकर अवतरित होना चाहिए। उसके शरीर पर मिट्टी और पसीना चिपके, काले शरीर में पसलियां झांकती, हाथों में फरसा, हंसिया, अनाज और कर्ज का परचा हो। यदि ईश्वर किसानों के इस कठोर, कठिन और कष्टमय जीवन को जीएगा तो वह समझ पाएगा कि इस देश में ईश्वर होना आसान है, लेकिन किसान होना अत्यंत कठिन है –

''सृष्टि के किसी कोने
सचमुच ईश्वर कहीं है
और वह अपने अस्तित्व को लेकर सचेत भी है
तो फिर अब समय आ गया है कि
उसे अनाज बोना चाहिए
काटना चाहिए, रोना चाहिए
ईश्वर को किसान की तरह होना चाहिए।''[12]

निष्कर्ष :–

21वीं सदी की किसान जीवन पर आधारित कविताओं का अध्ययन और विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है की आधुनिक हिंदी कविता में किसान विमर्श एक केंद्रीय विषय बन चुका है। इक्कीसवीं सदी में किसान विमर्श का स्वरूप पहले से भिन्न दिखाई देता है। अब कवि किसान को सिर्फ अन्नदाता के रूप में महिमामंडित नहीं करता बल्कि उनके जीवन के यथार्थ, संघर्ष और अस्तित्व संकट को केंद्र में रखकर प्रश्न उठाता है। आज की कविता में किसान का केवल प्रकृति से जुड़ा सरल चरित्र, प्रकृति–गान और ग्राम्य–प्रेम ही नहीं उभरता बल्कि उसका संघर्षशील और जुझारू व्यक्तित्व, व्यवस्था की मार और शोषण तथा अस्तित्व संकट भी उभरकर आता है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में किसान विमर्श अन्नदाता किसान के जीवन की विडंबना, अभावग्रस्तता, ऋणग्रस्तता, शोषण, सत्ता की नीतिगत असफलता और किसान की आत्महत्या पर केंद्रित है। आज की कविता पाठकों के समक्ष किसान जीवन की सच्चाई प्रकट करती है और समाज को किसानों के प्रति चेतन और संवेदनशील होने को प्रेरित करती है।

सन्दर्भ सूची :–

1. समकालीन विमर्श के विभिन्न आयाम – श्वेता दीप्ति, Pragya Darshan 2023, 5 (I) : 15-18 ISSN : 2542-2634 (print)
2. किसान विमर्श और साहित्य – डॉ. रानू मुखर्जी – साहित्य कुञ्ज अंक 276, प्रथम, 2025 में प्रकाशित।

3. 21वीं सदी की हिन्दी कविता में चित्रित मानव जीवन – मन्नू राम मीना Vol-VII, Issue-IV July 2022 Anthology the Research.
4. बागार्थ पत्रिका दिसम्बर 2009, पृष्ठ संख्या 70
5. हाथा मारना – अष्टभुजा शुक्ल – https://www.hindwi.org
6. आना जी बादल जरूर – https://kavitakosh.org
7. चैत के बादल – अष्टभुजा शुक्ल – https://pahleebar.blogspot.com
8. अन्न का ढेर लगाता हुआ – प्रयाग शुक्ल – https://kavitakosh.org
9. गेहूँ – शरद बिलौरे – https://www.hindwi.org
10. फसल – केदार नाथ सिंह – https://kavitakosh.org
11. किसान और आत्महत्या – हरिशचन्द्र पाण्डेय – https://www.hindwi.org
12. ईश्वर को किसान होना चाहिए – विहाग वैभव – https://www.hindwi.org

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 49-54
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी का साहित्य और नारी विमर्श

सोनिया विजय निर्मल, शोधार्थी
विवेकानंद कला, सरदार दलिपसिंग वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,
समर्थ नगर, छत्रपति संभाजीनगर–431001, महाराष्ट्र।

शोध सार :–

21वीं सदी का हिंदी साहित्य सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक चेतना से ओतप्रोत है, जिसमें नारी विमर्श एक प्रमुख विषय के रूप में उभरा है। स्त्री की अस्मिता, अधिकार, संघर्ष, यौनिकता, आत्मनिर्भरता और पारिवारिक–सामाजिक संरचनाओं में उसकी भूमिका को लेकर साहित्यकारों ने गहन चिंतन प्रस्तुत किया है। इस शोध में यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार आधुनिक स्त्री लेखन में पारंपरिक सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए एक नई स्त्री छवि उभरती है, जो केवल पीड़िता नहीं, बल्कि एक सजग, सचेत और सक्रिय हस्तक्षेपकर्ता है। साथ ही यह भी विश्लेषण किया गया है कि किस तरह पितृसत्तात्मक सोच से टकराते हुए स्त्रीवादी साहित्य सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति प्रदान कर रहा है।

मुख्य शब्द :– नारी विमर्श, स्त्री अस्मिता, आधुनिक हिंदी साहित्य, स्त्री लेखन, पितृसत्ता, लैंगिक समानता, महिला सशक्तिकरण, सामाजिक परिवर्तन, स्त्रीवादी दृष्टिकोण, 21वीं सदी का साहित्य, आत्मनिर्भर स्त्री, साहित्यिक विमर्श, समकालीन कथा साहित्य, स्त्री चेतना, हिंदी कविता, उपन्यास, कहानी में स्त्री।

प्रस्तावना :–

21वीं सदी का हिंदी साहित्य केवल सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ को प्रतिबिंबित करने का माध्यम नहीं रह गया है, बल्कि यह विचार, विमर्श और प्रतिरोध की सक्रिय जमीन बन चुका है। इस साहित्यिक परिदृश्य में नारी विमर्श एक अत्यंत महत्वपूर्ण और विचारोत्तेजक प्रवृत्ति के रूप में उभर कर सामने आया है। बीते दशकों में स्त्री की भूमिका को लेकर जो सवाल साहित्य में उठाए गए, वे अब और भी अधिक गहरे, व्यापक और विविध हो गए हैं।

नारी विमर्श का उद्देश्य केवल स्त्री की पीड़ा या शोषण को चित्रित करना नहीं है, बल्कि उसके स्वत्व, आत्मनिर्णय, अधिकार और स्वतंत्रता के प्रश्नों को केंद्र में लाना है। यह विमर्श स्त्री को एक अबला या दया की पात्र नहीं, बल्कि एक सोचने–समझने वाली स्वतंत्र इकाई के रूप में प्रस्तुत करता है। 21वीं सदी की स्त्री लेखिकाओं ने परंपरागत ढांचों को तोड़ते हुए ऐसे प्रश्न उठाए हैं जो न केवल साहित्य, बल्कि समाज, संस्कृति, धर्म और राजनीति तक को झकझोरते हैं।

हिंदी साहित्य और स्त्री विमर्श :-

हिंदी साहित्य का ज्वलंत प्रश्न स्त्री विमर्श है। जो स्त्री के अधिकारों, स्वतंत्रता और अस्मिता की तलाश से हुआ। यह केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि एक सामाजिक–राजनैतिक चेतना भी है। 20वीं सदी में जहां नारी को सहनशील, त्यागमयी, और घरेलू सीमाओं में कैद दिखाया गया, वहीं 21वीं सदी की स्त्री अपने अस्तित्व को परिभाषित करने के लिए संघर्षरत दिखाई देती है। डॉ. वैशाली देशपांडे नारी विमर्श और स्त्रीवाद को परिभाषित करते हुए कहती है कि, "साहित्य के माध्यम से नारी के स्वत्व की पहचान करने के प्रयास आरंभ हुए, उसे स्त्रीवाद कहा जाता है।"[1] आज की स्त्री समाज द्वारा बनाई गई सदियों पुरानी स्त्री विषयक धारणाओं को तोड़कर अपनी पहचान मांग करती है।

हिंदी साहित्य कविता, कहानी, उपन्यास और आत्मकथा सात्य के माध्यम से स्त्री विमर्श को चित्रित किया गया है, जिन्हें पढ़कर स्त्रियों की वेदना को समझा जाए तथा समाज में स्त्रियों को पुरुषों के समान दर्जा मिले। यदि भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए तो वैदिक काल से लेकर आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल में हिंदी साहित्य समाहित होता है।

वैदिक काल में महाराज मनु ने स्त्री को पुरुष पर निर्भर तथा रक्षित बनाकर कहा है :-

"पिता रक्षति कौमार्य, भ्राता रक्षति यौवने।

पुत्रश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वतन्त्रामर्हती।"[2]

अर्थात स्त्री बचपन में पिता, युवावस्था में पति तथा बुढ़ापे में पुत्र द्वारा रक्षित होती है।

आचार्य शंकरचार्य ने स्त्री को नरक का द्वार ही कह दिया, **"द्वारस्ति नरकस्य नारी।"**[3]

ऐसे समय में मीराबाई का पितृसत्ताक समाज के विरुद्ध जाकर अपनी निजता के अनुरूप जीवन यापन करना आश्चर्य की बात थी, क्योंकि तुलसीदास ने स्त्रियों को पराधीन मानते हुए उन्हें पशुओं की तरह ताड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। शायद ही ऐसा कोमल हृदय तथा कोमल धारणा स्त्रियॉ के प्रति किसी अन्य कवि की रही होगी?

रीतिकाल में स्त्री को केवल भोग वस्तु ही समझा जाता था इस काल में स्त्रियों के उद्गार वासनात्मक तो प्रकट किए साथ ही विभिन्न जतियों की नायिकाओं का वर्गीकरण भी किया जिसके कारण साहित्य में पहली बार मध्य व निम्न कामकाजी स्त्रियों को महत्व मिला है।

मध्य काल में स्त्री तो पति के हाथ की कठपुतली बनकर रह गई। स्त्रियाँ सती प्रथा, बालविवाह, बहुपत्नी प्रथा, अशिक्षा, कन्या वध जैसी समस्याओं से जूझती रहीं लेकिन सामाजिक स्तर पर स्त्री के सुधार के प्रयास इस काल से ही होने लगे। 19वीं शताब्दी में स्त्रियों की दयनीय स्थिति को ऊपर उठाने के लिए राजा राम मोहन राय, ईश्वरचंद विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि ने भरसक प्रयास किए।

आधुनिक काल में स्त्री शिक्षित है, कामकाजी अधिकारों के प्रति सजग तथा आर्थिक रूप से स्वतन्त्र है परंतु कहीं न कहीं वह मानसिक घुटन महसूस करती है, पुरुष प्रधान समाज ने कभी नहीं सोचा था कि उसका अनुगमन करने वाली स्त्री एक दिन स्त्रीवादी नारे लगाएगी तथा अंतरिक्ष में जाएगी। स्त्री का सजग होना उसे स्वीकार नहीं। पुरुष का परंपरागत मन स्त्री के अधिकारों को स्वीकार नहीं कर पाता वह आज भी स्त्री को घर की चार दीवारों में रहने वाली अबला के स्वरूप में देखता है। स्त्री विमर्श को आधुनिक काल में कविता, उपन्यास

एवं कहानी में व्यापक तौर पर देखा जा सकता है। आधुनिक काल में स्त्री विमर्श के माध्यम से स्त्री उत्थान की संरचना काफी कठोर संघर्ष की मांग करती है तथा एक प्रश्न करती है। द्विवेदी जी ने स्त्री पक्ष का समर्थन करते हुए लिखा है :–

"पति को देवतुल्य हम माने,
बच्चों की भी दासी हैं।
सेवा सदा करे नहि सोचे
भूखी हैं या प्यासी हैं।।
हे भगवान! हाय तिस पर भी
उपेक्षा कैसी पाती है।
शेष तुल्य ताड़न अधिकारी
हम बनाई जाती हैं।।"[4]

21वीं सदी के साहित्य के स्त्री विमर्श में कुछ चर्चित नाम हैं जिन्होंने आज के साहित्य में अपनी विशेष छवि स्थापित की है उनमें, सुषमा बेदी, ज्योत्सना मिलन, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, डॉ. सरोजनी प्रीतम, नाटकों के क्षेत्र में भारतीय स्त्रियों में लोकप्रिय नाम : गिरिश रस्तोगी, अर्चना वर्मा, डॉ. कमल कुमार, डॉ. भावना, शैलजा सक्सेना, स्नेह ठकोर, पुष्पिता अवस्थी, अर्चना पैन्यूली, संजीता वर्मा, डॉ. इंदिरा आनंद, रेणु, सुधा अरोड़ा। नाटकों के अलावा भी जो अन्य विधाओं में लेखन कार्य कर रहीं हैं, उनमें चर्चित नाम हैं : डॉ. सुशीला गुप्ता। अहिल्या मिश्रा, इंदु बाली, लक्ष्मी कुमारी, उषा किरण खान, डॉ. अंजना सुधीर, अल्का प्रमोद, प्रिय अग्रवाल, जोहरा अफजल, स्वर्ण ज्योति आदि भारतीय स्त्रियों ने महत्त्वपूर्ण जगह बना ली है। इस प्रकार स्त्री लेखन की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रहे है।

हिंदी कविता में भी गत दो–तीन दशकों से अधिक समय से स्त्रीवादी चिंतन पर लेखन किया जा रहा है। सविता सिंह अपने काव्यसंग्रह– "नींद थी और रात थी" में नारी जीवन की संघर्षमय गाथा का सहानुभूति एवं स्वानुभूति के परिप्रेक्ष्य में गहन चिंता करती हुई "मैं कथा कहुंगी" कविता में कहती है :–

"स्त्रियों ! बार, बार मैं तुम्हारी कथा कहुंगी / उतरूँगी जीवन की अंधेरी खोह में / दूर तक बढ़ूँगी / पहुंचुगी वहाँ जहां तक थोड़ी–सी रोशनी बाकी होगी। / देखूँगी तुम्हारे प्राचीन चेहरे / जो अब तक दस्तावेजों की तरह सुरक्षित होंगे वहाँ / उससे ही जान लूँगी तुम्हारा हाल / और यह सब समझ लूँगी कि बहुत फर्क नहीं है / एक दूसरे के हल–चल में अब भी।"[5]

आज समाज भले ही कितना भी आधुनिक हो गया हो परंतु कुल का मान–सम्मान सब कुछ संभालने कि जिम्मेदारी उसी की है। खामोशियाँ बोलती हैं – काव्य संग्रह में संकलित कविता 'वो औरत' में रेखा श्योराण कहती हैं – "क्या लिखूँ और क्या छोड़ूँ, / साँस उसकी पाए दूसरों से पूछकर लेती है। दर्द का सैलाब उसकी आँखों में पार .... / दूसरों से पूछकर रोटी है .... ।[6]

अपने अस्तित्व की लड़ाई में जीवन संघर्ष के झुलसाते ताप में तपती नारी अब थक गई है, वह अब आंतरिक रूप से थक गई है। अनामिका जी 'दूब–धान' में कहती हैं –"एक बंजर में कुदालों की तरह चलती हुई मैं थक गई हूँ / पोछ दो मेरा जरा माथा कि मुझको नींद आ जाए।"[7]

स्त्री विमर्श केन्द्रित काव्य संग्रह की प्रत्येक कविता आरंभ, मध्य, अंत में कोई न कोई हल न होने वाला प्रश्न लेकर उपस्थित है। सुनीता जैन 'राग और आग' काव्य संग्रह में पूछती हैं – "पूछ रही थी स्वयं से / खिड़की का होना ही। / क्या होता है सच में प्यार।"[8]

अतः 21वीं सदी की प्रसिद्ध कवयित्रियों जे काव्य में स्त्री विमर्श के प्रत्येक प्रश्नों को जोखिमों सहित उठाया है।

नारी देश, समाज, जाति, परिवार के मान सम्मान की रक्षा के लिए हर प्रकार का त्याग करती है। स्त्री का यह रूप बड़ा ही भव्य और सम्मोहक दिखता है। किन्तु इस सबके बीच स्वयं स्त्री कहां है। सामाजिक परम्पराओं और रूढ़ियों के आगे स्त्री आकांक्षा घुटकर दम तोड़ देती है। अर्धांगिनी होकर भी समता और समानता से दूर रख उन्हें पितृसत्तात्मक के अधीन रहना पड़ता है। "स्त्री का दुर्भाग्य है कि औरत अपनी भूमिका स्वयं नहीं कर पाती। चूंकि सामाजिक संहिता का निर्माता पुरुष है, अतः विज्ञप्ति की स्त्री पुरुष से हीन है। अब तक संस्कारों से पुष्ट होती रही है।"[9]

समाज में ऐसी धारणा है कि मातृत्व ही स्त्री को पूर्ण बनाता है। किन्तु यह दृष्टिकोण अब बदल रहा है। अब नारी बंद आंखों के बजाय खुली आंखों से अपने लिए मार्ग तलाश पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है।

प्रभा खेतान का उपन्यास 'छिन्नमस्ता' की नायिका प्रिया मातृत्व ही उपेक्षा कर अपने अस्तित्व की रक्षा करती है। वह साफ तौर पर कहती है –" हो सकता है कि संजू के मन में तल्खी हो कि मै एक अच्छी मां नहीं बन सकी। नहीं बन सकी तो क्या करूं। क्या मां मुझे जन्म देकर अपने मातृत्व की भूमिका ठीक से निभाई थी? उनमें तो मैंने कभी कचोट नहीं देखी।"[10]

अब नारियां पुरुष को अपना भाग्य विधाता और स्वामी नहीं मानती। 'छिन्नमस्ता' की नायिका कहती है– "सच कहूं तो पुरुष की कोई भूमिका मुझे जीवन में नहीं लगती। नहीं वह क्या दे देगा..... आज मै चाहे जो खर्च करूं मुझे उसका हिसाब नहीं देना पड़ता...... पेट में दो फुल्के ही समाएंगे, फिर खाने के लिए इतना तामझाम क्यों?"[11]

बचपन से ही परिवार में लड़के–लड़की के बीच भेदभाव नारी के जीवन में कुंठा और असुरक्षा की भावना को जन्म देता है। छिन्नमस्ता की प्रिया परिवार एवं समाज में कदम–कदम पर शोषित होती है। उसका यह आक्रोश उचित दिखता है–" क्या समाज स्त्री की रक्षा करता है? क्या पुरुष की कामुक हवस का शिकार होने से मासूम लड़कियां बच पाती हैं? कब और कहां नहीं मुझ पर आक्रमण हुआ? वह कैसा बचपन था? न केवल भाई ने बल्कि एक दिन नौकर ने भी गोद में बिठाया था।"[12]

आज की नारी पुरुष की क्षुद्र मानसिकता को सहन करने को तैयार नहीं है। अब स्त्रियां विवाह और पति को ही अपने जीवन का केंद्रबिंदु और अंतिम लक्ष्य नहीं मानती। विवाह एक ऐसी संस्था के रूप में साबित हो रही है जो व्यक्ति की स्वाधीनता को बाधित करती है। ममता कालिया के उपन्यास 'नरक दर नरक' की नायिका की जिंदगी नरक सदृश हो जाती है क्योंकि उसका पति उसे अपनी एक जरूरत कि वस्तु के रूप में देखता है। ठीक यही स्थिति 'छिन्नमस्ता' की प्रिया की भी है।

मंजुल भगत के उपन्यास 'अनारो' की टीचर अनारो जो समाज और बिरादरी की रूढ़ियों के गिरप्त में

है,उसे कहती है "देखो भई मुझे ब्लड प्रेशर की बीमारी है और तुम्हारी बातें सुनकर वह हमेशा बढ़ जाती है। यह निकम्मी रूढ़ियां दीमक की तरह तुम्हारे दिमाग को चाट चुकी हैं। जर्जर खुरखुर हो गए हो पर इन कुरीतियों को नहीं छोड़ोगे।"[13]

'छिन्नमस्ता' की प्रिया भी समस्त रूढ़ियों को नकारते हुए स्त्री के एक सजावटी वस्तु मात्र होने को नकारती हुई स्वयं को आत्मनिर्भर बनाते हुए स्वयं को अंतर राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करती है। वह अपनी अम्मा, जीजी और भाभी की तरह घुट–घुट कर जीना नहीं चाहती। इस प्रकार स्वातंत्रयोत्तर नारी परम्परा और आधुनिकता के अंधेरे–उजाले में स्वयं को तलाशती नजर आती है। "सामान्य नारी पति और विवाह नामक संस्थाओं के इर्द–गिर्द अपनी सारी ऊर्जा खर्च करती है, किन्तु विद्रोह की तड़प भी सबसे पहले परिवार और उसकी रूढ़ियों के प्रति उत्पन्न होती है और यह चेतना पति या पुरुष की अधिकार सत्ता के प्रति विद्रोह में बदल जाती है।"[14]

आधुनिक नारी धर्म, समाज व परम्परा को नकारते हुए अपने लिए भी मानवीय स्तर पर स्थापित करने के लिए संघर्षरत है।

आधुनिक उपन्यासों में नारी एक नूतन छवि लेकर उपस्थित होती है। 'इदन्नमम' की नायिका मंदाकिनीबऊ के कथन से असहमति व्यक्त करते हुए कहती है–" वे सब पुरुष प्रधान समाज के अवसरवादी प्रसंग हैं। एक ओर पतिव्रत्य धर्म की परिभाषा करता राम के साथ सीता का वनगमन दूसरी ओर उसकी निष्ठा को तोड़ता मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सीता की अग्नि परीक्षा लेना। सीता ने क्यों नहीं मांगा कोई सबूत कि हे भगवान जाने जाने वाले राम,तुम भी तो उस अवधि में मुझसे अलग रहे हो। अपने पवित्र रहने के साक्ष्य दो।"[15]

इस प्रकार स्वतंत्रयोत्तर लेखिकाओं ने स्त्री को एक स्वतंत्र मानवी के रूप में प्रस्तुत किया और पितृसत्तात्मक मानसिकता की आलोचना करते हुए विवाह संस्था की कमजोरियों को उजागर किया। उन्होंने स्त्री को पुरुष–प्रधान पहचान से मुक्त कर उसकी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई।

स्त्री–विमर्श का दायरा व्यापक है – इसमें पितृसत्ता का विरोध भी है और मानवता को लाभ पहुँचाने वाली सांस्कृतिक परंपराओं का स्वीकार भी। समकालीन साहित्य में स्त्री की छवि अब पीड़िता से संघर्षशील और स्वावलंबी नारी के रूप में उभरी है, जो अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाती है और व्यवस्था को चुनौती देती है।

गीतांजलि श्री का 'रेत समाधि' सीमाओं से परे पहचान की तलाश करती वृद्धा की कहानी है। अनामिका की कविताएँ स्त्री की दार्शनिक और यौनिक स्वतंत्रता की मांग करती हैं, जबकि नीलिमा चौहान आधुनिक स्त्री के द्वंद्व को दिखाती हैं, जो बाहर और घर दोनों में सक्रिय है।

अब स्त्री–विमर्श केवल सवर्ण मध्यवर्गीय महिला तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसमें दलित, आदिवासी और किन्नर विमर्श भी शामिल हो गए हैं। जैसे, बाबुराव बागुल और कौशल पवार के लेखन में जाति और लैंगिक शोषण का द्वैध अनुभव उभरकर सामने आता है।

निष्कर्ष :–

21वीं सदी के हिंदी साहित्य में नारी विमर्श ने एक सशक्त और प्रभावशाली स्थान प्राप्त किया है। यह विमर्श अब केवल स्त्री की पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि स्त्री के आत्मबोध, स्वतंत्रता, यौनिकता, करियर, सामाजिक दायित्व और मानसिक स्वतंत्रता जैसे जटिल मुद्दों को भी गहराई से छूता है। समकालीन

लेखन में स्त्री अब वस्तु नहीं, विषय है– जो स्वयं अपनी व्याख्या करती है और अपने अनुभवों को अपनी भाषा में अभिव्यक्त करती है। भारतीय स्त्री की तेज लेखनी की धार से सब्जियों की तरह काटते जा रहे हैं, तमाम पारिवारिक, सामाजिक और मानसिक बंधन, स्त्री अब मुक्त हो गई है। दिल से, दिमाग से और देह से भी। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य स्त्री लेखन के माध्यम से अत्यंत समृद्ध हुआ है, ये हर क्षेत्र की तरह साहित्य में भी अपनी उपस्थिति सशक्त ढंग से दर्ज करा रही है वे निरंतर साहित्य सृजन में भी आगे आ रही है।

स्त्री लेखिकाओं ने विशेष रूप से इस विमर्श को एक नया स्वर और तेवर दिया है। उनके लेखन में जहां एक ओर पितृसत्ता, जाति, धर्म और लैंगिक भेदभाव के विरुद्ध स्पष्ट प्रतिरोध है, वहीं दूसरी ओर एक नई स्त्री चेतना का विकास भी दिखाई देता है कृजो स्वयं निर्णय लेती है, प्रश्न करती है और सामाजिक बदलाव की राह खोलती है। अब वह कल की अबला स्त्री नहीं रही बल्कि सबला हो चुकी है क्योंकि स्त्री,

> "अब चुप नहीं, सवाल बन गई है, हर अन्याय पर हलचल बन गई है।
> न झुकी है, न रुकी है अब कहीं, वो अपने पंखों से उड़ चली है कहीं।
> सपनों को अब संकोच नहीं लगता, भीड़ में उसे अब शोर नहीं डराता।
> जो सिर्फ सुनी जाती थी, अब बोलती है, अपनी राहों पर खुद चलती है।
> कभी किताबों में थी जो दबकर, अब इतिहास बदलती चलती है।
> वो कल की परछाईं नहीं अब, वो आज की रौशनी है।
> वो घर की चहारदीवारी नहीं, वो खुले गगन की नयी कहानी है।"

संदर्भ सूची :–

1. वैशाली देशपांडे, स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2006, पृ. 13
2. मनुस्मृति 9/3 अध्याय 3, पृ. 479, मनोज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, सं– 2003
3. कल्याण, नारी अंक पृ. 128, राधेश्याम खेमका, गीतप्रेस गोरखपुर, संवत 2001
4. रसज्ञ रंजन, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ. 60, साहित्य रत्नभंडार, आगरा, संवत 1920
5. सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 24
6. रेखा रानी, खामोशियाँ बोलती हैं, वो औरत, पृ. 82
7. अनामिका, दूब–धान' पृ. 82
8. सुनीता जैन, राग और आग' पृ. 106
9. स्त्री उपेक्षित, प्रभा खेतान, पृष्ठ १२१, नवीन संस्करण दूसरा रीप्रिंट २००८.
10 छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृष्ठ–६१, राज प्रकाशन, चौथी आवृत्ति २००४
11 छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृष्ठ– २२२, राज कमल पेपरबैक २००६.
12 छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, २००६.
13 अनारो, मंजुल भगत, राजकमल पेपर बैग्स, २००६.
14 डा. सुरेश बत्रा, नारी अस्मिता हिंदी उपन्यासों में, पृष्ठ –६.
15 इदन्नमम, मैत्रेई पुष्पा, पृष्ठ–२७०, राजकमल पेपर बैक्स–२००४.
16 गीतांजलि श्री – रेत समाधि।
17 रमणिका गुप्ता – स्त्री–विमर्श : विमर्श नहीं स्त्री का कर्म है।
18 शशिप्रभा शास्त्री – हिंदी साहित्य में नारी विमर्श।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 55-60
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में वर्णित महिला किसानों की स्थिति

गौरव सिंह
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, पी.एस.जी. कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड साइंस, कोयम्बटूर, तमिलनाडु।

शोध-सार :-

आधुनिक समय में औद्योगिकीकरण और बाजारवाद के जाल में फंसे किसान अपनी अस्मिता को बचाने के लिए हर दिन संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। आए दिन किसान से उनकी कृषि योग्य जमीन को विकास के नाम पर छीना जा रहा है। अन्नदाता कहलाने वाला कृषक अपनी प्राथमिक जरूरतों को पूरा करने के लिए जूझ रहा है। उसको अपनी फसलों की लागत का मूल्य भी नहीं मिल पाता है। किसी भी देश के समाज में किसान का होना उस देश के अस्तित्व का परिचायक होता है। किसान ही है जो अपने देश व विदेशों के नागरिकों को भी अन्न देने का कार्य करते हैं। भारतीय कृषि व्यवस्था में महिला और पुरुष दोनों ने ही योगदान दिया है। आज साहित्य में किसानों को लेकर विभिन्न संगोष्ठियाँ होती हैं लेकिन फिर भी किसान के हिस्से में पूरी तरह से कड़ी धूप (मुसीबत) ही आती है। जीवन पर्यंत किसान धूप, छांव, वर्षा तथा शीत को सहता है उसके बाद भी वह अपनी सामान्य जरूरतों को पूरा नहीं कर पाता है। आजादी के 78 साल बाद आज किसानों (महिला –पुरुष) की क्या स्थिति है और आधुनिक हिंदी उपन्यास परंपरा में इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में किसानों की खासकर महिला किसानों की क्या स्थिति है इसका विवरण, विभिन्न उपन्यासों के माध्यम देना इस शोध आलेख का उद्देश्य है।

किसान को समाज एवं साहित्य के केंद्र में लाने का श्रेय प्रेमचंद को जाता है। उन्होंने ही तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और साहित्यिक रूचि को देखते हुए समाज में उस वर्ग को आगे लाकर खड़ा किया जो अब तक व्यक्ति की साहित्यिक रुचियों से भिन्न था। उनकी साहित्यिक कला ने भारतीय कृषक वर्ग को सामाजिक उपेक्षा से बाहर निकालने का कार्य किया। तत्कालीन समय में किसान एक ऐसा वर्ग था जो हर प्रकार से उपेक्षित और लाचार था उसकी अपेक्षाएं किसी के लिए भी महत्त्व नहीं रखती थीं। शोषण के पर्याय माने जाने वाले किसान का प्रेमचंद ने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज से परिचय करवाया जोकि एक महान क्रांति के रूप में जानी जाती है। प्रेमचंद के बाद यह कृषि परक साहित्य लिखने का सिलसिला कुछ धीमे और तीव्र गति से चलता रहा। नागार्जुन, निराला, फणीश्वरनाथ रेणु, जगदीश चन्द्र, विवेकीराय, जैसे साहित्यकारों ने किसानी परंपरा को अपने साहित्य में बनाए रखा। आधुनिक हिंदी उपन्यास यात्रा में 'फाँस', 'कालीचाट', 'यह गाँव बिकाऊ है', 'हलफनामे',

आदि उपन्यास कृषि एवं कृषक जीवन परक उपन्यास के रूप दिखाई देते हैं।

कुंजी शब्द :– कृषक, महिला किसान, कृषि, प्राकृतिक आपदा, आत्महत्या, फसल मूल्य।

शोध आलेख :–

कृषि को कृषि ने मानवी सभ्यता के विकास में अहम योगदान दिया है। भारत के संदर्भ में 'कृषि' भारतीयता की पोषक और रक्षक है, कृषि संस्कृति के महत्व को वैदिक साहित्य से आज आधुनिक काल तक सराहा गया है। कृषि के तत्वों का भारतीय सनातन धर्म में पूजन आदि का प्रचलन आदि काल से ही है। यही कृषि के तत्व ही कृषि को स्थापित करते हैं। कृषि के तत्वों में भूमि, मिट्टी, जल, बीज, खाद, हल, बैल, बैलगाड़ी, खुरपी, फावड़ा, हसिया, कृषक–कृषि का संबंध आदि समाहित है। हालाँकि आज के कृषि परक उपन्यास में भी इन तत्वों का जिक्र न के बराबर मिलता है। इसके पीछे का कारण है आज आधुनिक समय में मशीनों का अत्यधिक प्रयोग। आज मशीनों के प्रयोग के कारण पारंपरिक कृषि में बदलाव आए हैं। हल–बैल की जगह ट्रैक्टर और आधुनिक जुताई–खुदाई वाली मशीनों ने ले ली है। भूमि, मिट्टी, बीज, जल, हल–बैल आदि कृषि के आधारभूत तत्व हैं। जहाँ कृषि होती है, जहाँ जीवन है वह भूमि माता है और मनुष्य पृथ्वी का पुत्र है।

लीलाधर जगूड़ी ने अपनी कविता 'आत्म विलाप' में नई फसल की बुवाई तथा वर्तमान में कृषि संस्कृति के मिटते स्वरूप का मार्मिक चित्रण किया है यथा :–

"नयी फसल बोते हुए पुराने अन्न के बुखने
और उनके स्वाद
हमने सब कुछ खो दिया है
तेल से चुपड़े बैलों के सींग
और उनके बीच से उगता हुआ सूर्य
और उसकी पीठ पर बनते हुए समकालीन भंवर
अब भी गाँव के कंगाल जिनकी गवाही देते हैं।"[1]

कवि कविता के माध्यम से कृषि संस्कृति की उस झलक को पाठक के सामने बड़ी करुणा के साथ प्रस्तुत करता है, जो अब धूमिल हो गई है। अब न तो हल–बैल बच रहे हैं न ही किसान। नए–पुराने अन्न वाली परंपरा खत्म हो गई है। एक समय था जब लोग शुरू–शुरू में नए अन्न को खाने से बचते थे क्योंकि नया अन्न पाचन प्रक्रिया में समस्या करता है, किन्तु आज सब कुछ बदल गया है।

महिला और पुरुष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता है। आज महिलाएँ हर क्षेत्र में पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं। वह सब कुछ कर रहीं जिससे वह सदियों तक वंचित रही। महिलाएँ पुरुषों के जैसे ही खेती–किसानी में भी अग्रणीय भूमिका का निर्वहन कर रही हैं। यह पक्ष भले ही सदियों से कुछ कार्यों को लेकर पुरुष प्रधान समाज द्वारा उपेक्षा का शिकार रहा हो परंतु वर्तमान में महिलाओं ने हर क्षेत्र में प्रवीणता प्राप्त की है। समाज ने नारी को अबला, देवी, वत्सला आदि संज्ञाओं से अभिहित कर उसको घर की चौखट के भीतर ही समाहित कर दिया था, लेकिन आज वह इन दी गई संज्ञाओं की सीमा को पार करके अपने पैरों पर खड़ी है।

सामान्यतः यह देखा और सुना जाता है कि किसान कोई पुरुष हो सकता है अथवा होता है। लेकिन आज

इस धारणा से बाहर निकलने का समय आ गया है। आज किसान परिवार में न सिर्फ पुरुष ही किसान कहने का अधिकारी है बल्कि महिला भी किसान जीवन को जीती है वह भी एक किसान है। देश की आबादी में महिलाओं का आधा योगदान है और यह महिलाएँ देश के कुल किसानों की आधी आबादी का भी नेतृत्व करती हैं। कृषि कार्य में महिलाओं का एक बड़ा स्थान है, पुरुष भले ही कुदाल और हल चलाकर अपने आपको किसान समझता हो लेकिन फसल के अन्य कार्य जैसे निराई, गुड़ाई आदि महिलाएँ ही ढंग से करती हैं तभी फसल अच्छे से होती है। वर्चस्ववादी सत्ता के अंतर्गत आने वाली महिलाएँ खेती किसानी से जुड़ाव नहीं रख पाती हैं क्योंकि उनके यहाँ पुरुष सत्ता ज्यादा हद तक हावी होती है। कामकाजी महिलाएँ तथा मध्य और निम्न वर्गीय महिलाएँ कृषि कार्य में जी तोड़ मेहनत करती हुई दिखाई देती हैं क्योंकि उनके पास में जीवन–यापन का कोई अन्य स्रोत नहीं होता है।

निम्न तथा मध्यमवर्गीय ग्रामीण महिलाएँ खेती–किसानी के अलावा घर का सारा कामकाज और बच्चों और बुजुर्गों की सेवा–टहल का भार भी स्वयं संभालती हैं। हालाँकि कृषि में इतना योगदान देने के बाद भी महिलाओं को किसान नहीं समझा जा रहा है। आज किसान का अर्थ यह हो गया है कि जिसके नाम जमीन हो वही किसान है। इस स्थिति में महिलाओं को पुरुषों के पीछे कतार में खड़ा होना पड़ता है क्योंकि उनके नाम पर जमीन होती ही नहीं अथवा बहुत कम होती है। महिलाओं के नाम जमीन न होने के कारण उनको सरकारी योजनाओं का लाभ भी नहीं मिल पाता है। हालाँकि सरकार ने महिलाओं के नाम पर जमीन हो, इसके लिए प्रावधान भी किया है कि महिला जमीन अपने नाम से खरीदेगी तो उसको बैनामे की राशि पुरुषों की तुलना में काफी कम देनी होगी। इस प्रावधान के बाद से महिलाओं के नाम पर जमीनें खरीदी जाने लगी है।

भारतीय कृषि में महिलाओं के अनन्य योगदान के संबंध के बार में मैत्रेयी कृष्णराज अपनी पुस्तक 'भारतीय महिला किसान' में लिखती हैं कि– "परंपरागत रूप से महिलाओं ने हमेशा कृषि जगत में महती और विविध भूमिकाएँ निभाई हैं। चाहे वह किसान के रूप में हो या सह–किसान, पारिवारिक मजदूर, दिहाड़ी मजदूर या फिर प्रबंधक के तौर पर। यह नहीं बीजों का चुनाव, उनका रख–रखाव, भंडारण, विकास और बीजों का आदान–प्रदान हमेशा ही महिलाओं के हाथ में रहा है। महिलाएँ केवल फसल उगाने में ही नहीं बल्कि इससे संबन्धित दूसरे क्षेत्रों, मसलन बागवानी पशु–पालन और मछ्ली पालन में भी सक्रिय भूमिका निभाती रही हैं।"[2] भारत अपने उद्भव के साथ से ही कृषि प्रधान देश रहा है। तथा महिलाओं का कृषि में बहुआयामी भूमिकाओं का निर्वहन उनमें किसान की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है। विभिन्न कृषि कार्यों में जैसे कि निराई, गुड़ाई, रोपाई, पौधों का संरक्षण, सिचाई, भंडारण आदि कार्यों को महिलाएँ ही साधती हैं। मशरूम, मधुमक्खी पालन, पशु–पालन, मछ्ली पालन, मुर्गी पालन आदि में महिलाएँ अपना पूर्ण योगदान दे रहीं हैं।

भारत में विधवा महिलाओं की स्थिति किसी से छुपी नहीं है। विधवा महिला किसानों के संबंध में राजू शर्मा अपने उपन्यास 'हलफनामे' में पी. साईनाथ के द्वारा लिखित प्रतिवेदन के ऊपर अपनी प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं कि– "आत्महत्या विधवाएँ? यह एक नई सामाजिक किस्म पैदा की है हमारे देश ने, विधवाएँ जिनके किसान पतियों ने खुदकुशी कर ली। जिस तरह एकाएक उनकी दुनिया टूटती है, उसका अंदाजा हम तुम नहीं लगा सकते, कोई मर्द नहीं समझ सकता। आदमी का न रहना तो एक दुःख है, और पार फंदा चारो तरफ से कसता है। खाना, बच्चों की परवरिश, खेत की रखवाली एक तरफ, लेनदेन दरवाजे पर तकाजा करता

है, खेत से या आबरू से वह किसे बचाए या क्या बचाए?"[3] महिला किसान के लिए पुरुष किसान साथी का होना अतिआवश्यक है बहुत से ऐसे कृषि कार्य हैं जिसको महिला किसान नहीं कर सकती हैं। ऐसी स्थिति में जब अकेली होती हैं तो उनसे बड़ा बेसहारा इस दुनिया में कोई नहीं होता है।

'भारतीय कृषि व्यवस्था और श्रम संबंधित कार्यों में स्त्री ने अग्रणी भूमिका निभाई है। आधुनिक संदर्भों में प्रसिद्ध एवं महापंडित सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' कृत 'तोड़ती पत्थर' स्त्री संघर्ष एवं श्रम का ज्वलंत प्रमाण है। 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास में राजेश महिलाओं के श्रम, संघर्ष और कृषि में उनके योगदान का उल्लेख करते हुए अपने दोस्तों से कहता है कि– "खेती, किसानी में उनकी मेहनत और श्रम के बिना फसल होना संभव ही नहीं, फिर भी उनको कोई किसान महिला नहीं कहता है।"[4] किसान सिर्फ पुरुष नहीं हो सकता है किसान एक महिला भी होती है और किसान शब्द केवल पुरुषों के लिए नहीं है वह तो कृषि में काम करने वाले मनुष्यों को इंगित करने के लिए हैं, चाहे वह काम करने वाले स्त्री हों या पुरुष। इसी उपन्यास में अघोघ महिलाओं के लिए 'महिला किसान' शब्द पर चर्चा करते हुए कहता है कि– "आज तक उन तीनों ने किसान महिला शब्द किसी किताब में भी नहीं पढ़ा था। हाँ सरकारी आयोजनों और पुरुस्कारों को छोड़कर कभी किसान महिला शब्द देखा या सुना नहीं।"[5] वास्तव में 'किसान' शब्द सिर्फ पुरुष किसानों को इंगित करने का के लिए ही नहीं है उसके माध्यम से उन सबको इंगित किया जाता है जो खेती–किसानी का काम करते हैं।

किसान का जीवन अभावों से समझौते का जीवन रहा है। अमित कुमार सिंह अपनी पुस्तक 'भूमंडलीकरण और भारत : परिदृश्य और विकल्प' में कृषि की वर्तमान बदहाली एवं कृषि से पलायन कर रहे किसानों की समस्याओं के संदर्भ में लिखते हैं कि –"भारत में अक्सर यह चर्चा का विषय रहता है कि किस तरह से संसेक्स निरंतर बढ़ रहा है और देश में विदेशी मुद्रा के भंडार में अपार वृद्धि हो रही है। इस दौरान ग्रामीण भारत की विपत्ति और क्लेश की गंभीरता पर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। इस देश में लगभग 80 प्रतिशत लोग इसी क्षेत्र की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था पर आधारित हैं, परंतु उसके प्रति सरकारी उदासीनता प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।"[6] किसान भूमि के गर्भ से अन्न का उत्पादन करता है उसके बाद भी वह स्वयं भूखे–अधभूखे रह जाता है। जिस देश में शस्यश्यामल वसुधा अपना ओजमय अतुल वैभव लिए सूरज और चाँद की किरणों से अठखेलियाँ करती है, उसी देश के गाँवों की झोपड़ियों में दयनीय किसान दाने–दाने को मोहताज है। सब कुछ हर रोज महँगा होता जा रहा है तो क्यों किसान की फसल के मूल्य में वृद्धि नहीं हो रही है? क्यों वह मूल्य के लिए लड़ते हुए और कृषि से पलायन करते हुए दिखाई देता है?

कृषि से पलायन और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के जाल में फँसी युवा पीढ़ी जमीने बेचने के लिए तैयार हैं। इस भयानक परिस्थिति का वर्णन 'कालीचाट' में दिखाई यथार्थ रूप में किया गया है। उपन्यास में दिखाया गया है कि आज के युवा कंपनी मैनेजर अंबानाथ के पास बैठकर खेती बेचने के बारे में सोचने लगते हैं। मैनेजर के दिखावे से प्रभावित होकर वह अपने घरों में जमीन बेचने के लिए कहते हैं। लेखक उपन्यास पात्र सुरेश की मंशा को व्यक्त करते हुए कहता है कि –"सुरेश ने फिर से हिम्मत करके जमीन बेचने की बात उठाई तो रेशमी भड़क गई, जमीन बेचने की बात दुबारा मत करजे। जमीन बेचना तो पेलां म्हारे जहर दे दीजे।"[7] यहाँ रेशमी जो एक कृषक की पत्नी है और खेती योग्य भूमि की कीमत और उसके बिना अपने भविष्य को भी जानती है इसीलिए वह सुरेश को समझाती है, डांटती है, और जमीन न बेचने के अड़ी रहती है। जमीन का क्या महत्व है यह सिर्फ

बुजुर्ग अथवा महिलाएं जानती हैं किन्तु यह बात आज की युवा पीढ़ी की समझ के बाहर है इसलिए वह लालच में आकर जमीन को बेचने का फैसला कर लेते हैं।

किसानों की सबसे बड़ी समस्या होती है उनकी फसल की सुरक्षा की व्यवस्था का न होना। 'फाँस' उपन्यास में कपास की फसल करने वाले किसान आत्महत्या करते दिखाई दे रहे हैं प्रस्तुत उपन्यास में महिला किसान आशा फसल के बारिश में भीग जाने से आहत होकर सल्फास खाकर जीवन का अंत कर लेती है। उसका पति सुरेश कपास को लेकर मंडी जाता है जहाँ उसको फसल का उतना भी मूल्य नहीं मिलता है कि जितने में उसकी फसल की लागत ही वापस मिल जाए। घर आकर वह कपास को खुले आँगन में ही छोड़ देता है और रात में बारिश होने पर सारा कपास बरबाद हो जाता है। आशा सुरेश ने न जाने कितनी आशाएँ लगा रखीं थीं कपास से लेकिन वह भी दगा दे गया। आशा इस सदमें को बर्दाशत नहीं कर पाती और आत्महत्या कर लेती है –"सुबह–सुबह घर के निकली चीख ने अमला गाँव को जगा दिया। आँगन में करवट पड़ी थी आशा, मुँह से झाग। दोनों मुलगियाँ दोनों ओर से औंधी पड़ी थीं। उसकी लाश पर ! पाँव की ओर बैठा हिचकी ले–लेकर रो रहा था सुरेश।"[8] किसान कोई भी हो सकता है महिला अथवा पुरुष। आत्महत्या लिंग, जाति के साथ भेदभाव नहीं करती है। वह महिला अथवा पुरुष के लंबे समय की जद्दोजहद का परिणाम होती है। ऋण में डूबते जाना, समय पर फसल का उचित मूल्य न मिलना, फसल का बारिश में बरबाद हो जाना किसानों को आत्महत्या की ओर अग्रसर करते हैं।

'फाँस' उपन्यास में जब शुभा विजयेन्द्र से पूछती है कि क्या महिलाएं भी किसान होती हैं? तब विजयेन्द्र उसकी शंका दूर करते हुए कहता है कि– "अरे ! महिलाएँ क्या नहीं कर सकतीं हैं, बल्कि महिला किसान तो खेती के साथ बाकी जिम्मेदारियाँ भी संभालती–परिवार, रसोई, बच्चों की भी और मर्द की सारी जिम्मेदारियाँ भी। आज रसोई में क्या बनेगा से लेकर किस खेत में क्या बोना होगा, सब्जी में कौन सा मसाला पड़ेगा से लेकर किस फसल में कौन सी खाद पड़ेगी, बच्चे पैदा करने से लेकर संतानों तक के लिए सरे खर्च जुटाने तक।"[9] विजयेन्द्र एक सुलझा हुआ प्रगतिवादी युवा है जो महिलाओं के सम्मान और अस्तित्व की बात करता है। वह कहता है कि महिलाएँ भारतीय जनमानस में आधे की अधिकारी हैं और वो सब काम कर सकती हैं जो एक पुरुष करता है। इसलिए महिलाएँ किसान हैं या नहीं पर विचार करना व्यर्थ है क्योंकि महिलाएँ किसान हैं और वह खेती में अपनी फसल के लिए श्रम करती हैं और किसान वाली जिन्दगी को ही अपनाए हुए हैं। 'फाँस' उपन्यास की एक जागरूक बुजुर्ग महिला सिंधुताई का कृषि के प्रति स्नेह देखते बनता है। उनका मानना है जो पढ़ाई खेती–किसानी से दूर करे वह कोई पढ़ाई नहीं है। आगे वह कहती है कि– "मैं....? छुड़वा देती पढ़ाई। एकदम्म से। जो पढ़ाई, शेती से घृणा करना सिखाए, स्वार्थी बनाए, वैसी पढ़ाई को चूल्हे में न डालूँ।"[10] सिन्धुताई उस पढाई–लिखाई के खिलाफ हैं जो युवाओं को उनकी जड़ों से दूर करे। चमक–धाम और भौतिक सुख–सुविधाओं से सम्पन्न होने की होड़ इंसान अपनी कृषि संस्कृति से दूर होता चला जा रहा है।

आज किसान उपेक्षित और खुद को अनुपयोगी समझ रहा है, क्योंकि सरकारी नीतियाँ और प्राकृतिक आपदाओं से त्रस्त किसान अपना मूल कर्म अर्थात कृषि कार्य करना छोड़ रहा है। इस संदर्भ में जंसिता केरकट्टा अपने कविता संग्रह 'ईश्वर और बाजार' में किसान की महत्ता और आज के समाज का किसान के प्रति उपेक्षित रवैये को दर्शाते हुए अपनी कविता 'सड़क पर किसान' में प्रश्न करती हुई कहती हैं कि–"... कभी सोचा है तुमने

कहाँ से यह अनाज आता है
क्या यह देश सिर्फ धूप खाता है?
हर एक चीज का दाम वसूलने वालों,
तुम्हारी भूख की कीमत कौन चुकाता है?..."[11]

आज भारत में किसान की क्या उपयोगिता है, वह कौन है, उसकी स्थिति कैसी है, भारत के लिए उसके क्या मायने है आदि किसानी जीवन की उपयोगिता को जंसिता केरकट्टा की यह कविता सिद्ध कर देती है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि आधुनिक दौर में हिंदी साहित्य में महिला किसान अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ती दिखाई देती हैं। इक्कीसवीं सदी के दौर में 'महिला किसान' की स्थिति दिखाने में उपन्यासों की बड़ी भूमिका रही है। भारतीय कृषि संस्कृति में कृषि का चित्रण और कृषि कार्य महिलाओं के संघर्ष के बिना पूर्ण नहीं हो सकता है। 'फाँस' और 'कालीचाट' में दिखाया गया है कि नई पीढ़ी आज के दौर में खेती–किसानी से दूरी बनाती हुई दिखाई देती है। इसी कारण सिन्धु ताई कापी किताबों में आग लगाने की बात करती हैं। उनका मानना है कि पढाई वह उत्तम है जो कृषि से दूरी न बनवाये। वहीं 'कालीचाट' में रेशमी का धैर्य और साहस उसे अपनी कृषि योग्य भूमि बचाने दिखाई देता है किन्तु वह हार जाती है और नई पीढ़ी जमीन बेचकर जीत जाती। 'हलफनामे' में लेखक विधवा किसान महिलाओं की स्थिति को बहुत गहराई से व्यक्त करता है तो 'यह गाँव बिकाऊ है' में महिला किसानों के अस्तित्व की बात को उठाया गया है। दौर बदला है और इस के साथ –साथ सामान्य जीवन शैली भी प्रभावित हुई है जिसके कारण कहीं न कहीं कृषि पर संकट गहराया है और इस संकट में यदि महिला किसान को किसान न समझना तो यह स्थिति उनके अस्तित्व एवं कृषक अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह लगा देने के जैसे है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. आधुनिक हिंदी कविता में कृषि संस्कृति, डॉ. गायत्री सिंह पृष्ठ सं. 73, साहित्य निलय प्रकाशन, वर्ष 2006, कानपुर।
2. भारतीय महिला किसान, मैत्रयी कृष्णराज, पृष्ठ सं. 01, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, वर्ष 2012, दिल्ली।
3. हलफनामे, राजू शर्मा, पृष्ठ सं. 52, राधाकृष्ण प्रकाशन, वर्ष 2007, नई दिल्ली।
4. यह गाँव बिकाऊ है, एम. एम. चन्द्रा, पृष्ठ सं. 44, डायमंड बुक्स, नई दिल्ली।
5. यह गाँव बिकाऊ है, एम. एम. चन्द्रा, पृष्ठ सं. 44, डायमंड बुक्स, नई दिल्ली।
6. भूमंडलीकरण और भारत रू परिदृश्य और विकल्प, अमित कुमार सिंह, पृष्ठ सं. 66, सामायिक प्रकाशन, वर्ष 2010, नई दिल्ली।
7. कालीचाट, सुनील चतुर्वेदी, पृष्ठ सं. 118, अंतिका प्रकाशन, वर्ष 2015, गाजियाबाद।
8. फाँस, संजीव, पृष्ठ सं. 145, वाणी प्रकाशन, वर्ष 2015, नई दिल्ली।
9. फाँस, संजीव, पृष्ठ सं. 148, वाणी प्रकाशन, वर्ष 2015, नई दिल्ली।
10. फाँस, संजीव, पृष्ठ सं. 41, वाणी प्रकाशन, वर्ष 2015, नई दिल्ली।
11. ईश्वर और बाजार, जंसिता केरकट्टा, पृष्ठ सं. 108, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली।

ईमेल : gouravsingh@psgcas.ac.in, संपर्क 9489328112

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 61-70
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी के हिंदी साहित्यों में स्त्री शिक्षा का चित्रण

कनकलता सिंह
अध्येत्री, हिन्दी विभाग, बाबू जयशंकर गया प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुमेरपुर, उन्नाव,
सम्बद्ध छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उ०प्र०)
पावक अग्रवाल
वरिष्ठ शोध अध्येता, विद्यावारिधि, शिक्षा विभाग, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर (उ०प्र०)

सारांश :–

'21वीं सदी के हिंदी साहित्यों में स्त्री शिक्षा का चित्रण' स्त्री शिक्षा के बदलते स्वरूप और उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक प्रासंगिकता पर केंद्रित है। पारंपरिक रूप से स्त्री की पहचान केवल परिवारिक भूमिकाओं तक सीमित रही, किंतु आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा को स्वतंत्र अस्तित्व, आत्मनिर्भरता और सशक्तिकरण का प्रमुख आधार माना गया है। विभिन्न साहित्यकारों ने स्त्री शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन, समानता और न्याय की दिशा में प्रभावी माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया है।

21वीं सदी के हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा मात्र ज्ञानार्जन का साधन न होकर, आत्मनिर्णय क्षमता, संघर्षशीलता तथा स्त्री–अस्मिता के निर्माण की प्रक्रिया के रूप में चित्रित हुई है। उपन्यास, कहानियों, आत्मकथाओं एवं कविताओं के माध्यम से स्त्री शिक्षा से जुड़े संघर्षों, आकांक्षाओं और उपलब्धियों का जीवंत चित्रण किया गया है। शिक्षित महिला न केवल व्यक्तिगत स्तर पर सशक्त होती है बल्कि वह समाज, संस्कृति और राष्ट्र की उन्नति में भी सक्रिय भूमिका निभाती है।

साहित्य में स्त्री शिक्षा की प्रस्तुति समाज की वास्तविकता और उसके परिवर्तित दृष्टिकोण का दर्पण है। यद्यपि गरीबी, पितृसत्तात्मक मानसिकता और डिजिटल असमानता जैसी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं, तथापि शिक्षा ही वह माध्यम है जो स्त्रियों को आत्मसम्मान, समानता और प्रगतिशील चेतना से संपन्न करती है। हिंदी साहित्य स्त्री शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन और नारी सशक्तिकरण की केंद्रीय धुरी के रूप में स्थापित करता है।

बीज शब्द :– स्त्री शिक्षा, नारी सशक्तिकरण, हिंदी साहित्य, सामाजिक परिवर्तन, अस्मिता, समानता, आत्मनिर्भरता।

प्रस्तावना :–

सदियों से स्त्री इस पुरुष प्रधान समाज में बहन, पुत्री, पत्नी एवं माता के रूप में ही परिभाषित होती रही है। उसका व्यक्तित्व एवं स्वतंत्र अस्तित्व प्रायः पुरुष की छत्रछाया में विलीन हो गया, जिससे वह अपनी मौलिक पहचान स्थापित करने में असमर्थ रही। परिणामस्वरूप वह सामाजिक संरचना में उपेक्षित एवं पराधीन स्थिति में जीवन व्यतीत करने के लिए विवश रही है (पांडे, 2022)। स्त्रियों के साथ होने वाले भेदभाव के बीज समाज की

संरचना में इस प्रकार गहराई से समाहित हैं कि आज भी पुरुष प्रधान मानसिकता को परिवर्तित करना एक अत्यंत जटिल एवं दुरूह कार्य प्रतीत होता है।

उन्नीसवीं शताब्दी का हिंदी नवजागरण मात्र राष्ट्रवादी आंदोलन अथवा हिंदी भाषा के विकास का ही आंदोलन नहीं था, वरन् यह व्यापक रूप से स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार एवं प्रचलित कुरीतियों के उन्मूलन का भी एक सशक्त प्रयास था। भारतेंदु युग के साहित्यकारों ने अपने साहित्यिक विमर्श में इन समस्याओं को गंभीरतापूर्वक उठाया है (यदुवंशी, 2017)। इसके अतिरिक्त, बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक एवं इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों के हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा के प्रश्न को गंभीरता से विचार का विषय बनाया गया। इस दौर में साहित्य न केवल शोषण एवं अन्याय के विरुद्ध स्त्री संघर्ष का साक्ष्य प्रस्तुत करता है, बल्कि स्त्री अधिकार, स्वतंत्रता एवं अस्तित्व के उद्घोष का भी प्रतिनिधित्व करता है। यह प्रवृत्ति पारंपरिक सामाजिक बंधनों को तोड़ते हुए स्त्री के सशक्तिकरण, जागरूकता एवं परिवर्तनशील सामाजिक छवि को अभिव्यक्त करती है, साथ ही उसकी महत्वाकांक्षाओं एवं अधिकार चेतना को भी रेखांकित करती है। स्त्री शिक्षा साहित्य में एक प्रमुख विमर्श बनकर उभरती है, जो लैंगिक भूमिकाओं एवं समानता के प्रति समाज के दृष्टिकोण को प्रभावित करती है। साहित्यिक कृतियाँ इस प्रक्रिया में बाधाओं एवं अवसरों के दर्पण स्वरूप कार्य करती रही हैं (प्रोमिला, 2023)।

इक्कीसवीं शताब्दी में स्त्री शिक्षा सरकार एवं समाज दोनों के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्राथमिकता के रूप में उभरी है, क्योंकि शिक्षित महिलाएँ राष्ट्र की प्रगति एवं विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने की वास्तविक क्षमता शिक्षा के माध्यम से ही संभव है (जॉन, 2023)। इक्कीसवीं शताब्दी के हिंदी साहित्य में स्त्रियों की सामाजिक एवं शैक्षिक स्थिति के संदर्भ में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। अज्ञानता, परतंत्रता, रूढ़िवादिता तथा सामाजिक बंधनों से मुक्त होकर स्त्रियाँ आज अधिक सम्मानजनक जीवन जी रही हैं तथा उनके प्रति सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है (खींची, 2022)।

समाज का दर्पण कहे जाने वाले हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा से संबंधित विविध आयामों का विस्तृत चित्रण कथा–साहित्य, आत्मकथा, उपन्यास, नाटक एवं कविता के माध्यम से किया गया है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :–

किसी भी समाज का साहित्य उस समाज का दर्पण माना जाता है। इक्कीसवीं शताब्दी में शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं तथा विकास की नई संभावनाएँ प्रस्तुत हुई हैं। शिक्षा अब केवल ज्ञानार्जन का साधन भर नहीं रही, अपितु यह सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सशक्तिकरण का एक प्रमुख उपकरण बन चुकी है (सिंगर एवं गौतम, 2025)। इस संदर्भ में स्त्रियों की भूमिका एवं स्थिति पर विचार करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। यद्यपि अतीत की शताब्दियों में स्त्री शिक्षा को लेकर अनेक प्रकार के सामाजिक पूर्वाग्रह एवं अवरोध विद्यमान रहे हैं, तथापि इक्कीसवीं शताब्दी ने लैंगिक समानता एवं महिला सशक्तिकरण की दिशा में नवीन आयाम प्रस्तुत किए हैं।

इक्कीसवीं शताब्दी के हिंदी साहित्य ने स्त्री शिक्षा को एक केंद्रीय दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत किया है, क्योंकि मानव समाज में स्त्री शिक्षा का विशिष्ट महत्व है। कोई भी कार्य–सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक अथवा राजनीतिक–स्त्री की सक्रिय भागीदारी के बिना पूर्ण नहीं हो सकता (वर्मा, 2024)। आधुनिक स्त्री मात्र अस्तित्व

बनाए रखने पर ही विश्वास नहीं करती, बल्कि वह अपनी स्वतंत्र पहचान को भी अत्यधिक महत्व देती है। इसके लिए स्त्री का शिक्षित होना अत्यावश्यक है (लाम्बा, 2025)। वस्तुतः शिक्षा एवं रोजगार ही आर्थिक स्वावलंबन के मूल आधार हैं। आर्थिक रूप से संपन्न एवं स्वावलंबी होने हेतु स्त्रियों का शिक्षित एवं रोजगारयुक्त होना अनिवार्य है।

इसी कारण स्त्री शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। इसके माध्यम से स्त्री विरोधी शक्तियों से संघर्ष कर उन्हें चुनौती देने का साहस प्राप्त करती है। वह शास्त्रवाद, रूढ़िवादी परंपराओं, संस्कारों तथा यथास्थितिवादी प्रवृत्तियों का सीधे–सीधे प्रतिरोध करती है (कुमारी, 2022)। साहित्य में इन संघर्षों एवं आकांक्षाओं का चित्रण स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में समाज की चेतना एवं विचारधारा का आँकलन प्रस्तुत करता है।

इतिहास से लेकर वर्तमान तक दृष्टिपात किया जाए तो स्त्री शिक्षा की स्थिति प्रायः पिछड़ेपन, रूढ़ियों एवं सामाजिक बंधनों में उलझी रही है। इक्कीसवीं शताब्दी का साहित्य इस ऐतिहासिक यात्रा को आधुनिक संदर्भ प्रदान करता है। स्त्री शिक्षा पर केंद्रित कृतियों के अध्ययन से समाज की वास्तविक स्थिति का स्पष्ट आभास होता है। साथ ही, वर्तमान साहित्य भविष्य की स्त्री शिक्षा संबंधी दृष्टियों का भी विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जो सामाजिक एवं शैक्षिक नीतियों के लिए मार्गदर्शनकारी सिद्ध हो सकता है।

अतः स्त्री शिक्षा केवल व्यक्तिगत विकास का साधन नहीं है, बल्कि यह लैंगिक समानता, सामाजिक न्याय एवं मानवीय मूल्यों की सुदृढ़ नींव है। साहित्य समाज में जागरूकता फैलाने एवं सकारात्मक परिवर्तन लाने का एक सशक्त माध्यम है।

सम्बंधित साहित्य का सर्वेक्षण :–

- प्रोमिला (2023) ने अपने अध्ययन 'साहित्य में स्त्री शिक्षा : चित्रण, चुनौतियां और प्रगति' में निष्कर्ष निकाला कि साहित्य में स्त्री शिक्षा की खोज ने ऐसे आख्यानों का अनावरण किया है, जो कल्पना और यथार्थ के बीच जटिल अंतर्संबंध को प्रतिबिंबित करते हैं तथा लैंगिक भूमिकाओं एवं समानता के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को आकार प्रदान करते हैं। इस शोध में शिक्षा की परिवर्तनकारी शक्ति को भी रेखांकित किया गया है, जिसने स्त्री सशक्तिकरण, आत्म–अन्वेषण तथा मुक्ति के लिए प्रेरक का कार्य किया।
- कुमारी, प्रियंका (2017) ने '21वीं सदी में उभरते नारी सशक्तिकरण के बदलते स्वरूप' विषय पर किए गए अपने शोध में पाया कि वर्तमान समय में समाज परंपरा और आधुनिक भावबोध के संकीर्ण एवं विषम प्रयोग की एक प्रकार की व्याधि से प्रभावित है। इस व्याधि का प्रभाव नारीवाद के समर्थकों, विशेषतः स्त्री वर्ग एवं बौद्धिक वर्ग पर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इस स्थिति से मुक्ति का एकमात्र उपाय शिक्षा है, जो प्रबुद्ध एवं मानवीय समाज के निर्माण हेतु आवश्यक मूल्यों में रुचि उत्पन्न करती है।
- मकवाणा, स्मिता जे. (2021) ने 'साहित्य में स्त्री विमर्श' शीर्षक अध्ययन में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि स्त्री का व्यावसायिक एवं उपभोगात्मक प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है। मीडिया और बाजारीकरण पितृसत्तात्मक व्यवस्था का परिवर्तित रूप हैं, जिनका मूल उद्देश्य स्त्री का उपभोग मात्र है। इस यथार्थ को समझते हुए स्त्री को जागरूक एवं सशक्त बनना होगा। उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों से स्वयं को सुरक्षित रखने के लिए स्त्री विमर्श की चेतना सदैव अंतर्मन में जीवित रहनी चाहिए। तभी वह इस अभिशाप से मुक्ति प्राप्त कर सकेगी और नवीन

सामाजिक सरोकारों के माध्यम से स्वतंत्रता की प्राप्ति कर पाएगी।

- दुबे, प्रीति (2019) ने 'स्त्री हिंदी आत्मकथा–साहित्य : एक अनुशीलन (21वीं सदी के विशेष संदर्भ में)' विषयक शोध में स्त्री एवं अस्मिता की अवधारणा को परिभाषित करने के विभिन्न प्रयासों का विवेचन किया। मैत्रेयी पुष्पा, रमणिका गुप्ता, मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान तथा सुषमा बेदी जैसी लेखिकाओं की आत्मकथाओं में स्त्री अस्मिता एवं आत्मसम्मान के स्वर तीव्रता से मुखरित हुए हैं। उदाहरणार्थ, मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में उनकी आत्मनिर्भरता में स्त्री अस्मिता के दर्शन होते हैं, वहीं प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' स्त्री अस्मिता का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करती है। साथ ही, इन आत्मकथाओं में प्रयुक्त लोकोक्तियाँ न केवल साहित्यिक सौंदर्य को बढ़ाती हैं, बल्कि स्त्री–जीवन की गहन अभिव्यक्ति का माध्यम भी बनती हैं।
- यदुवंशी, इंदुबाला (2017) ने 'नवजागरण युगीन हिंदी साहित्य में स्त्री जीवन की अभिव्यक्ति' विषय पर अपने शोध में यह पाया कि नवजागरण काल वस्तुतः विचारों का संक्रमण काल था। इस दौर के साहित्य में स्त्री समस्याएँ प्रमुख रूप से सामने आईं। यद्यपि इसमें आधुनिक और परंपरागत विचार दोनों एक साथ उपस्थित रहे, तथापि अधिकांश साहित्यकार सुधारवादी स्वर में ही अपने विचार प्रस्तुत करते हैं, न कि क्रांतिकारी रूप में।
- कुकरेती, हेमंत (2020) ने 'स्त्री की पराधीनता का प्रतिरोध : चित्तकोबरा (मृदुला गर्ग)' नामक अध्ययन में निष्कर्ष निकाला कि उपन्यास की नायिका 'मनु' आत्मसम्मान के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता को केंद्रीय आधार मानती है। 'चित्तकोबरा' उपन्यास की भाषा जटिलता से मुक्त एवं विविध शैलीगत प्रयोगों से युक्त है। मृदुला गर्ग ने अपने आसपास की वास्तविक दुनिया एवं उसकी भाषा को साहित्यिक अभिव्यक्ति का आधार बनाया है। पूर्वदीप्ति, आत्मकथात्मक, प्रश्नात्मक, वर्णनात्मक एवं व्यंगात्मक शैलियों के प्रयोग से उन्होंने स्त्री जीवन को सामाजिक संदर्भों सहित व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास पितृसत्तात्मक रूढ़ियों एवं मानसिक जटिलताओं को उजागर करता है, जिनकी शिकार विशेष रूप से एशियाई समाज की स्त्रियाँ रही हैं। मृदुला गर्ग का यह उपन्यास इन समस्याओं को गहराई से पकड़ते हुए संभावित समाधानों की ओर भी संकेत करता है।

अध्ययन उद्देश्य :–

1. 21वीं सदी के हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा के स्वरूप एवं प्रस्तुति का विश्लेषण करना।
2. स्त्री शिक्षा से संयोजित सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पक्षों की पहचान करना।
3. आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा की चुनौतियों एवं संभावनाओं को अभिव्यक्त करना।
4. स्त्री शिक्षा से सम्बद्ध नारी विमर्श की धारणाओं एवं विचारधाराओं का विश्लेषण करना।

हिंदी साहित्य :–

हिंदी साहित्य अपने आप में अत्यंत व्यापक एवं समृद्ध परंपरा का परिचायक है। प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, अतः यह स्वाभाविक है कि जैसे–जैसे समाज की चित्तवृत्तियों में परिवर्तन होता है, वैसे–वैसे साहित्य का स्वरूप भी परिवर्तित होता चला जाता है। आदिकाल से लेकर वर्तमान तक की चित्तवृत्तियों की परंपरा का अनुशीलन करते हुए साहित्य के साथ उनके सामंजस्य का निरूपण ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। वस्तुतः जनता की चित्तवृत्तियाँ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों से गहराई से प्रभावित होती हैं, इसलिए साहित्य के इतिहास के विवेचन में इन परिस्थितियों का परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य के विश्लेषण में यह

ध्यान रखना आवश्यक है कि किसी विशेष समय में समाज की रुचियों का संचार और पोषण किस प्रकार तथा किन स्रोतों से हुआ (शुक्ल, 2017)।

हिंदी साहित्य की यात्रा में प्राचीन से लेकर आधुनिक समय तक अनेक रचनाकारों ने समाज, संस्कृति, राजनीति, धर्म, दर्शन, विज्ञान और जीवन के विविध आयामों का सशक्त चित्रण किया है (यदुवंशी, 2017)। हिंदी साहित्य की परंपरा को प्रायः भाषा–विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं गद्य–पद्य की रचनात्मक धारा के आधार पर समझा जाता है। पारंपरिक रूप से हिंदी साहित्य को चार प्रमुख कालों में विभाजित किया गया है–आदिकाल (वीरगाथा काल), पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल), उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) तथा आधुनिक काल।

हिंदी साहित्य के अंतर्गत विविध विधाओं का विकास हुआ है, जिनके माध्यम से समाज की संरचना, विचारधारा और संवेदनाओं का परिचय प्राप्त होता है। इनमें निबंध, कहानी, उपन्यास, जीवनी, यात्रा–वृत्तांत, कविता, छंद आदि प्रमुख विधाएँ सम्मिलित हैं। इन विधाओं के माध्यम से न केवल समाज के यथार्थ का दर्पण प्रस्तुत होता है, बल्कि मानव जीवन की जटिलताओं, संघर्षों और आकांक्षाओं की भी गहन अभिव्यक्ति होती है।

21वीं सदी के हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा का स्वरूप एवं प्रस्तुति :–

इक्कीसवीं शताब्दी के हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा को नारी विमर्श का एक महत्वपूर्ण आयाम माना गया है। इस संदर्भ में शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का मूल आधार स्वीकार किया गया है (वर्मा, 2024)। हिंदी साहित्य, जिसे समाज का दर्पण माना जाता है, स्त्री शिक्षा के स्वरूप एवं समकालीन परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करने का माध्यम बना है (प्रोमिला, 2023)। इक्कीसवीं शताब्दी के साहित्य में स्त्री शिक्षा मात्र पठन–पाठन तक सीमित न रहकर सशक्तिकरण, आत्मनिर्भरता, समानता और नारी अस्मिता के प्रतीक रूप में विकसित होती हुई परिलक्षित होती है (लाम्बा, 2025)।

इस साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक तथा अन्य विधाओं ने विशेष भूमिका निभाई है। मृदुला गर्ग, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, नीलम शंकर तथा सुभद्राकुमारी जैसी प्रमुख रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री के विविध रूपों, उनके संघर्षों एवं आकांक्षाओं को अभिव्यक्त किया है। इन कृतियों में शिक्षा के द्वारा स्त्री के आत्मनिर्णय, संघर्षशीलता, ज्ञान–पिपासा तथा बंधनों को तोड़ने की इच्छाशक्ति का सशक्त चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

अतः इक्कीसवीं शताब्दी का हिंदी साहित्य स्त्री शिक्षा को विकास की केंद्रीय कड़ी के रूप में प्रस्तुत करता है, जो न केवल व्यक्तिगत सशक्तिकरण बल्कि सामाजिक परिवर्तन और लैंगिक समानता की दिशा में भी मार्ग प्रशस्त करता है।

स्त्री शिक्षा से संयोजित सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पक्ष :–

स्त्री शिक्षा से संबंधित सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पक्षों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री शिक्षा समाज, अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति में परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम है। इन परिवर्तनों की गति कभी तीव्र तो कभी मंद रही है; कभी ये परिवर्तन अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं तो कभी अल्पप्रभावी। तथापि, शिक्षा का स्वरूप सदैव समाज की संरचना एवं उसकी दिशा को बदलने की क्षमता रखता है, क्योंकि शिक्षा परिवर्तन का मूल साधन है (रंजन, 2011)।

स्त्री शिक्षा के द्वारा महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति सजग एवं जागरूक होती हैं और राष्ट्र के समग्र

विकास में सक्रिय योगदान देती हैं। सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो स्त्री शिक्षा उन्हें अपनी क्षमताओं की पहचान कराने, अधिकारों को समझने, आत्मनिर्णय की क्षमता अर्जित करने तथा परिवार के लिए उचित निर्णय लेने में समर्थ बनाती है। परिणामस्वरूप समाज में सकारात्मक परिवर्तन परिलक्षित होते हैं।

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से स्त्री शिक्षा समाज की मानसिकता में परिवर्तन लाती है तथा रूढ़िवादी सोच को चुनौती प्रदान कर समानता को प्रोत्साहित करती है। यह लिंग–आधारित भेदभाव को कम करने का माध्यम बनती है। साथ ही, शिक्षित महिलाएँ सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण एवं उनके परिष्कार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं (सिंह, 2018)।

आर्थिक दृष्टि से स्त्री शिक्षा महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने, रोजगार के अवसर प्राप्त करने, आय वृद्धि करने तथा परिवार नियोजन संबंधी जागरूकता प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करती है। यही नहीं, स्त्री शिक्षा के माध्यम से नवाचार, डिजिटलीकरण और वैश्वीकरण को भी प्रोत्साहन मिलता है।

अतः हम निष्कर्ष में कह सकते हैं कि स्त्री शिक्षा सामाजिक सुधार, सांस्कृतिक उन्नयन तथा आर्थिक प्रगति की नींव है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा की चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ :–

आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा को केवल पठन–पाठन तक ही सीमित नहीं किया गया है, बल्कि इसे स्त्री के संघर्ष एवं संभावनाओं की यात्रा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान तथा अन्य लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में स्त्री की स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता और यौनिकता से जुड़े प्रश्नों को गंभीरता से उठाया है। समकालीन साहित्य स्त्री के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों को केंद्र में रखते हुए उसे समाज की मुख्यधारा में स्थापित करने का प्रयास करता है (सिंह, 2024)।

इसके साथ ही स्त्रियों को अनेक चुनौतियों का सामना भी करना पड़ता है। इन चुनौतियों में ग्रामीण–शहरी असमानता, पितृसत्तात्मक मानसिकता, विवाह एवं घरेलू उत्तरदायित्व, आर्थिक विषमताएँ, डिजिटल विभाजन, रूढ़िवादी दृष्टिकोण, सुरक्षा संबंधी संकट, कार्यस्थल पर उत्पीड़न, लैंगिक असमानता एवं यौन हिंसा जैसी समस्याएँ शामिल हैं (प्रोमिला, 2023)। आधुनिक हिंदी साहित्य में इन सभी मुद्दों को प्रमुखता के साथ स्थान दिया गया है।

इस संदर्भ में प्रभा खेतान, अनीता भारतीय, कृष्णा सोबती और मन्नू भंडारी जैसी लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में स्त्रियों की पीड़ा, संघर्ष एवं न्याय के लिए उनके प्रयासों को गहराई से प्रस्तुत किया है। इन रचनाओं में स्त्री जीवन की जटिलताओं को उजागर करने के साथ ही अनेक संभावनाओं की ओर भी संकेत मिलता है। आधुनिक स्त्रियाँ अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं और पितृसत्तात्मक व्यवस्था को प्रत्यक्ष चुनौती दे रही हैं (यदुवंशी, 2017)।

स्त्री शिक्षा आधुनिक हिंदी साहित्य में केवल पितृसत्तात्मक समाज की आलोचना तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसने स्त्रियों के अस्तित्व, आत्मनिर्भरता, संस्कृति, राजनीति और आर्थिक भूमिकाओं को भी व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। इसके अंतर्गत सशक्तिकरण, तकनीकी एवं डिजिटल शिक्षा, रोजगार, स्टार्टअप, उद्यमिता तथा नारीवादी लेखन को प्रोत्साहन जैसे विविध पहलुओं को महत्व दिया गया है। इस प्रकार आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा न केवल उनके संघर्षों को दर्शाती है, बल्कि उनके सपनों, आकांक्षाओं और उपलब्धियों को भी

रेखांकित करती है।

स्त्री शिक्षा से सम्बद्ध नारी विमर्श की धारणाओं एवं विचारधाराओं का विश्लेषण :-

विमर्श का अभिप्राय मूलतः विचार–विनिमय तथा विवेचन से है। आधुनिक साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री–विमर्श सर्वाधिक चर्चित विषय के रूप में उभरा है। सदियों से स्त्रियों पर होते आए शोषण एवं दमन के प्रति जागरूकता ने ही स्त्री–विमर्श को जन्म दिया (झोल, 2019)। वस्तुतः स्त्री–विमर्श एक साहित्यिक आंदोलन है, जो आत्मचेतना, आत्मसम्मान, आत्मगौरव, समानता एवं समानाधिकार की पहल का प्रतीक है। हिंदी साहित्य में स्त्री–विमर्श की प्रारंभिक धारा छायावाद काल से विकसित मानी जाती है (लाल, 2014)।

स्त्री–विमर्श परंपरागत रूढ़ियों एवं मान्यताओं के प्रति असंतोष का स्वर होने के साथ–साथ उससे मुक्ति की आकांक्षा भी है। यह जाति, धर्म, वर्ग, वंश, प्रांत अथवा राष्ट्र की सीमाओं से ऊपर उठकर स्त्रियों के जीवनानुभवों और उनके अधिकारों की अभिव्यक्ति करता है। इसके माध्यम से स्त्रियाँ अपने ऊपर हो रहे अन्याय, अत्याचार, भेदभाव, शोषण एवं उपेक्षा का विरोध करती हैं (सिंह, 2024)।

विभिन्न विचारधाराओं के अनुसार नारी की स्थिति और उसकी शिक्षा के स्वरूप की भिन्न–भिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई हैं। उदारवादी नारीवाद के अनुसार स्त्रियों को पुरुषों के समान शिक्षा एवं अवसर प्राप्त होने चाहिए और हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा का रूप इसी विचारधारा से प्रभावित है। मार्क्सवादी नारीवाद वर्ग–संघर्ष की पृष्ठभूमि में स्त्रियों की शिक्षा संबंधी समस्याओं को रेखांकित करता है। अस्तित्ववादी नारीवाद स्त्री को शिक्षा प्राप्त करने, स्वयं निर्णय लेने और स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में चित्रित करता है। वहीं आधुनिक नारीवाद के अंतर्गत आदिवासी, दलित, ग्रामीण एवं शहरी स्त्रियों की शिक्षा को भिन्न दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।

इन सभी दृष्टिकोणों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य, स्त्री–विमर्श और विभिन्न नारीवादी विचारधाराएँ इस बात से सहमत हैं कि स्त्री शिक्षा के बिना स्त्री–सशक्तिकरण संभव नहीं है। शिक्षा को ही नारी सशक्तिकरण, आत्मसम्मान तथा सामाजिक परिवर्तन का प्रभावशाली साधन माना गया है। आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा के माध्यम से स्त्रियाँ आज प्रत्येक क्षेत्र में अग्रसर हो रही हैं और नई संभावनाओं के द्वार खोल रही हैं।

निष्कर्ष :-

21वीं सदी के हिंदी साहित्य में स्त्री शिक्षा का चित्रण एक ऐसा विमर्श है, जो न केवल साहित्य को समृद्ध करता है, बल्कि समाज को भी नई दिशा प्रदान करता है। शिक्षा को महिला सशक्तिकरण का प्रमुख साधन माना गया है, क्योंकि शिक्षा के अभाव में सशक्तिकरण की परिकल्पना संभव नहीं है। समकालीन हिंदी साहित्य स्त्री शिक्षा को मात्र ज्ञानार्जन का उपकरण न मानकर, उसे सशक्तिकरण, आत्मनिर्भरता, स्वतंत्रता, समानता, सांस्कृतिक पुनर्निर्माण और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम के रूप में प्रस्तुत करता है।

शिक्षा स्त्री को स्वतंत्र चिंतन, आत्मसम्मान एवं निर्णय–क्षमता से संपन्न बनाती है। 21वीं सदी की कहानियों, उपन्यासों, कविताओं तथा अन्य साहित्यिक विधाओं में शिक्षित स्त्री का एक नवीन स्वरूप परिलक्षित होता है, जो पारंपरिक छवि से भिन्न और अधिक सशक्त है। तथापि, स्त्री शिक्षा के मार्ग में गरीबी, सामाजिक असमानता, पितृसत्तात्मक मानसिकता, डिजिटलीकरण की असमान पहुँच जैसी चुनौतियाँ आज भी विद्यमान हैं। इन चुनौतियों से जूझने के लिए शिक्षा को नारी विमर्श का सर्वाधिक प्रभावी और सशक्त शस्त्र माना गया है। शिक्षा

ही वह माध्यम है, जो प्रबुद्ध और मानवीय समाज की रचना के लिए आवश्यक मूल्यों में रुचि उत्पन्न करती है। अतः यह कहा जा सकता है कि 21वीं सदी का हिंदी साहित्य स्त्री शिक्षा को केवल सीमित दायरे में नहीं देखता, बल्कि इसे स्त्री के संघर्ष और उसकी संभावनाओं की यात्रा के रूप में रूपांतरित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कुमार, एस० (2021). हिन्दी नवजागरण और स्त्री. जनकृति. 6(71–72), 140–145. https://jankriti.com/wp-content/uploads/2021/06/Jankriti-Issue-72-73.pdf
2. कुमारी, डॉ० आई० (2022) समकालीन हिंदी–कविता में स्त्री. अपनी माटी, 45, 1–3. https://www.apnimaati.com/2022/12/blog-post_29.html
3. कुमारी, पी० (2022). 21वीं सदी में उभरते नारी सशक्तिकरण के बदलते स्वरूप. शोध समागम, 05(01), 53–57. https://shodhsamagam.com/uploads/issues_tbl/21st%20Sadi%20Mai%20Ubharte%20Nari%20Sashaktikaran%20Ke%20Badalte%20Swaroop.pdf
4. खींची, एस० (2022). भारत में महिला शिक्षा की वर्तमान स्थिति. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन, मॉडर्न मैनेजमेंट, एप्लाइड साइंस एंड सोशल साइंस, 4(1), 175–180. https://www.inspirajournals.com/uploads/Issues/3618093.pdf
5. गुप्ता, आर० (2023). समकालीन साहित्य में नारी विमर्श. संगम, ii(iv), 141–150. https://ginajournal.com/samkalin-sahitya-me-nari-vimarsh/
6. घोष, डॉ० बी०, बैराग्या, डॉ० एस० एवं मेटे, प्रो० जे० (2021). वूमेन एजुकेशन एंड एम्पावरमेंट इंडियन पर्सपेक्टिव. आईएनएससी इंटरनेशनल पब्लिशर्स, कर्नाटक आइएसबीएनः 978–1–956102–954. https://www.researchgate.net/publication/378241749_WOMEN_EDUCATION_AND_EMPOWERMENT_INDIAN_PERSPECTIVE
7. जॉन, एन० (2023). द रोल ऑफ गवर्नमेंट पॉलिसीज़ इन एडवासिंग विमेंस एजुकेशन एंड एम्पावरमेंट इन इंडिया. इग्नाइटेड माइंड जर्नल, 20(1), 283–286.
8. पांडे, डॉ० पी०. (2022). इक्कीसवीं सदी की स्त्री कलम : विमर्श के नवीनतम आयाम. राजस्थली जर्नल. 1(3), 165–167. https://www.rajasthali.marudharacollege.ac.in/papers/Volume-1/Issue-3/03-32.pdf
9. प्रोमिला. (2023). साहित्य में स्त्री शिक्षाः चित्रण, चुनौतियाँ और प्रगति. इन्नोवेटिव रिसर्च थॉट्स, 9(5), 102–106. https://irt.shodhsagar.com/index.php/j/article/view/672
10. बृन्दादेवी, डॉ० सी०, मर्सी, एम० ए० एवं कलईवानी, एम० आर० (2025). द एक्सिस्टेंशियल जर्नी ऑफ वुमेन इन द 21st सेंचुरी : फ्रीडम, आइडेंटिटी एंड एम्पावरमेंट. वुमेन इन इंडियन फिलॉसफी हिस्टॉरिकल एंड कंटेम्परेरी पर्सपेक्टिव्स (प्रथम संस्करण), सीआईआईटी पब्लिकेशन, तमिलनाडु. https://www.researchgate.net/publication/393056894_The_Existential_Journey_of_Women_in_the_21st_Century-_Freedom_Identity_and_Empowerment.
11. बौद्ध, पी० एवं पोपली, डॉ० एम० (2023) महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक सहभागिता में उच्च शिक्षा का योगदान : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस रिसर्च इन मल्टिडिसिप्लिनरी,

1(1), 759–763. https://multiresearchjournal.theviews.in/uploads/articles/2-4-13.1.pdf
12. मिश्र, डॉ० ए० (2022). हिंदी साहित्य में महिला (स्त्री) आत्मकथा लेखन. साहित्य कुंज, 22(282). https://sahityakunj.net//entries/view/hindi-sahity-mein-mahila-stri-aatmkatha-lekhan
13. मेनन, डॉ० एम० (2018). सुभद्रा कुमारी चौहान के साहित्य में नारीवादी आख्यान. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स, 6(2), 654–657. https://ijcrt.org/papers/IJCRT1134862.pdf
14. यदुवंशी, ई० (2017). नवजागरण युगीन हिन्दी साहित्य में स्त्री जीवन की अभिव्यक्ति. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक रिसर्च इन साइंस एंड टेक्नोलॉजी. 3(8). 2051–2065. https://ijsrst.com/paper/8456.pdf
15. रंजन, पी० (2011). सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा और स्त्री शिक्षा की भूमिका. जर्नल ऑफ एडवांसेज़ एंड स्कॉलरली रिसर्चेज़ इन एलाइड एजुकेशन, ii(ii), 1-5. https://ignited.in/index.php/jasrae/article/download/15226/30105/74762
16. लाल, जे० (2014). हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसेज़ इन सोशल साइंसेज़, 2(1), 12–14. https://ijassonline.in/HTMLPaper.aspx?Journal=International%20Journal% 20of%20Advances%20in%20Social%20Sciences;PID=2014-2-1-3
17. लाम्बा, आर० (2025). जी–२० और मृदुला गर्ग के उपन्यासों में नारी सशक्तिकरण. शिक्षण संशोधन, 8(6), 20–25. https://shikshansanshodhan.researchculturesociety.org/wp-content/uploads/SS202506004-min.pdf
18. वर्मा, डॉ० आर०. (2024). वीमेन एम्पावरमेंट इन 21st सेंचुरी. द सोशल साइंस रिव्यु v मल्टीडिस्सीप्लीनरी जर्नल, 2(6), 1–3. https://tssreview.in/wp-content/uploads/2024/11/1.pdf
19. वूल्स्टनक्राफ्ट, एम० (1792). ए विन्डिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमन. थॉमस एंड एंड्र्यूज़ पब्लिशर. बॉस्टन।
20. शर्मा, डॉ० एच० (2012). हिंदी साहित्य में नारी चेतना. जर्नल ऑफ एडवांसेज़ एंड स्कॉलरली रिसर्चेज़ इन एलाइड एजुकेशन, iii(v), 1-5. https://ignited.in/index.php/jasrae/article/download/4212/8220/20545
21. शुक्ल, ए०आर० (2020). हिंदी साहित्य का इतिहास. प्रभात पब्लिकेशन. नई दिल्ली. आइएसबीएनः 9789351867623
22. साकेत, एम० (2018). स्त्री जीवन की त्रासदी और मृदुला गर्ग के उपन्यासों का अध्ययन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 3(5), 68–73. https://multistudiesjournal.com/assets/archives/2018/vol3issue5/3-5-40-984.pdf
23. सिंह, डॉ० आर० एस० (2023). महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन. जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस, 23(4), 89–93. https://www.iosrjournals.org/iosr-jhss/papers/Vol.%2023%20Issue4/Version-1/M2304018993.pdf
24. सिंह, ए० (2024). स्त्री सन्दर्भ : अवधारणा एवं आलोचना के आयाम. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज

सोशल साइंस एंड मैनेजमेंट, 4(5), 213–215. https://ijhssm.org/issue_dcp/Dimensions%20of%20women%20s%20discourse%20concept%20and%20criticism.pdf

25. सिन्हा, डॉ० सी० (2021). श्रृंखला की कड़ियाँ में निहित स्त्री–चेतना. जनकृति. 6(71–72), 259–269. https://jankriti.com/wp-content/uploads/2021/06/Jankriti-Issue-72-73.pdf

26. सिंधु, डॉ० एल०. (2022). विमेंस एम्पावरमेंट इन 21st सेंचुरी इन इंडिया : सम इशूज एंड चैलेंजेस. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ नोवेल रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 7(3), 104–114. https://www.ijnrd.org/papers/IJNRD2203011.pdf

27. सीमा (2019). मृदुला गर्ग के उपन्यास चितकोबरा व कठगुलाब में नारी विमर्श. जर्नल ऑफ एडवांसेज़ एंड स्कॉलरली रिसर्चेज़ इन एलाइड एजुकेशन. 16(1). 559–561. https://ignited.in/index.php/jasrae/article/download/9549/18901/47217

28. सेंगर, आर० एवं सिंह, डॉ० जे० (2025). गौतम 21वीं सदी में उच्च शिक्षा, समानता और सशक्तिकरण पर नारीवादी दृष्टिकोण. आइडियलिस्टिक जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन प्रोग्रेसिव स्पेक्ट्रम्स, 4(5), 171–177. https://journal.ijarps.org/index.php/IJARPS/article/view/830

29. सौरभ, एस० (2016). इक्कीसवीं सदी और हिन्दी साहित्य में नारी लेखन. अपनी माटी, 2(23). 12–14. https://ijassonline.in/HTMLPaper.aspx?Journal=International%20Journal%20of%20Advances%20in%20Social%20Sciences;PID=2014-2-1-3

E-Mail: rathourkanak9919@gmail.com
E-Mail: pawak_phd21_edu@csjmu.ac.in
DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.16968115

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 71-77
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी में किसान और मजदूर विमर्श

डॉ. सुमित्रा देवी
हिन्दी विभाग, विभागाध्यक्ष।

सार :–

भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था की नींव किसान और मजदूर वर्ग पर टिकी हुई है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक यह वर्ग न केवल उत्पादन का आधार रहा है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की धुरी भी बना हुआ है। 21वीं सदी में जब विज्ञान, तकनीक, वैश्वीकरण और औद्योगिकीकरण ने दुनिया को नई दिशा दी है, तब किसान और मजदूरों की भूमिका और भी जटिल एवं चुनौतीपूर्ण हो गई है। यही कारण है कि इस युग में "किसान और मजदूर विमर्श" विशेष महत्व का विषय बन गया है।किसान की स्थिति पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि भूमि का लगातार खंडन, कृषि की बढ़ती लागत, प्राकृतिक आपदाएँ, जलवायु परिवर्तन और उचित मूल्य के अभाव ने उसकी स्थिति को अस्थिर बना दिया है। किसान को खाद्य आपूर्ति का केंद्र और अन्नदाता माना जाता है, परंतु विडंबना यह है कि वही किसान भूख, गरीबी और कर्ज के बोझ से दबा हुआ है। आत्महत्या जैसे त्रासद घटनाक्रम इस संकट की गम्भीरता को रेखांकित करते हैं।दूसरी ओर, मजदूर वर्गकृचाहे खेतिहर हो या औद्योगिककृदेश की उत्पादन प्रक्रिया में अनिवार्य भूमिका निभाता है। निर्माण कार्य, उद्योग, खदानें और खेत सब मजदूरों की मेहनत पर निर्भर हैं। फिर भी उन्हें न्यूनतम मजदूरी, श्रमिक अधिकार, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी मूलभूत सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है। प्रवासी मजदूरों का संकट, विशेषकर कोविड–19 महामारी के समय, उनकी दयनीय स्थिति का स्पष्ट उदाहरण है।

21वीं सदी में किसान और मजदूर विमर्श केवल उनकी आर्थिक चुनौतियों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, समानता और लोकतांत्रिक मूल्यों से भी जुड़ा हुआ है। साहित्य, आंदोलनों और नीतियों के स्तर पर इन वर्गों की समस्याएँ लगातार सामने लाई गई हैं। प्रेमचंद के साहित्य से लेकर समकालीन लेखकों तक, किसान और मजदूर की पीड़ा और संघर्ष विमर्श का केंद्र बने हुए हैं। आधुनिक दौर में यह विमर्श और भी प्रासंगिक हो गया है क्योंकि डिजिटल क्रांति, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), कॉर्पोरेट खेती और वैश्वीकरण जैसे कारक इनके जीवन पर गहरा असर डाल रहे हैं।सरकार ने किसानों और मजदूरों की स्थिति सुधारने हेतु कई योजनाएँ चलाई हैं, जैसे प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, फसल बीमा योजना, श्रम योगी मानधन योजना, न्यूनतम मजदूरी कानून आदि। लेकिन जमीनी स्तर पर इन योजनाओं का लाभ सभी तक समान रूप से नहीं पहुँच पा रहा। इससे यह स्पष्ट होता है कि नीतियों और उनके क्रियान्वयन के बीच गहरी खाई मौजूद है।

अतः "21वीं सदी में किसान और मजदूर विमर्श" हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि विकास का

वास्तविक अर्थ केवल औद्योगिक वृद्धि या तकनीकी तरक्की नहीं है, बल्कि समाज के सबसे निचले तबके तक समान अवसर और सम्मान पहुँचना है। जब किसान और मजदूर वर्ग को सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक स्थिरता और सम्मानजनक जीवन मिलेगा, तभी भारत का भविष्य सशक्त और आत्मनिर्भर बन पाएगा।

प्रस्तावना :–

भारत की सभ्यता और संस्कृति का आधार गाँव, किसान और मजदूर रहे हैं। कृषि केवल अर्थव्यवस्था की रीढ़ नहीं, बल्कि यह भारतीय जीवन–दर्शन, परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों की धुरी है। वहीं मजदूर वर्ग, चाहे वह खेतों में काम करने वाला कृषि मजदूर हो या औद्योगिक उत्पादन से जुड़ा श्रमिक, राष्ट्र के निर्माण और विकास का मूल आधार रहा है। 21वीं सदी में जब वैश्वीकरण, उदारीकरण और तकनीकी क्रांति ने पूरे विश्व को नई दिशा दी, तब किसान और मजदूर विमर्श भी नए रूप में उभरा। आज यह विमर्श केवल आर्थिक या सामाजिक प्रश्न नहीं रह गया है, बल्कि यह अस्तित्व, अस्मिता, अधिकार और न्याय का प्रश्न बन गया है। "सिपाही को अपनी लाल पगड़ी पर, सुन्दरी को अपने गहनों पर और वैद्य को अपने सामने बैठे रोगियों पर जो घमंड होता है, वही किसान को अपने खेतों को लहराते हुए देखकर होता है।"

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :–

भारतीय समाज में किसान और मजदूर विमर्श कोई नया विषय नहीं है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान किसान आंदोलनों (चंपारण सत्याग्रह, किसान सभा आंदोलन) ने ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दी।

मजदूर संगठनों ने भी मजदूरी, श्रम अधिकार और शोषण के विरुद्ध संघर्ष किया।

संविधान ने किसानों और मजदूरों के लिए सामाजिक–आर्थिक न्याय का वचन दिया, परंतु वास्तविकता में वे लगातार असमानताओं और शोषण का शिकार बने रहे।

20वीं सदी तक यह विमर्श ज्यादातर भूमि सुधार, जमींदारी उन्मूलन, मजदूरी और श्रम कानूनों के इर्द–गिर्द था। किंतु 21वीं सदी में इसमें नए आयाम जुड़े वैश्विक बाजार, कृषि संकट, श्रमिकों का विस्थापन और तकनीकी बेरोजगारी।

21वीं सदी में किसान विमर्श :

खेत–खलिहान रो रहे हैं,
भूख से मजदूर तड़प रहे हैं। कब तक यूँ ही सहते रहेंगे,
किसान आंसू पूछ रहे हैं।

1. **कृषि संकट और आत्महत्याएँ :**

21वीं सदी के पहले दो दशकों में भारत में सबसे अधिक चर्चित विमर्श किसानों की आत्महत्याओं का रहा।

- ऋणग्रस्तता,
- बढ़ती लागत,
- न्यूनतम समर्थन मूल्य की कमी,
- प्राकृतिक आपदाएँ,
- और खेती की अलाभकारी स्थितिकृइन सबने किसानों को आत्महत्या की ओर धकेला। किसान विमर्श अब

केवल अन्नदाता की गरिमा का प्रश्न नहीं रहा, बल्कि यह जीविका संकट का गंभीर विषय बन गया।

2. हरित क्रांति से नई चुनौतियाँ :

हरित क्रांति ने 20वीं सदी के उत्तरार्ध में उत्पादन बढ़ाया, लेकिन इसके दुष्परिणाम 21वीं सदी में सामने आए :—

- मिट्टी की उर्वरता घट गई,
- भूमिगत जलस्तर नीचे गया,
- कीटनाशकों और रासायनिक खादों पर निर्भरता बढ़ी,
- और छोटे किसान हाशिए पर चले गए।

3. उदारीकरण और वैश्वीकरण का प्रभाव :

1991 के बाद के उदारीकरण ने कृषि क्षेत्र को भी प्रभावित किया।

- बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बीज और खाद बाजार पर कब्जा,
- अनुबंध खेती (ब्वदजतंबज थ्ंतउपदह) का उदय,
- कृषि उत्पादों के अंतरराष्ट्रीय दामों का असर—इन सबने किसान विमर्श को वैश्विक संदर्भ से जोड़ा।

4. किसान आंदोलन :

- 21वीं सदी में किसान आंदोलन नए रूप में सामने आए।
- 2017—18 में विभिन्न राज्यों में किसानों के बड़े आंदोलन,
- 2020—21 का ऐतिहासिक किसान आंदोलन, जिसने तीन कृषि कानूनों के विरोध में दिल्ली की सीमाओं पर एकजुटता दिखाई। इन आंदोलनों ने दिखाया कि किसान विमर्श अब केवल गाँव तक सीमित नहीं है, बल्कि यह राष्ट्रीय और वैश्विक राजनीति का हिस्सा बन चुका है।

21वीं सदी में मजदूर विमर्श :

असंगठित क्षेत्र का संकट :

भारत में लगभग 90 प्रतिशत मजदूर असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं।

- कोई स्थायी रोजगार नहीं,
- श्रम कानूनों का पालन नहीं,
- न्यूनतम वेतन की गारंटी नहीं,
- सामाजिक सुरक्षा योजनाओं से वंचित।

21वीं सदी में मजदूर विमर्श का सबसे बड़ा पहलू असंगठित मजदूरों के अधिकार और सुरक्षा का है।

प्रवासी मजदूरों की स्थिति :

- कोविड—19 महामारी के दौरान प्रवासी मजदूरों का संकट पूरे देश ने देखा।
- लाखों मजदूर अपने गाँव लौटने को मजबूर हुए।
- परिवहन, भोजन और रोजगार का अभाव उनके जीवन की त्रासदी को उजागर कर गया।
- प्रवासी मजदूर विमर्श ने यह प्रश्न खड़ा किया कि भारत का विकास मॉडल मजदूरों के श्रम पर टिका है, परंतु उनकी सुरक्षा और सम्मान क्यों नहीं सुनिश्चित किया गया?

तकनीकी बदलाव और श्रम संकट :

ऑटोमेशन, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डिजिटल क्रांति ने श्रम बाजार को बदल दिया।

- कई पारंपरिक रोजगार खत्म हो रहे हैं।
- मजदूरों को नई तकनीकी कौशल की आवश्यकता है।
- 'गिग इकोनॉमी' (जैसेदृ उबर, जोमैटो) ने अस्थायी और असुरक्षित रोजगार बढ़ाए हैं।

मजदूर संगठन और नए विमर्श :

21वीं सदी के मजदूर विमर्श में यूनियनों की भूमिका कमजोर हुई है।

लेकिन सामाजिक सुरक्षा, न्यूनतम मजदूरी, सम्मानजनक कामकाज और स्वास्थ्य सुविधा की मांगें आज भी प्रासंगिक हैं।

किसान और मजदूर विमर्श का अंतर्संबंध :

किसान और मजदूर विमर्श को अलग–अलग नहीं देखा जा सकता। किसान भी मजदूर बन रहे हैं, जब उनकी जमीन छोटी और अलाभकारी हो जाती है।

- ग्रामीण इलाकों से मजदूर शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं।
- खेतिहर मजदूरों की स्थिति और भी दयनीय है, क्योंकि वे न तो किसान कहलाते हैं और न ही उन्हें संगठित श्रमिकों जैसी सुविधाएँ मिलती हैं।

इस प्रकार किसान और मजदूर विमर्श आज आर्थिक असमानता, सामाजिक न्याय और मानवाधिकार के व्यापक संदर्भ से जुड़ता है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विमर्श :

21वीं सदी में यह विमर्श केवल भारत तक सीमित नहीं है।

अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका में किसान भूमि अधिकार और जलवायु संकट से जूझ रहे हैं। मजदूर वर्ग बहुराष्ट्रीय कंपनियों के शोषण, प्रवास और असुरक्षा से प्रभावित है। जलवायु परिवर्तन ने किसानों की आजीविका पर बड़ा संकट डाला है।

सामाजिक और राजनीतिक विमर्श :

किसान और मजदूर विमर्श आज राजनीतिक पार्टियों के घोषणापत्र का हिस्सा है।

- किसान कर्जमाफी,
- न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP),
- न्यूनतम मजदूरी कानून,
- मनरेगा जैसी योजनाएँ– ये सब विमर्श की परिणति हैं।

लेकिन वास्तविकता यह है कि नीति निर्माण में अब भी किसानों और मजदूरों की आवाज को बराबर महत्व नहीं मिलता।

साहित्य और विमर्श :

हिंदी साहित्य और लोकसाहित्य में भी 21वीं सदी का किसान और मजदूर विमर्श स्पष्ट दिखाई देता है।

कविताओं, कहानियों और उपन्यासों में किसान–मजदूर की पीड़ा, संघर्ष और स्वप्न चित्रित किए जा रहे

हैं।

यह विमर्श केवल अर्थव्यवस्था तक सीमित नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता का हिस्सा भी बन चुका है।

चुनौतियाँ और संभावनाएँ :

चुनौतियाँ :

1. बढ़ती बेरोजगारी और पलायन।
2. कृषि का अलाभकारी होना।
3. तकनीकी असमानता।
4. जलवायु परिवर्तन।
5. असंगठित श्रम का शोषण।

संभावनाएँ :

1. सहकारी खेती और सामूहिक श्रम।
2. डिजिटल तकनीक के माध्यम से बाजार तक पहुँच।
3. सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का विस्तार।
4. शिक्षा और कौशल विकास।
5. किसान–मजदूर एकजुटता से सामाजिक परिवर्तन।

समाधान और भविष्य की दिशा :

(क) किसानों के लिए :

- फसल का उचित मूल्य सुनिश्चित करना।
- छोटे किसानों के लिए विशेष सहायता योजनाएँ।
- जल संरक्षण, जैविक खेती और आधुनिक तकनीक का न्यायपूर्ण उपयोग।
- कृषि शिक्षा और प्रशिक्षण को प्रोत्साहित करना।

(ख) मजदूरों के लिए :

- न्यूनतम मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा का प्रभावी कार्यान्वयन।
- असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को बीमा, पेंशन और स्वास्थ्य सुविधाएँ।
- प्रवासी मजदूरों के लिए रोजगार और आवास की गारंटी।
- तकनीक के साथ श्रम का संतुलन बनाए रखना।

(ग) साझा समाधान :

- किसान और मजदूर संगठन को मजबूत करना।
- शिक्षा और कौशल विकास कार्यक्रम।
- सरकार, उद्योग और समाज के बीच सहयोग की भावना।

किसान और मजदूर विमर्श की आवश्यकता :

21वीं सदी का विमर्श केवल समस्याओं पर चर्चा भर नहीं, बल्कि समाधान खोजने की दिशा में सार्थक कदम उठाना है। किसान और मजदूरों की स्थिति पर विमर्श इसलिए आवश्यक है क्योंकि –

ये वर्ग समाज और अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं।

इनकी स्थिति बेहतर किए बिना 'विकास' अधूरा है।

असमानता और शोषण को समाप्त करना लोकतांत्रिक व्यवस्था की जिम्मेदारी है।

21वीं सदी में विमर्श का नया आयाम :

आज वैश्वीकरण के कारण एक ओर अवसर बढ़े हैं तो दूसरी ओर प्रतिस्पर्धा और असमानता भी। डिजिटल क्रांति, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और रोबोटिक्स जैसी तकनीकें जहाँ उद्योगों को आगे बढ़ा रही हैं, वहीं मजदूरों की नौकरियों पर खतरा भी पैदा कर रही हैं। इसी प्रकार, कृषि में भी नई तकनीक और कॉर्पोरेट खेती किसानों के लिए चुनौती बन रही है। अतः विमर्श केवल पारंपरिक समस्याओं तक सीमित न रहकर भविष्य की चुनौतियों और समाधानों पर भी केंद्रित होना चाहिए।

सरकार की पहल :

- सरकार ने किसानों और मजदूरों की स्थिति सुधारने के लिए कई योजनाएँ लागू की हैं :
- किसानों के लिए प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, फसल बीमा योजना, MSP, जैविक खेती को बढ़ावा, और ई–नाम पोर्टल जैसी पहलें।
- मजदूरों के लिए श्रम कानूनों में सुधार, सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ, आयुष्मान भारत योजना, और कौशल विकास कार्यक्रम।
- फिर भी जमीनी स्तर पर इन योजनाओं का लाभ सभी तक नहीं पहुँच पाता।

निष्कर्ष :

21वीं सदी का किसान और मजदूर विमर्श केवल आर्थिक मुद्दा नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और लोकतंत्र की असली कसौटी है। यदि किसान और मजदूर खुशहाल नहीं होंगे तो विकास का कोई भी मॉडल स्थायी नहीं रह सकता। किसान और मजदूर वही वर्ग हैं, जो धरती से अन्न उपजाते हैं और अपने श्रम से उत्पादन करते हैं। इनकी उपेक्षा राष्ट्र की आत्मा की उपेक्षा है। इसलिए आज जरूरत है 21वीं सदी में किसान और मजदूर विमर्श केवल आर्थिक प्रश्न नहीं रह गया है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकार से गहराई से जुड़ा हुआ विषय है। आज भी भारत की रीढ़ किसान और मजदूर ही हैं, किंतु उनकी स्थिति असुरक्षित, शोषणग्रस्त और संघर्षपूर्ण बनी हुई है। एक ओर किसान बढ़ते कर्ज, प्राकृतिक आपदाओं और फसल के उचित मूल्य न मिलने से जूझ रहा है, तो दूसरी ओर मजदूर असंगठित क्षेत्र, बेरोजगारी और पलायन जैसी समस्याओं से पीड़ित है। इन चुनौतियों के बीच आशा की किरण यह है कि किसान और मजदूर अब अपनी समस्याओं को लेकर अधिक सजग और संगठित हो रहे हैं। उनके आंदोलन और विमर्श नीति–निर्माताओं को मजबूर करते हैं कि वे ठोस और व्यवहारिक सुधार करें। तकनीक, शिक्षा और संगठनबद्धता के सहारे वे अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि भारत की प्रगति, आत्मनिर्भरता और समृद्धि का मार्ग तभी प्रशस्त होगा जब किसान और मजदूर दोनों वर्ग सशक्त, सुरक्षित और सम्मानित होंगे। इन्हें न्याय, सुरक्षा और विकास के समान अवसर प्रदान करना ही 21वीं सदी का सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक दायित्व है।

संदर्भ–सूची :

1. प्रेमचंद – 'गोदान' उपन्यास में किसान से मजदूर बनते हुए होरी का मार्मिक यथार्थ चित्रण मिलता है,

जो किसान–मजदूर विमर्श का मजबूत साहित्यिक आधार है।

2. प्रेमचंद की अन्य कहानियाँ जैसे 'बलिदान' (1918) और 'विध्वंस' (1921) में खेत और किसान के साथ भावनात्मक जुड़ाव और विस्थापन की पीड़ा की कहानी मिलती है।
3. फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' (1954) – ग्रामीण जीवन और किसानों की विपन्नता का आंचलिक वर्णन।
4. राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' (1966) – पूर्वांचल के जमींदार और छोटे किसानों के जीवंत रिश्तों का चित्रण।
5. गिरिराज किशोर का 'इन्द्र सुनो' (1978) – शिक्षा, गरीबी और अंधविश्वास से जूझते किसानों–मजदूरों की त्रासदी।
6. कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रों मरजानी' (1967) और 'जिंदगी–नामा' (1979) में पंजाब के किसानों का सामाजिक–ऐतिहासिक चित्रण।
7. जगदीश चंद्र के उपन्यास 'मुट्ठीभर काँकर' (1976) और 'घारा गोदाम' (1905) में दिल्ली के आस–पास के किसानों के विस्थापन की कहानी।
8. अंबेडकर, भीमराव. श्रम और जाति प्रश्न. नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग, 2010.

Email ID : avichihindi2019@gmail.com

Mobile : 7871138043

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 78-79
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वयं प्रकाश के साहित्य में नारी विमर्श

के विनीता वी, शोधार्थी,

डॉ. उषस पी एस, शोध निर्देशक

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, एर्नाकुलम, केरल।

हिंदी कथा–साहित्य में नारी विमर्श का स्वर धीरे–धीरे गहराता गया है। आरंभ में स्त्री केवल पृष्ठभूमि में दिखाई देती थी, उसका काम परिवार की देखभाल और घरेलू जिम्मेदारियों तक सीमित माना जाता था। लेकिन बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जैसे–जैसे भारतीय समाज में शिक्षा, स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक चेतना का प्रसार हुआ, वैसे–वैसे स्त्री की आवाज साहित्य में मुखर होती चली गई। स्वयं प्रकाश इसी बदलते दौर के प्रतिनिधि लेखक हैं। उनका कथा–साहित्य स्त्री को केवल सहानुभूति का पात्र बनाकर नहीं छोड़ता, बल्कि उसे एक सक्रिय, संघर्षशील और आत्मचेतस व्यक्तित्व के रूप में सामने लाता है। उनकी कहानियों में बार–बार यह प्रश्न उठता है कि स्त्री का श्रम क्यों अदृश्य बना दिया जाता है और उसकी पहचान केवल रिश्तों के दायरे में क्यों बाँध दी जाती है। आदमी जात का आदमी में एक प्रसंग है जब एक लड़की को नौकरानी की तरह नए घर में लाया जाता है और लोगों के सवालों के जवाब में उसे रिश्तेदार नहीं बल्कि सेविका कहकर परिचित कराया जाता है। लेखक लिखते हैं – "लोग पूछ रहे थे कि क्या लड़की उनकी कोई रिश्तेदार है? उन्हें अंग्रेजी में बताया जा रहा था कि रिश्तेदार नहीं नौकरानी हैं, कुछ दिनों के लिए साथ आ गई है, फिर चली जाएगी।"[1] यह कथन बताता है कि स्त्री का अस्तित्व तभी मूल्यवान माना जाता है जब वह रिश्तों की परिभाषा में फिट बैठती है, अन्यथा उसकी पहचान तुरन्त 'नौकरानी' या 'सेविका' तक सीमित कर दी जाती है। यह स्थिति वर्गीय और लैंगिक दोनों स्तरों पर शोषण का खुला चित्रण है।

इसी तरह ईंधन उपन्यास में लेखक ने कामकाजी स्त्रियों के प्रति समाज की धारणाओं पर गहरी चोट की है। वहाँ लिखा गया है– "कामकाजी स्त्रियाँ देखी तो बहुत थीं... लेकिन मुझे यही लगता था कि नौकरी यदि इनके लिए एक स्वैच्छिक गतिविधि नहीं भी है तो भी वह इनके जीवन और चेतना के केन्द्र में तो नहीं ही होगी, वहाँ होगा परिवार।"[2] यह दृष्टिकोण दरअसल भारतीय समाज की उस सोच को उजागर करता है जहाँ स्त्री की असली पहचान नौकरी या पेशेवर उपलब्धियों से नहीं बल्कि उसके पारिवारिक दायित्वों से तय होती है। चाहे वह कितनी भी पढ़ी–लिखी या आत्मनिर्भर क्यों न हो, समाज उसे अंततः माँ, पत्नी या बहन की भूमिका में ही सीमित देखना चाहता है। स्वयं प्रकाश इस रूढ़ि को तोड़ते हुए सवाल खड़ा करते हैं कि क्या स्त्री अपनी स्वतंत्र चेतना के साथ समाज में अपनी जगह नहीं बना सकती?

स्वयं प्रकाश का नारी विमर्श केवल श्रम और दायित्वों तक ही नहीं रुकता, बल्कि वह स्त्री की आकांक्षाओं और उसके भीतर के द्वंद्व को भी सामने लाता है। नन्हा कासिद में एक जगह कहा गया है– "यह विडम्बना तो

आप ही के साथ नहीं, पूरी पीढ़ी के साथ है कि लड़कियाँ आज भी स्वतन्त्रता, समानता और बंधुत्व नहीं चाहतीं। वे सुरक्षा, समृद्धि और सुविधा चाहती हैं।"[3] यह कथन नारी विमर्श की गहरी पेचीदगी को दिखाता है। स्वतंत्रता और समानता की आकांक्षा होना स्वाभाविक है, परन्तु सामाजिक दबाव और असुरक्षाएँ स्त्री को सुरक्षा और सुविधा को प्राथमिकता देने के लिए मजबूर कर देती हैं। यह स्थिति पितृसत्ता और स्त्री–चेतना के बीच का द्वंद्व है। स्वयं प्रकाश यहाँ यह स्वीकार करते हैं कि परिवर्तन केवल बाहरी संरचनाओं से नहीं आएगा, बल्कि स्त्री के भीतर भी स्वतंत्रता की आकांक्षा को मजबूत होना होगा।

लेकिन स्वयं प्रकाश की स्त्रियाँ केवल पीड़िता ही नहीं हैं, उनके भीतर उल्लास और भावनाओं का संसार भी है। जलते जहाज पर में एक प्रसंग है जब एक लड़की नायक की उपलब्धि से प्रभावित होकर भावुक हो उठती है। लेखक लिखते हैंकृ"सामने गोद में तकिया रखे बैठी लड़की... अचानक फेंककर उछलती है और मेरा हाथ हाथ में लेकर इतने जोश में झटकती है कि मुझसे हंसे बिना नहीं रहा जाता।"[4] इस दृश्य में स्त्री की संवेदनशीलता, उसका उत्साह और जीवन के प्रति उसका जोश दिखाई देता है। वह केवल सहनशील या पीड़ित नहीं, बल्कि सपने देखने और भविष्य को लेकर रोमांचित होने वाली भी है। इस तरह स्वयं प्रकाश स्त्री को सम्पूर्ण मानवीय अस्तित्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि स्वयं प्रकाश का नारी विमर्श बहुआयामी है। वह न तो केवल घरेलू जिम्मेदारियों तक सीमित है और न ही केवल विद्रोह तक। उनके साहित्य में स्त्री कभी अपने अदृश्य श्रम से जूझ रही है, कभी परिवार और काम के बीच फँसी है, कभी सुरक्षा और स्वतंत्रता के द्वंद्व में उलझी है और कभी अपने उत्साह और भावनाओं से जीवन को रंगीन बना रही है। यही उनकी रचनाओं की विशेषता है कि वे स्त्री को केवल एक ही छवि में नहीं बाँधते, बल्कि उसके जीवन के विविध पहलुओं को सामने लाते हैं।

अन्य हिंदी लेखकों से तुलना करें तो अमरकांत की डिप्टी कलेक्टरी की नायिका पति की महत्वाकांक्षाओं के बोझ तले पिसती हुई दिखाई देती है, भीष्म साहनी की चीफ की दावत में स्त्रियाँ सामाजिक दबावों के सामने झुकी हुई लगती हैं और निर्मल वर्मा की कहानियों में स्त्री का चित्रण अधिक संवेदनशील और आंतरिक स्तर पर होता है। लेकिन स्वयं प्रकाश का अंतर यह है कि उनकी स्त्रियाँ प्रश्न पूछती हैं, अपने हालात पर असहमति जताती हैं और परिस्थितियों से टकराने का साहस भी रखती हैं। वे केवल चुपचाप सहने वाली स्त्रियाँ नहीं, बल्कि प्रतिरोध और आत्मचेतना की आवाज हैं। निष्कर्षतः, स्वयं प्रकाश के कथा–साहित्य का नारी विमर्श स्त्री के संपूर्ण जीवन को सामने लाता है। उन्होंने उसे केवल पीड़िता या सहायक के रूप में नहीं चित्रित किया, बल्कि विचार, प्रश्न और संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी कहानियों और उपन्यासों की स्त्रियाँ कभी मौन नहीं रहतीं, वे अपने अस्तित्व को जताती हैं और समाज की रूढ़ियों से टकराती हैं। यही कारण है कि स्वयं प्रकाश का साहित्य आज भी नारी विमर्श की दृष्टि से अत्यंत प्रासंगिक और प्रेरणादायी बना हुआ है।

संदर्भ :–

1. स्वयं प्रकाश, आदमी जात का आदमी, पृ. 94.
2. स्वयं प्रकाश, ईंधन, पृ. 135.
3. स्वयं प्रकाश, नन्हा कासिद, पृ. 104.
4. स्वयं प्रकाश, जलते जहाज पर, पृ. 42.

kvinitav@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 80-84
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सांस्कृतिक विमर्श के संदर्भ में हिन्दी सिनेमा में अभिव्यक्त सूफीवाद का विश्लेषण

अंजली कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान–304022
डॉ. आशीष पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक, राजस्थान–304022

शोध सारांश :–

सूफीवाद का उद्‌भव आज से लगभग 1400 वर्ष पूर्व सऊदी अरब में हुआ। वहाँ से होते हुए यह इराक पहुँचा। तत्पश्चात्, ईरान से होते हुए इसने अफगानिस्तान तक जड़े जमाई। 12वीं शताब्दी में तुर्कों के भारत आक्रमण के दौरान बड़ी संख्या में मुसलमानों के साथ सूफियों का भारत आगमन हुआ। यह आगमन एक प्रकार से भारतीय समाज से टकराव था। भारतीय समाज एवं संस्कृति पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। इन मुस्लिम शासकों ने हिंसात्मक ढंग से बलप्रयोग द्वारा धर्मांतरण की नीति अपनाई जिससे भारतीयों के हृदय में मुसलमानों के प्रति केवल घृणा का भाव जन्मा परन्तु सूफी संतों ने हिंसा से भिन्न नवीन मार्ग अपनाया। उन्होंने भारतीय संस्कृति को गहराई से समझा और आत्मसात किया। अपनी सांस्कृतिक परंपराओं को आरोपित करने के स्थान पर उन्होंने भारतीय परंपराओं को स्वीकार कर उनके साथ समन्वय स्थापित किया तथा एक नवीन भारतीय सांस्कृतिक स्वरूप के निर्माण में योगदान दिया। साहित्य ने सूफियों के इन विचारों एवं रचनाओं को उपयुक्त सम्मान दिया। साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करते हुए सिनेमा भी सूफीवाद के इन विचारों को आत्मसात कर रहा है। धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को आधार बनाकर सिनेमा गीतों एवं कथानकों के माध्यम से सूफीवाद के सिद्धांतों का कलात्मक विश्लेषण करने का प्रयास करता रहा है। इस प्रकार वह सांस्कृतिक सह–अस्तित्व, प्रेम, समरसता और आध्यात्मिक उदात्तता के संदेश को अभिव्यक्त कर रहा है।

संकेताक्षर : संस्कृति, सूफीवाद, अभिव्यक्ति, हिन्दी सिनेमा, सिनेमाई गीत।

संस्कृति :

संस्कृति शब्द 'कृ' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय और 'सम' उपसर्ग के योग से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'अच्छी स्थिति', 'सुधरी हुई स्थिति' आदि। 'संस्कृति' को अनेक विद्वानों ने अपने सामर्थ्य अनुसार परिभाषित करने का प्रयास किया है। डॉ. देवराज के शब्दों में 'संस्कृति मानवीय व्यक्तित्व की वह विशेषताओं का समूह है, जो उस व्यक्तित्व को एक खास अर्थ में महत्वपूर्ण बनाता है... वस्तुतः संस्कृति उन गुणों का समुदाय है, जिन्हें मनुष्य

अनेक प्रकार की शिक्षा द्वारा अपने प्रयत्न से प्राप्त करता है। संस्कृति का संबंध मुख्यतः मनुष्य की बुद्धि, स्वभाव, मनोवृत्तियों से है।'[1] संस्कृति मूलतः जीवन जीने की शैली है। यह मानव को मानव से जोड़ने की प्रक्रिया है। संस्कृति वह वृत्त है जिसकी परिधि में दार्शनिक, सामाजिक, धार्मिक एवं कलात्मक मान्यताओं के वे तत्त्व सम्मिलित होते हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी सतत रूप से स्थानांतरित होकर समाज की संरचना एवं मूल्यबोध को आकर प्रदान करते हैं। अतः संस्कृति का संबंध समूह से है न कि किसी विशेष व्यक्ति से।

भारतीय संस्कृति :

भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृति है जिसका इतिहास 5000 वर्ष पुराना है। यह संस्कृ ति सदैव प्रेम और समर्पण की भावना से ओतप्रोत रही है। इसके मूल में नैतिकता, एकता, आध्यात्मिकता, सहिष्णुता, आश्रम व्यवस्था, अवतारवाद की संकल्पना, धर्म एवं दर्शन की प्रधानता, परंपराओं में विश्वास, समन्वयवाद, कर्म की प्रधानता, विश्व कल्याण की भावना आदि है। वसुधैव कुटुंबकम् का भाव इसे अद्वितीय बनाती है। भारतीय संस्कृति के स्वरूप पर विचार करते हुए डॉ. आशुतोष कुमार झा लिखते हैं –'भारतीय संस्कृति की मुख्यधारा हजारों वर्ष पहले ऋषि मुनियों के तपोवनों से निकली। आगे बढ़ती हुई अनेक जलधाराएँ जैसे गंगोत्री से भागीरथी तथा भागीरथी से गंगा का निर्माण करती हैं, उसी प्रकार ऋषियों के आश्रमों से निकली सांस्कृ तिक विरासत की धारा ने अनेक बाहरी संस्कृतियों को आत्मसात करते हुए पूरे देश को साहित्य, संस्कार, लोकाचार, धर्म और आध्यात्म के सूत्रीकरण द्वारा एक विराट सांस्कृतिक भूगोल में परिवर्तित कर दिया।'[2]

भारतीय संस्कृति की इसी उदारता का परिणाम है कि इस्लामिक संस्कृति का समन्वय भारतीय संस्कृति में हुआ। यद्यपि मुस्लिम शासक प्रारंभ में राजनीतिक वर्चस्व स्थापित करने के उद्देश्य से भारत आए तथा उनके द्वारा बलपूर्वक धर्मांतरण की घटनाएँ भी हुई परन्तु फिर भी भारतीय संस्कृति ने सहिष्णुता एवं समन्वय की अपनी परंपरा के माध्यम से उन्हें आत्मसात करने का भरसक प्रयास किया। आज भारतीय संस्कृति का उल्लेख प्रायः उसी 'गंगा–जमुनी तहजीब' के रूप में किया जाता है जो विभिन्न परंपराओं व मान्यताओं के सामंजस्यपूर्ण मेल का प्रतीक है।

सूफी दर्शन :-

सूफीमत के संबंध में विभिन्न विचारधाराएँ प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों ने इसे हिंदू वेदांत से प्रभावित माना तो कुछ ने इसमें बौद्ध मत के प्रभाव देखें। वहीं कुछ विचारक इसे ईसाई सन्यासमत और नव–अफलातूनवाद की दार्शनिक एवं आध्यात्मिक धारा से जोड़ते हैं। निकल्सन ने तो सूफीमत के चार स्रोत माने हैं– 'ईसाई मत, नव– अफलातूनी मत, नास्टिक मत तथा बुद्धमत।"[3] वहीं डॉ. नरेश के अनुसार 'अतः प्रारंभिक सूफीयों को इस्लाम के अतिरिक्त जिन मतों ने प्रभावित किया था, वे थे– ईसाई, नव अफलातूनी, नास्टिक बौद्ध तथा हिंदू।'[4] किंतु इसमें कोई संदेह नहीं की सूफी मूलतः इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं। सूफी विचारधारा इस्लाम के उदारवादी रूप का समर्थन करती है और विभिन्न धर्मो के बीच समन्वय स्थापित कर नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा को प्राथमिकता देती है।

'सूफी' शब्द की उत्पत्ति को लेकर विभिन्न मत प्रचलित हैं। 'सूफी' शब्द के मूल में 'सफा', 'सफ', 'सुफ्फा', 'सूफ', 'सूफाह' और 'बनू सूफा' को लेकर विभिन्न विचारकों में मतभेद है। अधिकांश विद्वान 'सूफी' शब्द के व्युत्पत्ति अरबी शब्द 'सूफ' से मानते हैं जिसका अर्थ है 'ऊन'। उनके मतानुसार वे साधक जो सांसारिक सुखों

का त्याग कर, ऊन के वस्त्र धारण करते थे, अल्लाह का स्मरण करते हुए सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे, वह सूफी कहलाए। सूफीमत इस्लाम के 'वाहदत–उल–वुजूद' सिद्धांत पर आधारित है जिसका अर्थ है– 'ईश्वर एक है और समस्त संसार उसी से संचालित होता है। परम सत्ता केवल ईश्वर की है, उसके अतिरिक्त किसी के पास यह अधिकार नहीं हो सकता।'[5]

सूफी विचारधारा आध्यात्मिक प्रेम पर बल देती है जिसे 'इश्क–ए–हकीकी' कहा जाता है। सूफीयों का मानना है कि 'इश्क–ए–मजाजी' (सांसारिक प्रेम) के रास्ते से होकर ही 'इश्क–ए–हकीकी' (आध्यात्मिक/वास्तविक प्रेम) के हुनर को प्राप्त किया जा सकता है। सूफी दर्शन में मुर्शिद की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। माना जाता है कि ईश–मिलन बिना मुर्शिद के मार्गदर्शन के संभव नहीं है।

सूफी संतों ने अपने विचारों एवं आचरण में किसी भी प्रकार के भेदभाव को स्थान नहीं दिया। उन्होंने सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों के आधार पर सभी वर्गों एवं समुदायों को आत्मीयता के साथ अपनाया। उनका मूल लक्ष्य आंतरिक शुद्धता पर केंद्रित था जो बाह्य आडंबरपूर्ण कर्मकांडों एवं कठोर धार्मिक विधानों को अप्रासंगिक ठहरता था।

इस प्रकार भारत में सूफीवाद एक नवीन सांस्कृतिक समुदाय के रूप में उभरा जिसने प्रेम एवं भक्ति के महत्व को प्रतिपादित करते हुए, हर प्रकार के धार्मिक, सामाजिक, जातिगत बंधनों को तोड़ने का प्रयास किया।

हिंदी सिनेमा में सूफीवाद :

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने साहित्य को समाज का दर्पण कहा है। अतः यह स्वाभाविक था कि साहित्य पर सूफी मत का प्रभाव पड़े। दीर्घकाल तक सूफी काव्य की रचना विभिन्न भाषाओं में होती रही। आधुनिक युग में सिनेमा के आगमन के साथ ही साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करते हुए सिनेमा ने भी सूफी दर्शन को अपनाया और उसे अपने कथानकों एवं गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

सिनेमाई गीतकारों ने सरल और सहज भाषा में ऐसे गीतों की रचना की जो घर–घर गूंजने लगे और सूफी विचारधारा के मूल भाव को आम–जन तक पहुँचाने में सहायक बने। इन गीतों ने लोक संस्कृति में व्याप्त रूढ़ियों, परंपराओं, विचारों, खान–पान, त्यौहार, जीवन शैली आदि से जनसाधारण को परिचित कराने में अहम भूमिका निभाई। पंजाब के कलाकारों की प्रभावशाली उपस्थिति के कारण सिनेमा में पंजाबी लोक–संस्कृति का चित्रण अत्यधिक हुआ है। इसी प्रभाव के चलते सिनेमाई सूफी गीतों में भी पंजाबी सूफी–संतों की विचारधारा और काव्य का व्यापक असर देखने को मिलता है।

ध्यातव्य है कि सिनेमा मनोरंजन प्रधान विधा है जिस कारण उसमें प्रेम–संबंधी प्रसंगों की संख्या सर्वाधिक रहती है। सूफी दर्शन प्रमुख रूप से इन्हीं प्रसंगों के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है। इसके लिए अक्सर लोक–प्रसिद्ध प्रेम कहानी–लैला–मजनू, हीर–राँझा, सोनी–महिवाल, मिर्जा–साहिबा, ढोला–मारू आदि का संदर्भ गीतों में 'इश्क–ए–हकीकी' के रूप में लिया जाता है। सूफी दर्शन से प्रभावित होकर निम्नलिखित प्रकार के गीतों की रचना हुई –

1. सूफी कवियों के कलामों से प्रभावित सूफी गीत।
2. ईश्वर (अल्लाह) तथा पैगंबर मुहम्मद साहब की स्तुति संबंधी सूफी गीत।
3. गुरु–शिष्य संबंधी सूफी गीत।

4. स्त्री–पुरुष प्रेम संबंधी सूफी गीत।

पहली श्रेणी में वह गीत आते हैं, जो किसी सूफी–संत या कवि के कलामों से पूर्णतः प्रभावित होकर रचे गए हैं। इन गीतों में कभी कुछ पंक्तियाँ, तो कभी पूरा गीत ही किसी सूफी कवि की मूल रचना पर आधारित होता है।

उदाहरण :

'राँझा–राँझा कर दी नी मैं, आपे राँझा होई
राँझा मैं विच ते मैं राँझे विच, होर खियाल न कोई।'[6]

या

'कागा करंग ढ़ढ़ोलिआ सगला खाइआ मास
ए दुई नैना छुहए पिर देखन की आस।'[7]

उपर्युक्त पद को गायक कैलाश खेर ने कुछ परिवर्तन के साथ इस प्रकार गाया :–

'कागा सब तन खाइयो, मेरा चुन–चुन खाइयो मास
दो नैना मत खाइयो, मोहे पिया मिलन की आस।'[8]

सूफी साधक ईश मिलन की कामना करते हैं। उनके अनुसार, ईश्वर ही परम सत्ता है, और उनसे एक होना ही उनका अंतिम लक्ष्य है। इस आध्यात्मिक भाव को सिनेमाई गीतकारों ने भी अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया। दूसरी श्रेणी में वे गीत आते हैं, जो इसी दिव्य मिलन की आकांक्षा को तथा पैगंबर मुहम्मद साहब की प्रशंसा एवं उनके सम्मान में गाए जाते हैं। इन गीतों में भक्ति और आत्मसमर्पण की गहरी अनुभूति झलकती है। कुछ प्रसिद्ध गीत, जो इसी भाव से लिखे गए हैं, उनमें शामिल हैं– 'ताजदार–ए–हरम', 'कुन फाया कुन', 'भर दो झोली मेरी' आदि।

तीसरी श्रेणी उन सूफी गीतों की है, जिनमें मुर्शिद (गुरु) के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की गई है और उनसे आगे भी सत्य एवं आध्यात्मिक मार्ग प्रशस्त करने की प्रार्थना की गई है। इन गीतों में गुरु को मार्गदर्शक माना गया है, जो शिष्य को प्रेम, भक्ति और आत्मज्ञान के पथ पर अग्रसर करता है। इस भावना को अभिव्यक्त करने वाले कुछ प्रसिद्ध गीत हैं– 'ख्वाजा मेरे ख्वाजा', 'कुन फाया कुन', 'पिया हाजी अली' आदि।

चौथी श्रेणी उन स्त्री–पुरुष प्रेम पर आधारित सूफी गीतों की है, जिनकी रचना सर्वाधिक हुई है। सिनेमाई गीतकारों ने साहित्य से प्रेरणा लेकर सांसारिक प्रेम को आध्यात्मिक रंग देने का प्रयास किया। इश्क–ए–हकीकी में जहाँ ईश्वर से प्रेम की बात होती है, वहीं इन गीतों में सांसारिक प्रेमी को ही देवत्व प्रदान करने की चेष्टा की गई है। सरल शब्दों में कहें, तो प्रेमी को ही ईश्वर के समान मान लिया गया और उसकी इबादत करने की भावना व्यक्त की गई। यह विचार भारतीय संस्कृति की उस परंपरा से मेल खाता है, जिसमें पति को परमेश्वर के रूप में देखा गया है। इस प्रकार, इन गीतों ने सांसारिक प्रेम को एक दिव्य और आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान किया, जिससे सूफी दर्शन की यह अवधारणा भारतीय जनमानस के अधिक निकट आ गई।

उपरोक्त चारों श्रेणियों के माध्यम से सिनेमाई गीतों ने सूफी दर्शन को बढ़ावा दिया। इसके लिए इन गीतों में कई प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग किया गया, जिससे इनकी गहराई और आध्यात्मिकता बनी रही। जिस प्रकार सूफी साहित्य में रहस्यात्मकता एक प्रमुख विशेषता रही है, उसी प्रकार इन गीतों में भी इसे संरक्षित रखने का

प्रयास किया गया। इनमें प्रयुक्त प्रतीक मुख्य रूप से ईश्वर, गुरु, साधक, साधना और मिलन से संबंधित थे, जो सूफी विचारधारा के गूढ़ तत्वों को सहज रूप में व्यक्त करने में सहायक बने। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इन सभी प्रतीकों–चुनरी (आत्मा/रूह), चरखा (शरीर), रूई कातना (नाम जपना), मृग (माया), रंगरेज (ईश्वर/गुरु/प्रेमी), जुगनी (आत्मा), मायका (खुदा का घर), ससुराल (संसार) आदि की जड़ें लोक संस्कृति में निहित हैं। यह प्रतीक केवल सैद्धांतिक या कृत्रिम रूप से निर्मित नहीं हैं, अपितु लोक जीवन की परंपराओं, विश्वासों एवं सामाजिक व्यवहार में किसी न किसी रूप में प्रचलित रहे हैं।

निष्कर्ष :

सूफी गीतों का जनमानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन्होंने प्रेम की एक नई परिभाषा दी, जिसमें सांसारिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम से जोड़कर देखा गया। इन गीतों ने सांप्रदायिक और धार्मिक एकता को प्रोत्साहित किया तथा यह संदेश दिया कि प्रेम, करुणा और समर्पण किसी एक धर्म या पंथ तक सीमित नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता का साझा मूल्य है। साथ ही, इन्होंने मानवता के उच्चतम गुणों सद्भाव, दया और परोपकार को सहज रूप में समझाने का कार्य किया, जिससे समाज में समरसता और भाईचारे की भावना को बल मिला। इस प्रकार सिनेमा सांस्कृतिक विमर्श के संदर्भ में सूफीवाद को अपनाने का प्रयास करता रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. देवराज, भारतीय संस्कृति : महाकाव्यों के आलोक में, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1961, पृ–21
2. शर्मा, राकेश (सं), वीणा : वर्ष 90, अंक 12, दिसम्बर 2017, पृ– 50
3. निकल्सन, आर. ए., ए लिटरेरी हिन्दी ऑफ दि एरब्स, पृ– 390
4. डॉ. नरेश, सूफीमत और हिन्दी सूफी–काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ–19
5. शुक्ला, डॉ. प्रणु, सूफी कवि बुल्लेशाह, अनु प्रकाशन, जयपुर, 2020, पृ–86
6. तातेड़, प्रो. (डॉ.) सोहन राज, बाबा शेख फरीद : मध्ययुगीन हिन्दी सूफी–संत, भक्त कवि, अपोलो प्रकाशन, जयपुर, 2022, पृ– 187
7. सोनी म्यूजिक इंडिया वेवो, जाना जोगी दे नाल– कैलासा, कैलाश खेर, 2016
https://youtu-be/nx1c&lnDx5I\si¾cuGiQ0hdQFV&vAHB

ई– मेल– keyalanjali@gmail.com, संपर्क– 9588049058
ई– मेल– ashishpandey@banasthali.in, संपर्क– 8840594512

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 85-89
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विकास बनाम प्रकृति : अनुपम मिश्र के लेखन में एक गहन विमर्श

अमित त्रिपाठी
शोध छात्र, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

हिंदी साहित्य केवल मनोरंजन या सौंदर्यबोध का साधन नहीं है, बल्कि यह सामाजिक चेतना और मानवीय मूल्यों का संवाहक भी रहा है। समय–समय पर इसमें समाज की ज्वलंत समस्याओं, मानव जीवन के प्रश्नों और प्रकृति से जुड़े गहरे सरोकारों को स्वर मिला है। आधुनिक युग में जहाँ औद्योगिकीकरण, नगरीकरण और तकनीकी प्रगति ने जीवन को सुविधा संपन्न बनाया है, वहीं इसके परिणामस्वरूप प्रकृति के शोषण, प्रदूषण और असंतुलन जैसी गंभीर समस्याएँ सामने आई हैं। साहित्य ने इन प्रश्नों की उपेक्षा नहीं कीय बल्कि लेखकों और कवियों ने बार–बार यह चेताया कि यदि मानव अपने विकास की अंधी दौड़ में प्रकृति से विमुख हो गया, तो यह विनाश का कारण बनेगा।

हिंदी साहित्य में पर्यावरणीय विमर्श की परंपरा बहुत पुरानी है। भक्ति काल में सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई जैसे कवियों ने प्रकृति की सौंदर्यमयी छवियों को आध्यात्मिक दृष्टि से जोड़ा। रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति का चित्रण अधिकतर अलंकार और श्रृंगार के संदर्भ में किया। लेकिन आधुनिक काल में प्रेमचंद, नागार्जुन, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, और भवानीप्रसाद मिश्र जैसे रचनाकारों ने प्रकृति को मानव जीवन से गहरे जुड़ा हुआ माना।

इसी क्रम में अनुपम मिश्र का लेखन हिंदी साहित्य और समाज के लिए विशेष महत्व रखता है। उन्होंने विकास और पर्यावरण के द्वंद्व को केवल सैद्धांतिक स्तर पर नहीं, बल्कि व्यावहारिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी देखा। उनकी रचनाएँ, विशेषकर "आज भी खरे हैं तालाब" और "राजस्थान की रजत बूंदें", इस बात का प्रमाण हैं कि पर्यावरणीय संतुलन को समझे बिना कोई भी विकास न तो स्थायी हो सकता है और न ही सार्थक।

उन्होंने साहित्य और सामाजिक आंदोलन, दोनों को जोड़कर पर्यावरणीय चेतना को व्यावहारिक रूप दिया। वे गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित थे और जल संरक्षण को केवल तकनीकी या वैज्ञानिक मुद्दा न मानकर सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकार के रूप में प्रस्तुत करते थे।

विकास बनाम प्रकृति का प्रश्न :

विकास का अर्थ सामान्यतः आर्थिक प्रगति, तकनीकी उन्नति और भौतिक सुख–सुविधाओं के विस्तार से जोड़ा जाता है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से भारत जैसे देशों में यह धारणा और गहरी हो गई कि अधिक

उद्योग, अधिक बाँध, अधिक सड़कें और अधिक खपत ही विकास का परिचायक हैं।

लेकिन इस अंधी दौड़ में यह भूल गया कि प्रकृति की अपनी सीमाएँ हैं। अंधाधुंध जंगलों की कटाई, नदियों पर विशाल बाँध, भूजल का अत्यधिक दोहन, और प्रदूषण ने पर्यावरणीय संकट को जन्म दिया। यह संकट केवल पर्यावरण का नहीं, बल्कि मानव अस्तित्व का संकट बन गया। यही वह बिंदु है, जहाँ अनुपम मिश्र जैसे चिंतकों ने विकास और प्रकृति के संतुलन पर गहन विमर्श प्रस्तुत किया।

हिंदी साहित्य में प्रकृति सदैव महत्वपूर्ण रही है। भक्ति कवियों ने प्रकृति को ईश्वर की सत्ता और मानव जीवन का प्रतीक माना। तुलसीदास ने वन, नदी, पर्वत और ऋतुओं का वर्णन केवल सौंदर्यबोध के लिए नहीं, बल्कि धार्मिक–सांस्कृतिक दृष्टिकोण से किया। आधुनिक काल में कवियों ने औद्योगिक सभ्यता के दुष्परिणामों को प्रकृति के विनाश से जोड़ा।

रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा था–

> **"धरती का सौंदर्य बिगाड़ेगा यह लोभ मनुष्य का,**
> **प्रकृति की गति से जो टकराएगा, वही मिट जाएगा।"**

यानी हिंदी साहित्य ने स्पष्ट किया कि विकास यदि प्रकृति के विपरीत होगा, तो वह आत्मविनाश का कारण बनेगा। अनुपम मिश्र इसी साहित्यिक–सामाजिक चेतना को आगे बढ़ाते हैं।

अनुपम मिश्र का पर्यावरण दृष्टिकोण :

अनुपम मिश्र को "जल पुरुष" कहना अनुचित नहीं होगा। उन्होंने केवल लेखन में ही नहीं, बल्कि समाज में भी जल–संरक्षण और परंपरागत संसाधनों की रक्षा की चेतना जगाई। उनका दृष्टिकोण तीन प्रमुख आधारों पर टिका है :

1. परंपरा का सम्मान :

अनुपम मिश्र ने भारतीय समाज की पारंपरिक जल–संरक्षण प्रणालियों पर गहन शोध किया। उन्होंने यह बताया कि गाँवों में बने तालाब, कुएँ, बावड़ियाँ और नहरें केवल तकनीकी संरचनाएँ नहीं थीं, बल्कि वे सामुदायिक जीवन का हिस्सा थीं। इनसे पानी की समस्या भी हल होती थी और समाज में आपसी सहयोग की संस्कृति भी पनपती थी।

2. आधुनिक विकास पर प्रश्नचिन्ह :

अनुपम मिश्र ने बार–बार यह प्रश्न उठाया कि क्या बड़े बाँध और आधुनिक तकनीक ही जल संकट का हल हैं? उनके अनुसार, इनसे अक्सर विस्थापन, पारिस्थितिक असंतुलन और सामाजिक विषमता बढ़ती है।

3. प्रकृति के साथ सहअस्तित्व :

उनके लेखन का मूल संदेश यह था कि मनुष्य को प्रकृति पर प्रभुत्व जमाने की बजाय उसके साथ सह–अस्तित्व की राह चुननी चाहिए। विकास तभी टिकाऊ हो सकता है जब वह प्रकृति की गति और सीमाओं का सम्मान करे।

'आज भी खरे हैं तालाब' : विकास बनाम प्रकृति पर विमर्श :

अनुपम मिश्र की प्रसिद्ध कृति "आज भी खरे हैं तालाब" इस विमर्श का सबसे प्रामाणिक उदाहरण है। इस पुस्तक में उन्होंने राजस्थान जैसे शुष्क प्रदेश की जल–संरक्षण परंपराओं का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया। उन्होंने

बताया कि किस प्रकार वहाँ के लोगों ने अपने अनुभव और श्रम से हजारों वर्षों तक जल की एक–एक बूंद को सहेजने की परंपरा बनाई। अनुपम मिश्र लिखते हैं :

सैकड़ों, हजारों तालाब
अचानक शून्य से
प्रकट नहीं हुए थे
इनके पीछे एक इकाई थी
बनवाने वालों की, तो
दहाई थी बनाने वालों की
यह इकाई दहाई मिलकर
सैकड़ा हजार बनती थी।
पिछले दो सौ बरसों में
नए किस्म की
थोड़ी सी पढ़ाई पढ़ गए
समाज ने इस इकाई
दहाई, सैकड़ा, हजार को
शून्य ही बना दिया।

तालाब केवल पानी का स्रोत नहीं थे, बल्कि एक सांस्कृतिक धरोहर थे। उनका निर्माण सामूहिक श्रम से होता था और उनका रख–रखाव भी सामूहिक जिम्मेदारी थी। यह परंपरा हमें यह सिखाती है कि विकास का अर्थ केवल तकनीकी हस्तक्षेप नहीं है, बल्कि सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक धरोहरों की रक्षा भी है।

इस पुस्तक में तालाब केवल जल–स्रोत नहीं, बल्कि सामुदायिक संस्कृति का प्रतीक है। उनका निर्माण सामूहिक श्रम से होता था और यह गाँव की सामाजिक एकता का केंद्र बनता था। अनुपम मिश्र यह बताते हैं कि ये परंपराएँ हजारों साल तक कारगर रहीं, लेकिन आधुनिक विकास ने इन्हें भुला दिया।

'राजस्थान की रजत बूंदें' और अन्य लेखन :

राजस्थान की रजत बूंदें में उन्होंने मरुस्थल में जल संरक्षण की सूझबूझ को प्रस्तुत किया। यह पुस्तक सिद्ध करती है कि जब विज्ञान और तकनीक उपलब्ध नहीं थे, तब भी लोग प्रकृति से संतुलन बनाकर जीना जानते थे।

अनुपम मिश्र के निबंध और व्याख्यान भी इस बात पर जोर देते हैं कि यदि हमने पारंपरिक ज्ञान को भुला दिया, तो भविष्य में जल संकट और गंभीर हो जाएगा।

अनुपम मिश्र समाज को नदी के संरक्षण की बात तथा नदी का धर्म दोनों के बारे में बहुत सरलता से बताते हैं, 'नदी का भी अपना एक धर्म होता है। एक स्वभाव होता है। नदी का धर्म है बहना। बहते रहना। पिछले एक दौर में हमने विकास के नाम पर, तकनीक की सहायता से नदी के इस धर्म को पूरी तरह बदल दिया है। उसे हम कहीं भी मोड़ सकते हैं। नए–नए इलाकों में नदियाँ बहेगीं शायद उनके नाम भी नए रखे जाएँगे। कौन से नाम रखे जाएँगे अभी मुझे पता नहीं। आजकल तो नाम रखने का तरीका भी ऐसा अचानक 'कमाल' हो जाता

है। कमाल से आप समझ सकते हैं। खेती, उद्योग और शहर इन तीन चीजों के लिए पानी जुटाने में हमने अपनी सब नदियों की बर्बाद किया है। हर एक से पानी खींचा है। साफ पानी लिया है और बदले में उसकी गंदा पानी दिया है।''

अनुपम मिश्र का लेखन आधुनिक विकास की अंधी दौड़ पर गहरी चोट करता है। उनका मानना था कि बड़े बाँध और जलविद्युत परियोजनाएँ देखने में आकर्षक लग सकती हैं, लेकिन वे अक्सर पर्यावरणीय विनाश और सामाजिक विस्थापन का कारण बनती हैं।

उदाहरण के लिए, नर्मदा बाँध परियोजना से लाखों लोग विस्थापित हुए। इसके अलावा नदियों के प्राकृतिक प्रवाह पर असर पड़ा और जैव विविधता को नुकसान पहुँचा। अनुपम मिश्र इस तरह की परियोजनाओं को "प्रकृति पर आक्रमण" मानते थे।

उन्होंने यह स्पष्ट किया कि सच्चा विकास वही है जो स्थानीय परिस्थितियों, संसाधनों और परंपराओं के अनुरूप हो।

अनुपम मिश्र ने साहित्य को केवल सौंदर्यबोध का माध्यम न मानकर उसे सामाजिक चेतना का साधन बनाया। उनकी भाषा सरल, सहज और संवेदनशील है। वे आँकड़ों की बजाय उदाहरणों और अनुभवों से तर्क करते हैं। यही कारण है कि उनका लेखन केवल विद्वानों के लिए नहीं, बल्कि आम जनता के लिए भी उपयोगी बन गया।

उनकी कृतियाँ हमें यह सोचने पर विवश करती हैं कि यदि हमने प्रकृति से अपना रिश्ता तोड़ दिया, तो विकास का कोई भी मॉडल हमें विनाश से नहीं बचा सकेगा।

निष्कर्ष :

अनुपम मिश्र का लेखन इस बात का सशक्त प्रमाण है कि हिंदी साहित्य केवल भावनाओं का नहीं, बल्कि गहन सामाजिक और पर्यावरणीय विमर्श का भी वाहक है। उन्होंने विकास और प्रकृति के बीच के द्वंद्व को गहराई से समझा और यह स्पष्ट किया कि विकास तभी सार्थक है जब वह प्रकृति के साथ सामंजस्य में हो।

आज जब पूरी दुनिया जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और जल संकट जैसी चुनौतियों से जूझ रही है, अनुपम मिश्र की बातें और भी प्रासंगिक हो गई हैं। उनकी कृतियाँ हमें याद दिलाती हैं कि हमें अपनी पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों से सीख लेनी चाहिए और विकास की परिभाषा को पुनर्परिभाषित करना चाहिए।

अंततः कहा जा सकता है कि "विकास बनाम प्रकृति" का प्रश्न केवल नीतियों या योजनाओं का नहीं है, बल्कि यह मानव अस्तित्व और भविष्य का प्रश्न है। अनुपम मिश्र का लेखन हमें यही संदेश देता है कि प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व ही स्थायी विकास का मार्ग है।

इस प्रकार, अनुपम मिश्र का विमर्श हमें एक नई दृष्टि देता है, जो कहता है कि "प्रकृति के साथ सहअस्तित्व ही स्थायी विकास का मार्ग है।"

संदर्भ सूची :

1. मिश्र, अनुपम. आज भी खरे हैं तालाब. गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1993.
2. मिश्र,अनुपम. बिन पानी सब सून. राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली पहला संस्करण 2020

3. मिश्र, अनुपम. राजस्थान की रजत बूंदें. गांधी शांति प्रतिष्ठान, 1995.
4. मिश्र, भवानी प्रसाद. साहित्य और समाज. राजकमल प्रकाशन, 1987.
5. सिंह, रामधारी. रश्मिरथी. लोकभारती प्रकाशन, 1952.
6. शर्मा, सुनील कुमार. हिंदी साहित्य में पर्यावरण चेतना. वाणी प्रकाशन, 2010.
7. गुहा, रामचंद्र. पर्यावरणवाद : एक परिचय. पेंगुइन बुक्स, 2002.

ईमेल– amittripathi14791@gmail.com
मोबाइल– 9793156249

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 90-92
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मृदुला सिन्हा के उपन्यासों में विकलांगता और उनकी मनः–स्थिति

कीर्तिका दुबे
पीएच.डी. शोधार्थी, महाराजा सयाजीराव विश्वविध्यालय, वड़ोदरा।

प्रस्तावना :

विकलांगता एक ऐसी स्थिति है जिसमें मनुष्य बाहरी शरीर के साथ–साथ आंतरिक मन से भी टूट जाता है। भारत में इन व्यक्तियों की स्थिति चुनौतीपूर्ण है। हिन्दी की प्रसिद्ध लेखिका मृदुला सिन्हा भारत की पहली लेखिका हैं, जिन्होने विकलांगो के जीवन पर अपनी दृष्टि डाली तथा कलम के माध्यम से समाज में उन्हें अलग पहचान दिलाई। इनका 'ज्यों मेहंदी को रंग' उपन्यास दिव्यांगों के जीवन पर आधारित है। उपन्यास में इस वर्ग के लोगों के प्रति परिवार और समाज का सोच तथा उनके द्वारा किए गए व्यवहार को बखूबी दर्शाया गया है। युग कोई भी हो इन लोगों को दीन–हीन और अपशगुन ही समझा जाता है, शायद इसीलिए लेखिका ने कहा है कि ''व्यक्ति की मानसिक अपंगता शारीरिक अपंगता से अधिक कष्टदायी होता है।''

दिव्यांग :

दिव्यांग का अर्थ है शरीर के किसी अंग का स्वस्थ रूप से कार्य न करना, अर्थात दिव्यांगता एक ऐसी अवस्था है जिससे व्यक्ति शरीर के कुछ अंग न होने के कारण अथवा सभी अंगों के होते हुए भी उन अंगों का कार्य सही रूप से नहीं कर पाना। जैसे आँख होते हुए भी अंधत्व के कारण दिखाई नहीं देता, उँगलियाँ न होना, पोलियो से पैर ग्रस्त होना, कान में दोष होने के कारण सुनाई नहीं देना, बृद्धि कम होने के कारण पढ़ाई नहीं कर पाना अथवा बृद्धि होते हुए भी भावनाओं पर नियंत्रण न कर पाना आदि। समाज में वर्ग विभाजन आदिकाल से चला आ रहा है। अब ये उपेक्षितों का अपने अधिकारों के लिए अपना स्वर मुखर कर आ रहा है इसी समाज का एक बेहद संवेदनशील तबका विकलांगों का है। समाज को इसे नजरन्दाज बिलकुल नहीं करना चाहिए।

देखा जाए तो इनके प्रति आदिकाल से ही उपहास और तिरस्कार का रवैया रहा है। समाज में लोग विकलांगो को सहानुभूति और दया का पात्र समझ उन्हें ये एहसास कराते हैं कि तुम हमसे अलग हो, भिन्न हो। उन्हें सामान्य जन मानकर उनके अंदर की शक्ति को पहचानने की कभी किसी ने कोशिश ही नहीं किया, और यह हमारे समाज का दुर्भाग्य ही है जो उनके शक्ति को पहचान न पाया। जिस समाज की पहचान संवेदनशीलता, मानवता से होती है वह कहीं ना कहीं बड़ा कठोर हो जाता है इन विकलांगों के प्रति। यही कारण है कि यह वर्ग सर्वाधिक उपेक्षित और एकाकीपन में जीवन जीने के लिए अभिशक्त रहा है। खुशी की बात यह है कि इन

विकलांगों को भारत सरकार उच्च स्थान प्रदान करते हुये इनके लिए नया शब्द 'दिव्यांग' प्रयोग करने की अपील की हैं, इस अपील का पालन सन 2015 से किया जा रहा है। और इन दिव्यांगों को समाज के सामान्य जनता के साथ जोड़ने का सफल प्रयास किया गया है।

भारत में दिव्यांगों की स्थिति :

भारत में दिव्यांगों की स्थिति में पिछले कुछ दशकों में सुधार हुआ है, लेकिन अभी भी उनमें कुछ सुधार की आवश्यकता है, क्योंकि अभी भी कुछ चुनौतियाँ विद्यमान हैं, जैसे– शिक्षा और रोजगार, सरकारी सुविधाओं का अभाव, सुलभता आदि।

सामाजिक उपेक्षा का शिकार :

विकलांगों के लिए हमारे समाज में एकदृएक दिन गुजारना बड़ा मुश्किल हो जाता है। प्रत्येक समाज में इनको एक अलग ही नजर से देखा जाता है। कहीं–कहीं शुभ कार्यों के लिए इन्हें अपशगून माना जाता है, तो कहीं उपेक्षा का शिकार भी बनना पड़ता है। समाज और समाज के लोगों की सोच इतनी घटिया है कि ये लोग विकलांगों को उनके पूर्व जन्म का श्राप और कर्म बताते है।

मृदुला सिन्हा के उपन्यास 'ज्यों मेहँदी को रंग' में शालिनी जो कि उपन्यास की नायिका है, को अपने ससुराल में बहुत लाड–प्यार मिलता है। परंतु जबसे गंगा घाट में स्टीमर से उसका पैर कट कर गंगा में बह जाता है और वह विकलांग हो जाती है, तब से उसके ससुराल वालों का उसके प्रति रवैया ही बदल जाता है। जिस सास को वो घर की लक्ष्मी नजर आती है उसे अब शालू एक बोझ और अपशगुन नजर आती है। पति तो शुरुआत में बहुत ही प्यार करता है, पैर कटने के बाद भी जब शालू की चर्चा होती तो उसके आंखों में आंसू छलक आते परंतु, मनुष्य के व्यवहार को बदलते देर नहीं लगती, ठीक उसी प्रकार शालू के पैर कटने के बाद उसके पति पर दबाव आने लगे दूसरी शादी की। थोड़ी आना–कानी करने के बाद राजेश दूसरी शादी कर लेता है।

इससे यह पता चलता है कि समाज में मनुष्य के स्वभाव और व्यवहार का कोई मूल्य नहीं, अगर कीमत है तो सिर्फ शरीर की, उसके देह की, उसके जिस्म की। समाज में शालिनी की तरह ऐसे करोणों विकलांग होंगे जिन्हें अपने घर–परिवार में भगवान नजर आते हैं, परंतु परिवार को ये लोग बोझ दिखाई देते हैं।

विकलांगों की मनःस्थिति :

विकलांगों की मनःस्थिति को समझने में सबसे ज्यादा अगर कोई रचना सहायत है तो वह है मृदुला सिंहा का उपन्यास ''ज्यों मेंहदी को रंग''। इसकी प्रमुख पात्र शालिनी अपने परिवार वालों की उपेक्षा और विकलांगता का दंश झेलती है। जबकि शालू बहुत ही स्वाभिमानी और इज्जतदार लड़की है। उसे पता चलता है कि उसका पैर कटने पर विकलांग होने पर पति ने दूसरा विवाह कर लिया, तब उसको समझते देर नहीं लगती कि ये पूरा समाज ही व्यवहार नहीं बल्कि शरीर का भूखा है। उसी क्षण वह ससुराल से नाता तोड़ देती है। जिस संस्थान ने उसे नया जीवन दिया, उसके प्रति पूरी तरह से समर्पित हो जाती है और दद्दा जी के लाख समझाने पर भी वह अपना निर्णय नहीं बदलती है।

शालिनी का जैसा नाम वैसा गुण है। वह अपने नाम के अनुरुप ही आचरण ग्रहण करती है। मृदुला सिन्हा के शब्दों में ''सदा से पीठ पर लटकती लंबी चोटी को जुड़े का रूप दिया।.... अच्छी तरह धुली कलफ चढ़ी साड़ी

के पल्लू को बड़े सलीके से पहनती। आंचल कंधे से कभी बेढंग लटकता नहीं रहता उसका। इसलिए कभी वह अस्त–व्यस्त नहीं दिखती। उलटे पल्ले को कई प्लेट बना, कंधे पर रख कर पिन लगा लेती। और इन सबसे निखर कर उसका गोरा–चिट्टा मुखड़ा दपदप कर चमक आता।"[1] शालिनी के व्यक्तित्व को बखानते हुए लेखिका लिखती हैं कि "आंखें मात्र सामान्य आकार–प्रकार की होती हुई भी लुभावनी थी, मन के भावों को होंठ एवं जिह्वा से भी पहले अपने में उतार लेने की क्षमता से भरपूर। सारे अंग अपने प्रांतिक रंग में लिए ही रहते।.....शालिनी स्वभाव से सरल होते हुए भी बड़ी सख्त थी। खुल कर भी बिल्कुल अंदर थी। महिमा और रेखा उसकी अंतरंग मित्र, उनसे भी कभी राजेश के प्रति अपने उठते–गिरते भावों को नहीं जताया। उसके व्यक्तिगत जीवन में कोई आसानी से प्रवेश नहीं कर सकता था। सामाजिक जीवन में उससे कोई अलग नहीं रह पाता था।"[2]

इंसान को जब अपनों का साथ नहीं मिलता तब वह खुद ब खुद आत्मनिर्भर हो जाते हैं। वहीं हाल शालिनी का है। शालिनी खुद के साथ–साथ संस्थान की औरतों को भी आत्मनिर्भर बनाती है। उसे गलत बिल्कुल बर्दाश्त नहीं। यहां तक की दद्दा जी की पत्नी के कूव्यवहार पर उन्हें भी अपने ढंग से जवाब दे देती है। अंत में शालिनी के इस व्यक्तित्व से प्रभावित हो दद्दा जी अपंगों की सेवा में अपने साथ शालिनी को भी उसी में रंगा–जमा देते हैं। दोनों ही अपनी पिछली जिंदगी को पीछे छोड़ कर अपंग के लिए जीने का संकल्प लेते हैं।

निष्कर्ष अतः इस उपन्यास में लेखिका दिव्यांगों की पीड़ा, उनकी अनुभूति को अभिव्यक्त करती है। समाज को यह सूचित करती है कि दिव्यांग जन भी स्वाभिमानी होते हैं, उनका भी अपना व्यक्तित्व और ईमान होता है। ये लोग क्या कुछ नहीं कर सकते बस आवश्यकता है तो सच्चे प्रेम और सम्मान के साथ उनकी भावनाओं को समझने की और बढ़–चढ़ कर उनका साथ देने की। समाज के नेक कर्म का ऐसे लोग ज्यादा इज्जत और सम्मान करते हैं। इसलिए इन्हें भी समाज से उतनी ही इज्जत और सम्मान की अपेक्षा होती है, परंतु वर्तमान से कुछ दशक पहले इन्हें हीन और अपशगुन समझा जाता था। फिलहाल वर्तमान में ऐसे घिनौने सोच वाले कम ही देखने को मिलते हैं जो की हमारा परम सौभाग्य है।

संदर्भ सूची :

1. मृदुला सिन्हा – 'ज्यों मेहंदी को रंग' पृष्ठ सं. 123, 124
2. मृदुला सिन्हा – 'ज्यों मेहंदी को रंग' पृष्ठ सं. 124
3. मृदुला सिन्हा – दांपत्य की धूप–छांव।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
Sept. 2025

ISSN : 2395-7115
Page No. : 93-97

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्त्री-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में महिला आत्मकथा लेखन

डॉ. पूजा पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय नवीन महाविद्यालय, रिसली, दुर्ग।

शोध सारांश :

:स्त्री विमर्श' किसी वर्ग विशेष की 'स्त्री' का आन्दोलन नहीं है अपितु प्रत्येक जाति, प्रत्येक वर्ग और समुदाय की स्त्री इसकी धूरी है। सदियों से अपने स्व की अवहेलना, लैंगिक भेदभाव, असमानता और पुरुष वंचना को झेल रही स्त्री आज सामाजिक अस्वीकार और आत्मस्वीकार के दो ध्रुवों के मध्य अपने होने को एक नए ढंग से परिभाषित कर रही है। 'स्त्री विमर्श' की पैरोकार लेखिकाओं ने पुरुषों की दंभी और श्रेष्ठता वृत्ति को अपने लेखन से चुनौती दी है। हिन्दी की समकालीन महिला कथाकार अपनी आत्मकथाओं द्वारा स्त्री के अधिकारों की वकालत करती हैं। स्त्री विरोधी संस्कारों व मूल्यों से मुक्ति की कामना करती हैं तथा अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी आवाज को बुलन्द करती हुई दिखाई देती हैं। वे स्त्री की स्वतंत्रता, निजता, वर्गीय चेतना, स्त्री शिक्षा, स्वालंबन अभिव्यक्ति की आजादी, पुरुष वर्चस्व से मुक्ति आदि प्रधान मुद्दों को अपनी रचनाओं में उठाती हैंय स्वयं के लिए एक सुंदर, संतुलित और सुरक्षित समाज की मांग करती हैं जो उन्हें लिंग और पुरुषवर्चस्व रूपी सस्ते चश्मे से न आँके।

स्त्री विमर्श मूलतः स्त्रियों की सामाजिक, शैक्षणिक आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, आदि बहुविध साम्यता का आन्दोलन है। जिसका प्रारंभिक उपक्रम 'ग्रेट ब्रिटेन' और 'संयुक्त राज्य अमेरिका' से माना जाता है। जिसकी जड़ें अठारहवीं शताब्दी के मानवतावाद एवं औद्योगिक क्रान्ति तक जाती हैं।

स्त्री पीढ़ी दर पीढ़ी वंचित और पीड़ित रही है। संवैधानिक और व्यवहारिक दोनों ही धरातल पर उसे प्रतिबंधित स्वतंत्रता और अधिकार मिले। समय बीतने के साथ ही स्त्री की संघर्ष गाथा और भी लंबी होती चली गई।

सन् 1848 में एलिजाबेथ कैडी स्टैंटन, ल्यूक्रेटिया मॉट तथा अन्य महिलाओं के द्वारा न्यूयार्क शहर के सेनेका फॉल्स में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसे सेनेका फॉल्स कन्वेंशन (Seneca Falls Convention) के नाम से जाना जाता है। यह संयुक्त राज्य अमेरिका में आयोजित पहला महिला अधिकार सम्मेलन था जिसने अमेरिकी महिला मताधिकार आंदोलन की नींव रखी। इसी कन्वेंशन में महिलाओं के अधिकार के समर्थन में एक घोषणा पत्र जारी किया गया। जिसे भावनाओं का घोषणा पत्र नाम दिया गया। घोषणा पत्र में महिलाओं के पक्ष में समान कानूनी व्यवस्था, शैक्षणिक एवं व्यावसायिक अवसर, वोट देने का अधिकार आदि की मांग की गई। नतीजतन यह आन्दोलन उस समय बहुत तेजी से पूरे यूरोप में फैला। अमेरिका ने 1920 में

नारी मताधिकारों की मांग को स्वीकृत कर लिया। बाद में 1946 ई० को संयुक्त राष्ट्र (United Nations) ने महिलाओं की स्थिति पर Commission on the Status of Women & CSW एक प्रमुख वैश्विक निकाय का गठन किया। जिसका उद्देश्य विश्व भर की महिलाओं को एक समान सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक आदि अधिकार दिलाना था। मोटे तौर पर लगभग 1951 ई. से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला–आंदोलन की शुरुआत मानी जा सकती है, जिस समय संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने भारी बहुमत से महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों का नियम पारित किया और पुरुषों और महिलाओं के लिए समान राजनीतिक अधिकार स्थापित किए। 1975 को समूचे विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय महिला–वर्ष के रुप में मनाया गया। संयुक्त राष्ट्र ने महिलाओं पर चार विश्व सम्मेलन आयोजित किए। ये सम्मेलन 1975 में मेक्सिको सिटी, 1980 में कोपेनहेगन, 1985 में नैरोबी और 1995 में बीजिंग में आयोजित किए गए।

भारत आजादी की लड़ाई के साथ ही स्त्री जागरण की लड़ाई भी लड़ रहा था। भारत में स्त्री–विमर्श को जन्म देने का श्रेय 'ताराबाई शिंदे' (1850–1910) को दिया जाता है। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने ही सर्वप्रथम अपनी लेखनी से पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री पर होने वाले अन्याय को व्यक्त किया था। गुजराती ब्राह्मण और विधवा स्त्री विजयलक्ष्मी के द्वारा किए गए भ्रुणहत्या वाले विवाद के सम्बन्ध में निबन्ध 'स्त्री–पुरुष तुलना' लिखकर उन्होंने इस घटना के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया दी थी।

सूसी थारू और के. ललिता के अनुसार "stri purush tulna is probably the first full& fledged and extant feminist argument after the poetry of the bhakti period."[1]

प्रारम्भिक दौर में ताराबाई शिंदे, रमाबाई, अज्ञात हिन्दू महिला, दुखिनी बाला, पंडिता रमाबाई और सावित्री बाई फुले आदि ने अपनी लेखनी और कार्यों से स्त्री–उत्थान, उनकी शिक्षा एवं सामाजिक जागरण के लिए अथक प्रयास किए। इन्होंने सामाजिक कुप्रथाओं, रूढ़ियों, असमानता, पितृसत्तात्मक व्यवस्था की अमानुषिकता के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त किया। पंडिता रमाबाई और सावित्री बाई फुले को एक स्वर में सम्पूर्ण भारतीयों के द्वारा नारीवादी आन्दोलन की प्रणेता या प्रारम्भकर्ता स्वीकारा जाता है। 'स्त्री विमर्श' की पैरोकार लेखिकाओं ने समय–समय पर पुरुषों की दंभी और श्रेष्ठता वृत्ति को अपने लेखन से चुनौती दी है। हिन्दी की महिला कथाकार अपनी आत्मकथाओं के जरिए स्त्री के अधिकारों की वकालत करती हैं। स्त्री विरोधी संस्कारों व मूल्यों से मुक्ति की वे कामना करती हैं तथा अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी आवाज को बुलन्द करती हुईं नजर आ रही हैं।

स्त्री आत्मकथाओं के केंद्र में नारी की स्वतन्त्रता, निजता, वर्गीय चेतना, स्त्री शिक्षा, स्वावलम्बन, अभिव्यक्ति की आजादी, पुरुष वर्चस्व से मुक्ति आदि प्रधान विषय शामिल हैं। डॉ० सरजू प्रसाद मिश्र महिला आत्मकथाओं के सम्बन्ध में लिखते हैं कि, 'इन आत्मकथाओं की सबसे बड़ी सच्चाई यह है कि लेखिका बन जाने पर भी वे नारी शोषण की चक्की के पाटों से मुक्त नहीं हो पाती हैं। पति की स्वार्थपरता एवं विलासी प्रवृत्ति उनके मानसिक जगत को अस्त–व्यस्त कर देती है। कहीं पति का पूँजीपति या सफल व्यवसायी होना उसके लेखकीय विकास में बाधक बन जाता है।'[2]

महिला कथाकारों की आत्मकथाओं में स्त्री जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक पहलू को देखा जा सकता है। हर एक आत्मकथा कहीं न कहीं स्त्री समाज की कुंठा, छटपटाहट और टकराहट को व्यक्त करती है। कृष्णा अग्निहोत्री का अपने सामन्ती विचारधारा वाले दंभी पति से टकराव है। अपनी आत्मकथा (लगता नहीं है दिल

मेरा, और... और औरत) में कृष्णा अपने बहाने स्त्री विमर्श को बखूबी विश्लेषित करती हैं। वे स्त्री और पुरुष सम्बन्ध पर अपने विचार खुलकर रखती हैं। वर्जनाओं और चुप्पियों के सामाजिक माहौल में एक स्त्री की नियति का उन्होंने सटीक विश्लेषण किया है। वे लिखती हैं कि, 'औरत की अभावग्रस्त जिन्दगी ने ही उनमें यह सोच भर दी थी कि औरत बेकार प्राणी है। उनके जीने का कोई उद्देश्य नहीं है। केवल घर व किसी तरह भी पति का साथ निभाना ही उसका वास्तविक महत्व है।'[3]

आत्मकथाएँ 'कस्तूरी कुंडल बसै' और 'गुड़िया भीतर गुड़िया' स्त्री विमर्श के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। जिसकी लेखिका मैत्रेयी पुष्पा हैं। डॉ० दया दीक्षित लिखती हैं कि, 'स्त्री विमर्श के तहत भारतीय ग्रामीण–शहरी समाज के थोथे आडम्बरों, खोखले आदर्शों के बीच स्त्री और उसके सम्मान को बरकरार रखने की तमाम कोशिशों, संघर्षों का खाका है– कस्तूरी कुंडल बसै। किस तरह अपने हक और अस्तित्व की लड़ाई लड़ती हुई एक ग्रामीण स्त्री मामूली से विशिष्ट बनती है। अपने कार्यक्षेत्र की अनियमितताओं और तानाशाहियों से लोहा लेती है और अन्ततः सामाजिक सम्मान और आदर प्राप्त करती है।'[4]

मैत्रेयी स्त्रीत्व की नई परिभाषा गढ़ती हैं। अपनी आत्मकथा में वे विवाह और स्त्री जीवन को लेकर गम्भीरतापूर्वक मनन करती हैं। 'कस्तूरी कुंडल बसै' में वे अपनी माँ की जीवनगाथा द्वारा विधवाओं की स्थिति के साथ ही समाज में स्त्री के लिए मौजूदा तमाम रुढ़ियों पर भी प्रकाश डालती हैं। वे ये कहना चाहती हैं कि अब कस्तूरी किसी कुंडल में कैद नहीं रहेगी। स्त्री की कस्तूरी उसकी शिक्षा, स्वाभिमान और स्वतन्त्रता में निहित है। मैत्रेयी यह सन्देश देना चाहती हैं कि स्त्री की मुक्ति पुरुष से मुक्ति में नहीं अपितु पुरुष से स्वयं को हीन आँकने की ग्रन्थि से मुक्ति में है।

गुड़िया भीतर गुड़िया में मैत्रेयी 'स्त्री विमर्श' को एक और कदम आगे ले जाती हैं। पुरुषवादी सोच स्त्री के प्रत्येक मनचाहे कार्य को कटघरे में खड़ा करती है। मैत्रेयी स्वयं भी कई बार अपने पति के आगे स्वयं को विवश पाती हैं। अपने चरित्र के प्रति अपने पति की नकारात्मक मानसिकता से व्यथित होती हैं। वे लिखती हैं कि, 'मैं कैसे समझाऊँ कि स्त्री का रवैया हर जगह रोमांस का नहीं होता, जैसा की लोग समझ लेते हैं या मानकर चलते हैं।'[5]

अपनी आत्मकथाओं में मैत्रेयी स्त्री–विमर्श की बुनियादी बहसों को उठाकर, उसके एक नवीन पाठ का सृजन करती हुई दिखाई देती हैं। स्त्री अस्मिता और उसके जीवन पर विचार करती हुई वे लिखती हैं कि, 'औरतों को चिड़ियों की तरह किसी भी डाल पर, किसी पेड़ पर, किसी बाग में मनमानी जगह नहीं मिला करती। उनका जीवन चिड़ियों जैसा सरल नहीं होता। मनुष्य के रुप में अगर सबसे कठिन चुनौती भरी जिन्दगी को पाया है तो स्त्री ने। या कुदरत को ही उससे बैर था? या कि सृष्टि के कर्ता–धर्ता की ही कोई साजिश...मादा बनाने के बाद मादा होने की सजा का नाम 'औरत' धर दिया। क्योंकि साथ में दिमाग, दिल और विवेक भी दे दिया।'[6]

रमणिका गुप्ता का मानना है कि स्त्री–पुरुष दोनों ही एक–दूसरे के लिए जरुरी हैं। अतः उन्हें सन्तुलन बनाकर रहना चाहिए। अपनी आत्मकथाएँ 'हादसे' और 'आपहुदरी' में स्त्री की स्थिति, स्त्री–पुरुष विरोध, सामाजिक कुरुपताओं आदि का वे चित्रण करती हैं। वे लिखती हैं कि मैंने केवल स्त्री का साथ नहीं दिया बल्कि एक बहुत बड़े मजदूर वर्ग, किसान समुदाय और दलित–आदिवासियों के हितों के लिए भी संघर्ष किया है। इसलिए यदि मुझे पुरुष विरोधी माना जायेगा तो ये भ्रामक होगा। रमणिका जी ने स्त्री विमर्श पर केवल चर्चा नहीं

की अपितु उसके लिए ठोस एवं सार्थक कदम उठाये। उनकी आत्मकथाएँ इस बात की पुष्टि करती हैं।

'एक कहानी यह भी' की लेखिका मन्नू भंडारी ने तो स्त्रीविमर्श के अन्तर्गत उठाये जाने वाले तमाम प्रश्नों को जीया था। वे उनके लिए महज सवाल नहीं जीवन के यथार्थ थे। यही कारण है कि वे बड़ी ही स्पष्टता एवं तटस्थता के साथ अपने विचारों को रखती हैं। अपनी आत्मकथा में उन्होंने कई स्थलों पर 'स्त्री के वजूद' की चर्चा की है। चाहे वो एक पत्नी, बेटी या फिर एक माँ के रुप में हो। उनके द्वारा लिखा गया उपन्यास 'आपका बंटी' जब प्रकाशित हुआ तो उन्हें कई स्त्रियों के पत्र आए और उनसे एक ही प्रश्न किया गया कि एक माँ होकर 'शकुन' इतनी स्वार्थी कैसे हो सकती है? उसे केवल अपने ही सुख और भविष्य की चिन्ता क्यों है? मन्नू भंडारी इस प्रसंग के सम्बन्ध में लिखती हैं कि, 'आश्चर्य तो मुझे इस बात पर हुआ था कि ये सारे पत्र स्त्रियों ने ही लिखे थे।... आज तो मैं इसे बड़ी शिद्दत के साथ महसूस करती हूँ कि कितनी गहरी जमी हुई है। इन संस्कारों की जड़ें हमारे भीतर। त्याग, सेवा, अपने को होम कर देना, अपने को मिटा देना क्या यही है स्त्रीत्व के गुण... उसकी महानता की कसौटी? क्यों नहीं किसी ने शकुन की तकलीफ को समझा... उसे महसूस किया। ... पुस्तक के रुप में छपने वाली समीक्षाएँ या फिर गोष्ठियों में होने वाली चर्चाएँ, सब जगह बंटी ही छाया रहा। शकुन तो एक तरह से हाशिए में जा पड़ी। उसे अपेक्षित महत्व मिला ही नहीं, जबकि मेरे हिसाब से वह भी उपन्यास का एक महत्वपूर्ण चरित्र है।'[7]

आगे अपनी बात को जारी रखते हुए वे लिखती हैं कि, 'हमसे पहले वाली पीढ़ी की स्त्री का न तो कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता था... न ही कोई स्वतन्त्र पहचान, वह तो मात्र रिश्तों से पहचानी जाती थी। वह किसी की बेटी, पत्नी, माँ, बहिन, चाची, ताई, बुआ, भाभी होती थी। इन रिश्तों से परे भी उसका अपना कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व है... उसका अपना कोई नाम (अस्मिता) भी है, इस बात का उसे कोई बोध तक नहीं था... न उसे, न उसके परिवार के लोगों को, बल्कि कहूँ कि समाज को। लेकिन समय के साथ–साथ शिक्षा, जागरुकता, आर्थिक स्वतन्त्रता और बाहरी दुनिया से बढ़ते रिश्तों ने उसके भीतर इस बोध को जगाया कि रिश्तों से परे भी उसकी अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता है... अपनी अस्मिता है कि वह भी समाज की एक स्वतन्त्र इकाई है। पर, इस बोध के जागते ही सबसे पहली टक्कर उसे रिश्तों से ही लेनी पड़ी, जो अभी तक पूरी तरह कब्जा जमाये बैठे थे।'[8]

स्त्री की जागरुकता का असर उसके दाम्पत्य सम्बन्धों पर निश्चित रुप से पड़ता है। उसे कुछ नये अनुभवों से गुजरना पड़ता है। मन्नू भंडारी लिखती हैं, कि '... पति के वर्चस्व को, उसके श्पति परमेश्वरत्व को चुनौती देते हुए पत्नी ने अपनी आवाज बुलन्द की तो इस सम्बन्ध में भी दरारें पड़ने का सिलसिला शुरु हुआ... टूटने का सिलसिला शुरु हुआ। ऐसा नहीं है कि इस टूटने ने स्त्री को कहीं से नहीं तोड़ा। तोड़ा... बहुत टूटन झेली उसने और कई स्तरों पर झेली, लेकिन एक सीमा तक बरदाश्त करने के बाद जब स्थिति असह्य हो गई तो आखिर उसने स्टैंड लिया और अपने को मुक्त कर लिया। माँ–बाप से कहीं अधिक त्रासदायक होता है, यह सम्बन्ध विच्छेद, क्योंकि उस समय तो अपने मनपसन्द जीवनसाथी के साथ एक सुनहरे भविष्य का नक्शा सामने रहता है। पर इस विच्छेद के बाद तो सामने अकेलेपन का सन्नाटा ही पसरा पड़ा रहता है।'[9]

अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान अपने जीवन के माध्यम से 'स्त्री विमर्श' को एक नया आयाम प्रदान करती हैं। प्रभा एक नारावादी लेखिका थीं। यही कारण है कि स्त्री जीवन को लेकर एक गम्भीर चिन्तन का समावेश उनकी आत्मकथा की विशेषता है। उन्होंने अपने परिवार में अपनी दादी, माँ, बहनों, भाभियों

के जीवन का विश्लेषण बहुत करीब से किया था। वे यह महसूस करती हैं कि स्त्री चाहे कोई भी हो, वह पुरुष के लिए मन बहलाव का साधन है और उसकी सेवा में तत्पर रहना ही उसकी नियति है। वह प्रत्येक स्तर पर दमित और कुंठित होती है। इसका केवल एक कारण प्रभा को समझ में आता है और वो है स्त्री का आर्थिक रुप से दूसरों पर निर्भर होना। ऐसी परिस्थितियों में एक स्त्री ही स्वयं को मुक्त कर सकती है। उनका मानना है कि, 'यह पितृसत्ता आज भी प्रत्येक स्तर पर स्त्री का दलन करती है। अतः स्त्री का मसीहा अन्य कोई नहीं स्त्री स्वयं है।'[10]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि समकालीन महिला कथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से 'स्त्री विमर्श' को एक नया नजरिया दिया है। उन्होंने एक स्वर में स्त्री मुक्ति, स्त्री सशक्तिकरण, स्त्री शिक्षा, स्त्री स्वावलम्बन और स्त्री समानता की वकालत की है। उनका यह मानना है कि स्त्री का स्त्री होना एक प्राकृतिक निर्णय है। स्त्री मात्र उतनी ही नहीं है जितना कि पुरुषों द्वारा उसे परिभाषित किया गया है। एक गुलाम स्त्री से कहीं अधिक योग्य एवं सहयोगी एक सक्षम स्त्री हो सकती है। सीमोन द बोउवार लिखती हैं कि, 'स्त्री स्वाधीनता का अर्थ हुआ कि स्त्री, पुरुष से जिस पारम्परिक सम्बन्ध को निभा रही है, उससे मुक्त हो। हम स्त्री–पुरुष के बीच घटने वाले सम्बन्ध को नहीं नकार रहे हैं। उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होगा और वह पुरुष की होकर भी जियेगी। दोनों अपनी–अपनी स्वायत्तता में एक–दूसरे का अनन्य रुप भी देखेंगे। सम्बन्धों की पारस्परिकता और अन्योन्याश्रिता से चाह, अधिकार, प्रेम और आमोद–प्रमोद के अर्थ समाप्त नहीं हो जाएँगे और न समाप्त होंगे दो संवर्गों के बीच के शब्द देना, प्राप्त करना, मिलन होना बल्कि दासत्व जब समाप्त होगा और वह भी आधी मानवता का, तब व्यवस्था का यह सारा ढोंग समाप्त हो जायेगा। स्त्री पुरुष के बीच का विभेद वास्तव में एक महत्वपूर्ण नई सार्थकता को अभिव्यक्त करेगा।'[11]

स्त्री आत्मकथाकार अपनी आत्मकथाओं में इस बात पर जोर देती हैं कि सामाजिक उत्थान के लिये यह आवश्यक है कि महिलाओं को भी समान अवसर उपलब्ध हों।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. Women writing in india:600 B-c to the early twentieth century, Vol. 02, Edited by Susie Tharu & k. Lalita, pg.no. 222
2. हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथाएं, डॉ. सरजू प्रसाद, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.–30
3. लगता नहीं है दिल मेरा, कृष्णा अग्निहोत्री, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2019, पृष्ठ 26
4. अक्सर (अंक 5), जुलाई सितम्बर– 2008, प्रधान सं. – हेतु भारद्वाज, जयपुर, पृष्ठ संख्या – 56
5. गुड़िया भीतर गुड़िया, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल पेपरबैक्स नई दिल्ली 2014, पृष्ठ संख्या–185
6. कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली 2017, पृष्ठ संख्या–309
7. एक कहानी यह भी, मन्नू भंडारी, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली 2013, पृष्ठ संख्या– 117–118
8. वहीं पृष्ठ संख्या – 118
9. वहीं पृष्ठ संख्या – 119
10. अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, सं. – राजेंद्र यादव, अर्चना वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2001, पृष्ठ संख्या– 194
11. स्त्री उपेक्षिता, द सिमोन बोउवार, अनु. – प्रभा खेतान,हिंदी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली 2002, पृष्ठ संख्या – 473

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 98-103

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी विमर्श : लोक जीवन और साहित्य की अंर्तधारा के संदर्भ में एक अध्ययन

डॉ. चन्द्रशेखर सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

भूमिका :–

भारतीय समाज बहुविध सांस्कृतिक और भाषाई विविधताओं से युक्त है, जिसमें आदिवासी समुदायों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। आदिवासी जीवन प्रकृति–निष्ठ, सामुदायिक और श्रमकेंद्रित रहा है। किंतु उपनिवेशवाद, औद्योगीकरण, शहरीकरण और विकास की आड़ में आदिवासी समाज निरंतर शोषण और विस्थापन का शिकार हुआ है। आदिवासी विमर्श साहित्य और समाजशास्त्र की वह धारा है, जो न केवल आदिवासियों की अस्मिता और अधिकारों को केंद्र में लाती है, बल्कि उनकी मौलिक सांस्कृतिक परंपराओं और जीवन दृष्टि को भी रेखांकित करती है। यह विमर्श 'लोक जीवन' और 'साहित्य' दोनों में समानांतर रूप से विकसित हुआ है और आज साहित्यिक विमर्श का एक सशक्त आधार बन चुका है। भारतीय साहित्य और समाज में आदिवासी विमर्श एक उभरती हुई धारा के रूप में सामने आया है। भारत की जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण हिस्सा आदिवासी समुदायों से संबंधित है, जिनकी अपनी विशिष्ट संस्कृति, भाषा, लोकपरंपरा और जीवन दृष्टि है। आदिवासी समाज सदैव प्रकृति–निष्ठ, सामूहिकता–आधारित और श्रम–केंद्रित रहा है, परंतु ऐतिहासिक रूप से उपनिवेशवाद, औद्योगिकीकरण और विकास की नीतियों के कारण इन्हें शोषण, विस्थापन और उपेक्षा का सामना करना पड़ा। साहित्य में आदिवासी विमर्श का उद्‌भव इसी सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से हुआ। यह विमर्श आदिवासी अस्मिता, अधिकारों, पर्यावरण चेतना और सांस्कृतिक धरोहर को केंद्र में लाता है। विशेष रूप से लोकजीवन और साहित्य की अंतर्धाराओं में आदिवासी संस्कृति के अनेक पहलू प्रकट होते हैं–जैसे उनके मिथक, लोकगीत, गाथाएँ, कहानियाँ और लोककथाएँ। आदिवासी विमर्श केवल शोषण की कथा नहीं है, बल्कि यह उनके प्रतिरोध, आत्मसम्मान और जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति भी है। साहित्यकारों–चाहे वे स्वयं आदिवासी हों या बाहरी दृष्टि से लिख रहे हों–ने इस विमर्श को समृद्ध किया है। इस प्रकार, आदिवासी विमर्श हमें यह समझने का अवसर देता है कि भारतीय साहित्य की व्यापक धारा में आदिवासी संस्कृति और जीवन दृष्टि एक महत्वपूर्ण और अविभाज्य हिस्सा है। भारतीय समाज बहुस्तरीय और बहुआयामी संरचना का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें आदिवासी समुदायों का स्थान विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण है। भारतीय जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या का एक बड़ा प्रतिशत आदिवासी समूहों से संबंधित है, जिनकी अपनी भिन्न सांस्कृतिक परंपराएँ, भाषिक विविधताएँ

और जीवन दृष्टियाँ हैं। ये समुदाय परंपरागत रूप से प्रकृति–केंद्रित जीवन–पद्धति का निर्वाह करते आए हैं, जिसमें सामुदायिकता, श्रम–संस्कृति, और प्रकृति के साथ गहरा सामंजस्य विद्यमान है।

इतिहास साक्षी है कि औपनिवेशिक शासन, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और तथाकथित 'विकास' की नीतियों ने आदिवासी समाज को विस्थापन, शोषण और उपेक्षा की परिस्थितियों में धकेल दिया। फलस्वरूप उनकी सांस्कृतिक पहचान और अस्मिता संकट में पड़ गई। इसी संदर्भ में ष्आदिवासी विमर्शष साहित्यिक और सामाजिक विमर्श का महत्त्वपूर्ण आयाम बनकर उभरा है।

आदिवासी विमर्श का लक्ष्य केवल आदिवासी समाज के दुःख–दर्द और शोषण की अभिव्यक्ति करना नहीं है, बल्कि उनकी जीवन–दृष्टि, पर्यावरण–चेतना, सामुदायिकता और सांस्कृतिक धरोहर को मुख्यधारा के साहित्य और विमर्श में स्थापित करना है। यह विमर्श साहित्य की उस धारा का प्रतिनिधित्व करता है जो 'हाशिए' पर रखे गए समुदायों की आवाज को 'केंद्र' तक पहुँचाने का प्रयास करती है।

लोकजीवन और साहित्य की अंतर्धाराओं में आदिवासी संस्कृति विशेष रूप से परिलक्षित होती है। आदिवासी लोकगीत, कथाएँ, मिथक और गाथाएँ न केवल उनके जीवन–संघर्ष का सजीव चित्र प्रस्तुत करती हैं, बल्कि सामाजिक संरचना, लिंग–समानता, पर्यावरणीय संतुलन और सामूहिक सहयोग जैसे मूल्यों को भी व्यक्त करती हैं। आधुनिक साहित्यकारों–विशेषकर महाश्वेता देवी, रामदयाल मुण्डा, नंदलाल मेघ और अन्य आदिवासी लेखकों ने इन परंपराओं और संघर्षों को साहित्यिक विमर्श में स्थापित कर आदिवासी अस्मिता को एक प्रामाणिक स्वर प्रदान किया है।

अतः, आदिवासी विमर्श भारतीय साहित्य को एक नया दृष्टिकोण प्रदान करता है, जिसके माध्यम से हम न केवल आदिवासी समाज की सांस्कृतिक विरासत को समझ सकते हैं, बल्कि आधुनिकता, विकास और पर्यावरणीय संकट जैसे मुद्दों पर पुनर्विचार करने के लिए भी प्रेरित होते हैं।

शोध उद्देश्य :–

आदिवासी लोकजीवन की विशेषताओं का अन्वेषण करना – आदिवासी समुदायों की परंपराओं, रीति–रिवाजों, मिथकों, लोकगीतों और सांस्कृतिक धरोहरों का अध्ययन करना।

साहित्य में आदिवासी विमर्श की उपस्थिति का विश्लेषण करना – यह देखना कि किस प्रकार आदिवासी अस्मिता, संघर्ष और प्रतिरोध साहित्य में अभिव्यक्त होते हैं।

आदिवासी और गैर–आदिवासी लेखकों की दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना – यह समझना कि आदिवासी जीवन के चित्रण में अनुभव–जन्य (insider) और बाहरी (outsider) दृष्टिकोण में क्या भिन्नताएँ हैं।

प्रकृति और पर्यावरण चेतना की भूमिका का मूल्यांकन करना – आदिवासी साहित्य एवं लोकपरंपरा में प्रकृति, पारिस्थितिकी और पर्यावरणीय संतुलन की अवधारणाओं को रेखांकित करना।

अस्मिता और अधिकारों की खोज को समझना – आदिवासी विमर्श में जातीय पहचान, सामाजिक न्याय और राजनीतिक अधिकारों के प्रश्नों को स्पष्ट करना।

समीक्षा साहित्य :–

आदिवासी विमर्श पर उपलब्ध साहित्य का अवलोकन यह दर्शाता है कि बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से इस क्षेत्र में गहन अकादमिक और साहित्यिक रुचि विकसित हुई है। विभिन्न विद्वानों, साहित्यकारों और

समाजशास्त्रियों ने आदिवासी समाज के सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं पर विचार किया है।

महाश्वेता देवी की कृतियाँ (अरण्येर अधिकार, हजार चौरासी की माँ, अग्निगर्भ) आदिवासी विमर्श की सबसे प्रखर अभिव्यक्तियों में मानी जाती हैं। उन्होंने संथाल और अन्य आदिवासी समुदायों के संघर्ष को प्रतिरोध और अस्मिता के रूप में साहित्य में चित्रित किया।

रामदयाल मुण्डा और रामकुमार मुंडा जैसे आदिवासी विद्वानों ने आदिवासी समाज की मौखिक परंपराओं, लोकगीतों और मिथकों को दस्तावेजी रूप देकर उन्हें साहित्यिक विमर्श में स्थापित करने का प्रयास किया। उनका कार्य आदिवासी दृष्टिकोण से किए गए लेखन का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

नंदलाल मेघ ने आदिवासी जीवन की कठिनाइयों और सामाजिक संरचना पर केंद्रित लेखन किया है, जिसमें अस्मिता, सांस्कृतिक पुनर्निर्माण और सामाजिक न्याय की धारा प्रकट होती है।

हिंदी साहित्य में मुक्तिबोध और रघुवीर सहाय जैसे कवियों ने आदिवासी जीवन की पीड़ा और शोषण को वर्ग–संघर्ष और सामाजिक अन्याय के व्यापक संदर्भ में समझने का प्रयास किया।

गणेश देवी ने अपने भारतीय भाषाओं के जन साहित्य संबंधी कार्यों में आदिवासी और लोक साहित्य की परंपरा को संरक्षित करने और उनकी भाषा–संस्कृति को साहित्यिक पहचान दिलाने का प्रयास किया है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से वेरियर एल्विन (Verrier Elwin) की कृतियाँ विशेष महत्व रखती हैं। उन्होंने आदिवासी जीवन के सामाजिक–सांस्कृतिक पहलुओं का गहन अध्ययन कर यह सिद्ध किया कि आदिवासी समाज की जीवन–पद्धति भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है।

गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक और हॉमी के. भाभा जैसे उत्तर–औपनिवेशिक चिंतकों के विचार भी अप्रत्यक्ष रूप से आदिवासी विमर्श से जुड़े हैं। वे बताते हैं कि हाशिये पर स्थित समुदायों की आवाज को मुख्यधारा तक लाना एक बौद्धिक और राजनीतिक कार्य है।

प्रमुख निष्कर्ष :

अध्ययन के आधार पर आदिवासी विमर्श, लोकजीवन और साहित्य की अंतर्धाराओं से संबंधित निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं :

1. **प्रकृति–केंद्रित जीवन–दृष्टि :** आदिवासी समाज का संपूर्ण जीवन प्रकृति पर आधारित है। उनकी लोककथाएँ, गीत, मिथक और अनुष्ठान पर्यावरणीय संतुलन, प्राकृतिक संसाधनों के सम्मान और सामूहिक उपयोग की चेतना को रेखांकित करते हैं।
2. **सामूहिकता और समानता का भाव :** आदिवासी लोकजीवन में सामूहिक श्रम, समानता और परस्पर सहयोग प्रमुख मूल्य हैं। स्त्री–पुरुष संबंध अपेक्षाकृत अधिक समानतामूलक दिखाई देते हैं।
3. **शोषण और प्रतिरोध का साहित्यिक स्वर :** साहित्य में आदिवासी विमर्श उनके भूमि–हरण, विस्थापन और शोषण की व्यथा को व्यक्त करता है। साथ ही, यह प्रतिरोध और अस्मिता की खोज की कथा भी है, जिससे आदिवासी समाज का संघर्ष साहित्यिक रूप से सजीव हो उठता है।
4. **लोकपरंपराओं का संरक्षण और पुनर्जीवन :** आदिवासी मौखिक परंपराएँ जैसे लोकगीत, गाथाएँ, कथाएँ और मिथक आधुनिक साहित्य में महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में प्रयुक्त हो रहे हैं। ये उनकी सांस्कृतिक निरंतरता और पहचान के वाहक हैं।

5. **आदिवासी लेखन की प्रामाणिकता :** जब आदिवासी लेखक स्वयं अपनी संस्कृति, अनुभव और संघर्ष को लिखते हैं तो विमर्श अधिक प्रामाणिक, आत्मीय और जीवंत स्वरूप ग्रहण करता है। इससे 'बाहरी दृष्टि' और 'आंतरिक दृष्टि' का भेद स्पष्ट होता है।

6. **साहित्य में नई अंतर्धारा का निर्माण :** आदिवासी विमर्श ने भारतीय साहित्य को एक नई अंतर्धारा प्रदान की है, जिसमें हाशिए पर स्थित समाज की आवाज को स्थान मिला है। यह साहित्यिक प्रवृत्ति दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और उत्तर–औपनिवेशिक विमर्श से संवाद स्थापित करती है।

7. **समकालीन प्रासंगिकता :** वर्तमान समय में जब विकास और औद्योगिकीकरण के नाम पर आदिवासी समाज पुनः विस्थापित हो रहा है, तब उनका साहित्य और विमर्श सामाजिक न्याय, पर्यावरणीय संतुलन और सांस्कृतिक विविधता की रक्षा का महत्त्वपूर्ण साधन बनता है।

निष्कर्ष :–

आदिवासी विमर्श हमें भारतीय समाज और साहित्य की उस अंतर्धारा से परिचित कराता है जिसे लंबे समय तक उपेक्षित किया गया। यह विमर्श स्पष्ट करता है कि विकास और आधुनिकता के नाम पर आदिवासी जीवन मूल्यों को नकारना दरअसल एक सांस्कृतिक हानि है। साहित्य में आदिवासी विमर्श उनकी अस्मिता, अधिकारों और सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने का माध्यम है। इस विमर्श के जरिए हम यह सीखते हैं कि 'लोक जीवन' केवल गाँव या किसानों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें आदिवासी समाज की समृद्ध सांस्कृतिक परंपराएँ और उनकी जीवन दृष्टि भी शामिल हैं। इसलिए, आदिवासी विमर्श आज न केवल साहित्यिक बहस का हिस्सा है, बल्कि पर्यावरण, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक विविधता को समझने का भी आधार है।

आदिवासी विमर्श भारतीय समाज और साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण और अपरिहार्य धारा के रूप में उभरा है। आदिवासी समुदाय, जो लंबे समय तक उपेक्षित और हाशिए पर रहे, अपने लोकजीवन, सांस्कृतिक परंपराओं और साहित्यिक अभिव्यक्तियों के माध्यम से आज नई पहचान और अस्मिता प्राप्त कर रहे हैं। उनका जीवन–दर्शन प्रकृति–निष्ठ, सामूहिकता–आधारित और पर्यावरण–संवेदनशील है, जो आधुनिक उपभोक्तावादी जीवन–पद्धति के लिए एक वैकल्पिक दृष्टि प्रस्तुत करता है।

साहित्य में आदिवासी विमर्श केवल शोषण और विस्थापन की कथा नहीं है, बल्कि यह प्रतिरोध, आत्मसम्मान और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का भी साहित्य है। मौखिक परंपराओं, लोकगीतों, मिथकों और कथाओं से लेकर समकालीन आदिवासी लेखकों की आत्माभिव्यक्ति तकक्यह विमर्श हमें भारतीय साहित्य की बहुलता और समृद्धि का परिचय कराता है।

आदिवासी विमर्श की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इसने हाशिए पर स्थित आवाजों को साहित्य के केंद्र में लाने का कार्य किया है। यह विमर्श हमें केवल अतीत को समझने में ही नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए सामाजिक न्याय, पर्यावरणीय संतुलन और सांस्कृतिक विविधता की रक्षा हेतु भी प्रेरित करता है।

अतः, कहा जा सकता है कि आदिवासी विमर्श न केवल साहित्यिक प्रवृत्ति है, बल्कि यह एक सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन भी है, जिसकी अंतर्धाराएँ लोकजीवन और साहित्य दोनों को समृद्ध बनाती हैं और भारतीय समाज को अधिक समावेशी एवं न्यायपूर्ण दिशा प्रदान करती हैं।

सुझाव :–

अध्ययन के आधार पर आदिवासी विमर्श को और अधिक सशक्त बनाने तथा लोकजीवन और साहित्य की अंतर्धाराओं को संरक्षित करने हेतु निम्नलिखित सुझाव हैं :

1. **आदिवासी भाषाओं और मौखिक परंपराओं का संरक्षण :** आदिवासी लोकगीत, मिथक, कथाएँ और कहावतें उनकी सांस्कृतिक अस्मिता का प्रमुख आधार हैं। इन्हें दस्तावेजीकरण, अनुवाद और शैक्षिक पाठ्यक्रम में शामिल कर संरक्षित करना आवश्यक है।
2. **आदिवासी लेखन को प्रोत्साहन :** आदिवासी समुदाय से आने वाले लेखकों, कवियों और शोधार्थियों को प्रकाशन, अनुवाद और शोधवृत्तियों (फेलोशिप) के माध्यम से प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि उनकी दृष्टि से साहित्य और अधिक प्रामाणिक स्वरूप ग्रहण कर सके।
3. **शोध एवं अकादमिक विमर्श का विस्तार :** विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों में आदिवासी अध्ययन (Tribal Studies) और आदिवासी साहित्य पर केंद्रित पाठ्यक्रम विकसित किए जाएँ ताकि इस विषय पर गंभीर शैक्षिक विमर्श हो सके।
4. **सामाजिक न्याय और नीति-निर्माण में भागीदारी :** आदिवासी विमर्श केवल साहित्य तक सीमित न रहकर नीति–निर्माण और विकास–योजनाओं में भी प्रभावी भूमिका निभाए। इससे विस्थापन, भूमि–अधिकार और पर्यावरणीय संकट से जुड़े मुद्दों का समाधान संभव हो सकेगा।
5. **पर्यावरणीय चेतना का प्रसार :** आदिवासी जीवन–दर्शन प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण का महत्त्वपूर्ण संदेश देता है। इसे समकालीन समाज और शिक्षा प्रणाली में समाहित करना आवश्यक है।
6. **सांस्कृतिक आदान-प्रदान और संवाद :** मुख्यधारा समाज और आदिवासी समाज के बीच संवाद को बढ़ावा देने हेतु साहित्यिक उत्सवों, संगोष्ठियों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।
7. **डिजिटल माध्यम का उपयोग :** आदिवासी साहित्य और संस्कृति को संरक्षित और प्रसारित करने के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म (ई–लाइब्रेरी, पॉडकास्ट, डॉक्यूमेंट्री, ऑनलाइन आर्काइव) का प्रयोग किया जाए, ताकि युवा पीढ़ी उससे जुड़ सके।

References (APA Style) :

1. Devi, M. (1995). Aranyer Adhikar. Kolkata: Karuna Prakashani.
2. Devi, M. (1997). Imaginary Maps (Translated by Gayatri Chakravorty Spivak). Calcutta: Thema.
3. Elwin, V. (1964). The Tribal World of Verrier Elwin: An Autobiography. Oxford University Press.
4. Elwin, V. (1992). Religion of an Indian Tribe. New Delhi: Oxford University Press.
5. Munda, R., & Munda, R. K. (2007). The Tribal Worldview. New Delhi: Concept Publishing.
6. Megh, N. L. (2010). Adivasi Sahitya: Swaroop aur Samvedna. New Delhi: Vani Prakashan.
7. Devi, G. N. (2011). After Amnesia: Tradition and Change in Indian Literary Criticism. New Delhi: Orient Blackswan.

8. Spivak, G. C. (1988). Can the Subaltern Speak? In C. Nelson & L. Grossberg (Eds.), Marxism and the Interpretation of Culture (pp. 271–313). Urbana: University of Illinois Press.
9. Bhabha, H. K. (1994). The Location of Culture. London: Routledge.
10. Xaxa, V. (2008). State, Society, and Tribes: Issues in Post-Colonial India. New Delhi: Pearson Education.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 104-109

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Dalit Discourse and Caste Representation in Francophone Literary Spaces

Ravi Shankar Kumar
Assistant Professor in French,
Arignar Anna Govt. Arts and Science College, Karaikal, Puducherry.

Abstract :

This paper investigates the discreet yet resonant infusion of Dalit discourse into French-language literary narratives, focusing on how authors and translators engage with themes of caste, systemic inequality, and social rupture. Through close textual analysis, the study foregrounds the ethical and aesthetic dimensions of representing historically marginalized voices within transnational frameworks.

Central to this inquiry is the role of translation as a site of cultural mediation and resistance. French renditions of Indian novels that foreground Dalit experiences serve not only to document the brutal realities of caste oppression but also to transmit the emotional and political urgency of these narratives to Francophone audiences. These translated texts invite comparison with other Francophone traditions of resistance literature, revealing stylistic affinities and thematic convergences that underscore literature's capacity to forge solidarities across linguistic and cultural boundaries.

By tracing the interplay between testimonial agency, narrative ethics, and transcultural translation, this paper contributes to broader conversations on literary representation, and the politics of voice. It ultimately argues for a more nuanced understanding of how Dalit resistance is articulated, mediated, and received within the Francophone world.

Keywords : Dalit Resistance, Transcultural Translation, Narrative Ethics, Francophone, Engagement, Caste Representation.

The literary articulation of Dalit experiences has long been anchored in Indian vernacular and English-language writings, where voices from the margins confront caste-based oppression with urgency and clarity. Yet beyond the borders of the subcontinent, traces of Dalit discourse have quietly permeated other linguistic and cultural terrains—including the Francophone literary world. In French-

language novels, the presence of Dalit narratives may not be overt or frequent, but it is nonetheless significant. These representations often surface through politically engaged storytelling, testimonial fragments, or symbolic metaphors that evoke exclusion, displacement, and resistance.

Such literary gestures, though subtle, reflect a growing transnational awareness of caste as a system of social stratification and injustice. They invite readers to consider how the Dalit condition—historically rooted in South Asian contexts—can resonate within broader frameworks of marginality, colonial legacy, and human rights. Whether through direct references or allegorical parallels, these texts contribute to a global conversation on dignity, identity, and the politics of voice.

For instance, the works of Patrick Chamoiseau, a prominent Francophone author from Martinique, often delve into themes of colonialism and social marginalization, which can be read in parallel with Dalit experiences. His novel *Texaco* portrays the struggles of a marginalized community in Martinique, drawing parallels to the resilience and resistance of Dalit communities. Similarly, Maryse Condé's *Segu* explores the complexities of identity, power, and systemic oppression in 19th-century Africa, resonating with the Dalit quest for dignity and justice. In the realm of French literature, Édouard Glissant's *Poetics of Relation* offers a philosophical lens through which the interconnectedness of marginalized histories—including those of Dalits—can be understood.

This article undertakes a comparative exploration of two distinct categories of novels that engage with Dalit themes within the Francophone literary sphere. The first category comprises original works written in French that address Dalit issues, offering direct narrative interventions within the linguistic and cultural framework of Francophone literature. The second category encompasses novels translated into French from Indian languages, wherein Dalit experiences are mediated through the process of linguistic and cultural translation. By examining both original and translated texts, the article seeks to illuminate the nuances of representation, voice, and reception in the transnational circulation of Dalit narratives.

1. **Committed Francophone Literature on Dalit discourse :** The intersection of committed Francophone literature and Dalit discourse is a compelling and evolving field that bridges linguistic, cultural, and political terrains. Here's a detailed overview of how these two domains engage with each other.

"Dans la peau d'un intouchable" ["In the Skin of an Untouchable"] by Marc Boulet is a gripping and immersive account published in 1995, in which French journalist Marc Boulet undertakes a radical experience: living like an untouchable in India to understand their daily lives and denounce their condition. *Dans la peau d'un intouchable* is a unique account, but also an uncompromising portrait of modern India, which remains largely governed by the caste system, despite its constitutional

abolition.

After learning Hindi, having his skin darkened, and his hair dyed, Marc Boulet spent several weeks with the beggars and untouchables of Benares, India. He begged alongside them, shared their plight, and suffered the same humiliations. In this book, he recreates the notes he took during those long weeks.

Additionally, Marc Boulet's *Dans la peau d'un intouchable* provides a unique perspective by immersing readers in the lived experiences of Dalits through the author's firsthand account of life as an 'untouchable' in India. Boulet's narrative strategy of immersive journalism allows readers to viscerally experience the systemic injustices faced by Dalits, while his thematic focus on human dignity and resilience underscores the universal relevance of caste-based struggles. By blending personal testimony with broader social critique, Boulet crafts a narrative that is both intimate and impactful, bridging the gap between individual experience and collective awareness. This work bridges the gap between personal testimony and broader social critique, offering an intimate yet impactful exploration of caste dynamics.

It will be better to discuss the context and approach of Marc Boulet's *Dans la peau d'un intouchable*. We find the major points of the book regarding the context and approach.

Context and approach :

- Marc Boulet disguised himself as an untouchable : he learned Hindi, darkened his skin and hair, and invented an identity for himself under the name of Ràm Mundà.
- He lived for several months in Benares, sharing the life of the poorest, sleeping in the streets, begging, and eating on the ground.
- His objective: to experience the misery and contempt suffered by members of the Dalit caste considered impure, despite the official abolition of discrimination by the Indian Constitution in 1947.

The book has covered majorly the following topics.

Topics covered :

- **Material poverty** : Boulet describes the untouchables as living in filth, poorly fed, and often beaten by the police.
- **Social exclusion**: They are rejected by society, considered as "human dust".
- **Unapologetic Voyeurism**: Some critics feel that the book, while powerful, can be perceived as voyeuristic in its depiction of suffering.

The style and reception of the book is unique. We find the following important points.

Style and reception :

- The book is written in a documentary and introspective style, mixing sociological observation and personal feelings.
- It has been praised for its boldness and authenticity, but also criticized for the discomfort it can cause in the reader.

After engaging firsthand with the social realities of untouchability as portrayed in Marc Boulet's account, we encounter a unique perspective: that of a French author who, though not a native of India, chose to immerse himself in the lived experience of Dalits by adopting the life of a beggar in Benares. His ethnographic approach offers an outsider's embodied understanding of caste-based marginalization. Alongside this narrative, we also examine the testimonies of Indian Dalits who have directly endured untouchability. These accounts, originally written in Indian languages, have been translated into French, allowing us to explore how lived experiences of oppression are mediated across linguistic and cultural boundaries.

2. **Dalit Literature in French Translation :**

Earlier, we explored the Dalit experience as portrayed by a French writer. Now, we turn our attention to Dalit literature that has been translated into French from various Indian languages. Before delving into the details, it is worthwhile to glance at a curated selection of notable Dalit literary works available in French translation—offering a compelling cross-cultural perspective on caste, resistance, and testimonial expression.

Karukku, originally written in Tamil in 1992 by Bama. In French, it is translated by Véronique Roulon in 2000 and published by *Éditions Kailash*. A landmark Dalit feminist autobiography that critiques caste and religious hypocrisy. This was one of the earliest Dalit texts translated into French and remains foundational. When *Karukku* was first published in Tamil in 1992, it was met with resistance from mainstream Tamil literary circles. Bama's candid critique of casteism within Christianity and her raw narrative style were considered unconventional and even controversial.

The French translation of *Sangati* by Bama was done by Josiane Racine. It was published by Éditions de l'Aube in 2005. This translation brings Bama's powerful Dalit feminist narrative to Francophone audiences, highlighting the struggles and resilience of Dalit women in Tamil Nadu. Racine's work is praised for preserving the raw, unfiltered voice of Bama, making it a valuable contribution to global resistance literature.

Joothan, originally written in Hindi by Omprakash Valmiki, was translated into French by Francis Evrielle under the title *Joothan: Une autobiographie d'un Intouchable*, and published in 2018 by L'Asiathèque – Maison des langues du monde. This influential Dalit autobiography has resonated across linguistic and cultural boundaries, offering a powerful testimony of caste-based

oppression. Valmiki recounts his lived experience of systemic discrimination and humiliation within Indian society, rooted in his caste identity. The narrative vividly portrays the multifaceted consequences of this oppressive social order—manifesting not only in economic and social marginalization but also in profound psychological trauma endured by Dalit communities.

Anthologie de la littérature dalit, published by L'Asiathèque – Maison des langues du monde in 2019, is a landmark French-language collection that brings together translated excerpts from foundational Dalit writings across India. The anthology features a rich selection of prose and poetry rendered into French from various Indian languages, offering readers access to the diverse literary expressions of Dalit communities. Edited by a collective of scholars and translators, including Isabelle Ratié and Véronique Roulon-Doko, the volume provides a rare and resonant glimpse into the voices of historically marginalized authors, foregrounding themes of resistance, identity, and social justice.

Pour une poignée de ciel : Poèmes au nom des femmes dalit is a groundbreaking bilingual anthology (Hindi–French) published in 2020 by Éditions Bruno Doucey. Curated and translated by Jiliane Cardey, with a preface by Nathacha Appanah, this collection marks the **first** publication of Dalit poetry in France, offering a powerful literary platform to voices long silenced by caste and gender oppression.

The French translation of *Baluta* by Daya Pawar, titled *Ma vie d'intouchable*, was published by Éditions La Découverte in 2007. Translated by Jean-Luc Proffit and Madhuri Purandare, this edition offers a poignant and socially incisive interpretation of Pawar's original Marathi autobiography. It vividly conveys the harsh realities of caste discrimination while preserving the poetic resilience that defines the author's voice. Notable for its fidelity to the emotional and cultural depth of the original, the translation also succeeds in making Pawar's powerful narrative accessible to Francophone readers. Here I have mention six books based on Dalit discourse which are translated into French. There are many more books which advocate the right of Dalit and narrate the plight of the Dalits. Now I would like some examples of the translation how French version varies from the original texts.

Conclusion :

While Dalit voices have long found powerful expression within Indian literary traditions, their resonance extends beyond national boundaries, echoing through select French-language novels and translations. These works often adopt politically engaged forms—ranging from testimonial narratives to metaphors of exclusion—that foreground the lived experiences of caste-based marginalization. The translation of Dalit literature into French not only bridges linguistic and cultural divides but also amplifies the ethical urgency of these narratives, offering Francophone readers a window into the complex realities of systemic discrimination and social oppression in India. Through this translingual

engagement, Dalit literature asserts its place within global discourses of resistance, dignity, and human rights, challenging dominant paradigms and inviting a reimagining of literary representation itself. In this way, translation becomes both a mode of solidarity and a site of critical reflection, deepening our understanding of the politics of voice, visibility, and justice.

Bibliography :

1. ABRAHAM, Joshil K. (Editor), MISRAHI-BARAK, Judith, (Editor), *Dalit Literatures in India*, Routledge India; 2nd edition, 2018
2. BOULET, Marc, Dans la peau d'un Intouchable, publication : E?ditions du Seuil, Paris, 1995
3. CARDEY,Jiliane, (trans.) *Pour une poignée de ciel : Poèmes au nom des femmes dalit*, publication : Éditions Bruno Doucey, Paris, 2020
4. ÉVRIELLE, Francis, (trans.) *Joothan: Une autobiographie d'un Intouchable*, publication : L'Asiathèque – Maison des langues du monde, Le Pré-Saint-Gervais, France, 2018
5. RACINE, Josiane, (trans.) *Sangati* , publication :Éditions de l'Aube, Alpes-Côte d'Azur France, 2005
6. RENAULT, Stéphane (editor), *Anthologie de la littérature dalit*, publication : L'Asiathèque – Maison des langues du monde, Le Pré-Saint-Gervais, France, 2019
7. ROULON, Véronique (trans.), *Karukku*, publication : *Éditions Kailash*, Paris, 2000
8. PROFFIT,Jean-Luc, PURANDARE, Madhuri (trans.) *Ma vie d'intouchable*, Éditions La Découverte, Paris, 2007
9. TELTUMBDE, Anand, *Dalits: Past, Present and Future*, Routledge; Second edition, 2020

Sitography :

Pour une poignée de ciel : Poèmes au nom des femmes dalit - Babelio

Pour une poignée de ciel – Poèmes au nom des femmes dalit – Editions Bruno Doucey

https://asialyst.com/fr/2019/01/18/litterature-inde-intouchable-fier-valmiki-castes/

Ma vie d'intouchable - Daya Pawar - Éditions La Découverte

Mob-8802791242

Email- ravishanjnu@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 110-112
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Comparative Study on the Effect of Interval Training and Regular Practice on Basketball Performance

Mr. Sandeep Battar
Faculty of Physical Education, Tanita University, Sri Ganganagar (Rajasthan)

Abstract :

This study investigates the comparative effect of interval training and regular practice on the performance of college basketball players. Basketball is a high-intensity sport that requires repeated bursts of speed, agility, and endurance. Interval training, which alternates between high-intensity exercise and rest, has been identified as a highly effective training method for improving both aerobic and anaerobic capacity.

A total of 30 male basketball players aged 18–23 years were selected and divided into experimental (n=15) and control (n=15) groups. The experimental group underwent an 8-week interval training program, while the control group followed regular basketball practice sessions. Performance was measured through the Cooper 12-minute run test and game-specific performance indicators before and after training. Findings revealed that interval training resulted in greater improvement in cardiovascular endurance and performance compared to regular practice. The study concludes that interval training is more effective than routine practice in enhancing basketball performance.

Keywords : Interval Training, Regular Practice, Basketball, Cardiovascular Endurance, Athletic Performance

Introduction :

Basketball is a fast-paced, intermittent sport that requires a blend of aerobic endurance, anaerobic capacity, agility, and explosive strength. Players must repeatedly perform sprints, jumps, and defensive movements throughout a match. Therefore, cardiovascular endurance and efficient energy system utilization are essential for maintaining high performance.

Interval training alternates high-intensity activity with rest or low-intensity recovery and is widely used to improve aerobic and anaerobic conditioning. Regular basketball practice, while beneficial, may not always provide the specific intensity required to maximize endurance gains. This

study aims to compare the effects of interval training with routine basketball practice on cardiovascular endurance and overall performance of college players.

Objectives of the Study :

- To compare the effects of interval training and regular practice on basketball players' cardiovascular endurance.
- To examine improvements in basketball performance indicators following training.
- To recommend evidence-based training strategies for basketball coaches.

Hypothesis :

- **H? (Null Hypothesis) :** There is no significant difference between interval training and regular practice on basketball performance.
- **H? (Alternative Hypothesis) :** Interval training is more effective than regular practice in improving cardiovascular endurance and basketball performance.

Methodology :

Sample : 30 male college basketball players (aged 18–23 years) from Tanita University were selected randomly.

Design :

- **Experimental Group (n=15):** Participated in an 8-week structured interval training program along with basketball drills.
- **Control Group (n=15):** Continued regular basketball practice without additional interval training.

Training Protocol :

- Duration : 8 weeks
- Frequency : 4 sessions per week
- Activities : Sprint intervals (200–400m), court-based shuttle runs, repeated sprints with recovery periods.
- Repetitions : 6–8 per session with progressive overload.

Tests Used :

- **Cooper's 12-Minute Run Test** (for cardiovascular endurance)
- **Game-specific indicators** such as sprint recovery, defensive movements, and shooting accuracy.

Statistical Analysis : Mean, Standard Deviation, and t-test were applied. Level of significance: 0.05.

Results and Discussion

Group	Test	Mean Score (Pre-test)	Mean Score (Post-test)	Improvement (%)
Experimental (Interval Training)	Cooper 12-min Run	2200 m	2500 m	13.6%
Control (Regular Practice)	Cooper 12-min Run	2190 m	2280 m	4.1%

The experimental group (interval training) demonstrated significantly greater improvement compared to the control group (regular practice).

- **Experimental Group :** Cardiovascular endurance improved by approximately 13.6%, and noticeable improvements were recorded in recovery time and overall performance indicators.
- **Control Group:** Showed minor improvements (~4.1%) attributed to routine practice.

The results indicate that interval training is superior to regular practice in enhancing endurance and game-specific performance in basketball. This aligns with previous studies showing the effectiveness of interval-based conditioning in team sports.

Conclusion :

The study concludes that interval training is significantly more effective than regular practice in improving cardiovascular endurance and overall performance of basketball players. Coaches should integrate structured interval training alongside regular practice sessions to maximize player fitness and competitive performance.

Recommendations :

- Coaches should incorporate interval training into basketball training schedules.
- Future studies should include both male and female players for broader applicability.
- Long-term comparative research is needed to assess sustained effects on match performance.

References :

1. Bangsbo, J. (2015). *Fitness Training in Soccer and Basketball*. Human Kinetics.
2. Fox, E. L., Bowers, R. W., & Foss, M. L. (2011). *The Physiological Basis for Exercise and Sport*. McGraw-Hill.
3. Kenney, W. L., Wilmore, J. H., & Costill, D. L. (2015). *Physiology of Sport and Exercise*. Human Kinetics.
4. Reilly, T., & Williams, A. M. (2012). *Science and Basketball: Applying Sport Science Principles*. Routledge.
5. Sharma, V. (2020). Effect of Interval Training on the Endurance of University Basketball Players. *International Journal of Physical Education and Sports Sciences*, 8(2), 45–53.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 113-118
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी का दलित साहित्य : एक अध्ययन

डॉ. कंचन आर्या
सहा. प्राध्यापक (अतिथि व्याख्याता) हिंदी विभाग डी.एस.बी.
परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)

सार :–

दलित साहित्य, हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो दलितों के अनुभवों, संघर्षों और सामाजिक न्याय की लड़ाई को अभिव्यक्त करता है। दलित साहित्य हिंदी साहित्य का एक सशक्त विमर्श है। यह परंपरागत साहित्य के मानदंडों का विरोध करता है। यह भेदभाव के खिलाफ एक आवाज है और समानता व न्याय पर आधारित समाज की स्थापना का आह्वाहन करता है। दलित विमर्श आज के युग में एक ज्वलंत मुद्दा है। भारतीय साहित्य में इसकी मुखर अभिव्यक्ति हो रही है। दलित साहित्य को लेकर कई लेखक संगठन बन चुके हैं। स्वाभाविक रूप से साहित्य समाज एवं राजनीति पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ रहा है।

कूट शब्द – साहित्य, दलित, समाज, विमर्श, विकास, समानता, न्याय आदि।

प्रस्तावना –

भारत की चातुवर्ण व्यवस्था में सबसे निचले पायदान के व्यक्ति के साथ घोर अन्याय, अत्याचार हुए हैं, जिसकी दास्तां भले ही इतिहास के पन्नों पर दर्ज न हो, लेकिन आधुनिक युग में जब ज्ञान की आंधी चली, तो सदियों से सन्तप्त मानवता को अपने अधिकारों का अहसास हुआ। संवैधानिक संरक्षण के अंतर्गत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के तहत उन्हें बोलने का अधिकार मिला। इसी के चलते सदियों से शोषित एवं पीड़ित समुदाय की वेदना की छटपटाहट अभिव्यक्त हुई। यही छटपटाहट दलित साहित्य के रूप में उभर कर सामने आई। दलित साहित्य को लेकर आज कई तरह की धारणाएं चल पड़ी हैं। अतः दलित साहित्य को समझने के लिए हमें अनेक विद्वानों के मतो की सम्यक व्याख्या की आवश्यकता है, इसी आधार पर हम दलित साहित्य की अवधारणा प्रस्तुत कर सकते हैं।

इस संबंध में विख्यात दलित चिंतक कंवल भारती ने लिखा है–''दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिनमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है, अपने जीवन–संघर्ष में जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनका उसी की अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।''[1]

ओमप्रकाश वाल्मीकि का विचार है कि ''दलित साहित्य में दलित जीवन का यथार्थवादी चित्रण यथार्थ की मात्र नकल नहीं है, बल्कि साधारण परिस्थितियों में साधारण चरित्रों का वास्तविक पुनर्सृजन है। इस कार्य

में दर्शन और कलात्मक पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन की आवश्यकता कतई नहीं है। पाठक की चेतना और अनुभूति को प्रभावित करने वाली गहन संवेदना से ही यह संभव है।''[2]

भारतीय दलित कविता में इन्हीं संवेदनाओं और अनुभूतियों का अंकन एवं चित्रण हुआ है। यथा :–

''हाथों में है अथाह शक्ति
सीने में है धैर्य
मन में है विश्वास
फिर भी सही दुत्कार
नहीं बोये कांटे बांटे
सिर्फ सगुन प्यार के
फिर भी रहे अछूत।''[3]

हिंदी में दलित साहित्य की चर्चा भले ही अभी पिछले दशक में ही शुरू हुई हो, किंतु तथ्य यह है कि दलितोद्धार की चेतना यहां विगत कई शताब्दियों से गूंज रही है। इस दृष्टि से अग्रणी है हिंदी का संतकाव्य। भक्ति और साधना की चरम अभिव्यक्ति संत मत में प्राप्त होती है। इसका मूलाधार है ब्रह्मा की धारणा। चौंदहवीं शताब्दी से लेकर अद्यतन काल तक यह भावना हिंदी में विद्यमान है। निर्गुणिया संत मूलतः अद्वैतवादी थे। अद्वैत के अनुसार कोई छोटा बड़ा नहीं होता। कबीर की साखियों में यह भाव भरा हुआ है। उन्होंने सवर्ण कहे जाने वाले ब्राह्मणों की भर्त्सना की है तथा छुआछूत और ऊँच–नीच के भेदभावों का जमकर विरोध किया है। संत कवियों ने आत्मचिंतन और स्वानुभूति के आधार पर अपने समकालीन समाज की जाति प्रथा पर प्रहार किए। इन संतों में रैदास, गरीबदास, पलटु, रज्जब आदि बड़े–बड़े कवि हुए हैं। वर्ण–व्यवस्था के अनुसार ये तथाकथित छोटे वर्गों के थे–कोई जुलाहा, कोई धोबी, कोई मोची और कोई डोम, किंतु अपने चिंतन, अपने सृजन और अपनी साधना के कारण ये कवि निरंतर साहित्य जगत में समादृत रहे हैं।[4]

आधुनिक हिंदी साहित्य दलित चेतना से अपेक्षाकृत अधिक संबंद्ध है। स्वामी विवेकानंद ने नवजागरण को स्वर देते हुए जिस अभिनव वेदांत की स्थापना की उसमें दरिद्रनारायण को सर्वाधिक महत्व दिया गया। बंगाल के प्रार्थना समाज में उच्च वर्ण का वर्चस्व कुछ अधिक था, किंतु उसकी ही प्रेरणा से महाराष्ट्र में रानाडे ने जिस ब्रह्मसमाज की स्थापना की उसमें दलितोद्धार की आवाज उठाई गई। इसकी प्रेरणा राजाराममोहन राय और ईश्वरचंद विद्यासागर से प्राप्त हुई थी। इन सबका व्यापक प्रभाव भारतेंदुयुगीन हिंदी साहित्य पर पड़ा भारतेंदु जी ने पहली–नर नारि सम ह्वैव रहै' का नारा लगाया, भारतेंदु युगीन पत्र–पत्रिकाओं में समाज–सुधार के संदर्भ में छुआछूत प्रथा का विरोध किया गया। द्विवेदी युगीन कवि लेखक इस दिशा में और सक्रिय हुए। स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती में हीरा डोम की शिकायत नाम की एक लंबी कविता छांटी। तत्कालीन पत्र–प्त्रिकाएं जैसे हिंदी प्रदीप, बिहार बंधु, भारतमित्र, प्रताप, विशाल भारत आदि में इसकी प्रतिध्वनि गूंजने लग गई।[5]

स्वतंत्रता आंदोलन के मध्य गांधी जी के नेतृत्व में हरिजनोद्वार का आंदोलन चला। गांधी जी ने मंदिरों में हरिजन प्रवेश को मुख्य मुद्दा बनाया और छुआछूत का विरोध किया। स्वयं वे भंगी बस्ती में रहने लगे। उन्होंने हरिजन शब्द का आविष्कार करके और हरिजन पत्र निकाल करके साथ ही डॉ. अम्बेडकर को प्रतीक रूप में

सर्वोपरि स्थान देकर अपने हरिजन प्रेम का प्रमाण दिया। इसका गांधीवादी कवि लेखकों पर गहरा प्रभाव प्रड़ा। परिणामस्वरूप उपन्यासों कहानियों में न केवल दलितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई, बल्कि दलित पात्रों को चरितनायक बनाया गया। प्रेमचंद ने चमारजाति के एक पात्र सूरदास को रंगभूमि का नायक बनाया। प्रेमचंद का अधिकांश कथा लेखन दलित चेतना से परिपूर्ण है। कर्मभूमि का अमरकांत निरंतर दलितोद्धार में लगा रहता है। गबन के दलित पात्र देवीदीन को प्रेमचंद ने एक उदात्त चरित के रूप में अंकित करके अपनी भावी परिकल्पना को रूपायित किया। गोदान में तो वे विद्रोही भूमिका पर उतर आए। पं. माताप्रसाद और शिलिया का विवाह करवाकर उन्होंने दलितों और ब्राह्मणों के बीच रोटी–बेटी का संबंध स्थापित कर दिया। यही स्थिति 'दूध का दाम' नामक कहानी की है। इसमें दलित वर्ग की एक स्त्री तथाकथित उच्च वर्ग के नवजात शिशु को दूध पिलाकर पालती है, अपने बच्चे की कीमत देकर यहां उच्च वर्ग की स्वार्थतता पर करारा व्यंग्य किया गया है।

'सद्गति' नामक कहानी में प्रेमचंद ने दलित के साथ अमानुशिक व्यवहार करने वाले पंडित वर्ग पर क्रूर प्रहार किया है। इस घटना को रोमांचक बनाने के लिए प्रेमचंद ने रोमांटिक यथार्थवाद का भले ही सहारा लिया हो, पर यह कहानी बड़ी मर्मस्पर्शी है। प्रेमचंद और उनके समकालीन लेखकों ने दलित वर्ग की विभिन्न समस्याओं की ओर दृष्टि डाली–जैसे–अभक्ष्य भक्षण, नशाखोरी, स्वजाति के पीछे उनकी छुआछूत भावना, कामचोरी, अपकृत्य, अशिक्षा आदि इनके समाधान भी सुझाए गए हैं। 'कर्मभूमि' में उन्होंने दलितों के लिए मंदिर के द्वार खुलवाए हैं और हृदय परिवर्तन के कई विकल्प प्रस्तुत किए हैं।[6]

प्रेमचंद के समकालीन लेखकों में वृंदावनलाल वर्मा दलितों के प्रति संवेदनशील रहे हैं। उन्होंने झांसी की रानी के साथ–साथ झलकारी कोरिन तथा मृगनयनी एवं भुवन विक्रम में कई दलित पात्रों की प्राण प्रतिष्ठा की है। प्रसाद जी ने 'विरामचिह्न' नामक कहानी द्वारा दलितों के मंदिर प्रवेश का शंखनाद किया है। राहुल जी ने दलित वर्ग के अनेक पात्रों की सृष्टि की है। निराला जी ने अलका, निरूपमा, कुल्लीभाट, चमेली आदि उपन्यासों में सर्वत्र प्रभावशाली दलित पात्र रचे हैं। निरूपमा का नायक कुमार व्यवस्था का विरोध करता हुआ सवर्ण भी जूता पालिश का धंधा शुरू कर देता है। चमेली की नायिका एक तेजस्विनी दलित युवती है, जो साहसपूर्वक तथाकथित संभ्रांत व्यक्ति का भंडाफोड़ करती है। निराला की ऐसी दर्जनों कहानियां हैं जैसे–देवी, हिरनी, श्यामा, ज्योतिमयी, चतुरी चिमार आदि। जिनमें दलितों की समस्या ही प्रमुख प्रतिपाद्य बनकर उभरी है, वस्तुतः विवेकानंद के अद्वैत दर्शन से प्रभावित होकर निराला ने दलितोद्धार का सशक्त अभियान अपने लेखन में और निजी जीवन में चरितार्थ किया। उनकी अनेक कविताएं इसी भावना से ओत–प्रोत हैं। तुलसीदास में उन्होंने गोस्वामी जी के समकालीन समाज की वर्ण–व्यवस्था का विवरण देते हुए दलितों को 'हताश्वास पशु मूक शाश', जैसे शब्दों द्वारा गहरी संवेदना दी है। कुछ ऐसी ही स्थिति बेचेन शर्मा उग्र की रही है। उन्होंने मनुष्यानंद बुधुवा की बेटी उपन्यास में दलित चेतना संबंधी मुखर चिंतन व्यक्त किया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री भी इस दिशा में सक्रिय रहे हैं। उनके तीन उपन्यासों–गोली, बगुला के पंख तथा उदयास्त में दलित समस्या विषयक चिंतन और चित्रण मिलता है। रांगेय राघव का प्रसिद्ध उपन्यास 'कब तक पुकारू' कर्नर नामक अनुसूचित जनजाति के इतिहास और वर्तमान का प्रामाणिक दस्तावेज है।[7]

उदयशंकर भट्ट के प्रसिद्ध उपन्यास 'सागर लहरें' और मनुष्य' में उपमहानगरीय जीवन की मछुवा जाति के जीवंत चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। भगवतीचरण वर्मा ने भूले बिसरे चित्र, सीधी सच्ची बातें, सबहिं नचावत

रामगोसाई आदि उपन्यासों में दलित समस्या को कई कोणों से देखा और परखा गया है। यशपाल ने अतीत के परिवेश में दलित वर्ग को उच्च आसन पर से देखा है। इस दृष्टि से उनकी प्रतिनिधि रचनाएं हैं, दिव्या, अमिता, दुःख का अधिकार आदि। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की कृति 'बाणभट्ट की आत्मकथा' प्राचीन भारत की दलित व्यवस्था का प्रामाणिक लेखा–जोखा है। राहुल जी ने सिंह सेनापति तथा दिवोदास में इसकी पहल की है।

द्विवेदीयुगीन प्रसिद्ध उपन्यासकार गोविंद पंत ने अपनी प्रसिद्ध कथा–कृति जूनिया, भैरों प्रसाद गुप्त ने सती मैया का चौरा नागार्जुन ने बलचनवा, यादवेंद्र भार्मा चंद्र ने पत्थर के आंसू, तथा अमृतलालनागर ने नाच्यों बहुत गुपाल आदि उपन्यासों में दलितोद्धार की प्रेरणा दी है।

इस दिशा में हिंदी कवि और नाटककार पीछे नहीं रहे है। मानसी में संकलित रामनरेश त्रिपाठी की कई कविताएं दलितोद्धार से संबंधित हैं। सियारामशरण गुप्त की एक बड़ी प्रसिद्ध कविता है एक फूल की चाह। इसमें अछूत के मंदिर प्रवेश का दर्दनाक दृश्य है दलित चेतना स्वातंत्र्य संघर्ष के बीच प्रायः प्रत्येक कवि का वर्ण विषय रही है। धूमिल की कविता मोचीराम इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। रंग जी का एक बड़ा प्रसिद्ध गीत है–

शहर–शहर बढ़ रही अमीरी,
मेरा गांव गरीब है।
उसमें एक पंक्ति तो बहुत ही बेधक है
बिना दवा मर गई गरीबिन, धन्वंतरि के देश में।[8]

समकालीन हिंदी कवि लेखक दलित चेतना से पूर्णतः अनुस्यूत हैं। रेणु के प्रसिद्ध उपन्यास मैला आंचल और परती परिकथा, रामदरश मिश्र के उपन्यास जल टूटता हुआ, सूखता तालाब, शिवप्रसाद सिंह की कथाकृति शैलूष, अलग–अलग वैतरणी, मन्नू भंडारी की कृति महाभोज, भीष्म साहनी की कथा कृति बसंती, गिरिराज किशोर का परिशिष्ट महादेवी के कई रेखाचित्र इसी दलित चेतना से आक्रांत हैं। सामाजिक यथार्थ का तकाजा है कि इस उत्पीड़न शोषण और वर्ग विद्वेष को उजागर किया जाए। हिंदी में विरचित यह दलित साहित्य मराठी और कन्नड़ की तुलना में भले ही अभी कुछ कम हो, फिर भी उसकी स्थिति उत्साहवर्धक अवश्य है। समस्याएं दो हैं–प्रथम क्या दलितों द्वारा ही दलितों के संबंध में लिखा गया साहित्य दलित साहित्य कहलाने का अधिकारी होगा? मेरे मातानुसार हिंदी में इस कोटि का साहित्य अत्यल्प है। अतः दलितों के हित में उस समस्त लेखन को दलित साहित्य कहा जाना चाहिए, जो अच्छी नीयतपूर्वक लिखा गया है। दूसरा, प्रश्न यह उठता है कि मध्ययुगीन वर्ण व्यवस्था के बीच दलित संत कवियों ने समाज का नेतृत्व किया। वह परंपरा स्वतंत्र भारत में समाप्त क्यों हो गई? इस दलित संत कवियों ने समाज का नेतृत्व किया। वह परंपरा स्वतंत्र भारत में समाप्त क्यों हो गई? इन दलित प्रतिभाओं को प्रकाश में लाने का योजनाबद्ध प्रयास युद्ध स्तर पर किया जाना चाहिए।

साहित्य में दलित विमर्श की तीन धाराएं दिखाई देती हैं। पहली धारा स्वयं दलित जातियों में जन्म लेखकों की है जिनके पास स्वानुभूतियों का विशाल भंडार है और इसी आधार पर वे मानते हैं कि वास्तविक अर्थों में उन्हीं का सृजन ही दलित साहित्य है। दूसरी धारा हिंदू लेखकों की है, जिनके रचना संसार दलितों का चित्रण सौंदर्य सुख की विषयवस्तु के रूप में होता है। तीसरी धारा प्रगतिशील लेखकों की है, जो दलित को सर्वहारा की स्थिति में देखते हैं। दलित चेतना के हिंदू धारा पर 20वीं शताब्दी के राजनैतिक और सामाजिक आंदोलनों का प्रभाव है। यह धारा खासतौर पर राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में दलितों के राजनैतिक संघर्ष के परिणामस्वरूप अस्तित्व

में आई। इस धारा में महात्मा गांधी दलितों के मसीहा के रूप में माने जाते हैं। इस धारा के साहित्यकारों का मकसद है दलितों के प्रति सवर्ण मन को उदार बनाना है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सोहनलाल द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही और रामचन्द्र शुक्ल आदि ने इस तरह की कविताएं लिखी हैं। प्रगतिशील धारा के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर प्रेमचंद के विषय में दलित चिंतकों का नजरिया है। प्रेमचंद के रचना कर्म में दलित दयनीय स्थिति में तो है पर उसमें विद्रोह बिल्कुल नहीं है।

वास्तव में प्रेमचंद के साहित्य में यही दलित विमर्श दलितों के कटु सामाजिक यथार्थ का दर्पण है, जो क्रांतिकारी है क्योंकि यह परिवर्तन की समझ विकसित करता है। प्रेमचंद अपने दलित विमर्श में इस बात से भी बेखबर नहीं है कि दलित शिक्षा ही दलित मुक्ति का आधार है। प्रेमचंद जिस प्रगतिशीलता को लेकर चल रहे थे, वह भले ही अंबेडकरवादी न हो, पर उसके निकट जरूर थे, किंतु प्रेमचंद के बाद के प्रगतिशील साहित्य में हमें दलित विमर्श की यह तेजस्विता नहीं मिलती है।

साठ के दशक में दलित साहित्यकारों की एक पूरी पीढ़ी उभर कर सामने आई। इसी दौर में डॉ. भीमराव अंबेडकर, राहुल सांस्कृत्यायन आदि क्रांतिकारी पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ है।

सत्तर के दशक में दलित साहित्य के नामकरण के साथ जो साहित्य अस्तित्व में आया उसका व्यापक असर हुआ। संप्रति दलित विमर्श ने एक विशाल लेखक वर्ग तैयार कर लिया है जो लगातार इन सवालों से जूझ रहा है। इनमें मतभेद और भटकाव भी है। दलित लेखक संघ के एक गुट ने प्रेमचंद की जयंती 31 जुलाई 2004 को उनके प्रसिद्ध उपन्यास रंगभूमि की प्रतियां जलाकर अपना विरोध जताया जिसकी व्यापक आलोचना हुई। वस्तुतः पूरा दलितवादी विमर्श इसी अनुभूति को लेकर चलता है–

मैं आदमी नहीं स्साब
जानवर हूं
दो पाया जानवर। जिसे बात–बात पर
मनुपुत्र–मां–चो–बहन–चो–
कमीन कौम कहता है।[९]

निष्कर्ष :

हिंदी में दलित साहित्य की चर्चा भले ही अभी पिछले दशक में ही शुरू हुई हो, किंतु तथ्य यह है कि दलितोद्धार की चेतना यहां विगत कई शताब्दियों से गूंज रही है। इस दृष्टि से अग्रणी है हिंदी का संतकाव्य। भक्ति और साधना की चरम अभिव्यक्ति संत मत में प्राप्त होती है। अतः दलित विमर्श आज के युग का एक ज्वलंत मुद्दा है, जिससे भारतीय साहित्य में इसकी मुखर अभिव्यक्ति हो रही है। स्वाभाविक रूप से इसका साहित्य, समाज और राजनीति पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ रहा है।

संदर्भ :–

1. दलित साहित्य की भूमिका, कंवल भारती, पृ. 67
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, पृ. 59
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि बस्स ! बहुत हो चुका, पृ. 53

4. केशवदत्त रूवाली, दलित साहित्य, संदर्भ भूमिका, पृ. 05–06–07
5. वही, पृ. वही
6. वही, पृ. 06
7. वही, पृ. वही
8. वही, पृ. 07
9. पूनम सिंह, हिंदी साहित्य के नये आयाम, पृ. 180–181

Email : kanchan.kanchan8619@gmail.com
Mobile no.-7617698036

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 119-121

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मृदुला सिंहा के उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश और उससे जूझती नारी

कीर्तिका दुबे
पीएच.डी शोधार्थी, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वड़ोदरा, गुजरात।

प्रस्तावना :–

मृदुला सिन्हा भारतीय जीवन शैली की अनुगामिनी व्याख्याकर एवं प्रतिस्थापक है। वह भारतीय स्त्री चरित्र का प्रतिनिधित्व करती है तथा घर परिवार की स्थापना और समृद्धि में स्त्री को बड़ा ही महत्व प्रदान करते हुए कहती हैं कि नारी मानवीयता की धरोहर है, उसमें मातृत्व की विशेषता है इसलिए स्त्री की मुकाबला ना ही पुरुष कर सकता है और ना ही कोई अन्य वर्ग। स्त्रियों में एक खास विशेषता होती है त्याग की, बलिदान की। वह परिवार के प्रति, समाज के प्रति अपने दायित्वों का पूरी तरह निर्वहन करती है। अपना संपूर्ण जीवन सेवा भाव में न्योछावर कर देती है। इसलिए स्त्री सिर्फ नारी ही नहीं बल्कि दात्री भी है। मृदुला सिन्हा ने अपने उपन्यासों में नारी के संघर्ष को चित्रित करने के लिए ग्रामीण और शहरी दोनों ही परिवेश को लिया है। गाँव की अभाव भरी जिंदगी से संघर्ष करती महिला के जीवन को इस प्रकार वर्णित किया है कि वह संपूर्ण भारत के नारी जीवन के संघर्ष को प्रस्तुत करता है।

मृदुला सिन्हा आधुनिक युग की सजग एवं निर्भिक लेखिका हैं। ग्रामीण और शहरी दोनों ही परिवेश इनके साहित्य में देखने को मिलता है। फिर चाहे वह पारंपरिक उपन्यास हो या आधुनिक। शहरी परिवेश हो या ग्रामीण। प्रत्येक रचनाओं की कथावस्तु भले ही शहरी या सामाजिक हो, परंतु भाषा में गाँव की खुशबू खुद ब खुद फैल जाती है। लेखिका के उपन्यासों में नारी एक महत्वपूर्ण विषय है। उनकी ग्रामीण जीवन की वास्तविकता को दर्शाया है, जिसमें उनके जीवन के संघर्षों और चुनौतियों को प्रमुखता दी गई है।

मृदुला जी का घरवास उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसमें ग्रामीण भाषा और परिवेश की मिठास का अनुभव होता है। कहीं–न–कहीं उनके रचना लेखन का प्रेरणा स्वरूप मैं प्रेमचंद जी को मानती हूं। 'घरवास' उपन्यास में मुजफ्फरपुर के बिहारी मजदूरों और किसानों के जीवन की करुण गाथा है। बिहार के गांव का सजीव चित्रण मृदुला जी अपनी कलम के माध्यम से उपन्यास में करती है। उपन्यास के प्रमुख पात्र 'विलोचन' है, जिसको गांव वाले 'विलोचना' कहकर पुकारते हैं। उसकी पत्नी जो नायिका है उसका नाम है 'कालिया'। यह ऐसी स्त्री है, जो पूरे भारत क्य विश्व की गरीबी झेलती, पालती, पोसती, घर चलाती महिला का रूप समाज के समक्ष प्रस्तुत करती है। पति और बेटे की खुशी में अपनी खुशी मनाती हैं। अपना पेट काटकर, पानी पीकर बच्चों का अकेले पालन–पोषण करती है। क्योंकि विलोचना ज्यादातर पंजाब में ही रहता है, वहीं मजदूरी करता है।

छह–छह महीने, साल साल भर बाद मजदूरी करके पैसा इकट्ठा कर घर वापस लौटता। मजदूर की अनुपस्थिति में उनकी पत्नियां अनेक पारिवारिक एवं सामाजिक कठिनाइयों को झेलकर बच्चों का लालन–पालन करती हैं। उन्हीं महिलाओं में से एक विलोचन की पत्नी कलिया है। कलिया 'घरवास' उपन्यास की नायिका के रूप में चित्रित की गई है। वह मुसहर जाति की बेटी–बहू थी। भारत में छोटी जाति के लोगों को ज्यादात्तर उनके मूल नाम से नहीं पुकारा जाता है। इसलिए कली जैसे सुंदर और मोहक नाम को ऊंच जाति के लोग 'कलिया' बना दिए। छोटी ही उम्र सिर्फ बारह वर्ष में कलिया का विवाह विलोचना से हो गया। शादी के बीस साल बीत गए। वह पूरी तरह से विवाह की जिम्मेदारियों को निभाने में व्यस्त रहने लगी। कभी–कभी वह सोच में डूब जाती है कि 'बड़ी उम्र निकल गई। समय के थपेड़ों ने ठोंक ठोक कर सख्त बना दिया है कलिया को। पांच वर्ष पहले सिर से सास का छाया क्या हटा, उसने सिर से घूंघट भी उठा लिया। पोखर से पानी भरने, जंगल से जलावन के पत्ते बटोरते और खेत–खलिहान में काम करते हुए क्या घूंघट डाले। मालिक के दरवाजे पर काम करते हुए अवश्य ललाट ढक लेती थीं। अब तो मालिक के मुहल्ले में भी दिन भर कोई मर्द नहीं रहता। दुपहरिया में तो ढूंढने से भी मर्द का बच्चा नहीं मिलता। फिर पर्दा किससे?'[1] उपन्यास में गरीबों और मजदूरों की पिछड़ी सोच, अंधविश्वास का बखूबी चित्रण किया गया है। इस प्रकार छोटी ही उम्र में कलिया का विवाह हुआ, उसी में सारी परंपरा रीति रिवाज को लेकर चलना। बड़ों की समझ पर परदा डालना, ऊंची आसन पर न बैठना, उनके सामने मुंह खोलकर खाना वर्जित आदि। सुबह सुबह शौच के लिए खेत में जाना, यह समस्या तो आज भी कई गांवों में देखने को मिलता हैं। बड़ा दुःख होता है कि जब महिलाएं आधे नींद में जागकर खेत में सुबह चार बजे जाती हैं सिर्फ इसलिए कि हमें कोई देख न लें।

कलिया जब पंजाब में गए मजदूरों के मरने का खबर सुनती है तब एकदम से घबरा जाती है। उसे शंका होती है, कहीं उन आठ मजदूरों में उसका पति 'विलोचन' तो नहीं? नरेन्द्र जो मास्टरजी का बेटा है, उसे समझाता है कि ऐसे कोई किसी की जान नहीं ले सकता, तुम चिंता न करो। कलिया प्रत्येक परिस्थिति का डटकर सामना करती, पीछे मुड़कर देखने वालों में नहीं है। उपन्यास में कलिया के रूप में भारतीय ग्रामीण परिवेश स्त्री के साहस–धैर्य, त्याग, आत्मबलिदान को दिखाया गया है। वह विलोचना के साथ घर गृहस्थी चलाने में कदम से कदम मिलाकर चलती, और अपनी पती का साहस बनती है। उनको धीरज देती, समय आने पर उनके लिए गाँव वालों से लड़ झगड़ भी लेती। घर बनने में आने वाली सारी बाधाओं का सामना विलोचन के साथ मिलकर कंधे से कन्धा मिलाकर करती है। बेटी, पत्नी, बहु और मां की सारी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाती। कलिया का सपना है कि उसका भी अपना घर हो, और वह भी अपने हाथ में कलश लेकर पति के साथ 'घरवास' करें। परंतु मुसहिन जाति होने के कारण उसके वहां पंडित आने से इन्कार करते। उस परिस्थिति में वह मुहल्ले की अन्य मुसहरनियों को बिना पंडित ही 'घरवास' की पूजा करने के लिए प्रेरित करती है। इस बात से यह पता चलता है कि सिर्फ शहरी महिलाओं को आवाज उठाना नहीं आता बल्कि भारत की ग्रामीण महिलाएं भी सामाजिक अंधविश्वासों का खुलकर विरोध करती हैं। कलिया अपने समाज में एक प्रशस्त नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वह जाति के लिए आदर्श मूर्ति है। मर्यादा में रहकर अपने अधिकार के लिए लड़ती है। और अंत में 'घरवास' का अपना सपना भी पूरा करती है। उपन्यास में कलिया और विलोचना के अलावा भी अन्य कई ऐसे पात्र है जो नारी मुक्ति आंदोलन के लिए कार्य करते हैं। जैसे मास्टरजी, नरेन्द्र, बुधिया, बुआ आदि। नरेन्द्र तो समाज

की महिलाओं का साथ देते हुए उन पर किए जाने वाले घिनौने करतूतों का पर्दाफाश भी करता हैं। मास्टरजी मुसहिनों के प्रति नेक विचार रखते हैं। बुधिया बुआ भूखी कलिया के लिए चावल लाती है, लेकिन भूखे बच्चों को भूख के मारे रोते बिलखते देख कलिया खाने से मना कर देती है तो बुआ समझाती है 'दिन भर बच्चा छाती चबाता रहता है। उसमें दूध हो तब तो मिले। दूध नहीं मिलता तो तुम्हारा खून ही पिता है। कुछ खाओगी नहीं तो जिओगी कैसे?'[2]

इसी प्रकार मृदुला सिन्हा जी के जितने भी उपन्यास हैं सभी में ग्रामीण परिवेश और उसमें विचरती महिलाओं, पौराणिक पात्रों, आधुनिक नायिकाओं का वर्णन दिखाई देता है। अंतर बस इतना है कि किसी में कम तो किसी उपन्यास में ज्यादा देखने को मिलता है। अतिशय 'में शिवानी के पिता का घर इलाहाबाद (प्रयाग राज) में था तो शिवानी भी थोड़ा बहुत ग्रामीण परिवेश से जुड़ी थी।' ज्यों मेहंदी को रंग श्में तो ज्यादा ग्रामीण परिवेश, क्षेत्र ही का वर्णन हुआ है। 'शालिनी' की सास जेठानी, ननद की सोच गांव की महिलाओं की सोच और सूझ–बूझ से मेल खाती है। आस पड़ोस की महिलाओं के कहने पर इन लोगों ने बिना शालिनी से पूछे 'राजेश' का दूसरा विवाह कर दिया। 'घरवास' की कलिया के त्याग और बलिदान की चर्चा तो पहले की जा चुकी है। वह किस प्रकार भूखे बच्चों को शकर कंद खिलाकर सुला देती है, किन्तु किसी पड़ोसी के आगे हाथ नहीं फैलाती। ये है भारत की वीरांगना, जिनको शान से जीना आता है। अपने अस्तित्व को बेचना उन्हें मंजूर नहीं। 'परितप्त लंकेश्वरी' में मंदोदरी 'सीता पुनि बोली' की सीता और 'अहल्या उवाच' की अहल्या तीनों पौराणिक नायिकाएं भी ग्रामीण परिवेश, दंश और सुख तीनों को भोगा है। मेरे ख्याल से हर एक सामाजिक प्राणी को गांव की शोभा को परखना चाहिए, उनकी कमियों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि गांव है तो अन्न है, जल है, थल है, मजदूर है, किसान है। ये सब पूरे विश्व के अनमोल रत्न है।

निष्कर्ष : मृदुला सिन्हा की रचनाओं में ग्रामीण नारी की पारंपरिक भूमिकाओं के साथ–साथ ग्रामीण समाज की चुनौतियों और संघर्षों को भी दर्शाया गया हैं। उन्होंने महिलाओं में आत्मविश्वास जगाने और उनकी पहचान को मजबूत करने का प्रयास किया। लेखिका नारी को प्रत्येक परिस्थित से सामना करने की सिख देती है और उनको महिलाओं पर गर्व है। नारी समाज का संघर्ष करते हुए ही आज गांव की चूल्हों से लेकर अंतरिक्ष के वायुयान तक पहुंच गई।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. 'घरवास'. मृदुला सिन्हा. ज्ञान गंगा दिल्ली 2016. पृ. 21
2. वही. पृ. 55
3. ज्यों मेहंदी को रंग. मृदुला सिन्हा।
4. अतिशय. मृदुला सिन्हा।
5. घरवास. मृदुला सिन्हा।
6. सीता पुनि बोली. मृदुला सिन्हा।
7. परितप्त लंकेश्वरी. मृदुला सिन्हा।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 122-128
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महादेवी वर्मा के काव्य में नारी विमर्श

सुभाष चंद्र वर्मा
सहायक आचार्य– हिंदी, राजकीय महाविद्यालय राजगढ़, चूरु (राजस्थान)

भूमिका :-

हिंदी साहित्य में आधुनिक काल के तृतीय उत्थान को छायावाद काल के नाम से जाना जाता है। छायावाद लगभग (1918–1936) आधुनिक हिंदी साहित्य की एक रोमांटिक काव्यधारा है जो द्विवेदी युग की रूढ़ियों के विरुद्ध व्यक्ति की भावनाओं,रहस्य और प्रकृति के मानवीकरण पर केंद्रित थी। यह स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है, जिसमें प्रस्तुत के स्थान पर उसकी छाया या अप्रस्तुत का कथन किया जाता था। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा इसके प्रमुख स्तंभ थे और इस काल को साहित्य खड़ी बोली का 'स्वर्ण युग' भी कहा जाता है।

छायावाद की विभिन्न परिभाषाएं –

आचार्य रामचंद्र शुक्ल : "छायावाद का प्रयोग दो अर्थ में होता है : एक रहस्यवाद के अर्थ में और दूसरा काव्य की शैली या विशिष्ट के व्यापक अर्थ में।"

डॉ रामकुमार वर्मा– "जब परमात्मा की छाया आत्मा पर पड़ने लगे और आत्मा की छाया परमात्मा पर तो यही छायावाद है।"

नंददुलारे बाजपेयी– "छायावाद मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान है। "

जयशंकर प्रसाद "जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगे तब हिंदी में उसे छायावाद से अभिहित किया गया।"

डॉ नागेंद्र "स्थल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह छायावाद है।

महादेवी वर्मा : सामान्य परिचय :-

महादेवा वर्मा का जन्म 26 मार्च 1907 को फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ। उनके परिवार में लगभग 200 वर्षों या सात पीढियों के बाद पहली बार पुत्री का जन्म हुआ था। अतः बाबा बाबू बांके बिहारी जी हर्ष से झूम उठे और इन्हें घर की देवी–महादेवी मानते हुए पुत्री का नाम महादेवी रखा। इनके पिता श्री गोविंद प्रसाद वर्मा भागलपुर के कॉलेज में प्राध्यापक थे। उनकी माता का नाम हेमरानी देवी था। महादेवी जी की प्रारंभिक शिक्षा इंदौर के मिशन स्कूल में प्रारंभ हुई। 1916 में इनके बाबा श्री बांके बिहारी ने इनका विवाह बरेली के पास नवाबगंज कस्बे के निवासी श्री रूपनारायण वर्मा से कर दिया, जो उसे समय दसवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। 1925

तक जब उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की वह एक सफल कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थी। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में आपकी कविताओं का प्रकाशन होने लगा था। कॉलेज में सुभद्रा कुमारी चौहान के साथ उनके घनिष्ठ मित्रता हो गई। 1932 में जब इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. पास किया तब उनके दो कविता संग्रह' निहार' तथा' रश्मि 'प्रकाशित हो चुके थे। महादेवी वर्मा बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। सरस्वती आराधक महादेवी वर्मा को 'आधुनिक युग की मीरा' एवं 'करुणा की मूर्ति' के रूप में अलंकृत किया गया है। राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त महादेवी वर्मा को 'साक्षात सरस्वती' मान कर कहा था कि–

सहज भिन्न दो महादेवियों एक रूप में मिली मुझे.
बता बहन! 'साहित्य शारदा' या' काव्य श्री' कहूँ तुझे।

महादेवी वर्मा के गद्य में स्त्री विमर्श –

स्त्री और पुरुष सामाजिक संरचना की दो इकाई है जो एक दूसरे की पूरक भी है और एक दूसरे से पृथक और स्वायत भी। आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श अथवा स्त्री चेतना से जुड़े प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करने वाली प्रथम लेखिका है– महादेवी वर्मा।

महादेवी वर्मा ने नारी जीवन को सभी आयामों को छुआ है। विशेष रूप से उनके निबंध संग्रह 'श्रृंखला की कड़ियां' जिसमें कल 10 निबंध है, के निबंध उन्हें स्त्री के मानवीय अधिकारों की प्रबल प्रवक्ता के रूप में स्थापित करते हैं। इनके अलावा एक और निबंध नारी को लेकर उनके संस्कृति चिंतन में 'भारतीय संस्कृति और नारी' नाम से प्राप्त होता है। महादेवी कहती हैं–" इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग–बिरंगे पक्षी पाल लेता है, उपयोग के लिए गाय या घोड़ा पाल लेता है,उसी प्रकार वह एक स्त्री को भी पालता है, तथा अपने पालीत पशु पक्षियों के समान ही यह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है (श्रृंखला की कड़ियां, पृष्ठ 102) श्रृंखला की कड़ियां में वह अन्यत्र लिखती है –"पतिग्रह में या वह विद्वान पति की इच्छानुकूल विदुषी नहीं है तो उसका स्थान दूसरों को दिया जा सकता है, यदि वह सौंदर्योपासक पति की कल्पना के रिक्त कर देने का आदेश दिया जा सकता है, यदि वह पति कामना का विचार करके संतान या पुत्रों की सेना नहीं दे सकती, यदि वह रुग्ण है या दोषों का नितांत अभाव होने पर भी पत्ति की अप्रसन्नता की दोषी है तो भी उसे घर में दासत्व स्वीकार करना पड़ेगा।

महिलाओं की सामाजिक पराधीनता का विश्लेषण करने के क्रम में महादेवी ने 'विवाह संस्था 'को भी प्रश्नों के घेरे में रखा है। उनका मानना है कि विवाह की संस्था पुरुषों के लिए वही अर्थ नहीं रखती जो स्त्री के लिए है।स्त्री के लिए वह जन्म जन्मान्तर का संबंध होता है,पुरुष के लिए ऐच्छिक अनुबंध।–" चाहे वह स्वर्ण पिंजर की बंदिनी हो या लोहे पिंजर की, परंतु बंदिनी तो वह है ही और ऐसी की जिसके निकट स्वतंत्रता का विचार तक पाप कहा जाएगा।"

महादेवी नारी की विवशता को समझती है। उन्होंने वेश्या जीवन पर यथार्थवादी चिंतन प्रस्तुत किया है और गहरी संवेदना व्यक्त की है– इन स्त्रियों ने जिन्हें गर्वित समाज पतिता के नाम से संबोधित करता आ रहा है, पुरुषों की वासना की वेदी पर कैसा छोरतम बलिदान किया है, इस पर कभी किसी ने विचार भी नहीं किया है। महादेवी के गद्य साहित्य थोड़ा प्रेमचंद से भी प्रभावित रहा है। प्रेमचंद ने वेश्या जीवन पर जितनी आपत्ति आज उठ रही है, उतनी नहीं उठाई। वह वेश्या जीवन को नारी समाज जीवन के लिए मान्य जीवन मानते थे।

ऐसा भी नहीं है कि वेश्या स्त्री में कोमलता सहानुभूति नहीं होती। महादेवी वर्मा ने' जीवन का व्यवसाय' निबंध में सौंदर्य विक्रय के चिंतन को और गहराई में जाकर झकझोरा है और कहा है कि नारी जीवन की नवीनता स्वयं नारी के लिए अभिशाप है। नारी मनोरंजन का साधन मात्र है। अन्य के आनंद हेतु उसे अपना नारीत्व खोना पड़ता है, अपना शीलत्व गवाना होता है। नारी दो स्थितियों से पराजित है, एक अपने आप से मुक्ति में और दूसरी आत्म निर्भरता में।

महादेवा शिक्षित स्त्रियों को समाज निर्माण हेतु आमंत्रित करती है। वह चाहती है कि स्त्रियां भी साहित्य रचना करें। उनका मानना है कि "साहित्य यदि स्त्री के सहयोग से शून्य हो तो उसे आदि मानव जाति के प्रतिनिधित्व से शून्य समझना चाहिए।"

सुधासिंह स्त्रीपाठ की स्त्रीवादी व्याख्या करते हुए यह दावा करती है कि "महादेवी वर्मा न तो सामंजस्यवादी हैं और ने समन्वादी है बल्कि स्त्रीवादी है।"[1]

महादेवी वर्मा भारतीय स्त्री की प्रतिनिधि के रूप में उसकी पराधीनता की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए कहती है –

"रात–सी नीरव व्यथा
तम–सी अगम मेरी कहानी।"

'युद्ध और नारी' निबंध में महादेवी वर्मा ने युद्ध संबंधी पुरुष दृष्टि और आत्मा समर्पित नारी दृष्टि का विवेचन किया है। नारी युद्ध लिप्सू पुरुष को भी अपनी बंकिम भंगिमा से पराजित कर सकती है। नारी शांतिमय जीवन की कामना करती है। नारी के स्नेह, तपस्या, त्याग, साधना प्रेम और बलिदान आदि गुना को वही व्यक्ति जान सकता है जो कुछ समय के लिए स्त्री के साथ साहचर्य में रहता है। युद्ध काल में स्त्री पूर्ण रूप से स्त्री ने नहीं रह पाई। महादेवी वर्मा कहती है कि– "कुरुक्षेत्र की रुधिर स्नाता द्रोपदी न महिमामयी जनानी के रूप में हमारे सामने आई और न गौरवान्वित पत्नी के रूप में प्रकट हुई।.... और युद्ध का निमित्त मात्र बनाकर जीती रहने के लिए बाध्य की गई।"[2]

महादेवी जी की रचनाओं में उन्होंने अपने जीवन को उकेरा है। अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है और उन सबको अंकित किया है जिनको उनके प्रेम ने प्रकाशित किया। उनकी रचनाएं नारी जीवन का एक प्रतिबिंब है। हर अवस्था में होते हुए उनकी रचनावली उस शिखर पर पहुंची है, जहां पर नारी की चंचलता, नारी के प्रेम, नारी के वात्सल्य, नारी के बलिदान और नारी के एकाकीपन की हर गाथा मिलती है।

नारी की दीन दशा महादेवी को क्षुब्ध कर देती है। महादेवी कहती है– पुरुष अपने व्यवहारिक जीवन के लिए स्त्री पर उतना निर्भर नहीं है जितना स्त्री को होना पड़ता है। स्त्री उसके सम्मुख उसके सुख में उसके साधन में एक ऐसा साधन है जिसके नष्ट हो जाने पर कोई हानि नहीं होती। एक प्रकार से पुरुष ने कभी उसके अभाव का अनुभव करना ही नहीं सीखा। इसी से उसे स्त्री के विषय में विचार करने की आवश्यकता भी कम पड़ी। स्त्री की स्थिति इसके विपरीत है। उसे प्रत्येक पद पर प्रत्येक सांस के साथ पुरुष से सहायता की भिक्षा मांगते हुए चलना पड़ता है।

महादेवी वर्मा का 'नारीत्व का अभिशाप 'निबंध कई दृष्टि से चिंतन योग्य है। भारतीय संस्कृति में भोग के बजाय योग का महत्व है। हमारा पुराण एवं इतिहास दान, त्याग समर्पण आदि से अलंकृत है। सीता के अग्नि

परीक्षा नारी रूप का सातवीं के पवित्र अनुष्ठान था लेकिन पुरुषवादी पीड़ित मानसिकता ने उसे दुर्बलता समझा परंतु इस बात पर महादेवी रोज प्रकट करते हुए कहती है– "चाहे वह स्वर्ण पिंजर की बंदिनी बनकर रहे चाहे लोहे पिंजर की परंतु बंदिनी तो वह है ही और ऐसी की इसके निकट स्वतंत्रता का विचार तक पाप कहा जाएगा।"[3]

स्त्रियों का अनुभव ही नहीं अनुभूति भी पुरुषों से अलग होती है। महादेव जी कहते हैं कि मेरे जीवन का लक्ष्य सहजता स्वीकार करना नहीं बल्कि किसी भी विपत्ति का निडरता से सामना करना है। वह कहती थी– "वह हार बनेगा क्या जिसने सिखा न हृदय को बिंधवाना।"[4]

स्त्री के शोषण के प्रति महादेवी जी ने अपना आक्रोश व्यक्त किया है और स्त्री को अपनी दशा के लिए स्वयं भी जिम्मेदार ठहराया है। महादेव जी कहती हैं –एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध को उतारू हो जाता है और स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियां उसके अकारण दंड को अधिक भारी बनाए बिना नहीं रहती।"[5]

कोई भी स्त्री विपरीत परिस्थिति या विवशता बस ही वेश्या बनती है। हमारा यह बर्बर समाज उसका शोषण भी करता है और उसे पतिता भी कहता है। यह बड़ी आश्रय जनक बात है। स्त्री की सामाजिक दासता के मूल में है उसकी आर्थिक पर–निर्भरता। महादेवी की सुलझी हुई दृष्टि ने इस यथार्थ को बखूबी पहचाना था। महादेवी ने अपने साहित्य में स्त्री की समस्याओं को सामने रखते हुए उनका समाधान भी किया है। महदेवी वर्मा ने स्त्री की विषम परिस्थितियों की धुंधली रेखाओं को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। अपने निबंध में स्त्री की सोचने समझने की सीमाओं का वर्णन किया है। आधुनिक युग में स्त्री की स्थिति के बारे में कुछ भी कह पाना मुश्किल है, लेकिन महादेवी ने स्त्री संबंधी मूल्यांकन कर अपना जीवन बिताया है। महादेवी ने स्त्री की स्थिति को निश्चित करने का अथक प्रयास किया है। इतना कहना होगा कि महादेवी वर्मा की चिंता आकांक्षा सच साबित हुई है।

महादेवी वर्मा का मानना है कि स्त्री जब घर से बाहर भी अपना कार्यक्षेत्र रखेगी तो पुरुष को उसे और प्रकार की स्वतंत्रता देनी पड़ेगी, जिसकी घर में आवश्यकता नहीं पड़ती। उसे जाने आने की, अन्य व्यक्तियों से मिलने जुलने की तथा इस क्षेत्र में कार्य करने वालों से सहयोग लेने देने की आवश्यकता पड़ती रहेगी। ऐसी दशा में पुरुष यदि उदार नहीं हुआ और प्रत्येक कार्य को उसने संकीर्ण और संदिग्ध दृष्टि से देखा तो जीवन असह्या हो उठेगा। उनका मानना है कि स्त्री के विकास की चरम सीमा उसके मातृत्व में हो सकती है परंतु यह कर्तव्य उसे अपनी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों को तोलकर स्वच्छा से स्वीकार करना चाहिए, परबस होकर नहीं।..जो स्वीकार किया जाता है। इसके अभाव में स्त्री न तो स्वतंत्र रह सकती है न ही समाज में अपना सहयोग कर सकती है। महादेवी वर्मा ने नारी गुलामी के मूलभूत कारणों की खोज की है और गुलामी, मुक्ति सिर्फ नारी शिक्षा से ही हो सकती है। अतः 'श्रृंखला की कड़ियां 'निबंध संग्रह नारी मुक्ति का पवित्र अनुष्ठान है।

महादेवी वर्मा ने स्त्री समाज में जो अपनी छाप छोड़ी उसे हिंदी साहित्य के इतिहास में युगों तक याद किया जाएगा। महादेवी की छवि को यदि कोई बदलने की कोशिश करेगा तो नई आलोचनाओं का सामना भी अवश्य ही करना पड़ेगा। यदि महादेवी वर्मा को छोड़ दिया जाए तो दूसरी बड़ी स्त्री लेखिका इस दौर में दूर तक दिखाई नहीं देती है। महादेवी वर्मा ने स्त्री विमर्श के सवाल को बड़े रूप में प्रस्तुत किया है।– "कुछ तर्कशील

पुरुषों का कहना है कि स्त्रियों को स्वयं अपनी रक्षा करने से कौन रोकता है? इस कथन पर हँसना चाहिए या रोना, यह है नहीं कहा जा सकता।"[6]

स्त्री मुक्ति के आख्यान रचने वाली महादेवी वर्मा का स्त्री संबंधित चिंतन भारतीय संदर्भ में स्त्री विमर्श का रास्ता तलाशने का सशक्त एवं सार्थक प्रयास है। महादेवी वर्मा का स्त्री विमर्श पर चिंतन कई दृष्टि से महत्वपूर्ण है। महादेवी की यह चिंता स्त्री विमर्श का इतिहास बनाती है। महादेवी वर्मा का स्त्री चिंतन उस समय का है जिस समय न तो भारतीय स्त्री जागरूक थी और न उस समय कोई स्त्री आंदोलन की शुरुआत हुई थी। महादेवी जी चाहती है कि भारत की शिक्षित स्त्रियां केवल श्रृंगार और विलासिता पर ध्यान न देकर कर्तव्य के प्रति सचेत हो तथा अपनी शिक्षा का उपयोग मानवता को संवारने में करें। महादेवी जी कहती है –अवश्य ही हम में से जो योग्य हैं उनका प्रत्येक क्षेत्र में जाना उपयोगी ही सिद्ध होगा, यदि वे अपने उत्तरदायित्व को समझती हुई तथा उसे क्षेत्र में कार्य करने वाले पुरुषों की दुर्बलताओं से शिक्षा लेकर उन न्यूनतओं को पूर्ण करती हुई कार्य कर सकें।"[7]

महादेवी ने काव्य में प्रतीक योजना को अपनाया है। स्त्री विमर्श पर लिखते समय तो महादेवी जी ने कभी दीपक को तो कभी फूलों को प्रतीक बनाया है। अकेले दीपक में ही दीपक को आधार बनाकर एक दर्जन गीत लिखे हैं। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि सभी गीतों में दीप को जीवन का माध्यम बनाकर अपने विचार व्यक्त किए हैं–

बुझ जाने दो देव! आज,
मेरा दीपक बुझ जाने दो!

महादेवी जी के काव्य में स्त्री विमर्श संबंधी मूल्यांकन विश्लेषण करने पर उनके दुरूखवाद के संबंध में चार संकेत मिलते हैं :–

1. महादेवी का दुःखवाद उनका अपना दुख नहीं है।
2. महादेवी के दुःखवाद के मूल में पिछले जन्म के भी संस्कार है।
3. मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से महादेवी के दुःख का जीवन और समाज में अधिक महत्व है।
4. महादेवी जी पर बौद्ध दर्शन का भी गहरा प्रभाव है।

डॉक्टर नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में महादेवी वर्मा की रचनाओं में नारी दृष्टिकोण के बारे में लिखा है– "महादेवी की प्रतिक्रिया एक नारी की तरह घर की सीमा में ही हुई। परंतु उनकी भी आरंभिक रचनाओं में जो भावुक असंतोष और तीव्र पीड़ा मिलती है, वह अंत तक जाते–जाते बौद्धिक परितोष में शमित होने लगी। पहले जहां अतृप्ति की प्रधानता थी, बाद में तृप्ति का काल्पनिक आनंद अनुभव किया जाने लगा। इतना होते हुए भी महादेवी को भीतर ही भीतर अपने परीक्षीणता का अनुभव होता रहा। ऊपर–ऊपर आनंद और संतोष की फीकी फीकी हंसी थी तथा नीचे अपने मन से भी चुपचाप यही कहती थी कि :

'मधुर मधुर मेरे दीपक जल।'[8]

स्त्री और पुरुष सामाजिक संरचना की दो इकाई है जो एक दूसरे की पूरक भी है और एक दूसरे से पृथक और स्वायत भी। आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श अथवा स्त्री चेतना से जुड़े प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करने वाली प्रथम लेखिका है– महादेवी वर्मा।

'मैं नीर भरी दु:ख की बदली
विस्तृत नाव का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी थी कल, मिट आज चली।'

महादेवी वर्मा द्वारा लिखित यह मधुर पंक्तियां सन 1920–25 के आसपास की नारी की व्यथा है जो शिक्षा, जागृति,स्वतंत्रता आंदोलन और बदलती परिस्थितियों में अपने आप को पहचानने की कोशिश कर रही थी। महादेवी वर्मा के आंसू विश्व पीड़ित नारी के आंसू है। एक–एक बूंद आंसू क्रांति की मसाला बने हैं। महादेवी वर्मा की नारी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की गौरव प्रतीक है।

महादेवी वर्मा के काव्य रचनाओं में स्त्री विमर्श :–

महादेवी ने स्त्री विमर्श संबंधी सामाजिक कुरुपताओं को जड़ से खत्म करने का प्रयास किया है। महादेवी ने कहीं–कहीं पर तो स्त्री की कमजोरी को भी छुपाने का प्रयास किया लेकिन उनमें उन्होंने किसी पक्षपात का आग्रह नहीं किया। महादेवी के काव्य की विशेषता है दुख, वेदना, पीड़ा की प्रधानता। अपने काव्य में महादेवी जी ने स्त्री के प्रति गंभीर चिंतन किया है :–

'कैसे कहती हो सपना है
अलि! उस मूक मिलन की बात?
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आंसू उनके हास!'[9]

महादेवी जी ने आधुनिक स्त्री की स्थिति पर गंभीर चिंतन किया है। महादेव जी मानती हैं कि भारतीय स्त्री शुरू से, शैक्षणिक शारीरिक और सामाजिक व्यवस्था को स्त्री पुरुष के मध्य बड़ा फासला मानती है। महादेवी मानती है कि यह ऐसा कारण है जिनका भेद भविष्य में भी रहेगा, किंतु यह मानसिक सामाजिक भेद न किसी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है और न किसी की हीनता का विज्ञापन करता है। महादेवी जी की वेदना स्त्री को बेधने वाली नहीं है, वह स्त्री का विकास चाहती है :–

'चाहता है यह पागल प्यार,
अनोखा एक नया संसार।'[10]

स्त्रियों की स्थिति जो आज भारत में दिखाई दे रही है उसमें महादेवी का सबसे बड़ा योगदान है। आधुनिक स्त्री समाज की परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए महादेवी ने प्रतिपादित किया कि आज हमारे जीवन में संतुलन व्यवस्था एवं उच्च आदर्शों का अभाव परिलक्षित होता है। जिससे स्त्री समाज में अनेक विकृतियों आ गई है। इससे हमारी शक्तियों का प्रयोग व्यक्तिक स्वार्थ साधन एवं दूसरों के नाश में हो रहा है, परिणामतः स्त्री समाज की प्रगति एवं उसके नवनिर्माण का मार्ग अवरुद्ध हो गया है। इस प्रकार महादेवी जी ने अपनी कविता, संस्मरण और रेखाचित्र के माध्यम से भारतीय नारी के अंतर्वेदना को अंकित किया है। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं की महादेवी जी अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री विमर्श को एक नई ऊंचाइयां प्रदान करती हैं।

संदर्भ :

1. ज्ञान का स्त्रीवाद पाठ–सुधा सिंह, पृष्ठ 335
2. युद्ध और नारी निबंध, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 18
3. श्रृंखला की कड़ियां, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 138
4. संधिनी महादेवी वर्मा, पृष्ठ 25
5. अतीत के चलचित्र, पृष्ठ 113
6. नारी का अभिशाप– महादेवी वर्मा।
7. हमारी समस्याएं –महादेवी वर्मा।
8. छायावाद– डॉक्टर नामवर सिंह।
9. यामा– निहार भूमिका, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 6
10. महादेवी साहित्य, पृष्ठ 48

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 129-133
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी के किसान और उनकी समस्या

स्नेहा दीपक वानखेडे
रा. तू. म. नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर।

सारांश :-

संरचनात्मक दृष्टि से भारतवर्ष गांवों का देश है और ग्रामीण समुदाय में अधिकांश जनसंख्या कृषि कार्यों में संलग्न है। यही कारण है कि भारत को कृषि प्रधान देश की संज्ञा दी जाती है। लगभग 65% भारतीय किसान है। किसान वर्ग को भारतीय अर्थव्यवस्था की रीड कहा गया है, क्योंकि संपूर्ण भारतवर्ष के लिए खाद्यान्न का उत्पादन इस वर्ग के द्वारा किया जाता है। खाद्य, तिलहन और वाणिज्य फसलों का उत्पादन भारतीय कृषिकों द्वारा किया जाता है। यही नहीं उद्योगों के लिए कच्चे माल की व्यवस्था कृषि क्षेत्र के द्वारा की जाती है, जो हमारे देश के जीवन रक्त हैं।

किसानों की दशा के बारे में कहा जाए तो भारतीय किसान निरपेक्ष रूप से गरीबों की श्रेणी में आता है। 2011 कि जनगणना के अनुसार लगभग 70% आबादी आज भी गाँव में रहती है अधिकांश निर्भरता कृषि और कृषि कार्य से जुड़े व्यसाय पोअर आधारित है। इनकी निर्धनता विश्व स्तर पर चिन्हित है। वर्तमान तकनीकी युग में भी भारतीय किसान सिर्फ निर्वाह योग्य आय पर अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत करने को मजबूर है। भारतीय किसान की दशा को देखते हुए यह कहा गया है कि भारतीय किसान रण में ही पैदा होता है और रण में ही मर जाता है। भारतीय किसान की आर्थिक स्थिति सिर्फ इतनी है कि वह अपने परिवार की आधारभूत आवश्यकता जिसमें सिर्फ रोटी कपड़ा और मकान सम्मिलित है, भी पूरी नहीं कर पता है। वह अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दे पता है। वहीं स्वास्थ्य सुविधाओं से दूर–दूर तक कोई वास्ता नहीं है।

बीज शब्द : कृषि, किसान, औद्योगिक, सब्सिडी, जनगणना, अर्थव्यवस्था, भूमिहीन, कर्ज।

भारतीय किसान स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए पूर्ण रूप से सार्वजनिक खर्च पर निर्भर है। भारतीय किसानों के लिए कौन–सा समय ऐसा था जिसे 'काला युग' या 'भूरा युग' कहकर याद किया गया? भारतीय इतिहास के पन्नों में किसानों के उत्पीड़न और अन्याय की कहानियाँ उत्कीर्ण हैं। शासक वर्ग, बदलती कृषि नीतियों के कारण आए दशकों की गरीबी, और लगातार सूखे की स्थिति के बावजूद, कभी भी इस परिदृश्य का समाधान नहीं हो पाया। नई औद्योगिक नीति, जो गन्ने के दशक में लागू हुई, ने भारत को वैश्विक अर्थव्यवस्था में खींच लिया। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए भारत में व्यापार करना आसान हो गया। विश्व बैंक के नीतिगत प्रभाव के तहत, भारत ने आयात शुल्क कम किए और किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी को कम कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप खेती की लागत बढ़ गई। भारतीय किसानों को वैश्विक प्रतिस्पर्धा के भीतर फेंक दिया गया।

"2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 70 प्रतिशत आबादी आज भी गांवों में रहती है गांवों की अधिकांश निर्भरता सीधे और कृषि कार्यों से जुड़े व्यवसायों पर आधारित है जिसके अनुसार लगभग 55 प्रतिशत ग्रामीण आबादी या तो खुद की खेती में रोजगार के अवसर सीमित होने के कारण भूमिहीन है"।[1] वहीं आज तक हम यह निर्णय नहीं कर पाए हैं कि वास्तविक अर्थों में किसान क्या है? क्या जिनकी अपनी जमीन होती है या जो खेती करते हैं उन्हें किसान कहते हैं।

यहां किसानों को तीन वर्गों में बांटा गया है– गरीब किसान, मध्यवर्गीय किसान और धनी किसान। धनी किसान वह है जो ग्रामीण गृहस्थ उत्पादन के साधन रखते हैं, वह भूमि पर स्वयं श्रम करता है, वह खेती से अधिकांश आय प्राप्त करता है। मध्यम दर्जे का किसान, निजी भूमि या पट्टे की भूमि रखता है उस पर स्वयं या उसके परिवार के साथ श्रमिक खेती करते हैं। साधारण वर्षों में वह सिर्फ इससे अपना जीवन निर्वाह योग्य आय उत्पन्न कर सकता है। अच्छी फसल ना होने पर अस्थाई रूप से ऋणग्रस्त हो जाता है। छोटा किसान पट्टा या निजी भूमि रखता है इसी से उसकी प्रमुख आय होती है, यह श्रमिक नहीं लगता यह स्वयं मजदूरी करता है, खेतीहीन मजदूर वर्ग के पास ना तो भूमि ही रहती है, न हीं उसके पा खेती करने के लिए उपकरण। वह अपना श्रम बेचकर जीवन यापन करता है। भारतवर्ष की विडंबना यह है कि देश के 90 प्रतिशत किसान सीमांत किसान हैं। उनके खेतों का आकार दो एकड़ से भी कम है। सर्वप्रथम हम देखते हैं कि किसान कौन है? राष्ट्रीय किसान नीति, में 'कृषक' शब्द के अंतर्गत आते हैं जो भूमिहीन कृषि श्रमिक, बटाईदार, काश्तकार, लघु सीमांत और उप सीमांत, बड़े घरानों वाले किसान, मछेरे, कुककुट व अन्य किसान जो पशुपालन में लगे हों। इसके साथ ही बागान श्रमिक और साथ ही वे ग्रामीण और जनजातीय परिवार शामिल है जो कृषि संबंधी व्यवसायों जैसे कि रेशम पालन, कृषि पालन के अनेक कार्यों में लगे हैं। "हरित क्रांति के बाद से पंजाब की कृषि व्यवस्था ने भारत को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन इसके दुष्परिणाम भी सामने आए हैं। अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग ने मिट्टी की उर्वरता को कम कर दिया है, जलस्तर गिर गया है, और किसानों पर कर्ज का बोझ बढ़ता जा रहा है"।[2]

खेत का छोटा आकार –

वर्तमान में देश में छोटे व सिमांत किसान लगभग 85% हैं जो एक या दो हेक्टेयर भूमि में खेती करते हैं। वही एक प्रतिशत बड़े किसानों के पास कुल भूमि का 20% है, 10 प्रतिशत किसानों के पास 50%, जो मध्यम दर्जे के किसान हैं, वहीं शेष 89 प्रतिशत कृषकों के पास मात्र 30 प्रतिशत भूमि है। देश के बड़े किसानों के पास लगभग 25 एकड़ से ज्यादा भूमि है। भूमि के छोटे आकार के कारण नई मशीन व नवाचार आदि को अपनाने से किसान भय खाते हैं। वे परंपरागत ढंग से कृषि कर रहे हैं, यही कारण है कि कम उत्पादन के कारण हमेशा आर्थिक संकट से घिरे हुए रहते हैं।

सरकारी नीतियों व प्रशिक्षण का अभाव –

किसान हित में बनाई गई सरकारी नीतियां हमेशा भ्रष्टाचार का शिकार होती रही हैं। देश में डिजिटलाइजेशन से पूर्व कृषि क्षेत्र को आबंटित बजट की बंदरबाँट ही देखी गई है। वर्तमान युग में पीएम किसान सम्मान निधि, पीएम फसल बीमा योजना, पीएम कुसुम जैसी योजनाएं छोटे से छोटे किसान को फायदा पहुंचा रही हैं। लेकिन देश में किसानों के प्रशिक्षण का अभाव वर्तमान में भी बना हुआ है जो की किसानों को तकनीकी

के साथ तालमेल बैठाने को चुनौतीपूर्ण बनाता है। "किसानों की आय में गिरावट और बढ़ती लागत ने उन्हें आर्थिक संकट में धकेल दिया है। छोटे और मझोले किसानों की स्थिति और भी गंभीर है, क्योंकि उनके पास संसाधनों की कमी है और वे बड़े किसानों या कॉर्पोरेट कंपनियों के सामने टिक नहीं पा रहे हैं"।[3]

मिट्टी की उपजाऊ शक्ति में गिरावट –

भारतीय किसान मृदा अपरदन और मृदा की उपजाऊ शक्ति में गिरावट जैसी समस्याओं से भी जूझ रहा है। लगातार एक ही भूमि के टुकड़े पर खेती होने के कारण मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कम हो गई है। हालांकि मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाने के लिए रासायनिक और जैविक खाद का उपयोग किया जाता रहा है लेकिन यह प्रक्रिया बहुत ही महंगी होने के कारण अधिकांश किसान इसका लाभ नहीं उठा पाए। एक रिपोर्ट के अनुसार, "भारत में करीब 8 करोड़ हेक्टेयर भूमि मृदा अपरदन से प्रभावित है, इसमें से 4 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर कृषि की जा रही है, शेष 2 हेक्टेयर भूमि कृषि अयोग्य है" तीव्र वायु, अनियमित बारिश और जंगलों की अंधाधुंध कटाई मृदा अपरदन का मुख्य कारण है। कम उत्पादकता के कारण किसानों की आय कम होती है। वर्तमान समय में मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना इस दिशा में एक मील का पत्थर साबित होती हुई प्रतीत हो रही है। वहीं जैविक व रासायनिक उपाय आर्थिक सहायता के आधार पर आवंटित किए जाने आरंभ किए गए हैं फिर भी पर्याप्त लाभ नहीं मिल पा रहे हैं।

अनपढ़ता और अज्ञानता –

भारतीय किसान की दुर्दशा के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण उसकी अनपढ़ता और अज्ञानता है। क्योंकि सरकार के द्वारा मुहैया करवाई जाने वाली सुविधाओं तथा समय–समय पर बनाई जाने वाली नीतियों से वह अनभिज्ञ है। बहुत बार ऐसा पाया गया है कि सरकारी आंकड़ों में किसी योजना को इतना अधिक सफल दिखाया गया होता है जबकि कुछ पिछड़े क्षेत्रों में अनपढ़ किसान को उस योजना की बिल्कुल भी जानकारी नहीं होती है। इसलिए कोई भी नीति और योजना कृषि क्षेत्र में तभी फलदाई हो सकती है जब भारतीय किसान उसको समझ पाए और उससे होने वाले सुविधाओं का लाभ उठा पाए। अतएव सरकार को किसान शिक्षा और महत्वपूर्ण नीतियों और योजनाओं को सरल भाषा में समझाने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति करनी चाहिए, तभी जाकर कोई भी सरकारी नीति अपना शत प्रतिशत उद्देश्य पूर्ण करने में सफल हो सकेगी।

कृषि निवेश में कमी –

वर्तमान समय में भी अधिकांश किसान संस्थागत ऋण की बजाय गैर–संस्थागत ऋण का प्रयोग कृषि में निवेश के लिए करते हैं जो की बहुत उच्च ब्याज दर पर प्राप्त होता है। कृषि निवेश के लिए हमेशा से ही पर्याप्त पूंजी का अभाव रहा है यही कारण है कि नवाचार और जोखिम को भारतीय किसान नहीं अपना पाता और परंपरागत ढंग से खेती करता रहता है जिससे सीमित उत्पादकता और कम आय की प्राप्ति होती है। इतनी भयवाह स्थित भारतीय किसान की है कि उसके पास बीज, सिंचाई सुविधा व खाद के लिए भी पर्याप्त पूंजी उपलब्ध नहीं होती और अगर छोटे किसान गैर–संस्थागत ऋण एक बार ले लेते हैं तो वे साहूकारों के चंगुल से नहीं निकल पाते।

उपज की उचित कीमत ना मिलना –

हालांकि वर्तमान समय में भारत सरकार किसानों को उनकी फसल के न्यूनतम समर्थन मूल्य प्रदान करती

है फिर भी अधिकांश किसानों को इसकी शिकायत है कि समर्थन मूल्य के बावजूद भी उनकी आय में वृद्धि नहीं हुई है। जिस दर से समर्थन मूल्य में वृद्धि की जाती है उससे कहीं अधिक दर पर कृषि पर होने वाला खर्च बढ़ जाता है। तेल, खाद आदी आदानों पर हर साल निवेश करना पड़ता है कृषि में अनिश्चित्ता होने के कारण उपज की क्वालिटी खराब हो जाती है या कम उपज हो पाती है। वही अधिक उपज होने पर मूल्य में उतनी वृद्धि नहीं की जाती, वहीं भारतीय किसान कर्ज में डूबे होने के कारण अपनी फसल को स्टॉक नहीं कर पाता। एक कारण यह भी है कि सरकार द्वारा समय पर न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा नहीं की जाती तथा फसल का मूल्य भी वक्त पर नहीं दिया जाता यही कारण है कि अधिकांश किसान आढतियों को अपनी फसल बेच देते हैं। "किसानों ने अपने अधिकारों और हितों की रक्षा के लिए संगठित होकर आवाज उठाई है, लेकिन सरकार और नीति निर्माताओं की उदासीनता ने उनके संघर्ष को और मुश्किल बना दिया है"।[4]

आधुनिकीकरण से किसानों की दूरी –

आधुनिक नवाचार के युग में भी भारतीय किसान रूढ़िवादी और भाग्यवादी होने के कारण प्रौद्योगिकी से दूरी बनाए हुए हैं। वह श्रम की बजाय भाग्य पर विश्वास करता है उसने हमेशा ही परंपरागत खेती को छोड़कर खेती के आधुनिक रूप से परहेज किया है। 2019–20 के एक सर्वे के अनुसार भारत में मात्र 40% कृषि का मशीनीकरण हुआ है, जबकि ब्राजील में यह 75 प्रतिशत और अमेरिका में यह है 95% है। यहां सुझाव दिया जा सकता है कि भारतीय किसान को समय–समय पर नई तकनीकी का ज्ञान व प्रशिक्षण देने के लिए शिविरों का आयोजन करवाया जाना चाहिए।

फसल भण्डारण की समस्या –

भारतीय किसान सामान्यतः रबी और खरीफ की फसल से अलग जायद की फसल की पैदावार भी लेता है जिसमें मुख्यतः सब्जी व बागवानी की खेती शामिल है। घने दामों में फसल बेचने के लिए किसान अगर अपने पास रखना भी चाहे तो उसके पास भंडारण की सुविधा नही है और अपनी फसल को इतने कम दाम में बेच देता है उतने में तो फसल उगाने पर होने वाले खर्च का वहन भी नही हो पाता। भंडारण के अभाव में भारतीय किसान को फलों व सब्जियों के ओने–पोने दाम ही मिल पाते हैं। कई बार तो भंडारण के अभाव में उपज नष्ट भी हो जाती है। उल्लेखनीय यह है कि केंद्र व राज्य सरकारों को ब्लाक व जिला स्तर पर वेयरहाउस व कोल्ड स्टोरेज की व्यवस्था कम खर्चे में किसानों को उपलब्ध करवानी चाहिए। "किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है, क्योंकि बिचौलिया और बाजार की अनिश्चित आय को प्रभावित करती है। इस समस्या के समाधान के लिए लेखकों ने सरकारी हस्तक्षेप किया और किसानों को सीधे बाजार से जोड़ने की आवश्यकता पर जोर दिया है।"[5]

ऋण का बोझ –

भारतीय किसान के संदर्भ में एक पुरानी कहावत है कि "वह कर्ज में ही पैदा होता है और कर्ज के साथ ही मर जाता है" हालांकि सरकार द्वारा समय–समय पर कर्ज माफी की योजनाएं भी चलाई गई लेकिन किसानों को कर्ज के जाल से मुक्त नहीं कर पाई। कर्ज के कारण ही न जाने कितने किसान हर साल अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेते हैं। एक अनुमान के अनुसार, "भारत के 50% किसान हमेशा कर्ज में रहते हैं सरकारी बैंक किसानों को कर्ज देने में रुचि नहीं रखते" छोटे व सीमांत किसान साहूकारों से उच्च ब्याज दर पर कर्ज लेते

हैं वे जीवन भर अपनी कमाई से उस कर्ज की भरपाई करने में असमर्थ रहते हैं और इसी कारण उपयुक्त कहावत यथार्थ का रूप ले लेती है। भारतीय किसान अपनी जमीन का मालिक कहलवाते हुए भी ऐसी जिन्दगी जी रहा है जैसे वह हर तरफ से ठुकराया हुआ बेहताश है उसकी अपनी सम्पति के बावजुद अपने स्वयं के व्यवसाय के बाद भी मौत को गले लगाना पड़ रहा है क्योंकि ऋण के चंगुल से निकलना उसके लिए असंम्भव बन जाता है और उसे जान देने के अलावा कोई रास्ता नही सूझता। कृषि क्षेत्र को बचाने और किसानों की स्थिति में सुधार लाने के लिए कुछ सुझाव दिए हैं।" इनमें टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाना, किसानों को बेहतर मूल्य दिलाना, और सरकारी नीतियों में सुधार करना शामिल है" ।[6]

निष्कर्ष :-

इस प्रकार उपरोक्त कृषि व कृषक के अध्ययन के बाद यह स्पष्ट तौर पर दृष्टिगत होता है कि भारतीय किसान और कृषि को सतता प्रदान करने के लिए स्थानीय स्तर पर, राज्य स्तर पर और केंद्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण योजनाएं बनाया जाना जितना आवश्यक है उससे कहीं ज्यादा आवश्यक बनाए जाने वाली नीतियों और कार्यक्रमों का सही रूपों में संचालन करना है। भारतीय कृषि जब परंपरागत तरीके से की जाती थी तब कहीं ज्यादा फलदाई थी लेकिन वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या और कृषि योग्य भूमि ने कृषि को घाटे का व्यवसाय बना दिया है। हाल ही में कोरोना काल में भारतीय कृषि ही एकमात्र ऐसा क्षेत्र थी जिसकी की वृद्धि दर धनात्मक दर्ज की गई थी। कृषि ही भारतीय अर्थव्यवस्था को इस कठिन समय में अन्य प्रभावित देशों से कहीं आगे बनाए हुई थी इसलिए कहा जा सकता है कि भारतीय कृषि ने सिर्फ ग्रामीण समाज की ही नींव है बल्कि संपूर्ण भारतवर्ष की रीढ है।

संदर्भ सूची :-

1. ममता सबाई, चितारंगन नायक, "अग्रियन डिस्ट्रेस एंड फार्मर सुसाइड इन इंडिया", एस के बुक एजेंसी, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 2
2. जगरूप जी, 'पंजाब का कृषि क्षेत्ररू बदलती जमीनी हकीकत और संघर्ष का निशाना', पंजाब : समकालीन चुनौतियाँ और संघर्ष, राजकमल प्रकाशन, 2020, पृष्ठ 45
3. वहीं, पृष्ठ 48
4. वहीं, पृष्ठ 52
5. अनिल चमड़िया और जसपाल सिंह, "कृषि संदर्भ और उत्पाद के विभिन्न पहलू", कृषि और ग्रामीण विकास : समकालीन मुद्दे, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2018, पृष्ठ 34
6. जगरूप जी, 'पंजाब का कृषि क्षेत्र : बदलती जमीनी हकीकत और संघर्ष का निशाना', पंजाब : समकालीन चुनौतियाँ और संघर्ष, राजकमल प्रकाशन, 2020, पृष्ठ 55

मो. नं. 8149990099

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 134-138
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अमृता प्रीतम कृत उपन्यास 'कोई नहीं जानता' में आधुनिकता बोध

डॉ. वी. गीता मालिनी
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एतिराज कॉलेज फॉर वूमैन, चेन्नई–600008

आधुनिकता का अर्थ :–

आधुनिक, संस्कृत शब्द 'अधुना' से बना है जिसका अर्थ है 'अभी–अभी' अर्थात वर्तमान समय से संबंधित, समकालीन, हाल का या नवीन। किसी ऐसी चीज को संदर्भित करता है जो पुरातन या पुरानी न होकर आज के समय के अनुरूप हो। यह शब्द आज के समय के रीति–रिवाजों, विचारों और तकनीकों के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है।

आधुनिकता का समानार्थी अंग्रेजी शब्द है 'मॉडर्निटी' (Modernity)। यह पारंपरिक विचारों और मूल्यों को त्यागकर वैज्ञानिक प्रगति, तर्कसंगत सोच, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक एवं आर्थिक बदलावों को अपनाने की स्थिति है। यह शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, लोकतांत्रिक प्रणालियों के विकास और प्रौद्योगिकी के नवाचारों से जुड़ी एक व्यापक सामाजिक–सांस्कृतिक अवधारणा है, जो समकालीन समाज और एक निश्चित ऐतिहासिक युग का भी प्रतिनिधित्व करती है।

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता :–

हिन्दी साहित्य में आधुनिकताबोध का प्रतिफलन कई रूपों में हुआ हैं। कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, नाटकों इत्यादि में उन्मुक्त विचारधारा और नवीन दृष्टिकोण देखने को मिलता हैं। यह किसी एक विशेष सिद्धांत का नाम नहीं, बल्कि आधुनिकता के साथ जुड़े आम विचारों का समूह है, जो तर्क, विज्ञान, व्यक्तिवाद, प्रगति और नवीनता पर बल देते हैं। आधुनिक विचारधाराओं में उदारवाद, साम्यवाद, नारीवाद, वैज्ञानिकता और प्रयोजनवाद जैसी विभिन्न धाराएँ शामिल हैं, जो सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों को प्रभावित करती हैं और दुनिया की व्याख्या करने के लिए एक ढाँचा प्रदान करती हैं।

आधुनिकता, युग की आंतरिक संस्कारजन्य विकसनशील चेतना पर निर्भर करती है। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु के समाज की संस्कार चेतना अपने समय के लिए उतनी ही पूर्ण और आधुनिक है जितनी अज्ञेय की। आधुनिकता निरंतर एक गत्यात्मक प्रक्रिया के रूप में समझती जा सकती है और इस प्रकार भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त, निरला, अज्ञेय, दिनकर और अन्य साहित्यकार एक अविच्छिन्न प्रवाह में आधुनिकता के संवाहक के रूप में बराबर महत्व के हैं। हर युग का साहित्यकार तत्कालीन जीवन की यथार्थ संवेदना को पकड़ता है। इस प्रकार अमृता प्रीतम के उपन्यासों में आधुनिकता उनके समय के सामाजिक और व्यक्तिगत सरोकारों से गहराई से जुड़ी

है।

अमृता प्रीतम का जन्म 1919 में ब्रिटिश भारत के पंजाब के गुजरांवाला में एक सिख परिवार में अमृत कौर के रूप में हुआ था। वह राज बीबी, एक स्कूल शिक्षिका, और करतार सिंह हितकारी, एक कवि और ब्रजभाषा भाषा के विद्वान और एक साहित्यिक पत्रिका के संपादक की इकलौती संतान थीं। हालाँकि उन्होंने अपनी यात्रा एक रूमानी कवि के रूप में शुरू की, लेकिन उन्होंने जल्द ही अपना रुख बदल लिया और प्रगतिशील लेखक आंदोलन का हिस्सा बन गईं। उन्होंने विभाजन के दर्द, महिलाओं की पीड़ा, पितृसत्ता के यथार्थ, और व्यक्तिगत पहचान की खोज जैसे विषयों को मुख्यधारा में लाया, जिससे रूढ़िवादी सामाजिक धारणाओं को चुनौती मिली। उनके पात्र यथार्थवादी थे और वे व्यक्तिगत आघात, सपनों का विनाश और मुक्ति की ओर बढ़ते प्रयासों को दर्शाते थे जो उस समय के सामाजिक परिवर्तन को प्रतिबिंबित करता था।

'कोई नहीं जनता' उपन्यास की कथावस्तु :–

अमृता प्रीतम का उपन्यास 'कोई नहीं जनता' पंजाब की ग्रामीण पृष्टभूमि में रचा गया एक ऐसा साहित्यिक प्रयास है जो मानवीय संवेदनाओं, सामाजिक ढांचे और प्रेम के कई रंगों को बारीकी से उकेरता है। इस उपन्यास की नायिका बेनु का चरित्र आधुनिकता का प्रमाण देता है जो अपनी अद्वितीय सोच और व्यक्तित्व के कारण पाठकों के दिलों में गहरी छाप छोड़ता है। उसकी जिंदगी और संघर्ष एक ओर जहाँ नारी सशक्तिकरण का प्रतिनिधित्व करते हैं, वहीं दूसरी ओर स्वतन्त्रता और पहचान की तलाश में संघर्षरत हर व्यक्ति की कहानी भी कहती हैं। 'कोई नहीं जानता' की कथा ठाकुर पृथ्वी सिंह और उनके परिवार के इर्द–गिर्द घूमती है जिसमें पारिवारिक सम्बन्धों, सामाजिक संघर्षों और मानवीय संवदनाओं का सजीव चित्रण किया गया है।

कथावस्तु भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम से पहले की जमींदारी प्रथा पर आधारित है जिसमें सामाजिक असमनता, आर्थिक शोषण और परम्पराओं के बोझ के बीच मानवीय जज्बातों की कशमकश साफ झलकती है। यह सामाजिक विडंबनों और मानव मनोविज्ञान की गहरी पड़ताल करता है जो इसे न केवल कालजयी बनाता है बल्कि आज के समाज में भी प्रासंगिक बनाए रखता है। कहानी की शुरुआत एक विवाह समारोह से होती है जहाँ चंदनसिंह और बेनु की पहली मुलाकात के दौरान दोनों में प्रेम जागृत होता है। चन्दनसिंह अपनी मनीषा प्रकट करके एक ताबीज भेंट करता है और उसे 'संखचील' कहकर संबोधित करता है। यह प्रेम निश्चल और गहरा है लेकिन इनके सामने सामाजिक और पारिवारिक बधाएँ आ खड़ी होती है। इनके प्रेम की पृष्टभूमि में ठाकुर पृथ्वीसिंह और चौदरी भूपसिंह के पुराने बैर का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यह बैर एक दिन हिसंक रूप लेता है जब भूपसिंह के भाई ठाकुर के घर पर हमला करते हैं और चन्दनसिंह अपने परिवार की रक्षा के लिए बंदूक उठाकर हमलावारों को मार देता है और फरार हो जाता है। बेनु का विवाह एक ताले के व्यापारी से करा दिया जाता है जो पहले से ही एक अन्य स्त्री के साथ जुड़ा हुआ है। हत्या के आरोप में चंदनसिंह को फाँसी की सजा सुनाई जाती है। इसी के साथ चन्दनसिंह की कहानी नया मोड़ लेती है वह गंगा की पुत्री त्रिबेनी को पुलिस के अत्याचार से बचाने के लिए उससे विवाह कर लेता है। यह निर्णय उसके चरित्र की महानता और नैतिकता को दर्शाता है। यह सुन बेनु अपनी सहेली लौंगवती के वकील पति से चंदनसिंह का केस लड़ने का अनुरोध करती है। यहाँ बेनु का प्रेम परिस्थितियों के बंधनों से परे अमर रहता है। वह समाज के बंधन और लोग क्या कहेंगे के बारें में न सोच कर बस सच का साथ देती है। वह चंदनसिंह से सच्चा प्रेम करती है इसलिए उसे

झूठे आरोप से बचाने की कोशिश करती है और उसमें सफल भी होती है। जब चन्दनसिंह जेल से रिहा होकर अपने पुत्र को गले लगाता है तो उसकी गर्दन में बेनु द्वारा दिया गया ताबीज देखकर स्तब्ध रह जाता है। त्रिबेनी बताती है कि जिसने खुद को संखचील कहा था वह आई और ताबीज पहनाकर चली गई। यह क्षण प्रेम, त्याग और बलिदान का चरम बिन्दु है। उपन्यास का अंत बेहद भावुक और प्रतिकात्मक है।

'कोई नहीं जनता' उपन्यास में आधुनिकता बोध :–

अमृता प्रीतम ने इस उपन्यास में प्रेम की गहराई और उसकी शक्ति को अभिव्यक्त किया है। बेनु का प्रेम केवल चंदनसिंह के प्रति उसकी भावना तक सीमित नहीं है, यह समय, स्थान और सामाजिक बंधनो को पार कर एक अनंत सत्य का रूप ले लेता है। यह कथा सामाजिक व्यवस्थाओं और नैतिकता पर भी सवाल उठाती है जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता और भावनाओं पर अंकुश लगाती है। बेनु का व्यक्तित्व एक ऐसे समाज में आकार लेता है जहाँ परम्पराएँ और सामाजिक मान्यताएँ महिलाओं के लिए कठोर सीमाएँ निर्धारित करती है। वह स्वतन्त्रता की खोज में हमेशा निरंतर संघर्ष करती है। वह सामाजिक अपेक्षाओं से बाहर निकलने की कोशिश करती है लेकिन उसकी यह यात्रा सरल नहीं होती। इसके बावजूद वह अपने नए सोच और आत्मविशवास से अपने अस्तित्व को खोजकर आत्मनिर्भर और मजबूत बनती है। यहाँ आधुनिकताबोध दिखता है, व्यक्ति को अपने निर्णय लेने और अपनी जीवनशैली चुनने की स्वतंत्रता। यह तर्क और विज्ञान पर आधारित सोच को बढ़ावा देती है, और पारंपरिक मान्यताओं और रीति–रिवाजों से अलग होने की प्रवृत्ति रखती है।

बेनु का प्रेम निःस्वार्थ और बहुत ऊँचा है, वह किसी भौतिक सुख या सहारे की अपेक्षा नहीं रखती बस चन्दनसिंह की खुशी और सलामती चाहती है। वह भगवान से प्रार्थना करती है "जिसे पहले दिन से जिस रूप में माना था, केवल वो ही मेरे लिए उसी रूप में है, चाहे मुँह से कहने के लिए अब मेरी जीभ कटी हुई है 'पर ऐ मेरे ईश्वर! तुझे में कटी हुई जीभ का वास्ता है, चन्दनसिंह भले ही पराया हो जाए, किसी का पति भी पति बने, पर वह जीता रहे...।"[1]

'कोई नहीं जानता' में आधुनिकताबोध का अत्यधिक प्रभाव देखने को मिलता है जहाँ न केवल पारंपरिक मूल्यों का विघटन होता है बल्कि व्यक्तित्व और स्वतन्त्रता की तलाश भी महत्वपूर्ण बन जाती है। उपन्यास की नायिका बेनु अपनी परिस्थितियों से जूझती हुई आधुनिक समाज के उन बदलावों का सामना करती है जो उसे न केवल पारिवारिक और सामाजिक दबावों से जकड़ें रखते हैं बल्कि आत्मनिर्भरता और पहचान के लिए संघर्ष करने पर भी मजबूर करते हैं। इस उपन्यास में आधुनिकता बोध के माध्यम से हम सामाजिक संस्थाओं की विफलता, महिला की स्वतन्त्रता की खोज और एक नई सोच को उजागर होते हुए देखते हैं जो पारंपरिक विश्वासों और आदर्शों के खिलाफ जाती है।

बेनु का विवाह अत्यंत पीड़ादायक था। उसके पति का स्वभाव कठोर और स्वार्थी था जो न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक रूप से भी उसे आहात करता रहा। उसके पति ने विवाह पश्चात भी एक महिला को रखैल के रूप में रखा है। जब लौंगवाती इस बारें में पूछती है तब बेनु बिना विचलित हुए बोलती है "तुम जानती हो यह खटिया मेरी नहीं है, भरी हुई हो चाहे खाली..."।[2] इन परिस्थितियों में बेनु अपने जीवन को अपवित्र और भ्रष्ट अनुभव किया लेकिन अपने भीतर की शक्ति और आध्यात्मिक विश्वास को कायम रखती है। वह मानती है कि उसकी तपस्या केवल शारीरिक नहीं बल्कि मानसिक तपस्या है जो चन्दन के जीवन में आशा और प्रकाश

का संचार करती रहेगी। बेनु का चरित्र सशक्त है जिसने अपने जीवन की निराशाजनक परिस्थितियों के बीच भी मानवता और न्याय की लड़ाई लड़ी। उसकी मानवीय संवेदनशीलता ने उसे लौंगवती के पति के अनुरोध करने के लिए प्रेरित किया कि वे चन्दनसिंह के लिए न्याय की अपील करें।

ग्रामीण समुदाय भले ही आर्थिक रूप से पिछड़े हों, वे अपनी ईमानदारी और नैतिकता के लिए जाने जाते है। लेखिका ने गंगा माँ के पात्र के माध्यम से आंचलिक लोगों की भलमानसी पर प्रकाश डाला है। वह चंदनसिंह को दो दिनों तक आश्रय आर भोजन उपलब्ध कराती ही परंतु उसे पुलिस को पकड़वाकर पाँच हजार लेना गलत और अनैतिक बताती है। गंगा दृढ़ता से कहती है – "यह तो सुनने से भी मुझे पाप लगता है, बेटा तुम्हें बेचकर उस रुपये की रोटी खाऊँगी।"[3] वह नहीं चाहती कि जिसने अपने परिवार की रक्षा के लिए गोली चलाई उसे पुलिस के हवाले करें।

अमृता प्रीतम की रचनाओं की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनके पात्रों में भावनाओं की गहराई और मानवीय जटिलताएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। उक्त उपन्यास के पात्र अपनी आंतरिक इच्छाओं और बाहरी सामाजिक दबावों के बीच निरंतर संघर्ष करते है जो यह दिखाता है कि ग्रामीण समाज में व्यक्ति अपनी पहचान और स्वतन्त्रता के लिए किस हद तक प्रयास करता है। उपन्यास के कई पात्र सामाजिक नियमों और परम्पराओं के खिलाफ जाकर अपने जीवन के निर्णय लेना का साहस दिखाते है।

'कोई नहीं जानता' में परंपरा और आधुनिकता का टकराव भी एक प्रमुख विषय के रूप में उभरकर पाठकों के सामने आता है। इस उपन्यास में कई ऐसे प्रसंग मिलते है जहाँ परंपरागत रीति–रिवाजों का पालन करते हुए भी पात्र आधुनिक सोच को व्यक्त करने का प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिए, चंदनसिंह अपने परिवार के विरुद्ध जाकर अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और प्रेम को प्राथमिकता देता है। बेनु के किसी ओर के साथ विवाह की जानकारी मिलते ही चंदनसिंह टूट जाता है और वन में चिंतित होकर सोचता है "जीने के लिए जिस रास्ते पर चल पड़ा था, उसी रास्ते के कारण बेनु बिछ्ड़ गई।"[4] अकेलेपन, पीड़ा और आंतरिक कष्ट उसे बेनु के बिछड़ने के दुख से जकड़े रखता है।

बेनु अपने असंतुष्ट जीवन के बावजूद, पूर्व प्रेमी चन्दन सिंह को न्याय दिलाने की कोशिश करती है और उसकी सहेली लौंगवती उसके वकील पति की मदद से चंदनसिंह को रिहा करवाती है। लौंगवती शुरू से ही बेनु की सच्ची सहेली रही है। वह बेनु और चन्दनसिंह के सच्चे प्रेम को सफल होते हुए देखना चाहती थी पर वो नहीं हो सका। उसने बेनु के गलत आदमी के साथ शादी को भी रोखने की कोशिश की पर बेनु की माँ जबर्दस्ती शादी करवा देती है। लौंगवाती बेनु की माँ से कहती है है "मौसी मैं तो हूँ अंजान। कैसे कहूँ। तुम खुद सयानी हो। तुम खुद ही समझ लो। बेनु को मन का आदमी ना मिला तो सारी उम्र गीले उपले की तरह सुलगेगी, फिर धूआं तो तुम्हारी आँखों को भी लेगेगा।"[5] ये संवाद समाज में महिलाओं की स्थिति, उनकी इच्छाओं और सपनों को महत्व न देने की प्रवृति को दर्शाती है। लौंगवती विवाह पश्चात भी अपनी सहेली बेनु की मदद करती है। आधुनिकता केवल सोच का परिवर्तन नहीं बल्कि नए विकास को समझकर उसका प्रयोजन भी है। गाँव वालों ने भी पुराने न्याय के तरीकों को न अपनाकर न्यायालय पर विश्वास कर सही निर्णय की सराहना की। अन्याय के खिलाफ आवाज उठाना, साक्षियों और सबूतों को हिम्मत से प्रकट करना, घूस रिश्वत पर पर्दा डालने वालों का पर्दाफाश करना, अपना पक्ष रखने का साहस, नागरिकों के अधिकारों को जागृत करना और अपनी

लड़ाई लड़ना, ये सब आधुनिकता बोध की ओर बढ़ने का प्रयास ही है।

निष्कर्षत :–

हम कह सकते है कि यह उपन्यास अमृता प्रीतम की एक ऐसी रचना है जो सांस्कृतिक जीवन का गहन अध्ययन प्रस्तुत करती है जिसमें आधुनिकता बोध की छाप है। उपन्यास में घटनाएँ स्वाभाविक रूप से घटित होती है और प्रतिकात्मक ढंग से नए विचार प्रस्तुत किये गए है। इसमें आंचलिक जीवन में छिपी हुई जटिलताएँ और संघर्षों के बीच आधुनिकता को दर्शाया गया हैं। कथानक एवं कथा पात्रों के गठन में परिलक्षित आधुनिकता बोध पर प्रकाश डाला गया है। पाठकों के लिए विचार मंथन के सफल प्रयास भी हुए है। हिन्दी साहित्य की विलक्षण प्रतिभा अमृता प्रीतम, अपने कथा पात्रों के चित्रण में आधुनिक चिंतन को पिरोने के नूतन प्रयास में निःसंदेह अत्यंत सिद्धहस्त हैं।

संदर्भ :–

1. 'कोई नहीं जानता', अमृता प्रीतम, प्रकाशन–हिन्दी पॉकेट बुक्स, पृ. सं. 51
2. 'कोई नहीं जानता', अमृता प्रीतम, प्रकाशन–हिन्दी पॉकेट बुक्स, पृ. सं. 54
3. 'कोई नहीं जानता', अमृता प्रीतम, प्रकाशन–हिन्दी पॉकेट बुक्स, पृ. सं. 44
4. 'कोई नहीं जानता', अमृता प्रीतम, प्रकाशन–हिन्दी पॉकेट बुक्स, पृ. सं. 42
5. 'कोई नहीं जानता', अमृता प्रीतम, प्रकाशन–हिन्दी पॉकेट बुक्स, पृ. सं. 30

Dr. V. Geeta Malini

Assistant Professor – Dept. of Hindi, Ethiraj College for Women, Chennai–600008

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 139-149

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नारी विमर्श : बचत का मनोविज्ञान विशेष रूप से खरीददारी के सन्दर्भ में

डॉ. शिवकरण निमल

सहायक आचार्य राज. विज्ञान, SPC राजकीय महाविद्यालय भीम राजसमन्द।

सारांश (Abstract) :-

मानव जीवन के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं – नर और नारी। यह दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है। जिस प्रकार से रथ के दोनों पहियों का संतुलन ही गाड़ी को आगे ले जाता है, ठीक उसी प्रकार से मानव जीवन को गतिशील बनाने में नर और नारी दोनों का एक साथ मिलकर कार्य करना, मानव जीवन की सार्थकता को दर्शाता है। नारी विमर्श आधुनिक समाज विज्ञान में एक ऐसा विमर्श है जिसका केंद्र बिंदु स्त्रियों के अधिकार, स्वतंत्रता, समानता और सशक्तिकरण है। यह विमर्श केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व या सामाजिक न्याय की मांगों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह स्त्रियों के जीवन के हर पहलू सांस्कृतिक, शैक्षिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक की गहन पड़ताल करता है। इस विमर्श के अंतर्गत यह प्रश्न भी आता है कि स्त्रियाँ किस प्रकार आर्थिक रूप से अपने जीवन और परिवार को संचालित करती हैं, और उनकी बचत संबंधी प्रवृत्तियाँ किस हद तक उन्हें आत्मनिर्भर और सशक्त बनाती हैं। इस शोध पत्र में महिलाओं की बचत संबंधी विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया गया है।

प्राचीन काल से ही इतिहास के माध्यम से ज्ञात होता है कि भारतीय समाज में महिलाएँ प्राचीन काल से ही संसाधनों की संरक्षिका रही हैं। चाहे वह बीज, अनाज या जल का संरक्षण हो या फिर संकट की घड़ी में उपयोग के लिए गुप्त बचत, स्त्रियों की यह प्रवृत्ति समाज को स्थायित्व प्रदान करती रही है। वर्तमान समय में जब बाजारवाद और उपभोक्तावाद ने जीवनशैली को बदल दिया है, तब भी महिलाएँ अपनी बचत को परिवार और भविष्य की सुरक्षा से जोड़कर देखती हैं। अब यह बचत केवल पारंपरिक स्वरूप में नहीं, बल्कि औपचारिक निवेश, बैंकिंग, बीमा और डिजिटल साधनों के रूप में भी प्रकट हो रही है।

कुंजी-शब्द (Keywords) :-

नारी विमर्श, बचत का मनोविज्ञान, आर्थिक सशक्तिकरण, लैंगिक समानता।

प्रस्तावना (Introduction) :-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज का अभिन्न हिस्सा है। उसका जीवन निरंतर गतिशील रहता है। मनुष्य अपने जीवन में अपने देशकाल और वातावरण से निरंतर प्रभावित होता है और अपना प्रभाव उस पर डालता है। सभी मनुष्य अपने समाज और देश की राजनीतिक आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक परिस्थितियों से

प्रभावित होते हैं। मानव जीवन के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं – नर और नारी। यह दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है। जिस प्रकार से रथ के दोनों पहियों का संतुलन ही गाड़ी को आगे ले जाता है, ठीक उसी प्रकार से मानव जीवन को गतिशील बनाने में नर और नारी दोनों का एक साथ मिलकर कार्य करना, मानव जीवन की सार्थकता को दर्शाता है। नारी विमर्श आधुनिक सामाजिक विज्ञानों, विशेषकर राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण बौद्धिक आंदोलन है। यह केवल स्त्री अधिकारों या लैंगिक समानता की सीमित बहस नहीं, बल्कि स्त्रियों के जीवन को प्रभावित करने वाले सभी आयामों आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक की पड़ताल करता है। नारी विमर्श हमें यह समझने का अवसर देता है कि किस प्रकार समाज की संरचना, संसाधनों का वितरण और शक्ति संबंध स्त्रियों के अनुभवों और उनके जीवन की वास्तविकताओं को आकार देते हैं। आज के दौर में साहित्य में महिलाओ की अग्रणी भूमिका है, कविता कहानी उपन्यास नाटक सभी क्षेत्रो में उनकी भूमिका सर्वविदित है। काल भले ही कोई भी हो, और क्षेत्र भले ही कोई हो, नारियों की बचत की भूमिका सर्वविदित है। हिंदी भाषा में नारियो का योगदान भी अमूल्य है, हिंदी भाषा के प्रचार प्रसार में भी उनकी भूमिका किसी से छुपी हुई नहीं है। महिलाओं द्वारा लोक संस्कृति का जो बचाव किया जा रहा है, वह पुरुषों से कहीं अधिक है।

भारतीय संदर्भ में नारी विमर्श और भी प्रासंगिक है, क्योंकि यहाँ स्त्रियाँ परंपरागत रूप से "गृह–लक्ष्मी" या "अन्नपूर्णा" के रूप में देखी जाती रही हैं।

मनुस्मृति में कहा गया है कि –

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।"

अर्थात, जहाँ स्त्रियों का आदर–सम्मान होता है, वहाँ देवता प्रसन्न होकर वास करते हैं। और जहाँ उनका सम्मान नहीं होता, वहाँ किए गए सभी शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं।

यह श्लोक स्पष्ट करता है कि नारी का सम्मान केवल सामाजिक कर्तव्य नहीं, बल्कि धार्मिक और आध्यात्मिक दायित्व भी है। स्त्रियों को "शक्ति, लक्ष्मी और अन्नपूर्णा" का स्वरूप माना गया है। यदि नारी का सम्मान किया जाए तो परिवार, समाज और राष्ट्र प्रगति करता है। यदि नारी का अपमान हो, तो कोई भी कार्य सफल नहीं होता, चाहे वह धार्मिक यज्ञ हो, सामाजिक आयोजन हो या व्यक्तिगत प्रयास। नारी विमर्श केवल आधुनिक बहस नहीं है, बल्कि इसकी जड़ें भारतीय परंपरा और शास्त्रों में भी दिखाई देती हैं। वर्तमान युग में यह विमर्श "Women Empowerment" और "Gender Equality" के साथ–साथ "Financial Inclusion" और "Psychology of Saving" जैसे नए आयामों से जुड़ गया है। यह छवि उन्हें परिवार और घर की अर्थव्यवस्था के संचालन से जोड़ती है। ग्रामीण और शहरी दोनों ही परिवेश में महिलाएँ अपने परिवार के संसाधनों का संयमित उपयोग करती रही हैं और कठिन परिस्थितियों में भी बचत और प्रबंधन के द्वारा परिवार को सहारा देती रही हैं। इस प्रकार, बचत का मनोविज्ञान (Psychology of Saving) स्त्रियों की आर्थिक भूमिका का ऐसा पहलू है जो न केवल घर–परिवार बल्कि समाज की समग्र स्थिरता और प्रगति से जुड़ा हुआ है।

बचत का मनोविज्ञान केवल व्यक्तिगत आर्थिक व्यवहार नहीं है, बल्कि यह स्त्रियों की पहचान, आत्मसम्मान और सशक्तिकरण से गहराई से जुड़ा हुआ है। बचत से स्त्रियाँ परिवार में आर्थिक निर्णयों में भागीदार

बनती हैं, सामाजिक स्तर पर उन्हें आत्मनिर्भरता मिलती है, और व्यापक संदर्भ में वे सामुदायिक तथा पर्यावरणीय स्थिरता की वाहक बन जाती हैं। वर्तमान में महिलाएं विभिन्न तरीको से सशक्तिकरण की और बढ़ रही है।

बचत और स्त्रियों की भूमिका :–

बचत का मनोविज्ञान (Psychology of Saving) इस विमर्श का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। बचत का संबंध केवल धन संचय से नहीं है, बल्कि यह एक मानसिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया भी है। यह स्त्रियों की दूरदर्शिता, त्याग, जिम्मेदारी और आत्म–सम्मान को दर्शाता है। जब महिलाएँ अपनी सीमित आय या संसाधनों में से कुछ हिस्सा भविष्य के लिए अलग करती हैं, तो वे केवल परिवार की आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित नहीं करतीं, बल्कि अपने आत्मनिर्भर होने का मार्ग भी प्रशस्त करती हैं। यह प्रवृत्ति उन्हें परिवार के भीतर निर्णायक भूमिका प्रदान करती है और समाज में भी उनकी पहचान को मजबूत करती है।

स्त्रियाँ अपनी जीवन–परिस्थितियों और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच संतुलन साधते हुए बचत करती हैं। उदाहरण के लिए, ग्रामीण महिलाएँ बीज, अनाज और ईंधन जैसी वस्तुओं को सहेजकर रखती हैं ताकि भविष्य में किसी संकट या कठिनाई की स्थिति में परिवार सुरक्षित रह सके। इसी तरह, शहरी मध्यमवर्गीय महिलाएँ अपनी आय का एक हिस्सा बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य या वृद्धावस्था की सुरक्षा के लिए अलग रखती हैं। यह दर्शाता है कि बचत का मनोविज्ञान केवल व्यक्तिगत आदत नहीं बल्कि एक सामाजिक–सांस्कृतिक जिम्मेदारी भी है। महिलाये प्राचीन काल से ही धार्मिक प्रवृतियों में अधिक रूचि लेती रही है। जिसका परिणाम यह निकला कि वे अपनी सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने में अपना योगदान दे पाई है। वे निरंतर प्रकृति पूजा के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण में भी निरंतर योगदान देती रही है। 'माँ' के रूप में प्रथम शिक्षिका के रूप में उनका योगदान अतुलनीय है। समाज और परिवार में रिश्तों की डोर को संभालने में उनकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती है। इस प्रकार वे सभी प्रकार की बचत में योगदान देती है।

नारी विमर्श और बचत का अंतःसंबंध :–

नारियों के द्वारा जिस प्रकार से समाज और परिवार में अपना योगदान दिया जाता है, उसका महत्व किसी भी प्रकार से पुरुषों के योगदान से कम नही है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि नारियां परिवार की रीढ़ की हड्डी का काम करती है। रीढ़ की हड्डी जिस प्रकार से सम्पूर्ण शरीर का संतुलन बनाये रखती है, ठीक उसी प्रकार से नारियां परिवार का संतुलन बनाये रखती है। नारी विमर्श हमें यह सिखाता है कि आर्थिक गतिविधियों का विश्लेषण केवल उत्पादन, उपभोग और निवेश तक सीमित नहीं होना चाहिए। इसमें यह भी देखा जाना चाहिए कि इन गतिविधियों में स्त्रियाँ किस प्रकार शामिल होती हैं और उनके योगदान को समाज किस रूप में मान्यता देता है। पारंपरिक अर्थशास्त्र अक्सर घरेलू कार्य और बचत की स्त्रियों की भूमिका को "अदृश्य श्रम" मानकर नजरअंदाज करता है। परंतु नारीवादी दृष्टिकोण से यह श्रम और बचत किसी भी समाज की आर्थिक रीढ़ है।

बचत का मनोविज्ञान नारी विमर्श में इसीलिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि :–

1. यह स्त्रियों की आर्थिक स्वायत्तता का प्रतीक है।
2. यह परिवार और समाज की भविष्य की सुरक्षा का आधार है।
3. यह स्त्रियों के निर्णय लेने की क्षमता और आत्म–सम्मान से जुड़ा हुआ है।
4. यह दर्शाता है कि स्त्रियाँ सीमित संसाधनों में भी किस प्रकार विवेकपूर्ण निर्णय लेती हैं।

भारतीय समाज में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :-

भारतीय समाज में स्त्रियों की बचत प्रवृत्ति कोई नई बात नहीं है। प्राचीन काल से ही महिलाएँ परिवार की धुरी मानी जाती थीं और उनके पास अनाज, बीज या धन को सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी होती थी। मध्यकालीन भारत में भी महिलाएँ अपनी "गुप्त बचत" (Secret Saving) रखती थीं, जिसे वे कठिन समय में परिवार को बचाने के लिए उपयोग करती थीं। आज भी ग्रामीण गृहिणियों में यह परंपरा मिलती है।

स्वतंत्रता आंदोलन के समय भी महिलाओं की बचत ने सामाजिक आंदोलनों को सहयोग दिया। उदाहरण के लिए, गांधी जी के स्वदेशी आंदोलन में महिलाओं ने विदेशी कपड़ों के बहिष्कार के साथ–साथ सूत कातकर बचत की संस्कृति को सामाजिक आंदोलन से जोड़ा। आधुनिक समय में महिलाएँ स्वयं सहायता समूह, सहकारी समितियों और बचत योजनाओं के माध्यम से आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर रही हैं। वर्तमान में महिलाये विभिन्न पदों पर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। आज घर पर रहकर भी महिलाये लघु उधोगो के माध्यम से अपनी परिवार की आर्थिक स्थिति में अपना योगदान दे रही है। आज चाहे राजनीति का क्षेत्र हो या फिर शिक्षा, खेल, उधोग, धर्म सभी में अग्रणी भूमिका का निर्वहन कर रही है। प्राचीनकाल से लेकर आज तक कृषि उद्योग में उनकी भूमिका सर्व विदित है। 21वीं सदी में जब वैश्वीकरण, बाजारवाद और उपभोक्तावाद ने समाज में प्रवेश किया है, तब बचत का मनोविज्ञान और भी चुनौतीपूर्ण हो गया है। एक ओर विज्ञापन और उपभोग की संस्कृति लोगों को अधिक खर्च के लिए प्रेरित करती है, वहीं दूसरी ओर महिलाएँ अपनी पारंपरिक प्रवृत्ति को बनाए रखते हुए भविष्य की सुरक्षा के लिए बचत करना नहीं छोड़तीं। अब यह बचत केवल पारंपरिक रूप में नहीं, बल्कि डिजिटल बैंकिंग, बीमा, म्यूचुअल फंड और पेंशन योजनाओं जैसे औपचारिक साधनों के रूप में सामने आ रही है। बदलते दौर में भी उनकी भूमिका कम नही हुयी है, बल्कि व्यापार में उनकी भूमिका नये रूप में सामने आ रही है।

शोध पत्र का उद्देश्य :-

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य महिलाओं के द्वारा की जाने वाली बचत के दृष्टिकोण को समझना है।

साहित्य समीक्षा (Literature Review) :-

1. बिना अग्रवाल (2010) : महिलाओं की सामुदायिक भागीदारी और संसाधन प्रबंधन :

बिना अग्रवाल का कार्य "Gender and Green Governance: The Political Economy of Women's Presence Within and Beyond Community Forestry" (2010) महिलाओं की सामूहिक भागीदारी पर केंद्रित है। अग्रवाल का तर्क है कि प्राकृतिक संसाधनों जैसे – जंगल, जल, भूमि के प्रबंधन में महिलाओं की सीधी भागीदारी आवश्यक है। वे बताती हैं कि महिलाओं की परंपरागत भूमिका जलावन, चारा, जल इत्यादि जुटाने में रही है, इसलिए संसाधनों के संरक्षण और प्रबंधन से उनका जीवन प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। यदि महिलाएँ निर्णय लेने की संस्थाओं में शामिल होती हैं तो संसाधनों का संरक्षण अधिक स्थायी और न्यायपूर्ण ढंग से हो सकता है। अग्रवाल ने सामुदायिक वन प्रबंधन समितियों के उदाहरण देकर दिखाया कि जहाँ महिलाओं की भागीदारी अधिक होती है वहाँ नियमों का पालन, निगरानी और सामुदायिक सहयोग बेहतर होता है। इस प्रकार, अग्रवाल महिलाओं की बचत प्रवृत्ति को केवल घरेलू स्तर तक सीमित नहीं मानतीं बल्कि संसाधन प्रबंधन के सामुदायिक स्तर तक विस्तारित करती हैं।

2. वंदना शिवा (1988) : स्त्रियों की बचत और पर्यावरण संरक्षण का संबंध :-

वंदना शिवा की प्रसिद्ध कृति "Staying Alive : Women, Ecology and Survival in India" (1988) इको–फेमिनिज्म की बुनियाद रखती है। शिवा बताती हैं कि महिलाएँ पर्यावरण और जीवन के बीच संबंध को गहराई से समझती हैं। वे इस विचार की समर्थक हैं कि महिलाओं का जीवन अनुभव उन्हें बचत और संरक्षण की ओर प्रेरित करता है, वे प्रकृति की भाँति जीवनदायिनी होती हैं। उनके अनुसार भारतीय ग्रामीण महिलाएँ बीज, अनाज और जल जैसे संसाधनों को बचाकर आने वाली पीढ़ियों की सुरक्षा करती हैं। शिवा के लिए बचत केवल आर्थिक नहीं बल्कि पारिस्थितिकीय (Ecological) और सांस्कृतिक क्रिया है। चिपको आंदोलन और बीज–संरक्षण आंदोलनों के उदाहरणों से उन्होंने दिखाया कि महिलाएँ प्रकृति के संसाधनों को बचाने में अग्रणी भूमिका निभाती हैं। शिवा के विचार नारी विमर्श में यह धारणा स्थापित करते हैं कि स्त्रियों की बचत की प्रवृत्ति पारिवारिक और सामाजिक जीवन से कहीं आगे बढ़कर संपूर्ण पृथ्वी की सुरक्षा से जुड़ी है।

3. एलिनोर ओस्ट्रॉम (1990) : सामूहिक संसाधन प्रबंधन में महिलाओं की भूमिका :-

एलिनोर ओस्ट्रॉम की महत्वपूर्ण पुस्तक "Governing the Commons: The Evolution of Institutions for Collective Action" (1990) संसाधनों के सामूहिक प्रबंधन (Common Pool Resources) पर केंद्रित है। ओस्ट्रॉम ने इस धारणा को चुनौती दी कि सामुदायिक संसाधन केवल निजीकरण या राज्य नियंत्रण से ही सुरक्षित हो सकते हैं। उन्होंने दिखाया कि स्थानीय समुदाय अपने नियम और संस्थाएँ विकसित कर सामूहिक संसाधनों (जंगल, तालाब, चरागाह आदि) का बेहतर प्रबंधन कर सकते हैं। इसमें महिलाओं की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि वे संसाधनों का सीधा उपयोग करती हैं। ओस्ट्रॉम के अनुसार, महिलाएँ जब सामुदायिक संस्थाओं में सक्रिय होती हैं तो निर्णय अधिक लोकतांत्रिक और संसाधन–उन्मुख होते हैं। उनका मॉडल नारी विमर्श से यह संकेत देता है कि महिलाओं का बचत व्यवहार सामूहिकता, सहकारिता और भविष्य की सुरक्षा से जुड़ा है। उन्होंने यह भी बताया कि महिलाओं का अनुभव–आधारित ज्ञान (Experiential Knowledge) सामूहिक संसाधन प्रबंधन में विशेष योगदान देता है।

4. वांगारी माथाई (2006) : बचत व्यवहार और सामाजिक परिवर्तन :-

केन्या की पर्यावरणविद और नोबेल शांति पुरस्कार विजेता वांगारी माथाई की आत्मकथा "Unbowed : A Memoir" (2006) उनके जीवन संघर्ष और हरित आंदोलन की कहानी है। माथाई ने "Green Belt Movement" की शुरुआत की जिसमें ग्रामीण महिलाएँ पेड़ लगाकर पर्यावरण संरक्षण के साथ–साथ आजीविका और सामाजिक बदलाव का मार्ग प्रशस्त करती हैं। उनके अनुसार, महिलाएँ पेड़ लगाने और बचाने में इसलिए सक्रिय हुईं क्योंकि वे परिवार के लिए जलावन और भोजन जुटाने की जिम्मेदारी निभाती हैं। यह आंदोलन महिलाओं के बचत व्यवहार को व्यापक सामाजिक आंदोलन में बदल देता है–पेड़ लगाना और संसाधन बचाना भविष्य को सुरक्षित करना है। उन्होंने बचत को केवल आर्थिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक पूँजी (Social Capital) और पर्यावरणीय पूँजी (म्बवसवहपबंस ब्वपजंस) के रूप में परिभाषित किया। वांगारी माथाई के विचार यह दर्शाते हैं कि स्त्रियों की बचत और संरक्षण की प्रवृत्ति सामूहिक रूप से समाज में परिवर्तन ला सकती है।

5. इंदिरा दे (2015) : भारतीय महिलाओं की अर्थव्यवस्था और बचत प्रवृत्ति :-

इंदिरा दे की पुस्तक "Women and Economy in India" (2015) भारतीय संदर्भ में महिलाओं की आर्थिक

भूमिका और बचत की प्रवृत्तियों को समझाती है। वे बताती हैं कि भारतीय महिलाएँ पारंपरिक रूप से 'गृह अर्थशास्त्र' (Home Economics) की विशेषज्ञ रही हैं। ग्रामीण महिलाओं की बचत मुख्यतः कृषि उत्पाद, बीज, अनाज और छोटे–मोटे नकद धन तक सीमित होती है। शहरी कार्यरत महिलाएँ वेतन का बड़ा हिस्सा बच्चों की शिक्षा, गृह ऋण और चिकित्सा पर बचाकर निवेश करती हैं। दे का कहना है कि महिलाएँ उपभोग से अधिक भविष्य की सुरक्षा को प्राथमिकता देती हैं। भारतीय महिलाओं के बचत व्यवहार में "गुप्त बचत" की भी परंपरा है, जिसमें गृहिणियाँ छोटे–छोटे पैसे छिपाकर भविष्य की आपात स्थिति के लिए बचाकर रखती हैं। इंदिरा दे ने यह निष्कर्ष दिया कि महिलाओं की बचत प्रवृत्ति भारतीय परिवारों की आर्थिक स्थिरता और विकास की रीढ़ है।

6 अमर्त्य सेन (1999) : क्षमताएँ और स्वतंत्रता :–

नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन की प्रसिद्ध कृति "Development as Freedom" (1999) नारी विमर्श और बचत को समझने के लिए वैश्विक परिप्रेक्ष्य प्रदान करती है। सेन का "Capability Approach" बताता है कि वास्तविक विकास तब होता है जब प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमताओं (Capabilities) को विकसित करने का अवसर मिले। उनके अनुसार महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य और आर्थिक भागीदारी उन्हें "Agency" प्रदान करती है, जिससे वे बचत और संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग में सक्षम होती हैं। सेन यह भी मानते हैं कि महिलाओं की बचत केवल आर्थिक सुरक्षा नहीं है, बल्कि यह उन्हें स्वतंत्र निर्णय लेने और सामाजिक सहभागिता का अधिकार देती है। यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि महिलाओं की बचत प्रवृत्ति मानव विकास (Human Development) की अनिवार्य शर्त है।

7. मार्था नुसबौम (2000) : क्षमताओं का विस्तार और नारी सशक्तिकरण :–

मार्था नुसबौम की पुस्तक "Women and Human Development: The Capabilities Approach" (2000), अमर्त्य सेन की क्षमतावादी दृष्टि का विस्तार है। नुसबौम का तर्क है कि महिलाओं के पास केवल संसाधन होना ही पर्याप्त नहीं, बल्कि उन संसाधनों का उपयोग कर सार्थक जीवन जीने की क्षमता (Capability to Function) भी आवश्यक है। वे 10 केंद्रीय क्षमताओं (जैसे जीवन, स्वास्थ्य, शिक्षा, खेल, सहभागिता, गरिमा) की सूची देती हैं, जिनमें आर्थिक स्वतंत्रता और बचत की क्षमता भी निहित है। नुसबौम के अनुसार महिलाओं की बचत प्रवृत्ति केवल परिवार की जिम्मेदारी नहीं, बल्कि उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और सामाजिक न्याय का भी अंग है। उनका दृष्टिकोण इस बात को रेखांकित करता है कि यदि महिलाएँ बचत के माध्यम से अपने भविष्य को सुरक्षित कर पाती हैं तो यह उन्हें "समान अवसर" और "समान सम्मान" दिलाने का साधन बन जाता है।

नारी विमर्श का वैचारिक परिप्रेक्ष्य (Feminist Perspectives) :–

नारी विमर्श का दायरा स्त्रियों की राजनीतिक और सामाजिक समानता तक सीमित नहीं है। यह उनके आर्थिक व्यवहार, विशेषकर बचत के मनोविज्ञान, को समझने और मान्यता देने का भी प्रयास करता है। महिलाएँ अपनी बचत के माध्यम से न केवल परिवार की सुरक्षा सुनिश्चित करती हैं बल्कि व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवर्तनों की वाहक भी बनती हैं।

(क) उदार नारीवाद (Liberal Feminism) और बचत का मनोविज्ञान :–

उदार नारीवाद इस बात पर जोर देता है कि महिलाएँ और पुरुष समान अवसरों और अधिकारों के अधिकारी हैं। इसका आधार जॉन स्टुअर्ट मिल और मैरी वॉलस्टोनक्राफ्ट जैसे विचारकों के लेखन में मिलता है।

उदार नारीवाद मानता है कि यदि महिलाओं को शिक्षा, रोजगार और कानूनी समानता मिले तो वे अपनी आर्थिक स्वतंत्रता स्थापित कर सकती हैं। बचत की प्रवृत्ति इस स्वतंत्रता का प्रत्यक्ष रूप है। यह दृष्टिकोण बचत को केवल आर्थिक निर्णय नहीं बल्कि एक नागरिक अधिकार मानता है। यदि महिलाएँ अपनी आय या घरेलू संसाधनों को बचत और निवेश में लगाने के लिए स्वतंत्र हैं, तो यह उनकी स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय क्षमता का प्रतीक है। आधुनिक शहरी कामकाजी महिलाएँ, बैंकिंग सेवाओं, डिजिटल वॉलेट और निवेश योजनाओं में सक्रिय हैं। उदार नारीवाद इन प्रयासों को स्त्री–पुरुष समानता की दिशा में ठोस कदम मानता है। उदार नारीवाद का प्रभाव भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो कहा जा सकता है कि भारत में राजनीतिक अधिकारों में किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं है। सभी महिलाओ को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अवसर प्राप्त है। RTE एक्ट इसका उदाहरण है।

(ख) समाजवादी नारीवाद (Socialist Feminism) और बचत का मनोविज्ञान :–

समाजवादी नारीवाद स्त्रियों की आर्थिक स्थिति को पूँजीवाद और वर्गीय शोषण से जोड़कर देखता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार महिलाओं की कमाई प्रायः पुरुष–प्रधान पूंजीवादी ढाँचे में नियंत्रित होती है, जहाँ उनका श्रम अवमूल्यित (Undervalued) किया जाता है। समाजवादी नारीवादियों के लिए बचत का मनोविज्ञान केवल परिवार की सुरक्षा का साधन नहीं है, बल्कि यह वर्गीय असमानता और शोषण के विरुद्ध संघर्ष का हिस्सा है। श्रम का मूल्यांकन : महिलाएँ अक्सर बिना वेतन के घरेलू काम करती हैं। समाजवादी नारीवाद यह तर्क देता है कि जब वे छोटे–छोटे संसाधनों को बचाकर परिवार की अर्थव्यवस्था को सँभालती हैं तो यह भी उनके श्रम का योगदान है, जिसका सामाजिक मान्यता मिलनी चाहिए। सामूहिक बचत : स्वयं सहायता समूह (SHG) और महिला सहकारी समितियाँ इस दृष्टिकोण का उदाहरण हैं, जहाँ सामूहिक बचत वर्गीय असमानता को चुनौती देती है।

(ग) सांस्कृतिक नारीवाद (Cultural Feminism) और बचत का मनोविज्ञान :–

सांस्कृतिक नारीवाद स्त्रियों की विशिष्टताओं संवेदनशीलता, करुणा, सहनशीलता को सकारात्मक मानते हुए उनके सामाजिक योगदान की सराहना करता है। यह दृष्टिकोण मानता है कि महिलाएँ अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक भूमिकाओं के कारण बचत को केवल आर्थिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि नैतिक और सांस्कृतिक दायित्व के रूप में देखती हैं। महिलाएँ अपनी संतानों और परिवार की भलाई के लिए संसाधनों का संरक्षण करती हैं। यह सांस्कृतिक परंपरा उन्हें "घर की लक्ष्मी" और "अन्नपूर्णा" की छवि से जोड़ती है। महिलाएँ अक्सर अपनी इच्छाओं को दबाकर परिवार के हित में बचत करती हैं। यह त्याग उन्हें सांस्कृतिक रूप से सम्मान दिलाता है, परंतु नारी विमर्श में इसे उनकी स्वाभाविक जिम्मेदारी मानना कई बार आलोचना का विषय भी बनता है। सांस्कृतिक नारीवाद इस बात को मान्यता देता है कि महिलाओं की यह प्रवृत्ति समाज में स्थायित्व और निरंतरता बनाए रखने में योगदान देती है।

(घ) इको–फेमिनिज्म (Eco-Feminism) और बचत का मनोविज्ञान :–

इको–फेमिनिज्म स्त्रियों और प्रकृति के बीच गहरे संबंध पर बल देता है। इको–फेमिनिस्ट दृष्टिकोण के अनुसार, महिलाएँ प्रकृति की संरक्षिका की भूमिका निभाती हैं। बचत उनके लिए केवल धन नहीं बल्कि जल, ऊर्जा, बीज और खाद्य सामग्री जैसे संसाधनों का संरक्षण है। महिलाएँ जीवनदाता की भूमिका में आने वाली

पीढ़ियों के लिए संसाधनों को बचाने और सुरक्षित रखने में अग्रणी होती हैं। चिपको आंदोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन, और वंदना शिवा के बीज आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी यह दिखाती है कि उनकी बचत प्रवृत्ति प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से जुड़ी है। इको–फेमिनिज्म बताता है कि महिलाओं की बचत का मनोविज्ञान घरेलू दायरे से आगे बढ़कर वैश्विक पारिस्थितिकी और सतत विकास से जुड़ा हुआ है।

बचत का मनोविज्ञान (Psychology of Saving) :–

मानव जीवन में हर व्यक्ति अपने भविष्य को लेकर सजक और जागरूक रहता है। परिवार में पुरुषो के साथ ही महिलाये भी इस बारे में अधिक सजक और जागरूक होती है, वे अपने परिवार की सुरक्षा को अधिक प्राथमिकता देती है। भविष्य में बच्चों की शिक्षा, विवाह, स्वास्थ्य जैसी जरूरतों के लिए वे बचत को अधिक महत्व देती है। विधवा, तलाकशुदा या अकेली महिलाओं के लिए बचत उनकी जीवन–रेखा है। यह उन्हें आर्थिक निर्भरता से मुक्त करती है। बचत से उनमे आत्म निर्भरता और आत्म सम्मान में वृद्धि होती है, इसी से उन्हें आत्मसंतोष भी प्राप्त होता है। महिलाओ में सीमित संसाधनों से जीवन यापन करने की अद्भुत कला होती है।

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (Historical and Cultural Context) :–

प्राचीन भारत में स्त्रियाँ गृहिणी के रूप में संसाधन प्रबंधन करती थीं। ग्रामीण समाज में महिलाएँ अनाज, बीज और धन को भविष्य के लिए संचित करती थीं। आधुनिक काल में महिलाओं ने स्वयं सहायता समूह (SHGs), चिट फंड, सहकारी समितियों और बचत योजनाओं में सक्रिय भूमिका निभाई। उदाहरण : आंध्र प्रदेश और बिहार के SHG आंदोलन ने लाखों महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता दिलाई।

आधुनिक संदर्भ और चुनौतियाँ (Modern Context and Challenges) :–

आधुनिक युग में प्रचार प्रसार के साधन बहुत अधिक बढ़ गए है, आज विज्ञापन और फैशन उद्योग महिलाओं को अधिक खर्च के लिए प्रेरित करते हैं। जिसके कारण आज बचत करना अधिक कठिन बनता जा रहा है। आज बाजार में तरह तरह के उत्पादन शामिल है, जो खरीददारी के पुराने तरीको को प्रभावित करते है। फिर भी, महिलाएँ अपनी बचत को भविष्य की सुरक्षा हेतु बनाए रखती हैं। आज बचत के अनेक उपाय उपलब्ध है। उच्च शिक्षा और कैरियर ने महिलाओं को नए निवेश साधनों की ओर उन्मुख किया है। FD, म्यूचुअल फंड, बीमा और डिजिटल सेविंग उनकी प्राथमिकता बन रहे हैं। आज मोबाइल बैंकिंग, UPI, ई–वॉलेट, ऑनलाइन निवेश आदि माध्यम उपलब्ध है। वर्तमान में डिजिटल सेवाओं ने महिलाओं की बचत प्रवृत्ति को और सरल बनाया है। आज महिलाओ के समक्ष अनेक चुनौतियाँ है जैसे – वित्तीय साक्षरता की कमी, परिवार में पुरुष–प्रधान निर्णय प्रणाली, ग्रामीण महिलाओं तक बैंकिंग सेवाओं की सीमित पहुँच आदि।

स्त्रियों द्वारा खरीददारी और बचत :–

मानव स्वभाव से ही खरीददारी करते समय कम से कम पैसे में अधिक से अधिक वस्तुए खरीदना चाहता है, और व्यापारी अधिक से अधिक पैसे में कम से वस्तुए देना चाहता है। इसी प्रवृति से सोदेबाजी की धारणा पनपती है। अक्सर इस मामले में महिलाये अग्रणी भूमिका निभाती है। महिलाये खरीद दारी के समय अधिक सजक और जागरूक दिखाई देती है, जबकि पुरुष कम। परिवार के अंतर्गत रोजमर्रा के वस्तुए ही नही, अपितु शादी विवाह, विभिन्न त्योहारों और अवसरों पर उनके द्वारा ही खरीद दारी की जाती है। महिलाये एक वस्तु को खरीदते समय विभिन्न दुकानदारो की दरों का तुलनात्मक अध्ययन करना बखूबी जानती है, उन्हें बहुत सी

वस्तुओ के आज और पुरानी दरो का मौखिक ज्ञान होता है, एक ही वस्तु को खरीदने में बहुत सारी महिलाओ से चर्चा करके ही खरीददारी करती है। महिलाये हमेशा कम से कम दर पर अच्छी से अच्छी वस्तु खरीदने की कला में कुशल होती है। महिलाओ और पुरुषो का खरीदारी करने के तरीके में बहुत अधिक अंतर देखने को मिलता है। महिलाये अक्सर किसी भी वस्तु का भाव कम कराने और अच्छी से अच्छी वस्तु खरीदने में कुशल होती है। सब्जी की दुकान हो, किराणा की दुकान हो, कपड़े की दुकान हो, वे हर जगह कुशलतापूर्वक खरीददारी करती नजर आती है। उनके द्वारा की गयी यह मेहनत दर्शाती है, कि वे बचत को लेकर कितना सजक है। हालाँकि सभी महिलाओ की प्रवृति ऐसी हो जरूरी नही है, परन्तु अधिकतर यह देखा गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि दिन प्रतिदिन छोटी–छोटी बचत करके परिवार को भविष्य की आने वाली चिन्ताओ से उभारने में काफी मदद करती है। महिलाओं के स्वभाव में खान पान के स्वभाव में भी यह देखा गया है कि वे फालतू खर्च करने के बजाय बचत पर ही अधिक ध्यान देती है।

महिलाये बचत करने के अनेक तरीको से वाकिफ होती है। वे घर परिवार में उन्हें मिलने वाले एक–एक पैसे को जोड़कर रखना जानती है। वे अनेक स्वयं सहायता समूह के माध्यम से आज बचत को बढ़ावा दे रही है। वे अनेक छोटे छोटे घरेलू कार्यो के माध्यम से भी पैसे कमाना बखूबी जानती है। बिहार और आंध्र प्रदेश के स्वयं सहायता समूहों ने महिलाओं को छोटे–छोटे योगदान से सामूहिक बचत करने में सक्षम बनाया। इन समूहों ने ऋण, शिक्षा और उद्यमिता को प्रोत्साहित किया। दिल्ली और मुंबई की मध्यमवर्गीय कार्यरत महिलाएँ अपनी आय का लगभग 25–30 प्रतिशत बचत और निवेश में लगाती हैं। उनका उद्देश्य बच्चों की उच्च शिक्षा और गृह ऋण चुकाना होता है। गृहिणियाँ प्रायः 'गुप्त बचत' करती हैं जिसे वे संकट की घड़ी में परिवार को संभालने के लिए प्रयोग करती हैं। खरीददारी करते समय महिलाये जितनी सजग और जागरूक होती है, उतने पुरुष नही होते है। महिलाये व्यापारी से कम से कम रेट पर ही सामान खरीदती है। दुकान पर "भाई साहब यह तो बहुत महँगा है, पिछली बार तो ये इतने में ले गये थे, ये कपड़ा भी ज्यादा अच्छा नहीं है, ये सब्जी तो बहुत पुरानी है, पास वाले भाई साहब तो इतने में ही दे रहे है, इतने रूपये में देना हो तो दिजिय वरना रहने दिजिये।" ऐसे ही हजारों वाक्य महिलाओ के श्रीमुख से सुनने को मिलते है, पुरुषो के मुख से नही। महिलाये यह सब व्यर्थ में नही करती है बल्कि बचत का मनोविज्ञान यह सब करवाता है। इस प्रकार वे बचत को अधिक महत्व देती है।

प्राचीन काल से ही आभूषणों के प्रति महिलाओं की रूचि रही है, भले इसे महिलाओं का शौक कहा जाये, परन्तु यह भी उनकी बचत का एक तरीका है। इस प्रकार महिलाये आर्थिक आत्मनिर्भरता की तरफ अग्रषित होती है। इस कारण से उनकी घरेलू निर्णयों में भागीदारी बराबर बनी रहती है। जिसके फलस्वरूप उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा और आत्म–सम्मान में वृद्धि होती है। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि वे समाज में स्त्री–पुरुष समानता की दिशा में योगदान देकर समाज को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। इसके कारण से लैगिक समानता को भी निरंतर बढ़ावा मिलता है। साथ ही साथ महिलाओ के बचत के कारण महिला सशक्तिकरण को भी बढ़ावा मिलता है। महिलाये खरीददारी करते समय एक कुशल व्यापारी की तरह ही व्यवहार करती है। महिलाएँ "Value for Money" पर अधिक ध्यान देती हैं। उनकी खरीददारी की शैली (तुलना, भाव–ताव, विकल्प खोज) वास्तव में व्यवहारिक अर्थशास्त्र का उदाहरण है।

सुझाव (Suggestions) :–

1. वर्तमान युग में तकनीकी ज्ञान में वृद्धि होने के कारण ऑनलाइन खरीददारी का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। इस हेतु महिलाओं के लिए वित्तीय साक्षरता कार्यक्रम चलाए जाएँ।
2. आज के युग में खरीददारी के अनेक तरीके संभव है, परन्तु शहरी क्षेत्र की महिलाये इसमें अग्रणी है, परन्तु ग्रामीण क्षेत्र में इसका आभाव नजर आता है, इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सेवाओं की पहुँच बढ़ाई जाए।
3. आज महिलाये हर क्षेत्र में अग्रणी भूमिका का निर्वहन कर रही है, इसलिए नीति–निर्माण में महिलाओं की बचत और निवेश प्रवृत्तियों को ध्यान में रखा जाए।
4. वर्तमान में अनेक महिलाओ की बचत की प्रवृति को आगे ले जाने वाले स्वयं सहायता समूह विद्यमान है, इन स्वयं सहायता समूहों और सहकारी समितियों को और सशक्त किया जाए।
5. परिवार और समाज में महिलाओ के बेहतर योगदान को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान में महिलाओं को घरेलू स्तर पर आर्थिक निर्णयों में अधिक अधिकार मिलने चाहिये।
6. हर तरफ महिला सशक्तिकरण की बात की जाती है इस हेतु सरकार को महिलाओं के लिए Financial Literacy Programs को गाँव–गाँव तक ले जाना चाहिए। ताकि महिलाये अधिक सक्षम हो सके।
7. महिलाओं की "गुप्त बचत" को औपचारिक बैंकिंग व्यवस्था से जोड़ने की नीतियाँ बननी चाहिए। और महिला बचत समूहों को Digital Platforms से जोड़ा जाए। जिससे वे अधिक प्रभावी भूमिका का निर्वहन कर सके।

निष्कर्ष (Conclusion) :–

बचत का मनोविज्ञान महिलाओं के आर्थिक जीवन का मूल आधार है। यह केवल धन संचय की प्रक्रिया नहीं, बल्कि महिलाओं की दूरदर्शिता, संघर्षशीलता और सशक्तिकरण का प्रतीक है। नारी विमर्श के तहत यह समझना आवश्यक है कि महिलाओं की बचत को बढ़ावा देना उनके आत्मनिर्भरता और समाज में समान स्थान दिलाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। महिलाओ के द्वारा की गयी बचत उनके भविष्य की सुरक्षा को ध्यान में रखकर की जाती है, ताकि आने वाली चुनौतियों का सामना किया जा सके। महिलाओ के द्वारा जो खरीददारी की जाती है, उसके द्वारा जो बचत की जाती है, वह परिवार के बुरे दिनों में काम आती है। महिलाये हमेशा भविष्य को चिंतित रहती है, इसलिये छोटी–छोटी बचत को हमेशा महत्व देती है, परिणाम यह होता है कि उनकी बचत संकट के समय उन्हें चिंतामुक्त करती है। इस प्रकार से यह शोधपत्र यह दर्शाता है, कि महिलाओ की बचत की प्रवृति हमेशा से परिवार और समाज के लिए फायदेमंद रही है। महिलाये बचत को अधिक महत्व देती है, पुरुषो के बजाय। आधुनिक युग में बचत के अनेक तरीके उपलब्ध है, जिनमे महिलाये हमेशा से आगे रही है। प्रकृति का संरक्षण हो, परम्परा का बचाव हो या धन की बचत हो या फिर लोक संस्कृति का बचाव करना हो, सभी क्षेत्रों में उनका योगदान सराहनीय है। नारी विमर्श और बचत का संबंध केवल परिवार तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) विशेषकर SDG 5 (Gender Equality) और SDG 8 (Decent Work & Economic Growth) से भी जुड़ता है। अंत में कहा जा सकता है–

"**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता**" केवल एक धार्मिक श्लोक नहीं, बल्कि एक जीवन–दर्शन है।

यह बताता है कि नारी के सम्मान से ही देवत्व का वास होता है और समाज समृद्ध बनता है। यदि नारी का सम्मान नहीं है, तो धर्म, संस्कृति, और प्रगति सभी निष्फल हो जाते हैं। आधुनिक नारी विमर्श इस शाश्वत सत्य को नए सन्दर्भ में प्रस्तुत करता है कि स्त्री का सम्मान और समानता मानव समाज की प्रगति की सबसे बड़ी शर्त है।

संदर्भ सूची (References) :-

1. Agarwal, Bina. Gender and Green Governance. Oxford University Press, 2010.
2. Shiva, Vandana. Staying Alive: Women, Ecology and Survival in India. Zed Books, 1988.
3. Ostrom, Elinor. Governing the Commons. Cambridge University Press, 1990.
4. Maathai, Wangari. Unbowed: A Memoir. Anchor Publishing, 2006.
5. Indira De. Women and Economy in India. Sage Publications, 2015.
6. Andrew Heywood. Political Ideologies: An introduction. Dev publisharsh .2025
7. Andrew Heywood. Political Theory: An introduction. Palgrav mechmilan. 1999
8. Karunesh Pratap. Samkalin rajnitik sidhant. Orient blackswan. 2020
9. Naresh Dadhich. Samsamyik Rajnitik Sidhant. Ravat books Jaipur. 2015
10. Sen, Amarty . Development as freedom. Oxford University Press.1999
11. Nussbaum, M. C. Women and human development: The capabilities approach. Cambridge University Press. 2000

M. : 7597359036

EMAIL ID –SHIVKARANNIRMAL@GMAIL.COM

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 150-154
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नारी विमर्श

डॉ. सुनीता राठौर
सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय एम.एम.आर. स्नातकोत्तर महाविद्यालय चाम्पा।

भारतीय चिंतन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में नारी विमर्श उसके संघर्ष एवं उसकी अस्मिता से जुड़े प्रश्नों को रेखांकित करते हुए वर्तमान संदर्भ में परिवार, समाज और राजनीति के क्षेत्र में आए बदलावों को हिन्दी साहित्य के माध्यम से दिखाया है। साथ ही शिक्षा और आत्मनिर्भरता के परिणामस्वरूप स्त्री जीवन के विकास और सशक्तिकरण को भी नारी विमर्श शोध पत्र में प्रस्तुत किया है।

भारतीय समाज में स्त्रियों ने कभी कुप्रथाओं और रूढ़ियों से मुक्ति के लिए संघर्ष किया है, तो कभी राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में सहभागी की भूमिका भी निभाई है।

भारतीय ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में लोपामुद्रा, अपाला, गार्गी, मैत्रयी, शची, श्रद्धा, कामायनी आदि स्त्रियों का विद्वतापूर्ण दार्शनिक – आध्यात्मिक चिंतन भारतीय नारी के लिए अपार संभावनाओं से युक्त रहा है। प्रागैतिहासिक काल में स्त्री के लिए अनुकूल स्थितियों को बताते हुए राजशेखर ने लिखा है, कि उस काल में ''पुरूषों के समान स्त्रियाँ भी कवि हो सकती है, ज्ञान का संस्कार आत्मा से संबंध रखता है, उसमें स्त्री या पुरूश का भेद नहीं है।'' आदिकाल में स्त्रियों की स्थिति मुख्य रूप से युद्ध और सामाजिक व्यवस्था का शिकार थी, जिसमें सती प्रथा और जौहर का चलन था। स्त्रियों का अस्तित्व पुरूष केन्द्रित समाज में हाशिए पर था और वे अधिकारों से वंचित थीं, भले ही कुछ सभ्यताओं में वैदिक काल की तरह सम्मान भी मिलता था।

आदिकाल में सती प्रथा और जौहर की प्रथा व्यापक थी, जिसमें पत्नियाँ पति की मृत्यु के बाद या युद्ध में हारने पर सती हो जाती थीं या सामूहिक रूप से जौहर कर लेती थीं।

मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति बुरी थी। भारत में उन्हें बाल विवाह, पर्दा प्रथा और सती प्रथा जैसी कुरीतियों का सामना करना पड़ा, जबकि यूरोप में उनके साथ वर्ग के आधार पर व्यवहार किया जाता था। दोनों क्षेत्रों में कुछ शक्तिशाली महिलाओं ने राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, लेकिन अधिकांश महिलाओं का जीवन पुरूषों पर निर्भर और संघर्षपूर्ण ही था।

मध्यकालीन भारत में स्त्रियों की स्थिति :–

1. **बाल–विवाह और शिक्षा पर प्रतिबंध :–** लड़कियों की विवाह कम उम्र में कर देते थे और उन्हे शिक्षा नहीं दे पाते थे। और उन्हें पुरूषों पर निर्भर होना पड़ता था।
2. **सती प्रथा और जौहर :–** सती प्रथा में विधवा को अपने पति के शव के साथ सती होना पड़ता था, और जौहर प्रथा में युध्द के बाद राजपूत स्त्रियाँ अपनी मान–रक्षा के लिए आग में कूद जाती थी।

3. **पर्दा प्रथा :–** पर्दा प्रथा ने महिलाओं की सामाजिक गतिशीलता और स्वतंत्रता को बहुत सीमित कर दिया था।

4. **सामाजिक स्थिति :–** महिलाओं को पुरूशों से कम ऑका जाता था, और उन्हे समाज में भौतिक प्राणी के रूप में ही देखा जाता था।

5. **शक्तिशाली महिलाएँ :–** इस काल में रजिया सुल्तान, नूरजहॉ और दुर्गावती जैसी कुछ महिला शासकों ने अपनी योग्यता साबित की और राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

6. **मध्यकालीन यूरोप में स्त्रियों की स्थिति :– वर्ग आधारित भेदभाव :** स्त्रियों की स्थिति उनके वर्ग पर निर्भर करती थी। कुलीन वर्ग की महिलाओं को विलासितापूर्ण जीवन जीने का अधिकार था।

इस प्रकार मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति में काफी गिरावट आई थी। धार्मिक और सामाजिक कुप्रथाओं के कारण उन्हें पुरूषों के अधीन रहना पड़ता था। हॉलिकि, कला साहित्य में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भक्तिकालीन निर्गुण संतों ने 'नारी की झाई परत अंधा होत भुजंग उपाधियाँ देकर उससे दूर रहने एवं उसका त्याग करने की बात कहीं। इस प्रकार भक्तिकाल में सामाजिक–सॉस्कृतिक क्षेत्र में आदर न मिलने के कारण परिवार में भी सम्मान पूर्वक स्थान नहीं मिला।

'देहवाद को चुनौती' देते हुए मीरा ऐसे समय में अपनी स्वतंत्रता का शंखनाद करती है, जब स्त्री अस्मिता जैसी कोई अवधारणा ही नहीं थी और ना ही उसका साथ देने वाला कोई था। स्त्री के प्रति सदियों से चली आ रही झूठी मान–मर्यादा का परवाह न करते हुए वह खुद को 'अबला बीरानी' मानती है।

> ''**लोक लाज कुल मानि जगत की**
> **ददू बहाय जस पानी**
> **अपने घर का परदा कर ले**
> **मै अबला बौरानी।**''

इस प्रकार मीराबाई को अपने जीवन में ससुराल द्वारा तरह–तरह के प्रताड़ना को सहना पड़ा। मीरा के कृष्ण के प्रति प्रेम को सम्मान कहाँ मिला, मीरा के प्रेम को तो भक्ति का रूप दे दिया गया। राधा और कृष्ण के प्रेम को उच्च कोटि का माना गया। सभी जगह राधा–कृष्ण का मंदिर है, किन्तु मीरा का मंदिर कहॉ दिखाई देता है। माता सीता एक निष्ठप्रेम वाली थी, किंतु उनको भी कितना सहन करना पड़ा।

रीतिकाल में नारी की स्थिति मुख्य रूप से सामाजिक बंधनों और भोगवादी दृष्टिकोण के अधीन थी, जहॉ उसे पतिव्रता पत्नी, प्रेमिका या विलासिता की वस्तु के रूप में देखा जाता था। समाज में पर्दा प्रथा और सती प्रथा जैसी बुराइयॉ व्याप्त थी और नारी के प्रति हीन भावना बनी हुई थी।

आधुनिक काल में नारियों की स्थिति पहले से अच्छी हुई है, उन्हें अब शिक्षा, राजनीति और विभिन्न व्यवसायों में सफलता तो मिल रही है, किन्तु अभी भी समाज में उन्हें अत्याचारों और असमानता का सामना करना पड़ता है। और कई महिलाए, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, अभी भी बुनियादी जरूरतों और अधिकारों से वंचित है। सकारात्मक पहलू में हम जैसे देखते है, आधुनिक नारियॉ उच्च शिक्षा प्राप्त करके इंजीनियर, डॉक्टर, पॉयलट, वैज्ञानिक और सेना जैसे कई व्यवसायिक क्षेत्रों में सफलता ग्रहण कर रही है। कई ने 'स्वयं सहायता समूहों' और व्यवसायों के माध्यम से आर्थिक समस्या से निदान पाये है। राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी अपनी

भागीदारी निभा रहें है। सरकार ने 'बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं', 'महिला उत्थान नीति' और अन्य कानूनों जैसे विभिन्न योजनाएँ लागू की है, जिनसे महिलाओं का उत्थान और विकास हुआ है।

नारियों के नकारात्मक पहलू पर जाए तो अभी भी देखते है कि महिलाओं पर होने वाले अत्याचार और शोषण की घटनाएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। घर और परिवार संभालने के साथ–साथ नौकरी और व्यवसाय की जिम्मेदारी भी निभाती है, जिससे उन्हें दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है। एक और जहाँ नारियों को देवी का दर्जा दिया जाता है, वहीं दूसरी ओर कई समाजों में उन्हें समान अधिकार और सम्मान नहीं मिलता।

मैथिलीशरण गुप्त ने ''यशोधरा'' नामक कविता में नारी के दयनीय स्थिति का चित्रण किया है :–

''**अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी**
आँचल ने दूध, और आँखों में पानी।।''

और इसका अर्थ है कि ''कमजोर असहाय जीवन, हे नारी, तुम्हारी यही कहानी है, आँचल में दूध और आखों में पानी।'' इसका मतलब है, कि पहले के समय में महिलाओं का जीवन बहुत संघर्षो से भरा होता था, वे अपने परिवार और घर के लिए बहुत कुछ करती थी, लेकिन उन्हें अपने सपनों और इच्छाओं को दबाना पड़ता था, जिसके कारण उनकी आँखों में हमेशा दुःख और आँसू रहते थे।

इस प्रकार यह पंक्ति नारी की दयनीय स्थिति को दर्शाती है, जो पहले के समय में समाज में कमजोर मानी जाती थी और उसे अपने अधिकारों से वंचित रखा जाता था।

यह पंक्ति आज भी प्रांसगिक है, क्योंकि आज भी कई नारियों को संघर्श करना पड़ता है, लेकिन अब वे पहले से ज्यादा सशक्त है, और अपने अधिकारों के लिए आवाज उठा रही है।

जयशंकर प्रसाद के 'कामायनी' नामक महाकाव्य में महाजलप्लावन प्रलय के बाद मनु विजन प्रदेश में अकेले पड़े रहने से निराश स्थिति मे रहता है। मनु पहले दुःख और निराशा में डूबा हुआ है, लेकिन श्रद्धा (जो हृदय और भावना का प्रतीक है) उसे जीवन के प्रति उत्साहित करती है और नए निर्माण तथा प्रेम का संदेश देती है। जयशंकर प्रसाद कि 'कामायनी' में मनु को निराशा स्थिति से उत्साह की ओर श्रद्धा निकालने के लिए प्रेरित करती है, देखते है, इन पंक्तियों में :–

''**दुख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात,**
एक परदा यह झीना नील छिपाये है, जिसमे सुख गात।''

सृष्टि के विनाश से दुःखी एवं जीवन के वैषम्य से निराश मनु को समझाते हुए श्रद्धा कहती है – ''अरे मनु, जगत् की विषमता से पीड़ित होकर तुम्हें निराश नहीं होना चाहिए, क्योकि सृष्टि का यही क्रम है। जिस प्रकार रात्रि के पश्चात् नवीन प्रभात का उदय होता है, उसी प्रकार दुःख के समय के बाद व्यक्ति के जीवन में सुख का आगमन होता है। जिस प्रकार यह आकाश अपने नीलावरण में प्रभात के स्वरूप को छिपाये रहता है। उसी प्रकार दुःख भी अपनी कालिमा के आवरण में सुखमय शरीर को छिपाये रहता है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक दुःख के बाद सुख का आगमन अवश्यम्भावी है।

कामायनी में जयशंकर प्रसाद ने नारी को त्याग और सहनशील की प्रतिमूर्ति कहा है। वह घर परिवार और समाज में अपनी सहनशीलता से सबको जोड़कर रखती है।

देखते है इस पंक्ति में –

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नगपग तल में।
पीयूष श्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।

श्रद्धा के भीतर दृढ़ विश्वास जगाते हुए लज्जा कहती है कि, हे नारी! तुम्हारा ही दूसरा नाम श्रद्धा है, अर्थात तुम सत्य, प्रेम और विश्वास की साक्षात् भव्य मूर्ति हो। तुम अमृत जल से आपूरित सरिता के समान पुरूष के विश्वासरूपी शुभ्र पर्वत खण्ड की सुन्दर जीवन रूपी सम्यक पृष्ठभूमि में नित्य प्रवाहित हुआ करो। परोपकार की भावना से प्रेरित होकर सरिता पर्वत प्रदेश से निकलती हुई अपने अमृत जल के प्रवाह से समतल भूमि को सिंचित कर अन्य जनों को आनन्दित करती है, उसी प्रकार तुम भी परोपकार की भाव वृत्ति से अनुप्रेरित होकर विश्वास के पर्वत मनु का आश्रय ग्रहण करती हुई मानव जीवन की विषमता की भूमि को समतल बनाती हुई चिरानन्द की सृष्टि करती रहो।

'गदल' कहानी रांगेय राघव की सशक्त ग्राम्य कथा है, इस कहानी में नारी चरित्र को व्यवस्था से ऊपर लाने की कोशिश की गई है। 'गदल' कहानी में गदल ही प्रमुख नारी पात्र है, गदल (नारी पात्र) की साहसिकता का वर्णन किया गया है। गदल का देवर डोड़ी की मृत्युपरान्त कम लोगो को भोजन कराने का निर्णय था, परन्तु पगंत में गदल अधिक लोगों को बैठा देती है, तो किसी के शिकायत पर दरोगा आने लगते है, इसी समय गदल के साहसी पन का वर्णन रांगेय राघव ने किया है – देखिए – ''क्षण भर गदल ने सोचा। कौन होगा वह? समझ नहीं सकी बोली।'' दरोगा जी ने पहले नहीं सोचा था वह सब? अब बिरादरी को उठा दे, दीवान जी, तुम भी बैठकर पत्तल परोसवा लो। होगी सो देखी जाएगी! हम खबर भेज देंगे, दरोगा आते ही क्यों है? वे तो राजा है।'' मन्नू भंडारी के उपन्यासों जैसे कि 'आपका बंटी, में स्त्री की दशा को जटिल और बहुआयामी रूप से दर्शाया गया है। वह एक ऐसी स्त्री के रूप में चित्रित है, जो पुरूष–प्रधान समाज के बंधनों से मुक्त होना चाहती है, और अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है, लेकिन अक्सर परिवारिक और सामाजिक दबावों के कारण वह अपनी पहचान खो देती है या कुंठित हो जाती है।

मंजुला भगत ने अनारों (उपन्यास) में एक निम्नवर्गीय स्त्री के जुझारूपन और संघर्ष का चित्रण किया है और हिन्दी साहित्य में निम्नवर्गीय स्त्री की जिजीविषा को स्थान दिया है। 'अनारो' से प्रेरणा पाकर आगे चलकर भीष्म साहनी ने 'बसंती' और कृष्ण–बलदेव वैद्य ने 'एक नौकरानी की डायरी' जैसे उपन्यास लिखे।

मंजूला भगत के उपन्यास में अनारो नारी पात्र है 'अनारो' निम्न वर्गीय स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है। कार्यस्थल और परिवार के बीच झूलती अनारो कठोर संघर्ष करती है। वह काम पर जाती है तो उसके सामने भी बच्चों की समस्या आड़े आती है– तथा ''तड़के उठो, दिशा जंगल जाओं। बम्बे से पानी भरके लाओ। गंजी और छोटू के लिए रोटियॉ थेपो। दो–दो सेंक के हाथ में थमा दो और दो–दो ढॉप के धर जाओ। फिर झोला थाम और चल पड़ अनारो, काम पे। दिन भर तेरे बच्चे गली–मुहल्ले मे इसके–उसके यहॉ खेलते फिरें और तू इसकी–उसकी जूठन समेटती फिर। बच्चे बासी ढॅपी खाकर, ठण्डा पानी पी ले और अम्मा का पेट तो खैर जिस –तिस की बची खुची खाने को ही धड़ से जुड़ा है।''

प्रभा खेतान का उपन्यास ''छिन्नमस्ता'' स्त्री जीवन की त्रासदी, शोषण और संघर्षो का एक मार्मिक चित्रण है, जिसमे वे एक ऐसी नायिका प्रिया के माध्यम से समाज की दमनकारी व्यवस्थाओं को चुनौती देती है, जो अपनी जिजीविषा और संघर्ष से सफलता के शीर्ष तक पहुॅचती है। यह उपन्यास शोषित महिलाओं के लिए प्रेरणा

का स्त्रोत है जो घर की चारदीवारी के भीतर भी अपनी पहचान अर्जित करने और अपना स्वतंत्र व्यवसाय स्थापित करने का मार्ग तलाश करती है। नायिका प्रिया की कहानी उन पीड़ित स्त्रियों के लिए प्रेरणा देती है, जो विषम परिस्थितियों से लड़कर अपनी पहचान बनाती है और सफलता प्राप्त करती है।

भीष्म साहनी का 'बसंती' एक ऐसा उपन्यास है, जो दिल्ली की झुग्गियों में रहने वाले प्रवासी श्रमिकों के कठिन जीवन को दर्शाता है, विशेषकर बसंती नामक एक ग्रामीण लड़की के संघर्ष, विद्रोह और महानगरीय जीवन की जटिलताओं को चित्रित करता है। यह उपन्यास सामाजिक और आर्थिक असमानताओं और पारंपरिक नैतिकता के खिलाफ बसंती के विद्रोह पर केंद्रित है।

निष्कर्ष :-

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ग शोषित किया था। वर्तमान में स्त्री के प्रति बदलते नजरियें को रेखांकित करते हुए प्रभा खेतान ने लिखा है – ''आज स्त्री ने सदियों की खामोशी तोड़ी है उसकी नियति में बदलाव है उसके व्यक्तिगत जीवन का उद्देश्य दर्शन उसका मन मिजाज सभी तो बदल रहा है।'' कुछ कवियों ने स्त्री को केवल त्याग और समर्पण की मूर्ति माना, तो वहीं तुलसीदास ने उन्हे ताड़ना (मार–पीट) के अधिकारी के रूप में प्रस्ताव किया। आधुनिक युग में नारी विमर्श की शुरूवात इन्ही दयनीय स्थितियों की देन है जिससे नारी अपने अधिकारों और स्वतंत्रता के लिए लड़ने लगी।

आधुनिक काल में महिलाओं ने बहुत प्रगति की है, लेकिन अभी भी एक लंबा रास्ता तय करना है, ताकि वे पूरी तरह से सुरक्षित, सशक्त और समान अधिकार प्राप्त कर सकें। इस प्रकार नारियों को स्वयं तथा दूसरो के लिये साहसिकता से काम लेना चाहिए ताकि हमारा भारत देश आगे बढ़ सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श की भूमिका – नेट से।
2. मध्यकालीन भारत मे स्त्रियों की स्थिति – नेट से।
3. मीराबाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग सं. 1993, पृ. 76
4. मैथिलीशरण गुप्त – यशोधरा।
5. जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ. सं 24
6. जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ. सं. 45
7. रागेय राघव – गदल, पृ. सं. 76
8. मंजूला भगत अनारो (उपन्यास)
9. प्रभा खेतान – छिन्नमस्ता (उपन्यास)

मो. नं. – 9907987060

sunitarathore1503@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 155-158
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मन्नु भण्डारी की कहानियों में स्त्री विमर्श

डॉ. धीरेन्द्र सिंह थापा, Ph.D. Hindi, M.A., MBA, B.ed.
बिलासपुर, जिला–रामपुर, उत्तर प्रदेश–पिन कोड–244921

भूमिका :–

हिंदी कथा साहित्य में मन्नू भंडारी का नाम एक सशक्त रचनाकार के रूप में लिया जाता है। उन्होंने जिस समय लेखन प्रारम्भ किया, वह दौर पितृसत्तात्मक सोच और सामाजिक रूढ़ियों से भरा हुआ था। स्त्रियों को परिवार, समाज और संबंधों की सीमाओं में कैद करके उनकी स्वतंत्रता और अस्मिता को दबा दिया जाता था। ऐसे समय में मन्नू भंडारी ने अपनी कहानियों के माध्यम से स्त्री जीवन की गहन संवेदनाओं, दबी इच्छाओं और सामाजिक यथार्थ को सामने रखा। उनकी रचनाओं में स्त्री केवल सहानुभूति की पात्र नहीं, बल्कि एक सोचने–समझने वाली, निर्णय लेने वाली और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने वाली जीवंत इकाई के रूप में चित्रित होती है। मन्नू भंडारी ने स्त्री–पुरुष संबंधों की जटिलताओं, विवाह संस्था की खामियों, दांपत्य जीवन में उपेक्षा और मानसिक शोषण जैसे पहलुओं को बड़ी बारीकी से उभारा है।

मन्नू भंडारी की कहानियों में स्त्री–विमर्श का स्वर केवल विद्रोही नहीं, बल्कि संवेदनशील और मानवीय है। वह स्त्री को न पुरुष के विरोध में खड़ा करती हैं और न ही उसे केवल दीन–हीन प्राणी के रूप में दिखाती हैं। इस प्रकार मन्नू भंडारी की कहानियों में स्त्री–विमर्श केवल साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि समाज में स्त्री की स्थिति, उसकी आकांक्षाओं और संघर्षों का जीवन्त दस्तावेज है।

मूल शब्द :– पितृसत्तात्मक समाज, स्त्री–विमर्श, आधुनिक समाज, अधीनग्रस्तता।

प्रस्तावना :–

आधुनिक स्त्री आज जितनी आसानी से अपने अधिकार का प्रश्न उठाती है, यह अधिकार उसे एक लम्बे समय के संघर्ष के परिणाम स्वरूप प्राप्त हुआ है। तथा उनके प्रति समाज के बदले दृष्टिकोण का परिणाम भी है। भारतीय इतिहास में दर्ज उन पुरुषों का भी आभारी होना चाहिए जिन्होंने स्त्री अधिकारों के लिए लिखा और आन्दोलन के स्तर पर कार्य किया। क्या आधुनिक स्त्री मुक्ति का साहित्य निराला, प्रेमचंद, यशपाल, रांगेय राघव आदि लेखकों के साहित्यिक अवदान का ऋणी नहीं है।... इस बात से तो सभी सहमत हैं कि राजा राममोहन राय ने ही सर्वप्रथम सती प्रथा, बाल–विवाह, विधवा विवाह एवं केशवसेन, स्वामी दयानंद सरस्वती आदि ने भी जमकर विरोध किया था।"[1] इन पुरुषों द्वारा उठाये गये स्त्री अधिकारों के सवाल बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण से पितृसत्तात्मक समाज के समक्ष रखे गये, जिसके नक्शे कदम पर चलते हुए आज स्त्रियाँ एक सकारात्मक वातावरण पाने का प्रयास कर रही हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि स्त्री प्रश्न को उठाने में स्त्रियों को पुरुष

बुद्धिजीवियों का साथ भी प्राप्त हुआ है। उन्हें स्त्रियों के प्रति संवेदनशीलता की कमी वाले दृष्टिकोण नजर पड़ी।

पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के अनुसार स्त्रियों को रूपान्तरित करने की प्रक्रिया थी क्योंकि इस व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु पुरुष था स्त्री नहीं। पुरुष वर्चस्व होने के कारण स्त्रियों को पुरुषवादी व्यवस्था के अनुसार स्त्रियों को सीमित अधिकारों के दायरे तक ही सीमित कर दिया गया, जिसका अधिकतम लाभ पुरुष वर्ग को प्राप्त हुआ जिसके फलस्वरूप स्त्रियों की स्थिति में कोई परिवर्तन असम्भव सा प्रतीत हो गया था। क्योंकि ''स्त्रियों के अधिकारों का उसी हद तक समर्थन किया गया, जहाँ तक पुरुष वर्चस्व पर कोई आँच ना आए।''[2] विश्व स्तर पर जब व्यापार के साथ बुर्जुआ वर्ग उत्पन्न हुआ जिसके द्वारा सामंतों से लड़ी गयी लड़ाईयों में जब स्त्रियों ने भी बहुत भारी संख्याओं में भाग लिया। चाहे वह फ्रांस की राज्य क्रांति हो या भारत का स्वाधीनता आन्दोलन और भी अन्य आन्दोलनों में उन्होंने सक्रिय योगदान दिया। तब उस आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्त्रियों द्वारा स्त्री प्रश्न उठाने की शुरुआत उदारवादी बुर्जुआ चिंताधारा के दौरान ही प्रारंभ हो चुका था।

''स्वराज्य के राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ स्त्रियों का सवाल उसी तरह टकरा रहा था जिस तरह किसानों, मजदूरों या अछूतों का सवाल टकरा रहा था।[3] व्यक्तिगत स्तर पर स्त्रियों को सार्वजनिक विषयों में भागीदारी नहीं मिलती इसलिए वह पुरुष (पिता, आता, पति, पुत्र आदि) के अधीन रहने पर मजबूर कर दी जाती है। राज्य का कानून अवस्था भी स्त्रियों की स्थिति को पुरुषों के अधीन करने तथा स्त्रियों को पुरुषों पर निर्भरता को स्थापित करने की सहायता करने लगी। मिल. का स्पष्ट मानना है कि ''स्त्रियों की निर्भरता दासता की आदिम अवस्था का ही एक रूप है। इसमें गौलिक पाशविकता का ऐत्र आज भी है।''[4] यह एक कटु सत्य है कि अधिकारों में असमानता का आधार वर्तमान पुरुषवादी समाज की मनमानी व्यवस्था है। जहाँ स्त्रियों को हमेशा ही पुरुष के अधीन रहते हुए विचरण करना पड़ता है।

भारत में बहुसंख्यक स्त्री वर्ग अभी तक 'स्त्री मुक्ति के प्रश्नों से अपरिचित हैं क्योंकि उन्होंने अपनी दासता को इस तरह अपने अन्दर शामिल कर लिया है कि उसके अभाव में उनका अस्तित्व ही संभव नहीं है या दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि उनमें मुक्ति की इच्छा ही नहीं है। उसका मूल कारण यह है कि स्त्री के लिए पुरुष ही उनका स्वामी, परिवार ही उनकी पहचान तथा उसमें वे स्वयं दासी के रूप में प्रतिष्ठित है। यहाँ की मध्यवर्गीय स्त्री स्थिति जो की तादात में भी सबसे ज्यादा हैं, स्वयं को एक चल संपत्ति के रूप में पुरुष के अधिकार पर चलने या रहने में ही अपनी सुरक्षा महसूस करती हैं। सत्ता के आकांक्षी पुरुषों में सबसे पहले अपने निकटतम व्यक्ति पर सत्ता हासिल करने की इच्छा होती है। सत्ता की सुविधाएं और लाभ अज्ञानी और शिक्षित का भेद नहीं करती। वह सब पर समान रूप से बरसती है इसलिए उसको पाने की कोशिश प्रत्येक पुरुष करता है। सिर्फ पुरुषों द्वारा कोशिश किए जाने का कारण है कि उन्हें इसके लिए वातावरण आसानी से उपलब्ध हो जाता हैं।[5] पुरुष स्त्रियों पर शासन इसलिए स्थापित कर पाता है या फिर कहे कि स्त्रियों की अधीनग्रस्तता होने के पीछे धार्मिक अंधविश्वास एवं रूढ़ियों से बंधी स्त्रियाँ, तथ्यहीन होने के कारण उनका कोई निश्चित संगठन नहीं हो पाता। पुरुष वर्ग उन पर शासन करते करते उनके अधिकारों को भी अपने अधिकारों में शामिल कर चुका है। जिसके कारण स्त्रियों को पुरुषों द्वारा दान किया गया अधिकार ही एक सीमा रेखा बन चुकी है। वह उसी संकुचित दायरे में सीमित हो होकर रहती है, जिसके कारण उसकी सोच बी सीमित हो गई है। स्त्रियों को इस स्थिति को इस प्रकार से भी समझा जा सकता है कि ''जिस प्रकार गुलाम को गुलामी में ही आंनद आने लगता

है, उसी प्रकार ऐसी स्त्रियाँ अपनी दासता को ही सुख न सुरक्षा मानती है।''[6]

भारतीय समाज में न स्त्री का न तो अपना कोई व्यक्तित्व रहा है, न जाति ही। वह एक ऐसा 'रत्न' है जिसे कहीं से भी उठाया जा सकता है और जिसके पास वह है और वह उसी की सम्मत्ति हो जाती है, स्त्रियाँ जैसे कोई व्यक्ति नहीं बल्कि वस्तु हो। जिन्हें लूटा, खसोटा, छीना, छपटा और नष्ट किया जा सकता है। उन्हें बाजार में जैसे वस्तुओं की भांति खरीदा और बेचा जा सकता है। विश्व के इतिहास ही इस बात के जवलन्त उदाहरण जहाँ औरतें लूटी गई। उस पर तुर्रा यह कि जिस सम्राट, सामन्त या सम्राट के पास जितने अधिक दास और औरतें दासियों के रूप में रही थी वह पुरुष उतना ही बड़ा महान चक्रवर्ती माना गया।

'सजा' कहानी में 'आशा' के चरित्र द्वारा पराधीनता की स्थिति को रखा जा सकता है। आशा का सपन होता है डॉक्टर बनने का परंतु वह घर की नौकरानी बन कर रह जाती है। क्योंकि उसके पिता को सजा होने के पश्चात् उसे अपने चाचा के अधीन जिन्दगी व्यतित करनी पड़ती है तथा अपने छोटे भाई एवं माता की जिम्मेदारी भी उसके हिस्से में आ जाती है। अपने चाचा–चाची को प्रसन्न रखने एवं स्वंय की पराधीन स्थिति वह इस प्रकार प्रस्तुत करती है मैं कॉलेज नहीं जाऊँगी। घर का सारा काम मैं करूँगी जिससे चाचा को पूरा आराम मिले और उनका गुस्सा ठंडा रहे। चाची कुछ भी कहेंगी तो चूँ तक नहीं करूँगी। वह प्रसन्न रहेगी तो मुन्नू सुरक्षित रहेगा।मुन्नू को रात में बैठ कर पढ़ाया करूँगी।''[7] इस प्रकार सजा की असली मुर्जिम 'आशा' प्रमाणित हुई जिसकी पूरी जिन्दगी ही सजा बन जाती है।

'खोटे सिक्के' कहानी के माध्यम से लेखिका ने स्त्री की आर्थिक पराधीनता स्थिति को दर्शाया है जहाँ उच्च वर्ग पुरुष सत्ता के कारण निम्न वर्ग की स्त्री का भाोषण होता है। आम तौर पर ऐसी घटनाएँ समाज में होती रहती है जिन्हें अनदेखा कर दिया जाता है कोई ऐसी स्त्री की विवशता की गहराइयों में जाने की कोशिश तक भी नहीं करता। लेखिका ने ऐसे साधारण घटनाओं को लेखनी के द्वारा असाधारण बनाने की प्रक्रिया में सफल हुई है।

''वैवाहिक जीवन में पति–पत्नी, दोनों को समान रूप से वैयक्तिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए किंतु पुरुष स्वयं अपनी स्वतंत्रता कायम रखना चाहता है और स्त्री पर प्रतिबंध लगाना चाहता है।''[8] इस तथ्य को उजागर कर मन्नू भंडारी ने अनेक रचनाएँ लिखी हैं। जैसे 'नई नौकरी' में 'रमा' और 'कुंदन' पति–पत्नी है। विवाह के पहले दोनों नौकरी करते है रमा कॉलेज में तो कुंदन ऑफिस में नौकरी करता है। परंतु विवाह के वाद स्थिति बदल जाती है कुंदन घर तथा बच्चे की सभी जिम्मेदारियाँ रमा को देकर उसकी नौकरी छुड़वा देता है। जिसके कारण उसका जीवन कुंठाग्रस्त हो जाता है। अपनी इस पराधीन स्थिति पर सोचते हुए ''रमा को लगा जैसे कुंदन उसे पीछे छोड़कर आगे निकल गया है.... बहुत आगे। जैसे वह अकेली रह गई है।''[9] पति द्वारा पत्नी पर प्रतिबंध लगाना आधुनिक युग में भी देखा जा सकता है।

'तीन निगाहों की एक तस्वीर' यह एक आदर्शवादी पतिव्रता स्त्री की कहानी है जो अपना पूरा जीवन बीमार पति की सेवा में अर्पित कर देती है। परंतु उसका शंकालु पति उसे दूसरे पुरुष की ओर आकर्षित देखता है तो उसे मार–पीटकर घर से निकलने को विवश करता है। इतना सब कुछ सहन करने पर भी स्त्री अपनी पराधीनता का प्रमाण देते हुए कहती है 'फिर भी जाने क्यों, मुझे न अपने किए का दुख है, न इस दंड का! इस सबके बाद मैं स्वयं ही घर छोड़कर निकल जाती। ... पर इनका क्या होगा? स्त्री स्वयं के बारे में न सोचकर बाकि

सबके बारे में सोचती हैं। जैसे पति, बच्चे, घर–परिवार, समाज आदि जिसके कारण वह अपनी पराधीन स्थिति से स्वतंत्र स्थिति में परिवर्तित होने में असफल बनी रहती है।

निष्कर्ष :–

मन्नू भंडारी के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श की चर्चा करना तो बाद की बात है उनके यहाँ की स्त्रियाँ तो अभी तक मुक्ति की चेतना या इच्छा से भी अनजान हैं तथा बहुत भारी संख्या में अभी तक स्त्रियाँ स्त्री मुक्ति के प्रश्न से ही परिचित नहीं हैं तो उसके उत्तर या फिर मुक्ति के बारे में सोचना–विचारना तो दूर की बात है। क्योंकि उनकी रचनाओं में ज्यादातर स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के अधीन बनी हुई नजर आती है।

संदर्भ सूची :–

1. आधारशिला (मासिक), (प्रभा दीक्षित) सं. दिवाकर भट्ट, उत्तराखण्ड, मई 2006, वर्ष 25, अंक 50, 47
2. आदमी की निगाह में औरत राजेन्द्र यादव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा परिवर्तित संस्करण : 2007, 11, 25
3. वही, पृ० 26
4. स्त्रियों की पराधीनता जॉन स्टुअर्ट मिल (अनु०) प्रगति सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण : 2002, पृ० 36
5. ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, पृ० 22
6. स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास रमणिका गुप्ता, सामयिर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2014, 34
7. समकालीन हिंदी साहित्य विविध विमर्श (सं) श्रीराम शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2009, 10, 127
8. एक प्लेट सैलाब कहानी संग्रह, मन्नू भंडारी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2011, 10
9. तीन निगाहों की एक तस्वीर : कहानी संग्रह, मन्नू भंडारी, सन् १६५६, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2011, 13

ईमेल – snehthapa2014@gmail.com

मो. नं. : 9756567273 / 7017126627

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 159-164
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मालती जोशी की कहानियों में चित्रित वृद्ध जीवन
'वो तेरा घर ये मेरा घर और विश्रान्ति कहानियों के सन्दर्भ में'

Dr. P. Ezhil Nachiar
Assistant Professor & Head, Department of Hindi, Shrimathi Devkunvar Nanalal Bhatt Vaishnav College for Women, Chromepet, Chennai– 44, Tamilnadu.

शोध सारांश :–

आधुनिक समाज की संपन्नता और समृद्धि में सहायक कारक अनेकानेक हैं। उनमें प्रमुख है –पुरानी पीढियों से मिली धरोहर। यह धरोहर, बुजुर्गों के ज्ञान से, अनुभवों से, दर्शन से पूर्वानुमानों से, सामाजिक नैतिक एवं अन्य मूल्यों से भरपूर है। यह धरोहर पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती आ रही है। आज की नवीन पीढ़ी, इस धरोहर का मूल्य तो अवश्य समझती है, सदुपयोग भी करती है। पर परिवार में, समाज में, वृद्ध जनों का स्थान एवं सम्मान सुनिश्चित करने में उपेक्षात्मक दृष्टिकोण अपना आती है। यह अध्ययन, सुप्रसिद्ध लेखिका व पद्मश्री पुरस्कार प्राप्त मालती जोशी विरचित दो कहानियाँ – 'वो तेरा घर ये मेरा घर' तथा 'विश्रांति' का संदर्भ लेकर, उनमें व्यक्त वृद्ध जीवन और उससे जुड़ी समस्याओं को उजागर करता है। 'वो तेरा घर ये मेरा घर' कहानी का पात्र बाबूजी, उपेक्षित वयोवृद्ध के अस्तित्व पर लगाए गए प्रश्न चिह्न पर सवाल करता है, तो 'विश्रांति' कहानी में चित्रित सावित्री अम्मा का पात्र, उन वृद्धाओं, जो संयुक्त परिवार द्वारा अनंत शोषण झेलती है, का प्रतिनिधि बनता है। इन दोनों कहानियों में अनुस्यूत वृद्ध विमर्श, भारतीय समाज में वृद्धों की सोचनीय स्थिति पर प्रकाश डालकर, पाठक वर्ग को संवेदनशील बनाता है और समाधान की आवश्यकता पर बल देता है।

सांकेतिक शब्द :–

1. वृद्ध जीवन
2. वृद्धावस्था
3. वृद्ध विमर्श
4. मालती जोशी
5. वो तेरा घर ये मेरा घर
6. विश्रान्ति।

प्रस्तावना :–

मानव जीवन ही कथालोक की उर्वर भूमि है। मानव का नश्वर जीवन, साहित्य जगत में अमरत्व प्राप्त करता है। हिन्दी कथा के विराट पटल में, समाज में व्याप्त विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ, रिश्तों के मध्य उभरते दरारें, आपसी टकराहट, पीढियों के बीच फैलता अंतराल, द्वन्द्व की स्थितियाँ आदि के सजीव चित्रण होने के कारण, हिन्दी कथा साहित्य को यथार्थ की प्रतिच्छाया माना जा सकता है। विशेषतः 21वीं सदी के लेखक, कहानी कला की अनुपम तूलिका से व्यक्ति एवं समाज के अन्यानेक पहलुओं का सजीव चित्र खींचते हैं। वास्तविकता के धरातल पर खींचे गए, यथार्थ के रंग में रंगे ये चित्र पाठकों के मन में अमिट छाप छोड़ते हैं। इन कहानियों में

ऐसे भी कुछ पात्र होते हैं जो किताबों से उठकर सीधे पाठकों के अंतः स्थल में प्रवेश करते हैं। उनके विचारों को, भावनाओं को झकझोरते हैं। इस संदर्भ में पद्मश्री पुरस्कार विजेता सुप्रसिद्ध लेखिका मालती जोशी की कहानीयाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

मालती जोशी अपनी कहानियों के पात्रों का चयन अपने आसपास के लोगों से करती हैं। मालती जी उन लोगों के जीवनानुभवों को आत्मसात् करती हैं तथा अपने निजी अनुभवों के साथ उन्हें पिरोकर कथा पात्रों का सुंदर चित्रण करती हैं। खासकर मालती जोशी की कहानियों में चित्रित वृद्धों का चरित्र चित्रण, पाठकों को द्रवीभूत करता है। संवेदनशील बनाता है। वयोवृद्धों के जीवन के कटु यथार्थ से अनदेखा करने की कोशिशों को ठुकरा देता है। अतः किसी प्रकार के पलायन को असंभव कर देती है।

मूल शोध :–

‘‘............‘जीर्णाणि वस्त्राणि’ के नाम पर
कपड़े जब तार-तार होने लगते हैं,
बढ़ जाती है उनकी उपयोगिता!” – अनामिका’[1]

उपरोक्त उद्धरण कवयित्री अनामिका की कविता ‘वृद्धाएँ धरती का नमक हैं’ से दिया गया है। हमारे समाज में, स्त्री को अपनी वृद्धावस्था में, आराम कम और श्रम अधिक करना पड़ता है। वृद्धा, वृद्ध पति की सेवा, पोता–पौत्री की सुश्रूषा, बेटी और बहू का संबल बनना, परिवार की यथासंभव आर्थिक सहायता करना आदि अपेक्षाओं की पूर्ति करने के लिए विवश है।

मालती जोशी की कहानी विश्रांति में ऐसी एक वृद्धा का सजीव चित्र खींचा गया है। विश्रांति कहानी का मुख्य पात्र–सावित्री अम्मा जो 70 साल की वृद्धा है। पति की (बाबूजी) लंबी बीमारी और निधन ने सावित्री अम्मा की दुनिया को उजाड़ कर रख दिए थे। यद्यपि सावित्री अम्मा अपने घर में, अपने ज्येष्ठ पुत्र के परिवार के साथ ही जी रही थी, वे बहुत अकेली हो गई थीं। उस घर में उन्हें भावनात्मक संबल देने वाला कोई नहीं था।

बाबूजी की लंबी बीमारी के दौरान, सावित्री अम्मा को बहुत सारे कटु अनुभवों का सामना करना पड़ा था। क्योंकि उन्हें शैय्याग्रस्त बाबूजी की गंदगी उठाना पड़ा, रसोई घर में उनका प्रवेश मना था। बीमार बाबूजी, रात भर खाँसते रहते थे, तो बड़ी बहू को इससे परेशानी होती थी। वह अपनी नींद में किसी प्रकार का रुकावट सह नहीं पाती थी। मालती जोशी जी के शब्दों में :–

”बाबूजी का कमरा तो उसके लिए नरक का पर्याय बन गया था। पती से कह–सुनकर उसने छतवाला कमरा बाबूजी के लिए कर दिया था।......... रात–दिन के खाँसने कराहने से तो मुक्ति मिलेगी।”[2]

पन्द्रह सीढ़ियाँ चढ़कर उतरकर ही सावित्री अम्मा बाबूजी की जरूरतें पूरी कर पाती थी। इससे सावित्री अम्मा का तन और तन से अधिक मन, दोनों पूर्ण रूप से शिथिल हो गए थे। छत वाले कमरे में बिजली के पंखों की व्यवस्था न होने के कारण, सावित्री को बाबूजी के सिरहाने बैठकर पूरा दिन पंखा झलना पड़ा। ऊपर बाथरूम तो था। पर आड़ न होने के कारण दिन में दस बार उन्हें नीचे जाना पड़ता था। ऊपर ही बाबूजी के कपड़े, चादरें धुलते थे। इन कार्यों में सावित्री अम्मा को अत्यधिक श्रम करना पड़ा य उनका हाथ बँटाने वाला कोई नहीं था।

चिकित्सा के आरंभिक काल में, सावित्री अम्मा बाबूजी को अपनी बेटी बेला के घर ले जाना चाहती थीं

ताकि शहर के प्रसिद्ध डॉक्टरों से बाबूजी की चिकित्सा हो सके। अतः सावित्री अम्मा, अपनी बेटी के लिए साडी, पापड़, अपने दामाद के लिए स्वेटर, मिठाइयाँ, नमकीन, अचार, बच्चों के लिए खिलौने आदि ढेर सारे सामान बाँधकर बाबूजी के साथ बेला के यहाँ पहुँचीं। माता–पिता के अचानक आमद से बेला पहले प्रसन्न हुई। पर, जब उसे पता चला कि माँ और बाबूजी, चिकित्सा पूरा करके ही गाँव वापस लौटने वाले हैं, तब वह संवेदनहीन होकर कहती है :–

"अगले दिन गाड़ी बुलवा लेते हैं ....स्टेशन जाने के लिए।"[3]

".........तुम मेरी सास को तो जानती हो न आग है, आग! कल को तुम लोगों के बारे में कुछ उलटा–सीधा कह दिया, तो सह नहीं पाऊँगी।"[4]

इस प्रकार कभी गाँव में रह रही अपनी सास का बहाना बना रही थी, तो कभी अपने घर में पर्याप्त जगह न होने की रोना रो रही थी। भीगी आंखें और बोझिल हृदय लेकर वृद्ध दंपति को बेटी के घर से खाली हाथ लौटना पड़ा। छोटे बेटे कमल के घर में भी उन्हें घोर निराशा का ही सामना करना पड़ा। छोटी बहू अरुणा, रसोई घर में ताला लगा देती थी। सावित्री अम्मा का, पानी या दूध गरम करने हेतु रसोई घर जाना, उसे अच्छा नहीं लग रहा था।

"नौकर अपने कायदे से रहते हैं.......... यहाँ तो जरा सा मौका मिला नहीं कि अल्लम–गल्लम पकाना शुरु हो जाता है। फिर उनकी ठुल्ल ठुल्ल से रात में सबकी नींद हराम होती है।"[5]

शारीरिक अस्वस्थता से अधिक, रिश्तों से मिली व्यथा, बाबूजी के लिए जानलेवा हो गयी थी। पर वे मरने से पहले सावित्री अम्मा को यह समझा रहे थे कि सावित्री अम्मा जीवन पर्यंत आत्मनिर्भर होकर शान से रह सकती हैं। इस प्रसंग में बाबूजी का कथन ध्यातव्य है :–

"सावित्री .. पति–पत्नी का साथ सदा नहीं रहता। किसी न किसी को पहले जाना ही पड़ता है। मैं चला भी गया तो तुम्हें निराधार नहीं छोड़ जाऊँगा, तुम्हारे सिर पर पक्की छत रहेगी और गुजारे लायक पेंशन तुम्हें मिलेगी। हो सकता है, बच्चे इसी के लालच में तुम्हारी सेवा करेंगे। अगर वे लोग साथ छोड़ दें तब भी कुछ नहीं बिगड़ेगा। तुम आराम से जी सकोगी।"[6]

पर बेटों का इरादा कुछ और था। बड़ा बेटा विमल जो सपरिवार सावित्री अम्मा के साथ उनके घर में रह रहा था यही चाहता था कि माँ कुछ दिनों के लिए छोटे बेटे कमल के पास जाकर भी तो रह सकती है ताकि घर में उसका एकाधिपत्य हो। कमल और अरुणा का इरादा कुछ अलग था। कमल उस छतवाले कमरे में, जो सावित्री अम्मा के लिए एक मात्र पनाह था, मरम्मत और नवीकरण का प्रबंध करके, उसे किराए पर देना चाहता था। एतद्वारा कमल घर पर अपना अधिकार जताना चाहता था।

इस सत्य से अज्ञात सावित्री अम्मा का भोला मन, पहले यही सोचकर आनंद विभोर हो रहा था कि उसके कनिष्ठ पुत्र ने, अपनी माँ की सुविधा को ध्यान में रखकर यह प्रबंध किया है। पर जब बाद में जब उन्हें पता चला कि यह सारे प्रबंध इसीलिए किया जा रहे हैं ताकि छत वाले कमरे को किराए पर देकर छोटा पुत्र इस घर पर अपना अधिकार जताना चाहता है वह पूर्ण रूप से टूट गई थी।

बेटी बेला जो स्वार्थ की प्रतिमूर्ति है, चाहती है कि सावित्रि अम्मा अब उसके पास आकर चार–पाँच महीने रहें और उसके बच्चों की रखवाली करें ताकि वह अपनी पढ़ाई और नौकरी पर निर्बाध ध्यान दे सके। सावित्री

अम्मा से, रिक्त चेक में हस्ताक्षर करके देने के लिए भी कहा जाता है ताकि बाबूजी के पेंशन बैंक में जमा होते ही कमल और विमल द्वारा निकाला जा सके।

तनाव और असहनीय वेदना की ऊँची लहरें चारों दिशाओं से सावित्री अम्मा को घेर लेती हैं। वृद्धा की तनाव और पीड़ा का कारण, अगली पीढ़ी है, उनकी ही सन्तान है। वृद्ध पीढ़ी से युवा पीढ़ी ढेर सारी अपेक्षाएँ रखती है। अपनी आवश्यकताओं के लिए, आर्थिक जरूरतों के लिए युवा पीढ़ी, वृद्ध पीढ़ी को यातना देती है। पर युवा पीढ़ी प्रायः यह भूल जाती है कि वृद्धावस्था में मन अति भावुक हो जाता है, वृद्धों की भी विशिष्ट आवश्यकताएँ होती हैं। उनकी भी कुछ अपेक्षाएँ और मनोकामनाएँ होती हैं।

इस प्रसंग में सावित्री अम्मा का कथन विचारणीय है।

"बड़ी चाहती है कि मैं रसोई संभाल लूँ या कहीं टल जाऊँ। बेला चाहती है कि मैं उसके बच्चे संभाल लूँ ताकि वह पढाई कर सके। छोटे की इच्छा है कि मैं उसके घर की चौकीदारी करूँ....... पर कोई यह नहीं पूछता कि अम्मा तुम क्या चाहती हो? तुम्हारे मन में क्या है?"[7]

जीवन के सायंकाल में, वृद्धों की एकमात्र मनोकामना विश्रांति होती है। पर तब भी अगली पीढ़ी उनका आर्थिक शोषण करता है, वृद्धों से श्रम की अपेक्षा रखती है। उनसे घर का हर काम करवाना चाहती है। बच्चों की देखभाल का दायित्व सौंपना चाहती है। ऐसी स्थिति में वृध्दों के जीवन में न शांति की संभावना है न ही विश्रांति की।

'वो तेरा घर ये मेरा घर' मालती जोशी विरचित इस कहानी में चित्रित बाबूजी, मात्र उस कहानी का काल्पनिक पात्र प्रतीत नहीं होता है। प्रत्युत घर–घर में जी रहे बाबूजी का ही प्रतिनिधित्व करता हैं।

उक्त कहानी में बाबूजी की तीन संतान हैं – एक पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं – प्रसाद, माया एवं छाया। बाबूजी बहुत ही शांत स्वभाव के हैं। बाबू जी अपने बच्चों के संबंध में सारी जिम्मेदारियाँ निपटा चुके थे। वे गाँव में अपनी पत्नी के साथ आरामदायक जीवन जी रहे थे। कुछ वर्ष ऐसे ही बीत गए। पत्नी के मरणोपरान्त बाबूजी अकेले हो गए थे। मिस्टर प्रसाद अपने पिताजी (बाबूजी) को गाँव में अकेले छोड़ने के पक्ष में नहीं थे। इसलिए वे बाबूजी को समझा बुझाकर अपने साथ मुम्बई शहर ले आए। उनका मकान जो तीन बेडरूम वाला फ्लैट था, जहाँ वे अपनी श्रीमती और (उनके बच्चे) पिंकी और प्रसन्ना के साथ रहते थे। बाबूजी की बहुत सीमित जरूरतें थीं। फिर भी उन्हें प्रसाद के घर में कई तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मालती जोशी के शब्दों में–

"बाबूजी में इधर–उधर दखलंदाजी करने की आदत भी नहीं है। फिर भी वे हाड़–मास के जीव तो हैं। घर में उनकी उपस्थिति महसूस की ही जाती थी। सबसे बड़ी समस्या थी–सोने की।......दोनों बच्चों के पास अपने स्वतंत्र कमरे थे। तीसरा प्रसाद दंपति का था। अतः बाबूजी की सोने की व्यवस्था हॉल में की गई। तीन बेडरूम वाले घर में भी बाबूजी के लिए निरापद बस यही स्थान था।"[8]

––उपरोक्त कथन से मिस्टर प्रसाद के घर में बाबूजी का स्थान स्पष्ट समझ में आता है।

दोनों बच्चे यह चाहते हैं कि उनकी परीक्षा के समय बाबूजी उनके पास न रहें क्योंकि प्रसन्ना को अपने कमरे में देर रात तक जागकर पढ़ने की आदत थी। स्पीकर में जोर–जोर से गाना बजाने में रुचि थी। बाबूजी के रहते यह सब नहीं हो पाता था। पिंकी की समस्या कुछ अलग थी। वह अपनी सहेलियों के साथ घूमकर देर

शाम को घर वापिस आने की आदत रखती थी। पर बाबूजी के रहते उसे विवश होकर समय पर घर लौटना पड़ता था। श्रीमती प्रसाद को भी बाबूजी की उपस्थिति खल रही थी। श्रीमती प्रसाद देर रात तक टी.वी देखा करती थी और सुबह देर तक सोती थी। पर बाबूजी के रहते यह सब करने में उन्हें संकोच हो रहा था। सपरिवार रैस्टोरेंट में भोजन करना सबको पसंद था। पर बाहर का खाना बाबूजी नहीं खा पाते थे। अतः उनके लिए घर पर पूरा सरंजाम करके ही जाना पड़ता था। श्रीमती प्रसाद इस पर भी अपनी झुंझुलाहट व्यक्त करते हुए कहती है :–

"बाहर जाकर खाने का सारा मजा ही किरकिरा हो जाता है।"[9]

परीक्षा के सामिप्य और अपने बच्चों की जिद से मजबूर होकर प्रसाद को अपनी बहन माया को फोन करना पड़ा और कहना पड़ा कि वह बाबूजी को 10–15 दिन के लिए अपने यहाँ बुला ले और बाबूजी को इस प्रबन्ध के बारे में पता न होने दें। माया ने भाई के कहे अनुसार बाबूजी को अपने पास बुला लिया था। बाबूजी पुराने मूल्यों को मानने वाले थे। उन्हें बेटी के घर में अधिक दिन ठहरने में संकोच का अनुभव करते थे। अतः तीन चार दिन बीतते ही उन्होंने प्रसाद के घर वापस लौटने जाने की अपनी इच्छा प्रकट की। विवश होकर माया को बताना पड़ा कि परीक्षाओं के बाद ही वे लौट सकते हैं। बाबूजी समझ गए कि वे घर वालों के लिए अझेल हो गए हैं। उन्होंने उसी क्षण गाँव वापिस जाकर, वहीं अपने घर में रहने का निर्णय ले लिया था। अविलंब निर्णय का अमल भी किया।

प्रसाद, बाबूजी को मनाकर, समझाकर वापस अपने साथ मुम्बई ले आने जब गाँव गए, तब बाबूजी यह कहकर टाल देते हैं :–

"मुझे लाने–ले जाने की जरूरत नहीं है बेटा। मेरी जब मर्जी होगी, चला आऊँगा। पर जब तक मेरे हाथ–पैर चल रहे हैं, मुझे यहीं रहने दो।"[10]

'वो तेरा घर ये मेरा घर' –– कहानी वृद्धों की असहाय स्थिति, युवा पीढ़ी के साथ ना दौड़ पानी की उनकी मजबूरी एवं कमजोरी, बदलते मूल्य के साथ समझौता न कर पाने की विवशता आदि पर यथेष्ठ प्रकाश डालती है। यह कहानी इस कठोर सत्य को पुष्ट करती है कि आधुनिक संसार में अकेलापन ही वृद्ध पीढी की असली और विश्वसनीय साथी है।

निष्कर्ष :–

मालती जोशी जी अपनी कहानियों में पारिवारिक जीवन के उलझनें, रिश्तों के बीच का टकराव, अनबन की स्थितियाँ आदि का सजीव चित्र प्रस्तुत करने में सिद्ध हस्त है। विशेष रूप से, वृद्ध जीवन से जुड़ी समस्याओं को चित्रित करने में, पाठक वर्ग को तत्संबंधी शिक्षा देकर संवेदनशील बनाने में मालती जोशी जी की अभिरुचि एवं अपार लेखन कौशल द्रष्टव्य है। आधुनिक समाज में, वयोवृद्धों का महत्व घटता जा रहा है। इसके अनेकानेक कारण हैं – जैसे भौतिकवाद और उपभोक्तावाद की प्रधानता, संस्कारों की जगह दिखावे को महत्व देने की मनोवृत्ति, नैतिक मूल्यों की जगह आर्थिक मूल्यों की प्रतिस्थापना, पाश्चात्य चिन्तन का प्रभाव, आत्मकेंद्रित जीवन शैली आदि।

'वो तेरा घर ये मेरा घर' और 'विश्रांति' – इन दोनों कहानियों में बुजुर्गों की तनावग्रस्त मनःस्थिति, परिवार के मध्य रहकर भी उनके मन पर छा रहा अकेलापन, अपने ही लोगों द्वारा तिरस्कृत होने का दर्द, उनका आर्थिक

शोषण व असुरक्षा आदि मुद्दों का अतियथार्थ चित्र खींचा गया है। समाज को वृध्दों का महत्व समझाना और उनकी शोचनीय स्थिति को सुधारना, उन्हें आश्वासन एवं आत्मीयता देने के सन्दर्भ में समाज को संवेदनशील बनाना, वृद्धों का सबल संबल बनने के लिए युवा पीढ़ी को प्रेरित करना आदि लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु साहित्य में वृद्ध विमर्श का पदार्पण हुआ था। इस दृष्टि से मालती जोशी जी का वृद्ध विमर्श अतिसरहनीय है, अविस्मरणीय है।

सन्दर्भ सूची :-

1. http://kavitakosh.वतहधा/वृद्धाएँ/धरती/का नमक हैं/अनामिका।
2. मालती जोशी, महकते रिश्ते, विजय गोयल प्रकाशन, पृ. सं 113
3. मालती जोशी, महकते रिश्ते, विजय गोयल प्रकाशन, पृ. सं 116
4. मालती जोशी, महकते रिश्ते, विजय गोयल प्रकाशन, पृ. सं 116
5. मालती जोशी, महकते रिश्ते, विजय गोयल प्रकाशन, पृ. सं 118
6. मालती जोशी, महकते रिश्ते, विजय गोयल प्रकाशन, पृ. सं 123
7. मालती जोशी, महकते रिश्ते, विजय गोयल प्रकाशन, पृ. सं 125
8. http://gadyakosh.org/gk/ वो तेरा घर, ये मेरा घर, मालती जोशी
9. http://gadyakosh.org/gk/ वो तेरा घर, ये मेरा घर, मालती जोशी
10. http://gadyakosh.org/gk/ वो तेरा घर, ये मेरा घर, मालती जोशी
11. https://yourstory.com/hindi/1a576fdd7c.tales.of.malti.joshi.

Mobile : 98403 79012

Email id : ezhilnachiar.p@sdnbvc.edu.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 165-168

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हाशिये से मुख्यधारा तक : हिन्दी साहित्य और समाज में किन्नर विमर्श का विकास

सेठी आशा दिनबंधु

टीचिंग असिस्टेन्ट (हिंदी विभाग), वनिता विश्राम वूमैन्स विश्वविद्यालय, सूरत, गुजरात।

प्रस्तावना :

वर्तमान 21वीं सदी के साहित्य में किन्नर विमर्श एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है, जो समाज में लैंगिक असमानता और भेदभाव को उजागर करता है। जिस तरह रचनाकार अपनी रचनाओं में समाज की विभिन्न समस्याओं को दर्शाते हैं, उसी तरह किन्नर विमर्श के माध्यम से हिंदी साहित्य के रचनाकारों ने इस विषय पर विशेष ध्यान केंद्रित कर रचनाएं लिखी हैं। उन्होंने अपनी कलम के माध्यम से किन्नर समाज का निरूपण किया है और उनके अधिकारों और पहचान की लड़ाई में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

विश्व में मानव की प्रगति एक पुरुष और स्त्री पर निर्भर है क्योंकि मानव जाति की आविर्भाव सहवास और संभोग की प्रक्रिया से होती है। जो कि स्त्री पुरुष के संपर्क से ही संभव है वही हम देखे तो यह दो लिंग के अतिरिक्त एक लिंग और है वह है तृतीय लिंग ना वह पूर्ण रूप से स्त्री होती है और ना ही पुरुष। इन दोनों का मिश्रित रूप है जिससे भारत में कई नाम से जाना जाता है जैसे छक्का, हिजड़ा, थर्ड जेंडर, नंबर नौ और सिक्सर आदि। इस तरह के लोग सामान्य जीवन नहीं जी पाते हैं। समाज में एक वंचित वर्ग बनकर रह जाते हैं। "ट्रांसजेंडर जिसको परिभाषित किया गया कई तरीकों से जिसमें मान्यता के आधार पर उसे परिभाषा को प्रधानता मिली जिससे ट्रांसजेंडर शब्द का सही मानक अर्थ प्रस्तुत हुआ जिसमें वैज्ञानिक एवं सामाजिक दोनों अर्थों में भावनात्मक व्यवस्था का सहचरण कर एक ऐसी परिभाषा को महत्ता प्रदान की जिसमें साफ–साफ शब्दों में बताया गया है कि ट्रांसजेंडर जिसमें वैज्ञानिक तरीके से एक ट्रांससाधारण स्त्री–पुरुष की भांति ही जन्म लेता, परंतु अपनी भावनात्मक महत्ता के आधार पर जब वह अपनी यौनिकता को वह मानसिक एवं शारीरिक दोनों रूपों में परिवर्तित करता है तो वह ही ट्रांसजेंडर कहलाता है।'' (डिसेंट)[1]

किन्नरों का उल्लेख अनादिकाल से पौराणिक ग्रंथों में देखने को मिलता है। तुलसीदासजी द्वारा रचित 'रामचरितमानस' में किन्नरों को प्रभु श्रीराम से वरदान प्राप्त हुआ था। इस बात का उल्लेख किया गया है। जब प्रभु अपने पिता दशरथजी का वचन निभाने हेतु चौदह वर्ष वनवास के लिए चित्रकूट आ पहुंचे थे। तब भरत सहित अयोध्या के समस्त प्रजा पुनः रामजी को अयोध्या लौट आने के लिए निवेदन करने आए थे। विनम्र भाव एवं नाम स्वरों से प्रभु श्री राम समस्त नर–नारी को लौट जाने के लिए कहते हैं परंतु किन्नरों को कोई आदेश नहीं मिला था जिसके कारण वे सभी वहीं रुक जाते हैं। प्रभु वनवास काटकर आते हैं वह देखते हैं कि किन्नर

समाज वही उनकी प्रतीक्षा कर रही थी कारण पूछने पर बताते हैं आप केवल नर और नारी को आदेश देते हुए कहा था :

"जथा जोगु करी विनय प्रनामा, बिदा किए सब सानूज रामा।
नारी पुरूष लघु मध्य बडेरे, सब सन्मानि कृपानिधि फेरे।।" (वियोग)[2]

उनकी भक्ति भावना देख भगवान श्री राम वरदान देते हैं कि आप जिस किसी को भी आशीर्वाद देंगे उनका कभी अमंगल नहीं होगा।

मध्यकाल में भी किन्नर का उल्लेख प्राप्त होता है। राजा अपने रानियों के देखभाल के लिए अपने महलो में किन्नरों को रखते थे अलाउद्दीन खिलजी को लेकर एक कहानी जो कि गुजरात में किन्नरों की आराध्य माता बहुचर देवी से जुड़ी हुई है– "अलाउद्दीन खिलजी की सेवा जब बहुचर देवी का मंदिर तोड़ने के लिए गई तब खिलजी के सैनिकों ने मंदिर की सारी मुर्गियों को अपने पास बुलाया। देवी के आह्वान करने से सभी मुर्गियां सैनिकों का पेट फाड़कर देवी के समक्ष उपस्थित हो गई जो सैनिक जीवित बच गए थे वह माता के भक्त बन गए और माता को खुश रखने के लिए औरतों का भेष बना लिया। माँ बहुचरा देवी ने इनको हिजड़ा रूप देकर अपनी सेवा में लगा लिया।" (भिष्म, २०१६)[3]

आधुनिक युग में किन्नरों का दशा बत्तर होता गया क्योंकि राजाओं का शासन काल समाप्त होने के कारण वह अभी सुरक्षित नहीं थे। कहा जाता है कि 1857 के विप्लव क्रांति में किन्नर ने सहयोग दिया था जिसके चलते ब्रिटिश सरकार ने इनको अपराधी घोषित कर दिया था। देश आजाद होने के बाद 1951 में किन्नर को क्रिमिनल ट्राइब से अलग कर दिया गया। अपने जीवन–यापन के लिए एवं स्वयं का अस्तित्व गरिमा बने रहे उसके लिए विवाह प्रसंग बच्चों का जन्म होते समय कोई भी खुशी आनंद एवं उल्लास के मौके पर बधाई देने पहुंचना और आशीर्वाद के रूप में दक्षिणा लेकर विदा लेते इस प्रकार समाज में एक वंचित वर्ग के रूप में किन्नर समाज रह गया है।

हिंदी उपन्यास में किन्नर समस्याओं पर लेखनी का पदार्पण नीरजा माधव द्वारा कृत 'यमदीप' उपन्यास से माना जाता है। धीरे–धीरे इस विषय पर कई साहित्यकार सैलाब ले आए। भीष्म सहनी कृत 'किन्नर कथा', 'मैं पायल' चित्रा मुद्गल द्वारा रचित 'पोस्ट बॉक्स नं 203 नाला सोपारा' निर्मला भुराडिया कृत 'गुलाम मंडी' मुक्ति शर्मा कृत 'श्रापित किन्नर' भगवत अनमोल द्वारा रचित 'जिंदगी 50–50' रेनू बहल द्वारा लिखित उपन्यास 'मेरे होने में क्या बुराई है', 'अस्तित्व की तलाश में सिमरन' डॉ. मोनिका शर्मा द्वारा रची गई है 'मेरे हिस्से की धूप' नीना शर्मा द्वारा लिखी गई है। हरभजन सिंह मेहरोत्रा द्वारा कृत 'ए जिंदगी तुझे सलाम' इस प्रकार कई उपन्यास एवं कहानियाँ लिखी गई जिससे किन्नर विमर्श का विकास निरंतर साहित्य जगत में बढ़ता गया।

'मेरे हिस्से की धूप' में मुख्य नायिका के रूप में मोनी है। उपन्यास के प्रारंभ से ही मोनी स्वयं के चेहरे पर बने हरे रंग देखकर तैयार होती है। मोनी तृतीय लिंगी है इस बात का एहसास उसके माता–पिता कभी नहीं करवाते हैं परंतु आसपास के लोग सदैव उसे ताना कसते, मजाक उड़ाते जिससे वह परेशान हो उठती। मोनी का एक छोटा भाई है नवीन उसे हर वक्त ऐसा लगता है कि मां सिर्फ मोनी को स्नेह देती है मुझे नहीं जिसके कारण हमेशा वह अपनी बहन मोनी के साथ तुलना करता रहता है। एक और बहन भी है हर्षिता उसका रिश्ता टूटने पर वह मोनी को दोषी ठहराती है और उस पर चिड़ी हुई रहती है। तब मोनी अपनी माँ पुष्पा से कहती

है – "एक लड़के ने ना कहा है ना, दूसरा आ जाएगा, इस पर हर्षिता मोनी की बात काटते हुए क्रोधित स्वर में चिल्लाते हुए कहती है –"नहीं आएगा जब तक आप हो... कभी नहीं आएगा.... आएगी तो बस ना नो नो..... बिकॉस ऑफ यू..... ।" (शर्मा न., २०२०)[4]

इस तरह किन्नर समाज को सिर्फ बाहर के लोग ही प्रताड़ित नहीं करते अपितु उनके परिवारजनों से भी कई प्रकार के कष्ट मिलते हैं। कुछ दिनों के बाद एक लड़का मोनी के जीवन में आता है जिसका नाम साजिद है वह मोनी से प्रेम कर बैठता हैं। दोनों को करीब आते देख लड़के की मां चिंतित रहती है और एक बार मोनी को बुलाकर चेतावनी देती है कि वह साजिद से दूर रहे। धीरे–धीरे मोनी उससे दूरियां बनाती गई। बहन की शादी नहीं होने के कारण मोनी किन्नर समुदाय में चले जाने का निर्णय लेती है। वहां का माहौल देखकर घबरा जाती है, स्वयं के फैसले पर पश्चाताप अनुभव करती है, बबली के साथ घनिष्ठ मित्रता के कारण वे दोनों ही खुलकर एक दूसरे से बात करते हुए किन्नर समाज की पीड़ा को जिक्र करते हैं– "यह नरक है नरक। और हम भी अपनी मर्जी से यहां नहीं आए फेंक गए हमारे बाप यहां। और देख एक तू है इतने ऐशो. ..आराम... छोड़कर आई है। और प्यार.... ममता... भी। हम जैसों को कोई घर में नहीं रखता मां भी नहीं। और तुझे उन्होंने दुनिया का सामना करके रखा तो तू यहां चली आई।...? आप क्यों नहीं चली जाती? बबली फिर हंसी एक बात अपने भेजे में डाल ले यहां आने के रास्ते हैं। जाने के नहीं। और बता कहां जाए कौन रखेगा हमें। यहां अनाथ आश्रम है, वृद्धाश्रम है लेकिन हिजड़ा आश्रम नहीं है। इस समाज में कपूत बेटे के लिए परिवार में जगह है नकारा बेटी के लिए जगह है लेकिन हिजड़े के लिए कोई जगह नहीं है।" (शर्मा न., २०२०)[5]

किन्नरों के लिए अर्थोपार्जन के रास्ते भी सीमित हो जाते हैं। अपनी आजीविका के लिए अपने अर्ध शरीर को भी बेच देते है। बबली कहती है – " पता है तुझे जब पैसे नहीं मिलते तो इस अधूरे शरीर को भी बेचना पड़ता है मात्र पचास रुपये में।" (शर्मा न., २०२०)[6] बबली को एड्स होने के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है, जिससे मोनी अत्यधिक टूट जाती है पर अपने मित्र द्वारा कही हुई बातें याद करती है और स्वयं के वर्चस्व के लिए कार्य करती है परंतु ऐसे कई बबली है जो अपना जीवन हार देती है।

'श्रापित किन्नर' यह मुक्ति शर्मा द्वारा रचित अत्यंत मार्मिक उपन्यास है। कथा में तीन पात्रों के माध्यम से संपूर्ण किन्नर जीवन की पीड़ा को दर्शाया गया है। नरगिस जो किन्नरों में से सबसे भाग्यशाली किन्नर मानी जाती है क्योंकि परिवार का साथ मिलता है। उसकी मां जास्मीन अपने अल्लाह को कोसती है– "जास्मीन ने उस दिन अल्लाह मियां को बहुत कोसा कि आपने अगर हमें औलाद देनी ही थी तो 'किन्नर' क्यों दी हमने कौन से पाप किए थे जिसकी हमको इतनी बड़ी सजा आपने दे डाली।" (मुक्ति, २०१९)[7] इसलिए कोस रही थी क्योंकि अपनी बच्ची के लिए चिंतित थी। स्कूल में दाखिला तो ले लेती है पर वहां सभी से तिरस्कृत होकर सदैव अपमान महसूस करती है। जिसके चलते जैस्मिन मानसिक विकलांग बच्चों के विद्यालय में दाखिला दिलाने ले जाती है। वहां के प्रधानाचार्य साफ इन्कार करते हुए कहते हैं यह विद्यालय किन्नरों के लिए नहीं है बल्कि जो बच्चे मानसिक एवं शारीरिक रीति से ठीक नहीं उनके लिए है। किन्नर समाज को जब पता चला तब वे लोग आकर नरगिस को ले जाते हैं वहां के गुरुमाँ को कहती है मुझे शिक्षा ग्रहण करने की इच्छा है, गुरुमाँ वह शीघ्र ही प्रबंध कर दिए। ताने तो उसको मिलते ही थे– "देखो अब किन्नर भी पढ़ेगी जाओ आज मुहल्ले में लड़का पैदा हुआ है।" (मुक्ति, २०१९)[8] जब कॉलेज जाती है, अकरम नामक लड़के से मित्रता प्रगाढ़ हो जाने के कारण देखते

ही देखते दोनों प्रेम बंधन में बंध जाते हैं। समाज की स्वीकृति न होने के बावजूद दोनों विवाह के बंधन में भी बंध जाते हैं, उनका प्रेम दैहिक नहीं अपितु आत्मिक एवं शाश्वत था।

हिना और जावेद उपन्यास के अन्य दो प्रमुख पात्र है जिनका जीवन अधिक संघर्षमय रहता है। कहा जाता हैं कि किन्नरों के श्राप के कारण हिना का जन्म हुआ। किन्नरों द्वारा मांगी गई कीमत दादाजी नहीं देते हैं, जिससे वे लोग श्राप दे देते हैं। हिना की माँ एवं दादी स्वर्गवास हो जाने के बाद उसके पिता दूसरी शादी कर लेते हैं। तत्पश्चात अकरम हिना को अपने घर ले आता है। नरगिस और अकरम दोनों उसको अपनी पुत्री की तरह रखते हैं स्नेह देते हैं दोनों की अनुपस्थिति में अकरम की माँ हिना को किन्नर के हवाले कर देती। हिना अपने भाई के जन्मदिन पर बधाई देने पहुंचती है तब उसके पिता द्वारा दी गई अपमान असंवेदनशील है –"बकवास मत करो बधाई ले निकले इधर से और हिना को धक्का मार दिया।" (मुक्ति, २०१६)[९] इस प्रकार संघर्षमय एवं दयनीय जीवन देख लेखिका स्वयं उनके नामकरण 'श्रापित किन्नर' करती है। अंत में अपने आपको इस निर्दयी दुनिया से बचाने के लिए हिना विष पी लेती है। मृत्यु के पश्चात नरगिस स्वयं को दृढ़ बनाती है। वह सोचती है कि अब वह भी आम जनता की तरह जिंदगी जीएगी अपने भाई के विवाह पर जब पहुंचती है, लोग तरह–तरह की बातें करते हैं। परिवार और अकरम का साथ उसे सबको जवाब देना सिखा देता है।

जावेद भी कई कठिनाइयों का सामना करता है वह भी पढ़ना लिखना चाहता था। उसे भी ठीक उसी प्रकार अपमान का शिकार होना पड़ता क्योंकि विद्यालय के अन्य बच्चें उसको मारते–पीटते असभ्य भाषा बोलते हिजडा–हिजडा कहकर पुकारते तब वह चिड़कर कहता है, मैं हिजड़ा नहीं हूं, मैं भी एक इंसान हूं।

उपसंहार :

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श एक महत्वपूर्ण विषय है, जिसने समाज में किन्नर वर्ग की समस्याओं और संघर्षों को उजागर करने में साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस विमर्श के माध्यम से किन्नर समाज की वास्तविकता को दर्शाया गया है और उनके अधिकारों और पहचान की लड़ाई में महत्वपूर्ण योगदान बताया गया है।

संदर्भ सूचि :–

१. साहु डिसेंट. (दि.न.). थर्ड जेंडर वैयक्तिक, सामाजिक गति की और समाजकार्य।

२. वियोग, ह. (द.क.). श्री रामचरितमानस अयोध्या काण्ड. सन्त साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली. पृ. सं. १३५.

३. महेन्द्र भिष्म. (२०१६). किन्नर कथा. अमन प्रकाशन. पृ. सं. ६३.

४. शर्मा, न. (२०२०). मेरे हिस्से की धुप. कानपुर : माया प्रकाशन. पृ. सं. १६.

५. शर्मा, न. (२०२०). मेरे हिस्से की धुप. कानपुर : माया प्रकाशन. पृ. सं. २०–२६.

६. शर्मा, न. (२०२०). मेरे हिस्से की धुप. कानपुर : माया प्रकाशन. पृ. सं. ३०.

७. शर्मा मुक्ति. (२०१६). श्रापित किन्नर. कानपुर : अमन प्रकाशन. पृ. सं. १०.

८. शर्मा मुक्ति. (२०१६). श्रापित किन्नर. कानपुर : अमन प्रकाशन. पृ. सं. १८.

९. शर्मा मुक्ति. (२०१६). श्रापित किन्नर. कानपुर : अमन प्रकाशन. पृ. सं. ५५.

चलभाष ९१०४८७६५५१, अणुडाक: sethiasha771@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 169-171

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उत्तराधुनिक जीवन के संदर्भ में 'गिलिगडु' उपन्यास

डॉ. रम्या एल्

अस्सिस्टेंट प्रोफसर, श्री अय्यप्पा कॉलेज, इरमल्लिक्करा, केरल।

चित्रा मुद्गल हिन्दी साहित्य की एक जीवट और सशक्त कथाकार हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समकालीन जीवन की विसंगतियों और संघर्षों को मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। उनका कथा साहित्य केवल निजी संवेदनाओं का आख्यान नहीं है, बल्कि उसमें पूरे समाज, समय और संस्कृति की गहन पड़ताल की गई है। चित्रा जी ने आज के उत्तराधुनिक परिवेश, वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद से उत्पन्न उन समस्याओं को उजागर किया है, जिनका सीधा असर परिवार, रिश्तों और मानवीय मूल्यों पर पड़ा है। विशेषकर उनके उपन्यासों में यह बारीकी से देखा जा सकता है कि किस प्रकार आधुनिकता और उत्तराधुनिकता के बीच फँसे मनुष्य ने अपनी पारम्परिक संवेदनाओं को खो दिया है और रिश्तों को भी केवल प्रयोजन और संपत्ति तक सीमित कर दिया है।

चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'गिलिगडु' इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इस उपन्यास में उन्होंने उपभोक्तावादी संस्कृति और बाजारीकरण के प्रभावों का गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उपभोक्तावाद के चलते संयुक्त परिवारों का स्वरूप बिखर गया है, घर–परिवार की गरिमा ध्वस्त हो चुकी है और व्यक्ति केवल अपने तक सीमित होकर रह गया है। महानगरीय जीवन ने व्यक्ति को सुविधा संपन्न और आधुनिक तो बनाया है, परंतु साथ ही उसे अपने परिवार और सामाजिक रिश्तों से दूर कर दिया है।

उत्तराधुनिकता का प्रभाव यह है कि अब मनुष्य अपनी जड़ों और परंपराओं से कटता चला जा रहा है। वैश्वीकरण ने एक ओर तो आर्थिक अवसर बढ़ाए हैं, दूसरी ओर मानवीय संबंधों को छिन्न–भिन्न कर दिया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों और बाजार की ताकतों ने यह भ्रम पैदा कर दिया है कि जीवन का वास्तविक उद्देश्य केवल उपभोग और भौतिक सुख है। इस संस्कृति में रिश्तों की गरिमा गौण हो गई है और संवेदनाएँ लगभग शून्य हो गई हैं। आज हर कोई समयाभाव से ग्रस्त है और स्वार्थ की इस दौड़ में उसके पास अपने परिजनों के लिए न तो समय है और न ही स्नेह। आधुनिक समाज की इस मानसिकता के बारे में जयमोहन जी कहते हैं 'एक जमाना ऐसा था जहाँ परिवार में वृद्धजनों का खुशहाल एवं आदर सम्मान था, उनकी संपत्ति की परवाह किए बिना। आधुनिकता के बढ़ते–बढते माँ–बाप को उनकी हैसियत के अनुसार प्रयोजन के अनुसार सुरक्षा और मर्यादा मिलने लगी, निर्धन एवं प्रयोजनहीन उपेक्षा के पात्र रहे। आज संबंधों की यह अवधारणा भी बदल गई है। बूढ़े माँ–बाप चाहे सुसंपन्न, सुशिक्षित एवं सुयोग्य हो संतानों केलिए नितांत वर्जनीय है। उनकी क्षमता का रस संतानों ने चूस लिया है, अगर रस शेष है तो उसे भी निचोडकर छिलके को कहीं फेंक दिया जाता हे।'[1]

'गिलिगडु' उपन्यास विशेष रूप से इस त्रासदी को उजागर करता है। यह उपन्यास वृद्धावस्था की समस्या और पारिवारिक विघटन का हृदयस्पर्शी दस्तावेज है। इसमें जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी जैसे बुजुर्गों का जीवन चित्रित किया गया है, जो कभी अपने परिवार के स्तंभ थे लेकिन उत्तराधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति में उपेक्षित और तिरस्कृत हो गए। जसवंत सिंह की संतानें 'नरेन्द्र और शालिनी' उनकी संपत्ति पर अधिकार जमाना चाहती हैं लेकिन पिता को अपने साथ रखने के लिए तैयार नहीं हैं। बेटा विदेश जाना चाहता है, बेटी भी अलग रहना चाहती है, पर दोनों ही पिता की संपत्ति पर अपनी नजर गड़ाए हुए हैं। जसवंत सिंह ने अपने जीवन में मेहनत से अर्जित अधिकांश संपत्ति पहले ही उन्हें सौंप दी थी, फिर भी शेष बचे घर और लॉकर की ओर उनकी लालसा बनी हुई है।

कर्नल स्वामी का जीवन भी इसी तरह की विडम्बना का प्रतीक है। उनके बेटे चाहते हैं कि वे अपना फ्लैट बेचकर उनसे प्राप्त रकम को आपस में बाँट दें ताकि वे अपने–अपने शहर में अपने सपनों के घर बना सकें। लेकिन उनमें से कोई भी पिता को अपने साथ रखने को तैयार नहीं। स्वामी अकेलेपन में वर्षों से जी रहे हैं और अंततः संपत्ति के लिए उनके बेटे द्वारा की गई मारपीट के कारण उन्हें हृदयाघात होता है और वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं। यह घटना आज के समाज की निर्ममता और अर्थलालसा का सबसे वीभत्स रूप उजागर करती है।

उपन्यास में यह स्पष्ट दिखाया गया है कि रिश्तों का मूल्य पूरी तरह बदल चुका है। कभी बाप–बेटा, बाप–बेटी, बहू–श्वसुर, दादा–पोते के बीच जो आत्मीयता और स्नेह था, वह अब केवल धन और संपत्ति तक सिमटकर रह गया है। जसवंत सिंह के पोते भी अपने दादा से भावनात्मक जुड़ाव नहीं रखते। रजनी गुप्त के शब्दों में – 'संस्कृति और बाजारवाद से उपजी सामाजिक विसंगतियों और विडम्बनाओं के बीच सांस लेती नई और पुरानी पीढी के अन्तर्संबधों और अन्तः संघर्षों के विस्तृत यथार्थ को पूरी अर्थवत्ता और गहरे सन्दर्भों तक सार्थक अभिव्यक्ति हो गयी है।'[2] घर के सदस्य उन्हें केवल इतना ही उपयोगी समझते हैं कि वे पालतू कुत्ते टॉमी को घुमाने ले जाएँ। यह दृश्य इस बात का प्रतीक है कि आज के समाज में बुजुर्गों का महत्व नौकर से भी कम समझा जाने लगा है।

'गिलिगडु' उपन्यास में आधुनिक समाज की उस मानसिकता को बारीकी से उकेरा गया है, जिसमें मानवीय संबंधों का मूल्य केवल उपयोगिता और संपत्ति तक सीमित है। जयमोहन जी ने इस संदर्भ में सही कहा है कि एक समय था जब वृद्धजनों का परिवार में अत्यधिक सम्मान था, वे परंपरा के संरक्षक माने जाते थे। लेकिन आधुनिकता और उपभोक्तावादी दृष्टिकोण ने उन्हें केवल प्रयोजन की वस्तु बना दिया है। अब चाहे माँ–बाप सुशिक्षित, सक्षम और संपन्न हों, उनके बच्चे उन्हें अपने साथ रखने को तैयार नहीं होते। उनकी क्षमता और सामर्थ्य का पूरा लाभ उठाने के बाद, जब वे वृद्ध और अशक्त हो जाते हैं, तो उन्हें वृद्धाश्रम या अकेलेपन की ओर धकेल दिया जाता है।

चित्रा मुद्गल ने इस उपन्यास के माध्यम से बुढ़ापे की त्रासदी का यथार्थवादी चित्रण किया है। वृद्धजन अपने जीवन के उत्तरार्ध में उस समय सबसे अधिक स्नेह और देखभाल की अपेक्षा रखते हैं, जब वे शारीरिक और मानसिक रूप से निर्बल हो जाते हैं। लेकिन आज के उपभोक्तावादी समाज में उन्हें इस स्नेह और सहारे की जगह उपेक्षा, तिरस्कार और अपमान मिल रहा है। संतानें माता–पिता को अपने जीवन में बोझ मानने लगी

हैं। वे उनकी सेवा करने के बजाय संपत्ति हथियाने और उन्हें परे कर देने की मानसिकता में जी रही हैं।

उपन्यास में बार–बार यह संकेत मिलता है कि आधुनिक युग में घर–परिवार की भावना लुप्त हो चुकी है। अब न तो बुजुर्गों का सम्मान है, न ही रिश्तों की गरिमा। हर कोई अपने स्वार्थ और महत्वाकांक्षाओं में डूबा हुआ है। बच्चे कंप्यूटर और मित्र मंडली में इतने व्यस्त हैं कि उन्हें अपने दादा–दादी के स्नेह की आवश्यकता भी महसूस नहीं होती। संतानें अपने माता–पिता से अलग रहना और उनकी संपत्ति हड़पना ही अपनी सफलता समझती हैं। परिणामस्वरूप माता–पिता उपेक्षित और तिरस्कृत होकर अपने जीवन का उत्तरार्ध अकेलेपन और असुरक्षा में बिताने को विवश हैं। वर्तमान विकल संस्कृति पर चित्रा जी कह उठती हैं – 'बुद्धि विकास की आड में बच्चों को सवेदनाच्युत किया जा रहा है – इतना कि बच्चे कभी परिवार में न लौट सकें, न कभी अपना परिवार गढ सकें।'[3]

इस त्रासदीपूर्ण स्थिति को लेकर आलोचकों ने भी गहन टिप्पणी की है। रजनी गुप्त के अनुसार, चित्रा मुद्गल ने संस्कृति और बाजारवाद से उपजी सामाजिक विसंगतियों तथा नई और पुरानी पीढ़ी के बीच उत्पन्न अंतर्संघर्ष को गहराई से व्यक्त किया है। वास्तव में 'गिलिगडु' केवल एक उपन्यास नहीं, बल्कि आधुनिक समाज का दर्पण है, जिसमें हमारे समय की सबसे बड़ी समस्या 'रिश्तों का ढीलापन और संवेदनहीनता' चित्रित है।

लेखिका की दृष्टि में बुद्धि–विकास और आधुनिकता की आड़ में बच्चों को संवेदनाहीन बनाया जा रहा है। इस स्थिति में वे न तो कभी अपने परिवार में लौट सकते हैं और न ही भविष्य में स्वयं एक संवेदनशील परिवार गढ़ सकते हैं। उपन्यास इस बात की चेतावनी देता है कि यदि समाज ने समय रहते इस अमानवीय प्रवृत्ति पर नियंत्रण नहीं किया, तो परिवार और रिश्तों की भावना पूरी तरह नष्ट हो जाएगी।

चित्रा मुद्गल का संदेश अत्यंत स्पष्ट है कि किसी भी प्रकार की आर्थिक सम्पन्नता या आधुनिकता पारिवारिक मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं की भरपाई नहीं कर सकती। परिवार की गरिमा और रिश्तों की आत्मीयता जीवन का वास्तविक आधार है। यदि यह खो जाएगी तो समाज केवल भौतिकता के बल पर जीवित रहेगा, परंतु उसमें मानवीय ऊष्मा और संवेदनाओं का कोई स्थान नहीं होगा।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'गिलिगडु' उपन्यास उत्तराधुनिक युग का एक मर्मस्पर्शी दस्तावेज है, जिसमें परिवार और रिश्तों के विघटन, वृद्धावस्था की त्रासदी और उपभोक्तावादी संस्कृति की भयावह सच्चाई का जीवंत चित्रण हुआ है। चित्रा मुद्गल ने अपने अनुभव और रचनात्मक दृष्टि के माध्यम से यह दिखाया है कि आधुनिक समाज किस प्रकार अपने ही बुजुर्गों को उपेक्षित कर रहा है और मानवीय संवेदनाओं को समाप्त कर रहा है। यह उपन्यास हमें चेतावनी देता है कि यदि हमें अपने सांस्कृतिक मूल्यों और पारिवारिक गरिमा को बचाना है तो हमें उपभोक्तावादी दृष्टिकोण से बाहर निकलकर प्रेम, करुणा और संवेदनाओं को पुनर्जीवित करना होगा। यही चित्रा मुद्गल की साहित्यिक चेतना और उनकी रचनात्मकता का मूल संदेश है।

संदर्भ सूची :-

1. जयमोहन.एम.एस – संग्रथन, मार्च 2006, पृ. सं– 17–18
2. रजनी गुप्त – कथाक्रम अप्रैल–जून 2007–6, पृ. सं – 118.
3. चित्रा मुद्गल–गिलिगडु, पृ. सं – 34

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 172-178

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी का स्त्री विमर्श : अल्पना मिश्र और के. आर. मीरा के कथा साहित्य के विशेष सन्दर्भ में

साजिना एम.
शोध छात्रा, हिंदी विभाग
सरकारी आर्ट्स एन्ड साइंस कॉलेज, मींचंदा, कालीकट, केरला।

साहित्य समाज का आइना होता है। समाज और साहित्य का आपसी सम्बन्ध बहुत गहरा और अटूट है। व्यक्ति और समाज साहित्य से अछूता नहीं है। ठीक उसी प्रकार साहित्य भी सामाजिक क्रिया कलापों से अछूता नहीं है। प्रत्येक समय का साहित्य आपने युग के परिवेश एवं परिस्थितियों को अपने में समेटे रहता है। सामजिक गतिविधियों का साहित्य का तथा साहित्यिक विचार—विमर्श का विषय बनना स्वाभाविक है। साहित्यकार दीर्घदर्शी होता है। वह अपने समय के साथं चलते हुए भी समय के आगे रहता है। वह युगीन परिवेश के देखे—भोगे अनुभवों को सृजनात्मकता के ज़रिये अभिव्यक्ति का अवसर देकर उसे समाज के सम्मुख रखता है। साहित्यकार समाज का केवल हू—ब—हू चित्र ही नहीं दिखाता बल्कि सामजिक व्यवस्था में मौजूद खोट, न्यूनताएँ, अमानवीयता एवं संवेदनहीनता को फटकार लगाते हुए सामाजिक विसंगतियों के लिए कारक तत्वों की कटु आलोचना करते हुए त्रुटियों को सुधारने का प्रयास करता है। साहित्य सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करता है। साहित्य वह सशक्त अस्त्र है जिससे सामाजिक कटुताओं व विडम्बनाओं के प्रति असहमति ज़ाहिर करता है। हमारे भारतीय समाज में आज भी परिधि से बाहर किये गए वर्गों की संख्या में बहुलता दिखाई देती है। स्त्री, आदिवासी, दलित, किन्नर, आदि इनमें शामिल है। इन हाशियेकृत वर्गों को मुख्यधारा में लाने और समाज में वांछित स्थान दिलाने का ही प्रयास साहित्यक विमर्श करता है। अल्पना मिश्र और के. आर. मीरा के कथा साहित्य में झलकते स्त्री विमर्श के विद्रोही तेवर को आंकते हुए पितृसत्तात्मक समाज द्वारा पीड़ित—प्रताड़ित, अपने ही वजूद से अनभिज्ञ, अपने अस्तित्व व महत्व से अनजान स्त्री जाती को समाज में यथोचित स्थान देने के लिए इन स्त्रीवादी लेखिकाओं द्वारा किए गए सराहनीय प्रयासों का विश्लेषण करना तथा स्थिर की उन्नति व उद्धार में इनके योगदान का अध्ययन करना इस प्रपत्र का लक्ष्य है।

स्त्री और पुरुष दोनों ही समाज की अभिन्न इकाई हैं। दोनों से ही समाज बनता है। समाज जीवंत रहता है। किन्तु स्त्री विरोधी दोहरे मानदंडों के चलते स्त्री और पुरुष को उनकी शारीरिक संरचना और बनावट के अलावा भी अन्य कई दोहरे मानदंडों के कारण उन्हें पृथक ही ठहराया गया है। भारतीय समाज पितृसत्तात्मक व्यवस्था का अनुगमन करता है। हमारा समाज पुरुष के हित में बनाये गए पुरुषवादी दृष्टिकोण का अंधानुसरण

करता है। यहाँ स्त्री को पुंसवाद द्वारा परिभाषित किया गया है जो कि उनके जन्मजात रूप व गुणों से बिल्कुल मेल नहीं खाता। स्त्री कि पहचान किसी न किसी पुरुष से जुड़े बिना असंभव हैं। किसी की बेटी, माँ और पत्नी के रूप में ही उसकी पहचान होती हैं। अपने ही स्वत्व और व्यक्तित्व से वंचित अभागिन स्त्री जाती। जिसकी कोख से निर्मित उसी को विस्मृत करना। समाज और सनस्र की सृष्टिकर्ता किन्तु पराधीन व पहचान विहीन। पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री के ऊपर आदर्श और उदात्तता की छवि को थोपा गया है, उसकी जड़ें स्त्री के मन – मस्तिष्क में इतनी गहरी पैठ तक गढ़ गयी हैं कि इनसे बाहर आना खुद स्त्री के लिए दुष्कर बन गया है। वर्चस्ववाद स्त्री के ऊपर इस हद तक हावी हो चुकी है कि इन बेड़ियों को तोड़ने कि कोशिश करते हुए उसे यह कोई अपराध–सा लगने लगता है। यही तो उनकी जीत है। किन्तु निरंतर प्रयत्नों के फलस्वरूप स्त्री की सोच व स्थिति में बड़े पैमाने पर परिवर्तन व प्रगति विद्यमान हैं।

हिंदी की महिला लेखिकाओं ने स्त्री विरोधी मुद्धों पर लेखनी चलाते हुए समाज में उपस्थित स्त्री विरोधी परिवेश व इनसे आतंकित स्त्री चित्त की विह्वलतों को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। पुरूषवादी विचारधारा व दृष्टिकोण का खंडन करते हुए स्त्री के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण ही इंक लक्ष्य है। पुरूषवादी समाज द्वारा स्त्री के आगे लगाए गए प्रतिबंधों व रूढ़िग्रस्त सोच के ऊपर अपने अस्तित्व बोध को जगाते हुए उसकी पहचान को बुलंद करना तथा अपने लिए वांछित स्थान की स्थापना करने में उनकी सहायता करना ही इन स्त्रीवादी लेखिकाओं का मुख्य लक्ष्य है। इन लेखिकाओं के कथा साहित्य में अनुभूति की प्रामाणिकता एवं जीवंतता पायी जा सकती है। स्त्री को उत्पीड़ित करने वाले कारक तत्वों का पुनर्पाठ करते हुए स्त्री के हित में सामजिक व्यवस्था का पुनर्गठन करना ही इन की साहित्यक सृष्टियों का मुख्य लक्ष्य है। पुरुष सन्दर्भ के बिना स्त्री की कल्पना तक करना असंभव बन गया है। स्त्री को कभी भी स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में देखना पितृक समाज को मंज़ूर नहीं है। जैसे स्त्री जन्मी ही पुरुष के छत्र छाया में पलने के लिए है। स्त्री को संपूर्ण रूप से अपने अधीनस्थ बनाने हेतु पुरुष मेधा समाज द्वारा साजिश रचने का सिलसिला तो युगों से चलता आया है। स्त्री को उदात्तता, नैतिकता, सनातन मूल्यों व आदर्शों की पट्टी पटाकर उसे सदैव अबला ठहरने की कोशिश की जा रही है।

भारतीय नारी को लेकर जनमानस में प्रतिष्ठित परम्परागत रूढ़ छवि में आज परिवर्तन दिखने लगा है। पुरुष लेखकों द्वारा स्त्रीवादी दृष्टिकोण को लेकर रचित साहित्य में स्त्री लेखिकाओं–सी अनुभूति की प्रामाणिकता नहीं होगी। भारतीय साहित्य को विशेषकर हिंदी साहित्य के इतिहास को देखा जाए तो पुरुष लेखकों द्वारा स्त्री के सन्दर्भ में बहुत कुछ लिखा गया है। किन्तु उनमें निहित अनुभूति केवल अनुमानित होती है। वह वास्तविकता से दूर होता है। पुरुष द्वारा स्त्री की संवेदनाओं को समझने की परिसीमा होती है। उसका कारण है उनका स्त्री न होना। पुरुष स्त्री के प्रति सहानुभूति और संवेदनशीलता जता तो सकता है किन्तु वह भोगे हुए यथार्थ के निकट नहीं आएगा। स्त्री की पीड़ा को केवल स्त्री भली–भाँति जान सकती है। जिस भेद भाव, अन्याय, अपमान, हीनता और हेयता अनुभव वह करती है उसका कारण है उसका स्त्री होना। स्वतंत्रता के पश्चात ही स्त्री विमर्श बलवत बना। इसका समग्र रूप में विकास तो १९वीं–२०वीं सदी में हुआ। नारी के अतीत के कटु अनुभवों से प्रेरणा .पाकर उसके आज और आनेवाले कल को उसके अनुकूल उसके लिए हितकारी बनाने में इन लेखिकाओं की भूमिका कुछ कम नहीं है। स्त्री अपनी शारीरिक संरचना को मद्देनज़र रखते हुए उसकी मानसिक प्रबलता को अनदेखा नहीं करना चाहिए। स्त्री की इसी मानसिक शक्ति पर कब्जा पाने के लिए तथा उसके दायरे निर्धारित

करने के लिए पारिवारिक स्तर से ही पृष्ठभूमि तैयार की जाती है।

आधुनिक नारी अपने स्वत्व को लेकर अत्यंत सचेत है। पुंसवादी व्यवस्था के परम्परागत, रूढ़, संकुचित मानसिकता का खंडन करते हुए अपना रास्ता स्वयं तय करती है। स्त्री जीवन की सार्थकता केवल विवाह या सन्तानोत्पादन पर नहीं टिकी है। इक्कीसवें सदी का हिंदी साहित्य ने विचार–विमर्श के द्वार खोल दिए। आज का साहित्य स्त्री जीवन की अनेक पहलुओं को उद्घाटित करता है, जैसे स्त्री पुरुष सम्बन्ध, वैवाहिक सम्बन्ध, घरेलू हिंसाएं, दहेज़ सम्बन्धी समस्याएं, कार्यक्षेत्र से सम्बंधित समस्याएं, यौन शोषण, आदिवासी स्त्री जीवन की समस्याएं, दलित स्त्री जीवन की समस्याएं आदि विषयों पर लेखिकाओं ने लेखनी चलायी।

नारी के अंतर्मन की अनकही बातें उसकी अनसुनी सिसकियों तथा अनचाही पीड़ा की जीवंत अभिव्यक्ति अल्पना जी और मीरा जी के कथा साहित्य में मिलती है। सदियों से दबोचे रखे जाने पर एक इन दमितों के आंसुओं का दहाड़ के रूप में परिणत होकर विवशता की जगह विद्रोह का आना तो स्वाभाविक है ही। इन लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं के माध्यम से आधुनिक नारी की विह्वलताओं की प्रस्तुति की है। इनके नारी पात्रों में विविधता पायी जा सकती है। विवाह संस्था को नकारने वाले, शारीरिक व मानसिक संतुष्टि व संतृप्ति हेतु विवाहेतर यौन सम्बन्ध रखने वाली, वैवाहिक जीवन से नाखुश होकर सम्बन्ध विछेद करने वाली, अपने स्वतंत्रता और स्वाभिमान को सर्वाधिक महत्व देने वाली सशक्त नारी पात्र इनकी कहानियों की विशेषता है।

सदियों से नारी को अनेकों बर्बरता एवं भेदभाव का सामना करना पड़ा है। बाल विवाह, अनमेल विवाह, बहु विवाह, दहेज़ प्रथा, घरेलू हिंसा, बलात्कार, कन्या भ्रूण हत्या/गर्भपात, शिक्षा से दूरी ऐसी अनेकों प्रतिकूल परिस्थितियों का उन्हें सामना करना पड़ा है। अर्थोपार्जन व आत्मनिर्भरता की कामना से शिक्षा–दीक्षा पाकर कार्यक्षेत्र की और निकलते नारी को कार्यक्षेत्र में भी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। इन दोनों स्त्रीवादी लेखिकाओं ने अपने साहित्य में स्त्री जीवन को उसकी समग्रता के साथ समेटते हुए उनके जीवन के हर पहलू को आंकने का प्रयत्न किया है।

इक्कीसवीं सदी की नारी हालातों के आगे मजबूर होकर समझौता नहीं करती, बल्कि वह अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने को भी तैयार है। स्त्री की अपने प्रति सजगता तो ठीक है किन्तु स्त्रियों क विषय में पुरुष वर्चस्ववाद का दृष्टिकोण अडिग होता है। इसी पुंसवादी दृष्टिकोण की जगह स्त्रीवादी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा करना इनका उद्धेश्य है। इनकी रचनाओं में चित्रित नारी पात्रों में गतिशीलता दीख पड़ती है। कहीं विवशता है तो कहीं अपनेलिए विकल्प तलाशती नारी मिलती है। अपनी नियती स्वयं लिखने वाली सशक्त नारी पात्र इनके विशेषता है। इनका स्त्रीवादी साहित्य स्त्री विमर्श के नए प्रतिमानों का निर्माण करता है। स्त्री को बेदखल करने वाली पीड़ाएँ यहाँ विद्यमान है। अपने जीवन पूरा लगाम किसी और के हाथ में। कैसी विडम्बना है यह।

अल्पना मिश्र :–

स्त्री जीवन की ज्वलंत समस्याओं को अल्पना जी ने अपनी रचनाओं में यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है। नवीन भावबोध से भरपूर इनकी कह्यानियाँ पाठकों को सोचने पर विवश करने वाली है। पैतृक समाज के बुनी हई जाल में फंसकर घुटती स्त्री की उलझनों को अत्यंत सूक्ष्मता के साथ विश्लेषित किया गया है।

इनकी 'मुक्ति प्रसंग ' में अपनी मुक्ति के प्रथम पड़ाव के तौर पर आर्थिक स्वावलम्बन चाहते हुए घर के ज़िम्मों के साथ बाहर कार्य क्षेत्र को भी बखूब संभालती नारी के आगे उपस्थित पारिवारिक व सामाजिक विकृतियों

का चित्र प्रस्तुत है। कहानी में स्त्री मुक्ति की सिर्फ कामना की गयी है किन्तु वह तो अब भी बहुत दूर प्रतीत होता है। पारिवारिक व सामाजिक विसंगतियों के बीच घुटती स्त्री को, घर के भीतर पति की विकृत काम भावनाओं व आर्थिक स्वावलम्बन को लेकर जताई गयी नाखुशी, सबसे तंग आकर काम पर निकलते नारी की प्रतीक्षा में रास्ते में छिपे गिद्धों की कुत्सित मानसिकता का भी शिकार होने पड़ता है। इन सबके बीच संत्रस्त नारी को दिखाया गया है। मुक्ति के प्रसंग की असंभव तलाश करती नारी जाति।

'भय' में तो स्त्री के शारीरिक व मानसिक क्लेशों का चित्र प्रस्तुत किया गया है। साथ ही अनचाहे शारीरिक सम्बन्ध, मासिक चक्र से जुड़ी समस्याएं, गर्भधारण, गर्भपात जैसे स्त्री चित्त को झझकोर कर देने वाली विसंगति का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'कथा के गैर ज़रूरी प्रदेश में पारिवारिक, वैवाहिक संबंधों की शिथिलता को दर्शाया गया है। अपने ही छात्रों के ऊपर भद्दी नज़र डालते, पत्नी की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करते, कामलोलुप पति के हर बुरे बर्ताव को समाज के डर से सामाजिक मर्यादाओं के उल्लंघन ना करते हुए शादी बचाने हेतु चुपचाप सहन करती अरुंधती उन तमाम नारियों का प्रतीक है जो यौन शोषण व पुरुष के चरित्रहीनता को चुप चाप झेलती है। इन सबसे बाहर आना जैसे कोई अपराध है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जड़ें स्त्री के भीतर इतनी गहराई तक छाई हुई है कि वह यह समझ ही नहीं पा रही है कि क्या गलत और क्या सही है।

'अँधेरे सुरंग में टेढे मेढे अक्षर' : पुरुष मेधा समाज पीढ़ी दर पीढ़ी औरतों को अपना गुलाम बनाकर अपना काम साधता है। पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी इससे बराबर से आतंकित है। राजरानी देवी और विधु अलग –अलग पीढियों के होते हुए भी शोषण का बराबर से शिकार है। संसार का सब कुछ परिवर्तनशील है। किन्तु पुंसवादी दृष्टिकोण अपरवर्तित एवं अविचलित है। पैतृक व्यवस्था द्वारा स्त्री के व्यक्तित्व व जन्मजात अधिकारों के हनन का इस में चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'बेतरतीब' : समाज पुरुष को हर प्रकार की छूट देता है किन्तु स्त्री को अजीबोगरीब अनुशासन प्रणालियों में बंधे रहने की सीख देता है। पारिवारिक सम्बन्धो में उत्पन्न दरारें, पति पत्नी संबंधों में आये मूल्य च्युति, आपसी रिश्तों का विघटन तथा इन सब के संतानों के मन–मस्तिष्क पर प्रभाव आदि इस में चित्रित है। परिवार के भरण–पोषण हेतु निस्वार्थ प्रयत्न कर खुद को पूर्णतः समर्पित करने वाली औरतों को बदले में केवल तकलीफ ही मिलती है। पति का पराई औरत के पास वहले जाना, घर के अंदर आतंक मचा रखना अपनी ही माता पर बच्चों कि उपस्थिति में पिता द्वारा बदसलूकी करनी इन सबसे बच्चों के स्वभाव व सोच में परिवर्तन आता है। माता–पिता के असंतुष्ट वैवाहिक जीवन से तंग आकर स्वयं शादी न करने का फैसला इसका उदाहरण है।

'भीतर का वक्त' : संकट की घड़ी में भी हिम्मत साधते हुए विद्रोही कदम उठाती बहादुर स्त्री को इस कहानी में प्रस्तुत किया गया है। ससुराल वालों की बदसलूकी के कारण समझौते की जगह स्वाभिमान को चुनकर ससुराल को पीछे छोड़कर आश्रय के लिए ने जन्मे बचे को लेकर मायके पहुँचती औरत के मायकेवालों के उदासीन व्यवहार पाकर मायके को भी पीछे छोड़कर अपन बच्चे को लेकर अपने लिए नए मंज़िल की तलाश में निकलती है। नारी यहां यह सीख देती है कि औरतों को अपने दम घोटते संबंधों व सन्दर्भो से बेझिझक मुड़कर अपने लिए नए विकल्प की तलाश में निकलना चाहिये। स्वयं से रूबरू होना नितांत अनिवार्य है।

उनकी 'उपस्थिति' कहानी में शादी के पश्चात अपना समूचा अस्तित्व व पहचान खो बैठने वाली मामूली घरेलू औरतों के जीवन के यथार्थ को दिखाया गया है। शादी, घर–गृहस्थी, बाल–बच्चे इन सबका सिर्फ औरत के जीवन पर ही क्यों असर पड़ता है, जबकि इन सबमें पुरुष का भी उतना ही हिस्सा होता है जितना स्त्री का। फिर केवल स्त्री पर ही ये सारे ज़िम्मे लागू होते होते है। पुरुष विवाहोपरांत भी अपनी इच्छानुसार जीवन बिताते है किन्तु विवाहोपरांत स्त्री का समूचा व्यक्तित्व ही बदल जाता है। प्रस्तुत कहानी में तो ससुरालवालों के दबाव में आकर स्त्री को अपना नाम तक बदलना पड़ता है। नाम किसी भी व्यक्ति की पहचान का द्योतक होता है। और वही नाम उससे छीनने का मतलब होता है उससे उसकी पहचान का हनन करना। वैवाहिक संस्था की पुंसवादी दृष्टिकोण के कारण संवेदनहीनता और अमानवीय व्यवहार का शिकार होती लाचारी औरतो की व्यथा का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया है। स्त्री किसी की पालतू नहीं है। उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व व व्यक्तित्व होता है। जिस पर ज़ोर देना आवश्यक है।

'इस जहां में हम' कहानी में बड़ी ही बारीकी के साथ यह दिखाया गया है कि भारतीय समाज में स्त्री आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने पर भी व्यक्ति के रूप में स्वततन्त्र नहीं हो पाती। उसे अपनी कमाई का हिसाब पति को देना पड़ता है। उसके तनख्वाह का विशेष ख्याल रहता है सब को किन्तु उसकी मेहनत की किसी को कदर नहीं। कार्यक्षेत्र में भी स्त्रीयो को अनेकों मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। अपने सह कर्मचारियों द्वारा अश्लील बातों व छेड़छाड़ का उसे शिकार होना पड़ता है। घर के भीतर–बाहर उसका अपमान ही होता है जिसका कारण है उसका स्त्री होना। स्त्री चाहें कुछ भी कर लें लेकिन पुरुष मेधा समाज उसे स्वीकारने से कतराता है।

'कत्थई नली धारियोंवाली कमीज' एक ऐसी कहानी है जो पुरुष कि सामंती मानसिकता पर प्रहार करती नारी के विद्रोह को प्रस्तुत करती है। अपने पुराने प्रेमी का वापस आ जाने तथा उसके द्वारा उसकी संगिनी के रूप में चयनित होने से मना करती शुचि अपनी जज्बातों पैर काबू कर प्रेमी के स्त्री विरोधी दृष्टिकोण के कारण उसे दूसरा मौका देने से साफ़ मना करते हुए अपने व्यक्तित्व व गरिमा को ज़ोर से पकड़ लेती है। ज़रूरी नहीं कि स्त्री सदा पुरुष द्वारा प्रदत्त मार्ग पर चले, उससे विचलित होकर एक विकल्प की तलाश करने का उसे भी पूरा अधिकार है।

इन सारी कहानियों में कहीं नारी उत्पीड़ित तो कहीं विद्रोही दिखाई देती है। अल्पना जी ने नारी की आत्मसंघर्षों की सूक्ष्म परतों को खोलते हुए उनकी कुंठाओं को बल्हूबी से प्रस्तुत किया है।

के. आर. मीरा :–

मीरा जी आधुनिक मलयालम साहित्य को अपनी विद्रोही चेतना से समृद्ध करने वाली एक सशक्त सामाजिक प्रतिबद्धता को मद्धेनज़र रखते हुए लिखने वाली लेखिका है। इनका साहित्य अपने समय के यथार्थ को बेबाकी से प्रस्तुत करने वाला है। इनका स्त्रीवादी साहित्य स्त्री विरोधी शक्तियों के प्रति गंभीर रूप से आक्रोश करता है। ये अपने स्त्रीवादी साहित्य के ज़रिये स्त्री को लिंग भेद के आधार पर प्रताड़ित करने वाली पुंसवादी रणनीतियों की निर्मम आलोचना करती हैं। साहित्यकार जिन विषयों पर खुलकर बोलने लिखने से झिझकते है उन पर मीरा जी बेझिझक खुलकर लिखती हैं। इनकी कहानियों में 'व्यभिचारम' कहानी में स्त्री के प्रति प्रचलित सामाजिक विडम्बनाओं का चित्र प्रस्तुत किया गया है। स्त्री की यौन शुचिता, शुद्धता और सर्व गुण संपन्न होने की मांग करता समाज पुरुष के विवाहेतर सम्बन्ध एवं अवैध, अनैतिक हरकतों को अनदेखा करता है। कहानी

पति के अवैध सम्बन्ध से टूटकर प्रतिशोध करने केलिए व्यभिचार करने को निकलती पत्नी के भीतर के आत्मसंघर्ष एवं पीड़ाओं का बखान करता है।

'सर्पयज्ञम' कहानी में आधुनिक युग में भी समाज में प्रचलित दहेज़ प्रथा व पति द्वारा उत्पीड़ित स्त्री की व्यथाओं को अभिव्यक्त किया गया है। इस में सर्प को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। सर्प यहां पति द्वारा पीड़ित, अपमानित नारी की दमित भावनाओं व इच्छाओं का प्रतीक बनकर आता है तो कभी पति द्वारा अनछुए उसकी संवेदनाओं को समझने वाले, उसकी हर चोट पर मरहम लगाने वाले एक काल्पनिक प्रेमी के रूप में। कहानीकार ने वर्त्तमान समाज में पुरुष द्वारा अपने पैरों तले रौंदी जा रही स्त्री की आत्मा को अभव्यक्ति प्रदान की है।

'मच्चाकाते तच्चान' में युगों–युगों से पितृसत्तात्मक सत्ता द्वारा स्त्री के ऊपर कस्ते आ रहे बंदिशों की लगाम को चित्रित किया गया है। औरत पर पुरुष का वर्चस्व तो चलता रहता है। पिता, पुत्र, पति यूं चलता रहेगा ये शोषण का सिलसिला। नारी को अपने अधीन बनाये रखने की ये कला तो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती आई है। भारतीय पितृक व्यवस्था बाल्यावस्था में ही पारिवारिक स्तर पर ही स्त्री पर पाबंधियाँ लगाने का कार्य शुरू किया जाता है। इनसे मुक्ति स्त्री के लिए असाध्य–सा बन गया है।

'ओरमायूडे नाराम्बु' में पारिवारिक स्तर पर उपेक्षा की पात्र बनी स्त्री का पुंसवाद की गुलामी से मुक्ति पाने के लिए आत्महत्या करने की कोशिश व गलत नस में चोट पहुँचने पर याददाश्त खो बैठने की विडम्बना को दिखाया गया है। अस्तित्वविहीन और पहचान विहीन होने से तो बेहतर याददाश्त खो बैठने को बेहतर मानकर जीने वाले औरत अपनी नियती से समझौता कर जीवन बिताने को अभिशप्त तमाम नारियों का प्रतिनिधि है।

'स्ववर्ग सांगडांगाल' में स्त्री द्वारा पुरुष के अहम् को चोट पहुँचाने का प्रसंग है। कहानी में स्त्री द्वारा पुरुष के अहम् को तोड़ने की बात से प्रचंड रूप धारण करने वाला पुरुष सारा दोष स्त्री को देता है। स्त्री जब पुरुष मेधा समाज को फटकार लगाती है तब वह चरित्रहीन बन जाती है, परिवार और परवरिश को दोष दिया जाता है। कहानी में स्त्री के मुँह से 'लिंग' शब्द सुनकर, पुरुष के वर्चस्व को तोड़ने की बात सुनकर हंगामा मचाने वाला पुरुष यह जानकार हैरान रह जाता है कि उसकी पत्नी और माशुका का भी यही ख्याल है। अर्थात हर स्त्री पुंसवाद की विकृत मानसिकता से मुक्ति की चाह रखती है। किन्तु इसका खुलासा करते कम लोग है।

स्त्री को सभी बंधनों एवं पूर्वाग्रहों से मुक्त करना और मानव रूप में प्रतिष्ठित करना ही स्त्रीवाद का लक्ष्य है। दोनों ही लेखिकाएं अपने स्त्रीवादी दृष्टी के ज़रिए एक ऐसी व्यवस्था की मांग करती है जहां स्त्री के प्रति व्यापक दृष्टिकोण हो, सम्मान हो। स्त्री मुक्ति का प्रश् केवल स्त्री की मुक्ति नहीं बल्कि समूचे मानव जाती की मुक्ति का है। स्त्री जीवन में भरे अवसाद के कारण को दूर करना ही इनकी साहित्यिक सृष्टियों का मुख्य लक्ष्य रहा है। सामजिक, पारिवारिक, शैक्षणिक, आर्थिक स्तर पर स्त्री को बराबरी का अधिकार दिलाना और हर क्षेत्र में उनकी साझेदारी को सुनुश्चित करना हीं स्त्री विमर्श का मंशा है। समय की मांग के अनुरूप लिखने की आवश्यकता को दोनों ही लेखिकाएं भली–भाँति समझती है। स्त्री लेखन को मिल रही स्वीकार्यता से ही स्त्रीवाद की प्रासंगिकता का अनुमान लगाया जा सकता है। आज की नारी अपने अस्तित्व को लेकर सजग है सचेत है। इस बदलाव में साहित्य की भूमिका अविस्मरणीय है। नारी को सावधान करने में स्त्रीवादी साहित्य एवं स्त्री विमर्श का बहुत बड़ा हाथ रहा है। स्त्री के आत्मसम्मान को सर्वोपरी प्रतिष्ठित करने में तथा स्त्री को मुक्ति के पथ की

ओर अग्रसर करने में तथा आज स्त्री का जो विद्रोहीपन दिकह रहा है ये अब स्त्री विमर्श व स्त्री चेतना को लेकर सृजित स्त्रीवादी साहित्य का स्थान उल्लेखनीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. हिंदी महिला कहानी लेखन – स्त्री जीवन के विविध आयाम, डॉ बनजा तालदी, प्रथम संस्करण २०२१ ई, विकास प्रकाशन। कानपुर – २०८०२७, पृ सं 17
2. वही, पृ सं 83
3. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, जगदीश चतुर्वेदी, २०१८, अनामिका पब्लिशर्स एन्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा) लिमिटेड, नयी दिल्ली ११०००२, पृ सं 195
4. वही, पृ सं 196
5. इक्कीसवीं सदी की लेखिकाओं की कहानियों में स्त्री विमर्श, डॉ जी पद्मावती, प्रथम संस्करण २०२१ ई, विकास प्रकाशन, कानपुर २०८०२७, पृ सं 19
6. वही पृ सं, १२२
7. अल्पना मिश्र एक शिनाख्त। 2022 सम्पादक, अर्चना त्रिपाठी, प्रलेक प्रकाशन (प्रा) लिमिटेड, नयी दिल्ली ११००४४ पृ सं, 39
8. छावनी में बेघर, अल्पना मिश्रा, २००८ दूसरा संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली ११००३२, पृ सं 9
9. वही, पृ सं 110
10. भीतर का वक्त, अल्पना मिश्र, दूसरा संस्करण २००६, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली ११००३२, पृ सं 9
11. वही, पृ. सं. 27
12. वही, पृ. सं. 97
13. ओरमायुडे नारंबु, के आर मीरा, २००२, करंट बुक्स त्रिशूर।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 179-182
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरणीय विमर्श के संदर्भ में केदारनाथ सिंह का काव्य

जशन काठपाल, शोधार्थी, पीएच.डी.(हिंदी)
शोध निर्देशक : **डॉ. शिवचरण शर्मा,** आचार्य
हिन्दी विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, पीलीबंगा, हनुमानगढ़, राजस्थान–335801

शोध सार :–

मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ प्रकृति और पर्यावरण का प्रश्न आज सबसे गंभीर वैश्विक संकट के रूप में उभरकर सामने आया है। औद्योगीकरण, शहरीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति ने जहाँ एक ओर आधुनिक जीवन को सुविधाजनक बनाया है, वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन कर पृथ्वी को असंतुलन की ओर धकेल दिया है। जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, जलस्रोतों का प्रदूषण और जैव विविधता का ह्रास जैसे संकट मानव जीवन के अस्तित्व को ही चुनौती देते दिखाई देते हैं। इस परिस्थिति में साहित्य केवल मनोरंजन या सौन्दर्याभिरुचि की अभिव्यक्ति न रहकर सामाजिक और पर्यावरणीय सरोकारों का वाहक बन जाता है। हिन्दी साहित्य में कई कवियों और लेखकों ने पर्यावरणीय संकट की ओर ध्यान आकर्षित किया है, परन्तु केदारनाथ सिंह का काव्य इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनकी कविताओं में प्रकृति के प्रति गहरा लगाव, ग्रामीण परिवेश की जीवंत झांकियाँ, जल–जंगल–जमीन की व्यथा और पर्यावरणीय संतुलन की चिंता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे प्रकृति को केवल दृश्य–श्रव्य सौन्दर्य का साधन नहीं मानते, बल्कि जीवन की निरंतरता और मानवीय अस्तित्व के आधार के रूप में देखते हैं। केदारनाथ सिंह का काव्य हमें यह समझाता है कि पर्यावरणीय प्रश्न मात्र वैज्ञानिक या तकनीकी समस्या नहीं है, बल्कि यह मानवीय संवेदना और सांस्कृतिक अस्तित्व से भी जुड़ा हुआ है। उनकी कविताएँ ग्रामीण अंचल की मिट्टी, पेड़–पौधों, पक्षियों और नदियों से संवाद करती हैं तथा इस संवाद में आधुनिक विकास की कीमत पर हो रहे प्राकृतिक विनाश के प्रति गहरी चिंता प्रकट होती है। वे बार–बार पाठक को इस ओर सचेत करते हैं कि यदि मनुष्य ने प्रकृति के साथ अपने संबंध को पुनर्परिभाषित नहीं किया तो उसका भविष्य संकट में पड़ सकता है।

मूल शब्द :– पर्यावरण, ग्रामीण अंचल, जंगल, बाजार, मशीनीकरण।

प्रस्तावना :–

केदारनाथ सिंह अपने विभिन्न कविता संग्रहों में यहाँ से देखो में (पृथ्वी रहेगी, कस्बे कि धूल, बाजार, वापसी), अकाल में सारस (अकाल में दूब, अकाल में सारस, सूर्यास्त के बाद एक अंधेरी बस्ती से गुजरते हुए, ओ मेरी उदास पृथ्वी, अड़ियल सांस), बाघ, टालस्ताय और साइकिल (पानी की प्रार्थना, पानी था मैं, भुतहा बाग) आदि में पर्यावरण के भयावह संकट का साक्षात्कार करवाते हैं। इन कविताओं मे कवि ने पर्यावरण संकट को

एक भावात्मक विकलता के साथ व्यक्त किया है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि कवि मात्र आक्रोश नहीं प्रकट करता अपितु इसके कारणो कि पड़ताल करके हमारे सामने पूंजी और सत्ता के गठजोड़ का भी खुलासा करता है। पानी की प्रार्थना कविता में पानी पूरी शिद्दत के साथ प्रभु (सत्ता संचालकों) के सामने एक दिन का हिसाब लेकर खड़ा होता है और उस एक दिन के हिसाब में लुप्त होने के कगार पर पहुंचे पानी ने अपने पीछे कार्य कर रहे समूचे सत्ता–पूंजीवादी तंत्र की पोल खोल देता है –

पर यहाँ पृथ्वी पर मै
यानि आपका मुँहलगा पानी
अब दुर्लभ होने के कगार तक
पहुँच चुका हूँ
पर चिंता की कोई बात नहीं।

यह बाजारों का समय है, और वहाँ किसी रहस्यमय स्रोत से मैं हमेशा मौजूद हूँ'।[1] बाजार में पानी की उपलब्धता पर केदारनाथ सिंह प्रश्न खड़े करते है। उस रहस्यमय स्रोत कि ओर इशारा करते हैं जहां से, लुप्त होने के कगार पर पहुँच जाने के बावजूद पानी बाजार में पहुँच रहा है। कवि यहाँ पूंजीपति और सत्ता के गठजोड़ की ओर भी इशारा करता है। कहीं ऐसा तो नहीं की पानी को बाजार की वस्तु बनाने के लिए ही उसके प्राकृतिक स्रोतों को नष्ट किया जा रहा है। इस ओर कवि का यह इशारा है कि :–

'पर अपराध क्षमा हो प्रभु
और यदि मैं झूठ बोलूँ,
तो जलकर हो जाऊँ राख,
कहते हैं इसमें,
आपकी भी सहमति है'।[2]

केदारनाथ सिंह बिंबों के कवि है और किसी भी विषय पर बयानबाजी के स्थान पर उसे मूर्त रूप मे सामने लाते हैं। पर्यावरण की समस्या तथा उससे उपजे दृश्य को हमारे सामने रखते हैं एक सूखे के माध्यम से :–

'भयानक सूखा है, पक्षी छोड़कर चले गए हैं,
पेड़ों को, बिलो को छोडकर चले गए हैं चींटे चीटियां''[3]

इस पूरे दृश्य बिम्ब के जरिये वे पर्यावरण समस्या एवं उससे उपजी सूखे जैसी स्थिति और उससे उपजे मानव अस्तित्व पर संकट की ओर आगाह करते हैं। बाघ कविता संग्रह एक तरह से उनका पर्यावरणीय विमर्शों का काव्य है। यह कवि के अपने समय को कविता मे मूर्तिमान कर देने वाली क्लैसिक रचना है। यहाँ कवि अपने पूरे वर्तमान को बाघ जैसे संश्लिष्ट चरित्र के रूप मे लेकर उपस्थित हुआ है। पर्यावरण का मुद्दा यहाँ भी कवि पूरी संजीदगी से उठाया है। बाघ का जंगल के बजाय अखबार की खबर बन जाना, खिलौने के रूप में शेष रह जाना, उसके अस्तित्व के संकट की ओर इशारा है जैसा कि कवि लिखता है 'किसी ने देखा नहीं, अंधेरे में सुनी नहीं किसी ने' उसके चलने कि आवाज, गिरि नहीं थी किसी भी सड़क पर खून छोटी सी बंद पर सबको विश्वास है कि– सुबह के अखबार में छपी खबर गलत नहीं हो सकती।'[4] यह वास्तविकता का एक नमूना है जहां प्राणी समाप्त हो रहे है और उनका नाम मात्र बचा है और कथाओं से भरे इस संसार मे वे भी एक कथा के रूप में

सुशोभित होंगे। आज विकास के नाम पर हम जिस कदर अंधाधुंध जंगल नष्ट करते जा रहे है उससे जंगली जीवों को जब रहने के स्थान नहीं रहेंगे तो 'जब छिपने को नहीं मिलती, कोई ठीक–ठाक जगह, तो वह धीरे से उठता है। और जा बैठ जाता है, किसी कथा की ओट में।[5] यह एक सच्चाई है जिसे कवि ने बहुत ही मार्मिकता से रेखांकित किया है। जंगलों के मिटते जाने से जानवरों का अस्तित्व भी अब कथाओं में ही शेष रहेगा। हम कथा में ही बाघ सुन पाएंगे और फोटो मे उसे देखेंगे, यह इक्कीसवीं सदी का अद्‌भुत आख्यान होगा। केदारनाथ सिंह ने बाघ कविता में पर्यावरणीय संकट का एक कारण मशीनीकरण में भी खोजा है। मशीने जहां आज की प्रगति की सूचक हैं वहीं पर्यावरण को नष्ट करने में भी उनका काफी अहम योगदान है। यही नहीं मशीनों ने तो मानव का विकल्प बनकर मनुष्य को भी विस्थापित किया है। मशीनीकरण के पीछे के इस स्याह सच को सामने लाने का कार्य वे बाघ के पांचवे खंड में करते हैं। बाघ ने ट्रैक्टर देखा 'एक सुंदर और विशाल ट्रैक्टर, वहाँ खेत में खड़ा था'। इस हरित क्रांति के सूचक आविष्कार के प्रति व्यक्ति का उल्लसित होना स्वाभाविक है और इसी खुशी में भई वाह! अद्‌भुत! जैसे शब्द कह उठता है। एक इमेजिनेशन कर लेता है, यह हमारा सामान्य है कि हम हर वस्तु को उत्पादन के आधार पर देखते हैं। किन्तु कुछ समय बाद ही उसका स्याह पक्ष भी सामने आने लगता है। यंत्रीकरण प्रकृति से लेकर मनुष्य तक के विस्थापन का कारण बनता चला जाता है। हमने प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का जमकर अपव्यय किया है इसकी ओर केदारनाथ सिंह बाघ और लोमड़ी के संवाद के माध्यम से संकेत करते हैं – 'क्या आदमी लोग पानी पीते हैं ?' 'पीते हैं' लोमड़ी ने कहा, पर वे हमारी तरह, सिर्फ सुबह शाम नहीं पीते, दिन–भर में जितनी बार चाहा, उतनी बार पीते हैं।''[6]

यही मूल समस्या है। हम सुविधाओं के पीछे पड़कर सीमाओं को ध्यान रखना भूल जाते हैं जिसकी ओर केदारनाथ सिंह संकेत करते हैं– 'पर इतना पानी क्यों पीते हैं आदमी लोग?' क्या उपभोग की कोई सीमा नहीं? हम क्यों प्रकृति का इतना शोषण कर डाले कि वह आने वाली पीढ़ी के लिए और यहाँ तक कि हमारे लिए अभिशाप बन जाए।

प्रकृति का विनाश करने में हम इस कदर लगे हुए हैं कि आज कोई भी पशु–पक्षी सुरक्षित नहीं है। 'मैं मार डाल जाऊंगा 'मार डाला जाऊंगा सोचता रहा वह' मौत के साये में जीते वन्य प्राणियों का यह एक मार्मिक चित्र है। आज हमने अपने उपभोग के लिए जानवरों का अस्तित्व ही संकट में दाल दिया है। विभिन्न पशु–पक्षियों का विलुप्त होत जाना इसका प्रमाण है। प्रकृति के जीवों को पिंजरों चिड़ियाघरों में कैद करके हमने उन्हें उनके मूल आवास से विस्थापित कर दिया है और प्रकृति के नैसर्गिक संपर्क से कट जाने के कारण आए दिन विभिन्न प्राणियों की प्रजाति लुप्त होती जा रही है– 'हवा का, एक सुगंध भरा झोंका आया और बाघ जो कि उस समय कहीं पिंजरे में था, जरा सिहरा, शायद जंगल में आम पाक रहे हैं, उसने सोचा।[7] कवि को डर है कि एक दिन कहीं ऐसा न हो कि हम सारी प्रकृति को ही अपने स्वार्थों के लिए स्वाहा कर लें। कहीं ऐसा न हो कि हमारी अगली पीढ़ी के लिए कुछ बचे ही न। उन्हे इस बात का डर है कि 'एक दिन, नष्ट हो जाएंगे सारे के सारे बाघ, कि जब कोई दिन नहीं होगा और पृथ्वी के सारे के सारे बाघ धरे रह जाएंगे, बच्चों कि किताबों में, मुझे भी डर है''।

केदारनाथ सिंह इस पूरे संकट कि ओर समाज को आगाह करते है। उन्हीं के शब्दों में 'यह कविता नहीं आग कि ओर इशारा है' जिस की तरफ ध्यान न देने पर हम खुद को ही जला डालेंगे।

निष्कर्ष :-

केदारनाथ सिंह की कविता में ''पर्यावरणीय विमर्श'' एक महत्वपूर्ण आयाम के रूप में उपस्थित है। वे आधुनिक हिंदी कविता के उन कवियों में हैं जिन्होंने बदलते समय, औद्योगीकरण, शहरीकरण और मानव–प्रकृति के रिश्तों को गहरी संवेदना के साथ अभिव्यक्त किया। केदारनाथ सिंह के काव्य में पर्यावरणीय विमर्श के प्रमुख पक्ष उनकी कविताओं में पेड़, पौधे, नदी, धूप, हवा आदि जीवंत चरित्र बनकर सामने आते हैं। वे केवल पृष्ठभूमि नहीं बल्कि संवेदना के सहभागी हैं। 'बाघ', 'उत्तर–काबुल', 'जमीन पक रही है' जैसी रचनाओं में नदी और गाँव जीवन–स्रोत के रूप में आते हैं। नदियाँ सभ्यता और स्मृतियों की धारा हैं, जिनके संकट का अर्थ है मानव–सभ्यता का संकट। शहरीकरण और औद्योगिक विकास से प्रकृति पर पड़े दुष्प्रभावों को कवि ने बार–बार रेखांकित किया है। उनका मानना है कि यदि मनुष्य केवल उपभोग की दृष्टि से प्रकृति को देखेगा तो संतुलन नष्ट होगा। उनके लिए पर्यावरण केवल प्राकृतिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक भी है। खेत, घर, भाषा, लोकगीत और जीवन–परंपराएँ ,सब एक साथ पर्यावरण का हिस्सा हैं। केदारनाथ सिंह का काव्य पर्यावरणीय विमर्श को मानवीय संवेदना और सांस्कृतिक दृष्टि से जोड़ता है। उनकी कविता बताती है कि प्रकृति मात्र संसाधन नहीं, बल्कि जीवन और संस्कृति की धड़कन है। उनके काव्य में पर्यावरणीय चेतना आधुनिक समाज के लिए एक गहरी सीख है।

संदर्भ सूची :-

1. सिंह, केदारनाथ (2005), टालस्ताय और साइकिल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.–10
2. वहीं पृष्ठ सं.–9
3. सिंह, केदारनाथ (1988), अकाल में सारस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.–19
4. सिंह, केदारनाथ (2009), बाघ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.–110
5. वहीं, पृष्ठ संख्या–14
6. वहीं, पृष्ठ संख्या–23
7. वहीं, पृष्ठ संख्या–48

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 183-189
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नीरजा माधव के उपन्यासों में स्त्री विमर्श : एक आलोचनात्मक अध्ययन

कल्पना नामा
हिंदी एवम् भारतीय भाषा विभाग, वनस्थली विधापीठ, राजस्थान, भारत।

सारांश :–

नीरजा माधव समकालीन हिंदी साहित्य की एक सशक्त स्त्री लेखिका हैं, जिन्होंने हाशिए के समाज के जीवनानुभवों को स्वर दिया है। नीरजा माधव ने अपने उपन्यासों और कथात्मक लेखन के माध्यम से स्त्री के बहुआयामी जीवन अनुभवों को स्वर प्रदान किया है। उनका साहित्य स्त्री की सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक अवस्थाओं को गहराई से उजागर करता है। उनके उपन्यासों में स्त्री विमर्श एक केंद्रीय तत्व के रूप में उपस्थित है, जो केवल उत्पीड़न तक सीमित नहीं है, बल्कि चेतना, प्रतिरोध और आत्मनिर्भरता के विविध पक्षों को उजागर करता है। प्रस्तुत शोधपत्र में नीरजा माधव के उपन्यासों का स्त्री विमर्श की दृष्टि से विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास किया गया है कि उनका साहित्य किस प्रकार नारी चेतना, आत्मनिर्भरता और संघर्ष को अभिव्यक्त करता है। प्रस्तुत शोधपत्र में उनके उपन्यासों में स्त्री विमर्श का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। लेखिका ने स्त्री के सामाजिक, सांस्कृतिक, लैंगिक और मानसिक यथार्थ को संवेदनशीलता से चित्रित किया है।

संकेताक्षर :– नीरजा माधव, साहित्य, स्त्री विमर्श, आलोचनात्मक।

शोध विस्तार :–

स्त्री विमर्श एक विचारधारा है जो स्त्रियों के अधिकारों, समानता और सामाजिक न्याय के पक्ष में खड़ी होती है। यह विमर्श स्त्रियों की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थिति को चुनौती देता है, साथ ही पितृसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्रियों के साथ किए गए भेदभाव और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाता है। स्त्री विमर्श में न केवल स्त्री के अधिकारों की बात की जाती है, बल्कि यह समाज में महिलाओं के सम्मान, स्वतंत्रता और स्वावलंबन के मुद्दों को भी प्रमुखता से उठाता है।

भारत में स्त्री विमर्श का इतिहास भी अत्यंत प्राचीन है, लेकिन समकालीन साहित्य में यह विमर्श ज्यादा सक्रिय और व्यापक रूप से देखा जाता है। इसके प्रमुख मुद्दों में स्त्री के शारीरिक और मानसिक शोषण, लैंगिक समानता, कार्य क्षेत्र में भागीदारी, और स्त्री के व्यक्तित्व की स्वतंत्रता शामिल हैं। इस विमर्श के माध्यम से लेखिकाएँ स्त्री के अंदर की शक्तियों और संघर्षों को उभारने की कोशिश करती हैं, ताकि एक समतामूलक समाज की ओर कदम बढ़ाया जा सके। समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श का प्रभाव कई प्रमुख लेखिकाओं के

माध्यम से देखा जा सकता है। लेखिकाओं जैसे मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, और नीरजा माधव ने इस विमर्श को अपने साहित्य में स्थान दिया है। इन लेखिकाओं ने स्त्री के आंतरिक संघर्ष, उसकी पहचान और उसके सामाजिक न्याय की लड़ाई को चित्रित किया है।[1]

नीरजा माधव ने अपनी रचनाओं में भारतीय समाज की स्त्री को बहुआयामी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में स्त्री के अस्तित्व, संघर्ष, और उसकी पहचान की तलाश की गहरी छाप देखने को मिलती है। वे न केवल शहरी या मध्यवर्गीय स्त्रियों की समस्याओं को उजागर करती हैं, बल्कि आदिवासी, दलित और ग्रामीण स्त्रियों के मुद्दों पर भी विचार करती हैं। इस प्रकार, उनके साहित्य में स्त्री विमर्श का स्वर समावेशी और विस्तृत रूप से व्यक्त हुआ है।

नीरजा माधव की लेखकीय दृष्टि :-

नीरजा माधव समकालीन हिंदी साहित्य की एक सजग, संवेदनशील और सामाजिक सरोकारों से गहराई से जुड़ी हुई लेखिका हैं। उनके साहित्य में हाशिए पर खड़े समुदायों– विशेषतः स्त्रियों, विकलांगों, ट्रांसजेंडर और दलित वर्गों कृ के जीवन–संघर्ष, अधिकार और अस्तित्व की आवाज को प्रमुखता दी गई है। नीरजा माधव केवल सहानुभूति तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि वे अपने पात्रों को जीवंत, संघर्षशील और आत्मनिर्भर रूप में चित्रित करती हैं, जो सामाजिक विषमताओं से टकराने का साहस रखते हैं।

उनका लेखन संवेदनशीलता और यथार्थबोध से परिपूर्ण है। वे किसी भी विषय को उठाते समय केवल भावनात्मक नहीं होतीं, बल्कि ठोस तथ्यों, अनुभवों और गहराई से किए गए शोध के आधार पर अपनी बात रखती हैं। उनका उपन्यास 'यमदीप' किन्नर समुदाय के जीवन के साथ आम स्त्रियों की समस्याओं पर भी केंद्रित है, जिसमें किन्नर पात्रों को समाज की करुणा के पात्र नहीं, बल्कि स्वाभिमानी, श्रमशील और रचनात्मक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस कृति में लेखिका की गहन शोधपरक दृष्टि तथा यथार्थवादी लेखन शैली स्पष्ट रूप से झलकती है। नीरजा माधव स्वयं कहती हैं– 'साहित्य का कार्य केवल मनोरंजन नहीं है, यह समाज को आईना दिखाने और उसमें बदलाव लाने का माध्यम भी है।'[2]

डॉ. ममता मिश्रा का कथन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है– 'नीरजा माधव का लेखन नारीवादी चेतना से संपन्न है, परंतु यह विमर्श सीमित नहीं बल्कि समावेशी है, जो समाज के उपेक्षित वर्गों की पीड़ा को साहित्य में स्थान देता है।'[3]

नीरजा माधव की लेखकीय दृष्टि का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे अपने पात्रों को केवल सामाजिक व्यवस्थाओं की मार खाने वाले निरीह पात्र नहीं बनातीं, बल्कि उन्हें जागरूक, स्वाभिमानी और परिवर्तन के वाहक के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उनके उपन्यासों में स्त्री न तो केवल मातृत्व की मूर्ति है, न ही केवल शोषित पात्रय वह एक स्वतंत्र, वैचारिक और निर्णयक्षम इकाई है। नीरजा माधव एक साक्षात्कार में कहती हैं– 'मुझे लगता है कि जब तक हम समाज के उन लोगों की बात नहीं करेंगे जिन्हें कोई नहीं सुनता, तब तक साहित्य अधूरा रहेगा।'[4]

इस प्रकार नीरजा माधव का लेखन सामाजिक बदलाव का औजार है। वह न केवल असमानताओं की ओर संकेत करता है, बल्कि उन असमानताओं को मिटाने का स्वप्न भी दिखाता है। उनकी लेखनी में संवेदना के साथ–साथ संघर्ष, शोध, अनुभव और वैचारिक प्रतिबद्धता का संतुलित समावेश है, जो उन्हें समकालीन हिंदी

साहित्य की एक प्रखर और जिम्मेदार लेखिका बनाता है।

नीरजा माधव के उपन्यासों में स्त्री विमर्श का विश्लेषण :-

यमदीप उपन्यास भारतीय साहित्य में किन्नर समुदाय की जीवन–यथार्थता को उद्घाटित करने वाला एक महत्वपूर्ण कार्य है। यह उपन्यास केवल एक कथानक नहीं है, बल्कि समाज में व्याप्त लिंग संबंधी पूर्वाग्रहों और सामाजिक संरचनाओं की आलोचना भी प्रस्तुत करता है। इसमें नायिका का संघर्ष एक ऐसी मानसिकता के विरुद्ध है, जो केवल स्त्री और पुरुष की दो पारंपरिक लिंग श्रेणियाँ स्वीकार करती है। यमदीप ने इस उपन्यास के माध्यम से जैविक लिंग और सामाजिक लिंग के बीच के अंतर को गहराई से प्रश्नांकित किया है।

उपन्यास में नायिका किन्नर समुदाय की सदस्य है, जो समाज के रूढ़िवादी विचारों से जूझ रही है। सामाजिक मान्यताओं के अनुसार, स्त्री और पुरुष के अतिरिक्त अन्य किसी भी लिंग की स्वीकार्यता नहीं है, जिससे किन्नर जाति में सामाजिक उपेक्षा और भेदभाव लगातार बना रहता है। यमदीप इस स्थिति को चुनौती देते हुए दर्शाता हैं कि लिंग केवल जैविक रूप से निर्धारित नहीं होता, बल्कि यह सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक संदर्भों से भी प्रभावित होता है।

उपन्यास के एक अंश में लेखिका ने स्पष्ट रूप से लिखा है : 'समाज ने मुझे दो श्रेणियों में बाँट दिया है – स्त्री या पुरुष। पर क्या मेरी पहचान इन दो बक्सों में आ सकती है? मेरा अस्तित्व उस सीमारेखा से परे है, जिसे तुम स्वीकारने को तैयार नहीं हो।'[5] यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि नायिका की पहचान समाज के बनाए गए बंधनों को चुनौती देती है और जैविक लिंग से परे एक नई सामाजिक पहचान की मांग करती है। इस प्रकार, उपन्यास में सामाजिक लिंग की अवधारणा को व्यापक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है, जो वर्तमान लैंगिक विमर्श के लिए महत्वपूर्ण है।

अतः यमदीप उपन्यास ने न केवल साहित्यिक दृष्टि से बल्कि सामाजिक विमर्श के संदर्भ में भी किन्नर समुदाय और लैंगिक पहचान की समस्याओं को गहनता से प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास उन सामाजिक मानसिकताओं को चुनौती देता है जो लिंग की दोहरी श्रेणियों को मान्यता देती हैं, और जैविक तथा सामाजिक लिंग के बीच अंतर को समझने की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

अवर्ण महिला कांस्टेबल की डायरी एक महत्वपूर्ण दलित साहित्यिक कृति है, जो कि आत्मकथा की शैली में लिखी गई है। यह उपन्यास दलित नारी के दोहरे शोषण– जातिगत और लैंगिक–की संवेदनशील व्याख्या करता है। नायिका न केवल जाति–आधारित भेदभाव की पीड़ित है, बल्कि पुरुष–प्रधान और अनुशासनात्मक पुलिस विभाग में लैंगिक असमानता और उत्पीड़न का भी सामना करती है। इस दृष्टि से यह उपन्यास दलित स्त्री के आत्मसम्मान और संघर्ष का सशक्त दस्तावेज है।

उपन्यास की नायिका एक दलित महिला कांस्टेबल है, जो अपने जीवन और पेशेवर अनुभवों को डायरी के रूप में प्रस्तुत करती है। इसमें समाज और पुलिस विभाग की उन व्यवस्था का चित्रण है, जो दलित महिलाओं को दोहरे रूप में दबाती हैं। न केवल जातिगत भेदभाव की गहराई से समीक्षा होती है, बल्कि महिला के प्रति सामाजिक और संस्थागत पक्षपात भी उभरकर सामने आता है। उपन्यास के एक अंश में नायिका लिखती है : 'जहाँ मेरा रंग और जाति मुझे घेरती है, वहीं मेरा लिंग, मुझे कमजोर समझा जाता है। इस पुरुष प्रधान व्यवस्था में मेरी आवाज को दबाया जाता है, फिर भी मैं संघर्ष करती हूँ, क्योंकि मेरी आत्मा में टूटने की जगह लड़ने की

आग है।'[6] यह उद्धरण दलित महिला की मानसिक दृढ़ता और सामाजिक बंधनों को चुनौती देने की क्षमता को दर्शाता है। उपन्यास में नायिका की लड़ाई केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि समष्टिगत है, जो दलित और महिला दोनों वर्गों के अधिकारों की रक्षा हेतु है।

साहित्यिक आलोचक मिश्रा (2015) के अनुसार : 'यह उपन्यास दलित महिला की सशक्त आवाज है, जो जाति–प्रथा और पितृसत्ता के दमन के बीच अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है। इसके माध्यम से दलित नारी के जीवन के जटिल पहलुओं को समझना संभव होता है।'[7] इस प्रकार, अवर्ण महिला कांस्टेबल की डायरी न केवल दलित महिला के जीवन की व्यथा और संघर्ष को उजागर करता है, बल्कि सामाजिक और संस्थागत स्तर पर व्याप्त भेदभावों को चुनौती देते हुए महिला मुक्ति के व्यापक विमर्श में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह उपन्यास दलित स्त्रियों के लिए प्रेरणा और सामाजिक न्याय की दिशा में एक प्रबल आह्वान है।

ईहामृग एक अत्यंत संवेदनशील उपन्यास है, जो स्त्री–पुरुष संबंधों के जटिल द्वंद्व और सामाजिक मान्यताओं के दायरे में व्यक्ति की आंतरिक इच्छाओं को गहराई से प्रस्तुत करता है। उपन्यास की नायिका सामाजिक सीमाओं और पारंपरिक मर्यादाओं से ऊपर उठकर अपने 'स्व' की पहचान और उसकी आकांक्षा की खोज में लगी हुई है। यह रचना स्त्री की भावनात्मक दुनिया और उसकी स्वतंत्रता की लालसा को एक नए विमर्श के रूप में स्थापित करती है।

उपन्यास की कथा नायिका की मनोदशा और उसकी अंतर्मन की गहराई को उजागर करती है, जहाँ वह अपने भीतर चल रहे भाव और कामनाओं को समझने की कोशिश करती है, जो अक्सर सामाजिक कर्तव्यों और प्रतिबंधों से टकराते हैं। नायिका के संघर्ष में स्त्री–पुरुष संबंधों के पारंपरिक स्वरूपों की समीक्षा भी निहित है, जो समाज के दबाव में अक्सर विकृत हो जाते हैं। उपन्यास के एक प्रसंग में नायिका कहती है– 'मेरे भीतर की आवाज कहती है कि मैं सिर्फ किसी की परछाई या समाज की तस्वीर नहीं हूँ, मैं स्वयं का अधिकार रखती हूँ कृ अपनी इच्छाओं और अपनी सीमाओं का। क्या यह गलत है?'[8] यह उद्धरण नायिका की स्वातंत्र्य की अभिलाषा और सामाजिक बंधनों से उसकी जद्दोजहद को दर्शाता है। उपन्यास में स्त्री का श्स्वश केवल एक व्यक्तित्व की खोज नहीं, बल्कि उसके आत्मनिर्णय की इच्छा का प्रतीक है।

साहित्यिक समीक्षक वर्मा (2013) ने इस उपन्यास पर टिप्पणी करते हुए लिखा है : 'ईहामृग स्त्री और पुरुष के पारस्परिक संबंधों की सामाजिक निर्मित जटिलताओं को खूबसूरती से चित्रित करता है। नायिका की यात्रा स्व–खोज और आत्म–निर्णय की एक सशक्त मिसाल है, जो आधुनिक सामाजिक विमर्श में नारी के स्वतंत्र अस्तित्व को स्थापित करती है।'[9] अतः, ईहामृग उपन्यास न केवल स्त्री–पुरुष संबंधों के द्वंद्व को चित्रित करता है, बल्कि स्त्री की आत्मशक्ति और उसके सामाजिक बंधनों को चुनौती देने की प्रक्रिया को भी प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करता है। यह रचना स्त्री के 'स्व' की खोज में निहित भावनाओं और सामाजिक मान्यताओं के बीच की जद्दोजहद का सजीव चित्रण है।

तेभ्यः स्वधा (2004) एक संवेदनशील उपन्यास है, जो भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराओं में निहित स्त्री के लिए निर्धारित सीमाओं और बंधनों का गहन अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में नायिका की कहानी माध्यम से उस स्त्री के संघर्ष को दर्शाया गया है, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच झूलते हुए अपने अस्तित्व और पहचान की खोज में लगी रहती है। उपन्यास भारतीय समाज की उन मान्यताओं पर प्रश्न उठाता

है, जो स्त्री को सीमित भूमिकाओं में बाँधकर उसके स्वाभिमान और स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करती हैं।

नायिका का संघर्ष मुख्यतः उस सामाजिक संरचना के खिलाफ है, जो स्त्री को घर और परिवार की सीमाओं तक सीमित कर देती है। उपन्यास में आधुनिकता की आँधी के बीच भी परंपरा की मजबूती और उसकी पकड़ को स्पष्ट रूप से दिखाया गया है, जिससे नायिका का अस्तित्व और अधिक जटिल हो जाता है। उपन्यास के एक हिस्से में नायिका अपने आंतरिक द्वंद्व को इस प्रकार व्यक्त करती है : 'मैं उस सीमा के भीतर नहीं रहना चाहती जहाँ परंपराएँ मुझे बाँधती हैं। फिर भी, उन परंपराओं को छोड़ना भी आसान नहीं, क्योंकि वे मेरी जड़ों से जुड़ी हैं। मैं कौन हूँ, क्या हूँ– यह सवाल मेरे भीतर बार–बार उठता है।'[10] यह उद्धरण नायिका के मनोवैज्ञानिक संघर्ष और भारतीय परंपराओं के प्रभाव की जटिलता को दर्शाता है। उपन्यास में यह विषय वस्तु स्त्री के सामाजिक और मानसिक द्वंद्व के केंद्र में है।

साहित्यिक समीक्षक सिंह (2008) ने लिखा है : 'तेभ्यः स्वधा भारतीय स्त्री के अस्तित्व और उसकी पहचान की गूढ़ खोज है, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच फंसी हुई है। यह उपन्यास भारतीय समाज में स्त्री के प्रति चल रही मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक सीमाओं को उद्घाटित करता है।'[11] इस प्रकार, तेभ्यः स्वधा उपन्यास न केवल भारतीय स्त्री की सामाजिक भूमिका की समीक्षा करता है, बल्कि उसके आत्म–निर्णय और स्वतंत्रता की आकांक्षा को भी प्रमुखता से सामने लाता है। यह उपन्यास स्त्री के अस्तित्व के द्वंद्वात्मक पक्ष को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है।

रात्रिकालीन संसद (2013) एक अत्यंत प्रतीकात्मक और विचारोत्तेजक उपन्यास है, जिसमें 'रात्रि' को स्त्री के मौन, उसकी पीड़ा और संघर्ष का रूपक बनाया गया है। यह रचना सामाजिक बंदिशों के बीच स्त्रियों की भीतरी दुनिया की अभिव्यक्ति करती है, जहाँ वे रात के अंधकार में मिलकर अपने जीवन के अनुभवों को साझा करती हैं। इस साझा संवाद के माध्यम से उपन्यास एक वैकल्पिक विमर्श को जन्म देता है जो स्त्री की बौद्धिक चेतना को जागृत करता है।

उपन्यास की भाषा और शैली प्रतीकात्मकता से परिपूर्ण है। रात्रि, जो सामान्यतः भय और छुपाव का प्रतीक होती है, यहाँ स्त्रियों की आवाज बनने का माध्यम है। यह उन पीड़ाओं और असहाय अनुभवों का प्रतिनिधित्व करती है, जिन्हें दिन के उजाले में दबाया और अनसुना किया जाता है। स्त्रियाँ अपने सामाजिक और पारिवारिक दबावों से मुक्त होकर रात में खुलकर अपनी बातें करती हैं, जिससे उनके विचारों का एक नया विमर्श जन्म लेता है। उपन्यास के एक प्रमुख अंश में वर्णित है : 'रात्रि हमारी संसद है, जहाँ हमारी पीड़ा, हमारी आवाजें, हमारे सपने सब खुलकर बोलते हैं। यहाँ कोई रोक–टोक नहीं, बस स्वतंत्रता है, हमारी अपनी भाषा में हमारी अपनी कहानी।'[12] यह उद्धरण उपन्यास की मूल भावना और स्त्री विमर्श की दिशा को स्पष्ट करता है। यहाँ 'रात्रि' केवल एक काल नहीं, बल्कि स्त्रियों की बौद्धिक और सामाजिक मुक्ति का प्रतीक है।

साहित्यिक समीक्षक अग्रवाल (2016) के विचार भी उपन्यास की प्रासंगिकता को प्रमाणित करते हैं : 'रात्रिकालीन संसद स्त्री विमर्श में एक नया अध्याय जोड़ता है। यह उपन्यास स्त्रियों के मौन को शब्द देता है और उनके संघर्षों को एक सामूहिक चेतना के रूप में प्रस्तुत करता है। इसकी प्रतीकात्मक शैली और संवादात्मक स्वरूप इसे समकालीन हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण बनाता है।'[13] इस प्रकार, रात्रिकालीन संसद उपन्यास स्त्री की आंतरिक पीड़ा, मौन और उसके बौद्धिक उत्थान का एक सशक्त चित्र प्रस्तुत करता है। यह

स्त्री विमर्श के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण और प्रेरणादायक कृति के रूप में स्थापित हुआ है।

कोविड–19 महामारी ने समाज के कई पहलुओं को प्रभावित किया, विशेष रूप से स्त्रियों के जीवन पर गहरा असर डाला। उपन्यास कोरोना इसी संदर्भ में रचित एक संवेदनशील कृति है, जिसमें महामारी के दौरान घरों में कैद स्त्रियों के सामाजिक और मानसिक संघर्ष को गहराई से प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास घरेलू हिंसा में वृद्धि, स्त्रियों पर बढ़ता कार्यभार, और उनके भीतर छिपे मानसिक तनाव की प्रभावशाली अभिव्यक्ति करता है।

उपन्यास की नायिका के माध्यम से लेखक ने स्त्री की अस्मिता, उसकी चुप्पी और उसकी बहादुरी को उजागर किया है। जहाँ एक ओर वह घरेलू जिम्मेदारियों और परिवार की देखभाल में लगी रहती है, वहीं दूसरी ओर वह अपने भीतर चल रहे दर्द और उत्पीड़न को भी सहन करती है। उपन्यास में एक स्थान पर नायिका कहती है : 'घर की चार दीवारें अब मेरे लिए जंजीर बन गई हैं। बाहर की दुनिया से कट गई हूँ, पर मेरे भीतर की पीड़ा चिल्ला रही है, पर कोई सुनता नहीं।'[14] यह उद्धरण न केवल नायिका की मानसिक स्थिति को दर्शाता है, बल्कि महामारी के दौरान स्त्रियों की स्थिति की वास्तविकता को भी उजागर करता है।

साहित्यिक समीक्षकों में शर्मा (2022) ने इस उपन्यास के बारे में कहा है : 'कोरोना उपन्यास कोविड–19 के दौर में स्त्रियों के जीवन की झलक प्रस्तुत करता है, जहाँ वे केवल घरेलू दायित्वों के भार तले दबती नहीं बल्कि मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न का भी सामना करती हैं। यह कृति स्त्री विमर्श के समकालीन मुद्दों को प्रभावशाली रूप में सामने लाती है।'[15] इस प्रकार, कोरोना उपन्यास न केवल महामारी की सामाजिक पृष्ठभूमि को उजागर करता है, बल्कि स्त्रियों के संघर्ष और उनके आत्मसम्मान की रक्षा की कहानी भी कहता है। यह उपन्यास समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है।

निष्कर्ष :–

नीरजा माधव का साहित्य समकालीन स्त्री विमर्श में एक सशक्त हस्ताक्षर है। उन्होंने समाज के उपेक्षित वर्ग की स्त्रियों को न केवल आवाज दी है, बल्कि उन्हें मुख्यधारा में प्रतिष्ठित किया है। उनका साहित्य अनुभवों पर आधारित है और उसमें स्त्री की पीड़ा के साथ–साथ उसकी चेतना, संघर्ष और विकास की कथा भी समाहित है। नीरजा माधव ने यह प्रमाणित किया है कि स्त्री विमर्श केवल महानगरीय अनुभवों तक सीमित नहीं है, बल्कि ग्रामीण, दलित, और लिंग बहुल समाजों की स्त्रियाँ भी स्त्री विमर्श का उतना ही मजबूत आधार बन सकती हैं। उनका लेखन पाठकों को सोचने के लिए प्रेरित करता है और स्त्री की स्वतंत्रता, सम्मान और समानता की दिशा में एक महत्वपूर्ण साहित्यिक योगदान प्रस्तुत करता है।

संदर्भ :–

1. शर्मा, रेखा. 'निर्जा माधव के उपन्यासों में स्त्री विमर्श', हिंदी आलोचना, खंड 15, 2022, पृष्ठ 89।
2. माधव, निर्जा. यमदीप, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, यमदीप की भूमिका, पृष्ठ 8
3. डॉ. ममता मिश्रा, हिंदी उपन्यासों में स्त्री विमर्श, भारतीय साहित्य शोध पत्रिका, 2022, पृष्ठ 11
4. साक्षात्कार : सृजनगाथा डॉट कॉम, 2019
5. यमदीप, पृ. 78।

6. अवर्ण महिला कांस्टेबल की डायरी (2010), पृ. 56।
7. मिश्रा, राजीव (2015). दलित नारी विमर्श और आधुनिक साहित्य. वाराणसी : काशी हिंदू विश्वविद्यालय प्रेस, पृ. 213।
8. ईहामृग (2010). पृ. 102।
9. वर्मा, सुषमा (2013). आधुनिक हिंदी उपन्यास में स्त्री विमर्श. लखनऊ : राजकमल प्रकाशन, पृ. 89।
10. तेभ्यः स्वधा (2004). पृ. 130।
11. सिंह, अमित (2008). भारतीय समाज में स्त्री विमर्श. जयपुर : राजस्थान साहित्य अकादमी, पृ. 98।
12. रात्रिकालीन संसद (2013), पृ. 78।
13. अग्रवाल, सीमा (2016). समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श. दिल्ली : एन.डी. प्रकाशन, पृ. 115।
14. कोरोना (2020), पृ. 56।
15. शर्मा, प्रिया (2022). समकालीन हिंदी साहित्य में कोविड–19 विमर्श. मुंबई : साहित्य भारती, पृ. 89।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 190-194
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नर जीवन की पीड़ा और मानवाधिकार : 'किन्नर कथा' का अध्ययन

कृष्णा संगीता. एस
शोधार्थी, केरल विश्वविद्यालय, कार्यवट्टम कैंपस।

मानवाधिकार वे बुनियादी अधिकार हैं जो हर व्यक्ति को सिर्फ इसलिए मिलते हैं क्योंकि वह इंसान है। यह किसी जाति, धर्म, लिंग, रंग, भाषा या सामाजिक स्थिति पर निर्भर नहीं करते। इन अधिकारों का मुख्य उद्देश्य इंसान को सम्मान, स्वतंत्रता और समानता के साथ जीने का अवसर देना है।

उपन्यास साहित्य की वह विधा है, जो पाठकों को मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक यथार्थ को गहराई से समझने का अवसर प्रदान करती है। हिंदी उपन्यासों में किन्नर जीवन का चित्रण आज एक महत्त्वपूर्ण विमर्श के रूप में सामने आ रहा है। ऐसे में श्महेंद्र भीष्म' का उपन्यास 'किन्नर कथा' किन्नर समुदाय के जीवन, संघर्ष और समाज की उपेक्षा को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास 2011 में प्रकाशित हुआ और यह उपन्यास केवल किन्नर जीवन की त्रासदी का चित्रण नहीं करता, बल्कि इस समुदाय से जुड़ी समस्याओं के संभावित समाधान भी प्रस्तुत करता है।

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो हर व्यक्ति को केवल इंसान होने के नाते प्राप्त होते हैं। ये अधिकार किसी जाति, लिंग, धर्म, वर्ग या लैंगिकता पर निर्भर नहीं करते। जीवन का अधिकार, समानता का अधिकार, गरिमा का अधिकार, शिक्षा और आजीविका का अधिकार, न्याय पाने का अधिकारकृये सभी ऐसे मूल अधिकार हैं जिन्हें विश्व समुदाय ने सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया है। परंतु वास्तविकता यह है कि कई समुदाय आज भी इन अधिकारों से वंचित हैं। उन्हीं में से एक है–किन्नर समुदाय।

महेंद्र भीष्म का चर्चित उपन्यास 'किन्नर कथा' इस समुदाय की पीड़ा और संघर्षों को स्वर देता है। यह केवल साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि एक मानवाधिकार–प्रलेख है, जिसमें यह दिखाया गया है कि किस प्रकार किन्नरों को समाज, परिवार, धर्म और प्रशासन द्वारा उनके बुनियादी अधिकारों से वंचित किया जाता है। इस अधिकारों का घोर हनन होता है।

यह उपन्यास हिंदी साहित्य की उन साहसिक रचनाओं में शामिल है, जिसने किन्नर समुदाय के जीवन और संघर्षों को केंद्र में लाकर समाज को सोचने पर मजबूर किया है। यह उपन्यास किन्नर विमर्श की एक सशक्त प्रस्तुति है, जो उनके सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक और ऐतिहासिक संदर्भों को उजागर करता है। आलोचकों ने इसकी कथा को अतिनाटकीय और फिल्मी बताया है, लेकिन यही विशेषता इसे एक रोचक और प्रभावशाली

रचना बनाती है। लेखक स्वयं स्वीकार करते हैं कि कथा का मूल सूत्र बचपन में सुनी गई एक कहानी पर आधारित है। यह उपन्यास केवल जानकारी देने का माध्यम नहीं, बल्कि किन्नर जीवन की पीड़ा, समाज की उपेक्षा और प्रशासनिक उदासीनता को रेखांकित करता है। अंततः यह एक सकारात्मक मोड़ पर समाप्त होता है, जहाँ मुख्य पात्र को परिवार और समाज से स्वीकार्यता मिलती है।

किन्नरों के प्रति समाज का रवैया प्रायः तिरस्कार, उपेक्षा और उपहास से भरा रहा है। उनका जीवन अपमान, असुरक्षा और सामाजिक बहिष्कार की परिस्थितियों में बीतता है। आज जबकि भारत का संविधान समानता और गरिमा का अधिकार हर नागरिक को देता है, तब भी किन्नर समुदाय को सामाजिक स्वीकृति और समान अवसर नहीं मिल पाते। इस संदर्भ में साहित्य की भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। साहित्य न केवल उनकी पीड़ा और संघर्ष को उजागर करता है, बल्कि पाठकों के भीतर सहानुभूति और संवेदनशीलता भी जगाता है।

कई राज्यों में किन्नरों को पहचान और अधिकार दिलाने के लिए सरकारी प्रयास अवश्य हुए हैं, परंतु यह केवल कानूनी प्रावधान तक सीमित नहीं रह सकता। किसी भी बदलाव की सफलता समाज की मानसिकता में परिवर्तन पर निर्भर करती है। जब तक समाज उन्हें बराबरी का दर्जा और गरिमा प्रदान नहीं करेगा, तब तक उनके अधिकार अधूरे ही रहेंगे। इसीलिए साहित्यिक विमर्श, संवेदनशीलता और सामाजिक जागरूकता का फैलाव किन्नर अधिकार आंदोलन के लिए अत्यंत आवश्यक है।

किन्नर समुदाय, जो सदियों से मुख्यधारा से अलग रहा है और पारंपरिक स्त्री–पुरुष ढाँचे में नहीं आता, उसे सहज रूप से समाज में स्वीकार किया जाना आज भी चुनौतीपूर्ण है। इसलिए लोगों को उनकी समस्याओं से अवगत कराने, संवेदना जगाने और सोचने को प्रेरित करने के लिए साहित्य सबसे प्रभावशाली माध्यम बन सकता है। किन्नरों की सामाजिक स्थिति के लिए जितनी समाज की भ्रांतियाँ और उपेक्षा जिम्मेदार हैं, उतनी ही इस समुदाय के भीतर इच्छाशक्ति की कमी भी। ऐतिहासिक रूप से किन्नर समाज का सम्मानजनक स्थान था स राजाओं के हरम की सुरक्षा जैसे कार्यों में उनकी भूमिका थी। लेकिन ब्रिटिश शासन के दौरान उनका महत्व घटता गया और आज भी उनके विषय में खुलकर बात करना एक सामाजिक साहस का कार्य माना जाता है। सामान्यतः किन्नर वे माने जाते हैं जिनकी जैविक संरचना यौन दृष्टि से उन्हें अक्षम बनाती है। उनके जननांग पूरी तरह विकसित नहीं होते। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनका लिंग से भिन्न व्यवहार होता हैकृजैसे पुरुष होते हुए भी खुद को स्त्री समझना और वैसा ही व्यवहार करना।

जैविक आधार पर हिजड़े कई प्रकार के होते हैं : "लिंगोच्छेदन कर बनाये गए हिजड़ों को 'छिबरा' और नकली हिजड़ा बने मर्दों को 'अबुआ' कहते हैं... हिजड़ों की चार शाखाएं होती हैंकृबुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा। बुचरा जन्मजात हिजड़ा होते हैं, नीलिमा स्वयं बने, मनसा स्वेच्छा से शामिल तथा हंसा शारीरिक कमी के कारण बने हिजड़े हैं।" –महेंद्र भीष्म : किन्नर कथा

इस विवरण में भीष्म जी ने न केवल वर्गीकरण किया है, बल्कि किन्नर समुदाय की जैविक और भावनात्मक विविधता को भी उजागर किया है, जो समाज में उनकी बेहतर समझ और स्वीकार्यता के लिए अत्यंत आवश्यक है। उपन्यास विभिन्न प्रकार के किन्नरों की जीवन स्थितियों को गहराई से प्रस्तुत करता है।

जैतपुर के राजघराने में जगतराज और आभा सिंह को जुड़वाँ बेटियाँ होती हैं, जिनमें से एक की योनि

अविकसित रहती है। समाज की सोच से भयभीत आभा सिंह और दाई निरंजना चार वर्षों तक इस सच्चाई को छिपाकर रखती हैं। लेकिन जब जगतराज को पता चलता है, तो वह इसे राजघराने की प्रतिष्ठा पर धब्बा मानकर अपनी ही संतान सोना को मरवाने का निर्णय लेते हैं। वे पंचम सिंह से कहते हैं : "अपने बुंदेला खानदान को नाम डुबा दें, क्षत्री वंश में हिजड़ा, का ऊ हिजड़ा हां पाले–पोसे अरे आज नहीं तो कल, जब सबके सामने जा बात आ जेहे कि हमाई संतान हिजड़ा है, बुंदेला खून हिजड़ा पैदा करत तो का गत हुई है हमाई, समझत काय नईय्या तुम इत्ती सी बात।" —महेंद्र भीष्म : किन्नर कथा

पंचम सिंह सोना को मारने की बजाय तारा नामक किन्नर गुरु को सौंप देता है। उसका नया नाम चंदा रखा जाता है और मातिन उसका पालन–पोषण करती है। युवावस्था में चंदा को मनीष से प्रेम हो जाता है। मनीष का किरदार उस समाज का प्रतिनिधि है, जो वर्षों से किन्नरों को उपेक्षित मानता आया है। चंदा के प्रति मनीष का प्रेम उसकी पहचान से परे एक प्लैटोनिक प्रेम है, जिसमें वह जानता है कि चंदा यौन सुख नहीं दे सकती, फिर भी उसे स्वीकार करता है।

"मनीष उस समाज का प्रतिनिधि है, जो सदियों से उनकी बिरादरी वालों को हेय और त्याज्य दृष्टि से देखता चला आ रहा है और अब मनीष के रूप में वही समाज उन्हें अपनाने जा रहा है।" — महेंद्र भीष्म : किन्नर कथा

तारा चाहती है कि चंदा का ऑपरेशन करवा कर उसे स्त्री बना दिया जाए ताकि वह एक सम्मानजनक जीवन जी सके। एक मोड़ पर चंदा को जैतपुर की रियासत में अपनी जुड़वां बहन रूपा के विवाह समारोह में नृत्य के लिए बुलाया जाता है। वह परिवार को पहचान लेती है, पर फिर से जगतराज की घृणा झेलती है। लेकिन आभा सिंह हिम्मत कर सारी सच्चाई समधन को बता देती हैं, जो सोना को कनाडा ले जाने और इलाज कराने का प्रस्ताव रखती हैं। अंततः सोना और मनीष कनाडा चले जाते हैं।

यह कहानी यद्यपि कुछ हद तक 'फिल्मी' लगती है, लेकिन यह समाज में संभावित सकारात्मक बदलाव का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

दूसरी मुख्य पात्र तारा उर्फ ताराचंद एक समृद्ध परिवार से आती हैं, पर चौदह वर्ष की आयु में भाई द्वारा निष्कासित कर दी जाती हैं। वह अपनों की उपेक्षा से आहत होती है, यहाँ तक कि माँ–बाप की मृत्यु की सूचना तक नहीं दी जाती। वह कहती हैं : "प्रत्येक किन्नर अभिशप्त है, अपने परिवार से बिछुड़ने के दंश से... समाज का पहला घाट यहीं से शुरू होता है।" —महेंद्र भीष्म : किन्नर कथा

मनीष, जो तारा के भाई का बेटा है, चंदा के कारण तारा के करीब आता है और पुत्रवत प्रेम करता है। तारा की मृत्यु के बाद उसे मनीष से मुखाग्नि प्राप्त होती है, जो समाज में एक नई स्वीकृति की ओर संकेत है। उपन्यास धार्मिक मान्यताओं और लोककथाओं को भी सामने लाता है। यह समुदाय माँ बहुचर, कृष्ण और शिव की पूजा करता है। तारा, कलेक्टर आयुष के एक प्रश्न पर उत्तर देती हैं : "हिंदू धर्म व उसके सहयोगी धर्मों में हमें इश्वर की संतान माना जाता है... हमारा आशीर्वाद व मंगलकामना पाने की आकांक्षा रखते हैं।" — महेंद्र भीष्म : किन्नर कथा

उपन्यास रामायण और महाभारत से जुड़ी कहानियों का भी उल्लेख करता है। राम के वनगमन के समय किन्नरों की प्रतीक्षा, और अरवाण से कृष्ण के मोहिनी रूप में विवाह जैसी कथाएँ समुदाय के गौरवशाली अतीत

को उजागर करती हैं। कुवागम में लगने वाला हिजड़ा मेला इस परंपरा को जीवंत रखता है। भीष्म जी ने इस समुदाय की वास्तविक समस्याएँ जैसे– सामाजिक भेदभाव, प्रशासनिक उपेक्षा, शिक्षा की कमी, आर्थिक तंगी, और वैकल्पिक रोजगार के अभाव के कारण वेश्यावृत्ति या भिक्षावृत्ति की ओर धकेले जाने को भी दिखाया है। वे लिखते हैं : "शिक्षा और संचार की कमी, अन्य व्यवसाय में जुड़ने के सीमित अवसर, आर्थिक तंगी व परिवार का भावनात्मक लगाव न होना ही अधिकांश किन्नरों को यौन कर्म की ओर ले जाता है।"– महेंद्र भीष्म : किन्नर कथा

इस प्रकार 'किन्नर कथा' एक संवेदनशील, यथार्थपरक और सशक्त किन्नर विमर्श प्रस्तुत करती है जो पाठकों को सोचने पर मजबूर करती है।

कुछ किन्नर आपराधिक प्रवृत्तियों में इसलिए लिप्त हो जाते हैं क्योंकि समाज उन्हें शिक्षा, रोजगार और सम्मानजनक जीवन जीने का अवसर नहीं देता। उनकी प्रजनन अक्षमता का बौद्धिक क्षमता से कोई संबंध नहीं है, लेकिन सामाजिक उपेक्षा और असमानता के कारण उन्हें जीवन भर ताली बजाने, नाचने–गाने और भीख मांगने के लिए मजबूर किया जाता है। यह स्थिति उनके जीवन, गरिमा और समान अवसर के मौलिक मानवाधिकारों का सीधा उल्लंघन है।

स्थिति और भी गंभीर तब हो जाती है जब बेरोजगारी और लालच के कारण कुछ पुरुष नकली किन्नर बनकर भिक्षावृत्ति करते हैं। ये झूठे किन्नर समाज में पहले से मौजूद भ्रांतियों और डर का अनुचित लाभ उठाकर असली किन्नरों की गरिमा को ठेस पहुँचाते हैं। परिणामस्वरूप असली किन्नरों और समाज के बीच की दूरी और अधिक बढ़ जाती है, जो उनके सामाजिक एकीकरण के अधिकार का हनन है।

ऐसा ही एक पात्र है 'लम्बू', जो नकली हिजड़ा (अबुआ) है। रसूखदार लोगों के संरक्षण में वह तारा के डेरे के सामने अपना डेरा जमाकर नकली हिजड़ों का गिरोह खड़ा करता है और उन्हें भिक्षावृत्ति व वैश्यावृत्ति में धकेल देता है। तारा जब इसका विरोध कर प्रशासन से न्याय की गुहार लगाती है, तो प्रशासन केवल आश्वासन देता है, लेकिन कोई ठोस कार्रवाई नहीं करता। अंततः लम्बू साजिश कर तारा की हत्या करवा देता है। यह हत्या न केवल प्रशासन की लापरवाही को उजागर करती है, बल्कि यह भी दर्शाती है कि राज्य और समाज की उदासीनता किन्नर समुदाय के जीने के अधिकार का हनन कर रही है।

'किन्नर कथा' इस प्रकार केवल किन्नर जीवन की त्रासदी नहीं दिखाती, बल्कि यह स्पष्ट करती है कि उनके प्रति भेदभाव, उपेक्षा और हिंसा मानवाधिकार हनन की श्रेणी में आते हैं। साथ ही यह उपन्यास समाधान की दिशा भी सुझाता है कि यदि किन्नरों को शिक्षा, सम्मानजनक रोजगार और बराबरी के अधिकार दिए जाएँ, तो वे समाज और राष्ट्र के लिए सार्थक योगदान दे सकते हैं।

इस प्रकार यह कृति न केवल तीसरे लिंग के लोगों को आशा देती है, बल्कि समाज को यह संदेश भी देती है कि मानवाधिकार सबके लिए समान हैं चाहे वह किसी भी लिंग, वर्ग या पहचान का व्यक्ति क्यों न हो।

निष्कर्ष :–

महेंद्र भीष्म का किन्नर कथा केवल एक साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि किन्नर समुदाय के मानवाधिकार हनन का सशक्त दस्तावेज है। इसमें यह स्पष्ट रूप से उभरकर आता है कि किन्नरों को जन्म से ही परिवार, समाज और प्रशासन द्वारा भेदभाव, उपेक्षा और तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। जीवन, शिक्षा, सम्मान, रोजगार और समानता जैसे मूलभूत अधिकारों से उन्हें वंचित किया जाना उनके मानवीय अस्तित्व और गरिमा

पर गहरी चोट है। उपन्यास यह भी दर्शाता है कि समस्या का समाधान केवल कानून बनाकर नहीं होगा, बल्कि समाज की मानसिकता और दृष्टिकोण में बदलाव आवश्यक है। जब तक समाज उन्हें बराबरी, सम्मान और अवसर प्रदान नहीं करेगा, तब तक उनके अधिकार अधूरे रहेंगे।

साहित्य की भूमिका यहाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाती है– यह न केवल पीड़ा और संघर्षों को स्वर देता है, बल्कि पाठकों के भीतर सहानुभूति, संवेदनशीलता और न्याय की चेतना भी जगाता है। किन्नर कथा इसी उद्देश्य की पूर्ति करती है। यह उपन्यास समाज को यह सोचने पर मजबूर करता है कि मानवाधिकार किसी विशेष वर्ग की नहीं, बल्कि हर इंसान की धरोहर हैं। इस प्रकार यह कृति किन्नर समुदाय को आवाज देने के साथ–साथ समाज के सामने एक आईना भी रखती है, ताकि वह अपनी संकीर्ण सोच को त्यागकर समानता और मानवीय गरिमा की दिशा में आगे बढ़ सके।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 195-200

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कुसुम खेमानी के उपन्यास ‘लावण्या देवी’ में चित्रित वृद्ध विमर्श

Saimeera Joshi
शोधार्थी, Dakshin bharat Hindi Prachar Sabha, Madras

भूमिका :–

वृद्ध विमर्श का साहित्यिक इतिहास आधुनिक हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण सामाजिक विमर्श है। वृद्ध विमर्श की शुरुभात बीसवीं सदी के आरंभ में मानी जाती है, जब औपनिवेशिक और आधुनिक भारत में समाज की संरचना तेजी से बदल रही थी। वृद्ध विमर्श ने भारतीय संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला है। इस विमर्श ने समाज में बुजुर्गों की स्थिति, उनके सम्मान, अनुभव और पीढीगत संवाद की आवश्यकता को केन्द्रीयता दी है। भारतीय संस्कृति में सदियों से बुजुर्गों को अनुभव के स्त्रोत, संस्कार प्रदाता और मार्गदर्शक के रूप में आदर सम्मान मिलता रहा है। शास्त्रों और धर्मग्रंथों में वरिष्ठजनों को पूज्य परिवार का आधार बताया गया है, माता–पिता की सेवा करना और उनके अनुभवों से सीखना सामाजिक मूल्य का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। महाभारत, रामायण, यजुर्वेद आदि में वृद्धों के प्रति सम्मान का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

हिंदी साहित्य में वृद्ध विमर्श :–

हिंदी साहित्य में वृद्ध पात्रों का चित्रण विशेष रूप से माजिक बदलाव पीढी–अंतराल, अकेलापन, आर्थिक असुरक्षा मानवीय संबंधों की जटिलताओं को उजागर करने के लिए किया गया है। इन पात्रों के माध्यम से साहित्यकार न सिर्फ वृद्धावस्था की समस्याओं और संवेदना को सामने लाते हैं, बल्कि बदलते पारिवघरिक और सामाजिक मूल्यों की भी गहरी पडताल करते है। इसके कुछ उदाहरण है :–

1) प्रेमचंद की कहानी ‘बूढी काकी’ इसमें एक वृद्धा जिसे संपत्ति देने के बाद उपेक्षा और अपमान का सामना करना पड़ता है।
2) माधवराव सप्रे की ‘एक टोकरी भर मिट्टी’ में वृद्ध विधवा की पीड़ा का चित्रण।
3) उषा प्रियंवदा की ‘वापसी’ में बुजुर्गों के मनोवैज्ञानिक द्वंद्व।
4) भीष्म सहानी की ‘चीफ की दावत, में आधुनिकता में बदलता संवेदनहीन पारिवारिक व्यवहार।

समकालीन लेखक जैसे चित्रा मुद्‌गल, सुषम बेदी, ममता कालिया ने आर्थिक, सामाजिक, मानसिक असुरक्षा और वृद्धाश्रमों की स्थितियों को दर्शाया।

वर्तमान में वृद्ध विमर्श महज पीड़ा या उपेक्षा का चित्रण न होकर उनके अनुभवो, मानवता की आवश्यकता और पीढीगत संवाद की आवश्यकता को भी रेखांकित करता है। यह विषय आज के साहित्य में समानांतर विमर्श

के रूप में स्थापित हो चुका है और समाज में बुजुर्गो के प्रति दृष्टिकोण को बदलने का एक सशक्त साहित्यिक औजार बन गया है।

कुसुम खेमाणी के उपन्यास 'लावण्यादेवी' में वृद्ध विमर्श : विस्तृत विश्लेषण :

वृद्ध विमर्श : साहित्य में एक महत्वपूर्ण विमर्श :

वृद्ध विमर्श समकालीन हिंदी साहित्य में एक विस्तारित विषय है, जो वृद्धावस्था के सामाजिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक पक्षों को समेटता है। यह विमर्श वृद्ध व्यक्तियों की सामाजिक उपेक्षा, अकेलापन, पीढ़ीगत अंतर, स्वाभाविक दुर्बलता तथा मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए जागरूकता उत्पन्न करता है। इसे हिंदी कथा साहित्य में कई लेखकों ने उठाया है, जो वृद्धों के अस्तित्व के सवालों को सामने लाते हैं। उदाहरण के तौर पर, प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' जैसी कहानियां वृद्ध विमर्श के प्रखर नमूने हैं। इन कहानियों में वृद्ध व्यक्तियों की लड़ाई उनके अस्तित्व और सम्मान के लिए होती है, जो उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से सामाजिक मुद्दा बन चुका है।

भूमिका :–

साहित्य केवल कहानियों का संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि यह समय, समाज, संस्कृति और विचारधाराओं का दर्पण भी है। कुसुम खेमाणी का उपन्यास 'लावण्यादेवी' इसी श्रेणी का एक महत्त्वपूर्ण रचना–कर्म है, जिसमें पाँच पीढ़ियों के परस्पर संवाद के माध्यम से स्त्री–जीवन, परिवार, परंपरा और परिवर्तन का बहुआयामी चित्रण मिलता है।

इस उपन्यास का एक खास पहलू है वृद्ध विमर्श, यानि वृद्ध पात्रों की स्थिति, अनुभव, स्मृतियाँ, चुनौतियाँ, और उनके माध्यम से समय व समाज के बदलते स्वरूप की पड़ताल। यहाँ 'वृद्ध' केवल आयु में बड़े पात्र नहीं हैं, वे अनुभव, परंपरा और सांस्कृतिक धरोहर के वाहक हैं।

लेखिका का परिचय एवं पृष्ठभूमि :–

कुसुम खेमाणी हिन्दी साहित्य में एक संवेदनशील और प्रखर कथाकार के रूप में जानी जाती हैं। वे ऐसे विषयों को चुनती हैं जो न केवल पारिवारिक और स्त्री–संबंधी प्रश्नों को उभारते हैं, बल्कि समाज की संरचना और समय के प्रवाह में बदलाव को भी गहराई से पकड़ते हैं। "लावण्यादेवी" में उन्होंने बंगाल–मारवाड़ी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का उपयोग करते हुए स्त्री–जीवन और वृद्ध अनुभव का एक जीवंत दस्तावेज रचा है।

उपन्यास का कथानक और पृष्ठभूमि :–

'लावण्यादेवी' एक बहु–पीढ़ी गाथा है, जिसमें एक समृद्ध बंगाली–मारवाड़ी परिवार की कथा बुनी गई है। केंद्र में हैं लावण्यादेवी – एक ऐसी स्त्री जो परंपरा और आधुनिकता के संगम पर खड़ी है। कथा में अतीत और वर्तमान को जोड़ने का पुल बनता है ज्योतिर्मोयी देवी की डायरी से, जिसे लावण्यादेवी पढ़ती है। कहानी में पहले पीढ़ी के बुजुर्ग (दादी, नानी, आदि) परंपरा और पुरानी रीति–नीति के प्रतिनिधि हैं। बीच की पीढ़ी (जैसे लावण्यादेवी) अतीत की स्मृति और बदलते वर्तमान के बीच संतुलन बनाने वाली है। नई पीढ़ी आधुनिक मूल्यों, स्वतंत्रता और पितृसत्ता–विरोध की आवाज बुलंद करती है।

'लावण्यादेवी' और वृद्ध विमर्श की आधारभूत परतें :–

कुसुम खेमाणी के 'लावण्यादेवी' में वृद्ध विमर्श का विस्तार न केवल सामाजिक बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक

स्तर पर भी मिलता है। उपन्यास में वृद्ध पात्र जैसे ज्योतिर्मोयी देवी, दादी, नानी और स्वयं लावण्यादेवी अपने–अपने दौर की स्मृतियां, अनुभव तथा पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियां व्यक्त करते हैं। उनके संवाद और संस्मरण जीवन के विभिन्न जुड़ावों को प्रतिबिंबित करते हैं। यह उपन्यास वृद्धावस्था के सूक्ष्म पक्षों जैसे अकेलापन, सामाजिक विसंगति, जीवन–दर्शन, और परंपरा बनाम आधुनिकता के द्वंद्व की छानबीन करता है।

लावण्यादेवी में वृद्ध विमशर्रू उद्धरण और पात्र संवादों का विश्लेषण :–

ज्योतिर्मोयी देवी की डायरी से उद्धरण :

'अब जब मैं बूढ़ी हो चली हूँ, तो इस जीवन की हर खुशी और दर्द स्मृति में सिमट कर रह गए हैं। पर यादें ही हमारे अस्तित्व का अनमोल निधि हैं, बिना यादों के हम अधूरे हैं।'

यह उद्धरण वृद्धावस्था की स्मृति के महत्व और उसके साथ जुड़ी भावनाओं को दर्शाता है। डायरी के माध्यम से ज्योतिर्मोयी देवी अपनी भावनात्मक यात्रा को साझा करती हैं, जो वृद्धावस्था में अनुभव की गई एकाकीपन और जीवन के अर्थ की खोज को प्रकट करता है। यह स्मृति और आत्म–दर्शन वृद्ध विमर्श का मूल हिस्सा है।

लावण्यादेवी और अपनी माता के संवाद का अंश :–

लावण्यादेवी अपनी माँ से कहती है, 'माँ, वे दिन तो लौटकर नहीं आते, पर आपकी वो यादें, आपकी बातें, हमारे लिए रास्ता दिखाती हैं, हमें जोड़ती हैं उस समय से जब सब कुछ सरल था।'

यह संवाद पीढ़ियों के बीच की समझ और वृद्ध पात्रों की स्मृतियों के महत्व को प्रमाणित करता है। यहाँ लावण्यादेवी वृद्धा की भूमिका को नयी पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार करती है।

दादी के अनुभव और परंपरा की भूमिका :–

दादी का एक कथन– 'हमारी उम्र हो गई है पर हम अपनी कहानियों के जरिए ही तो जिंदा हैं। परंपराओं में ही हमारी पहचान बसती है, और यादों में हमारी आत्मा।'

यह कथन वृद्ध विमर्श के सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष को उद्घाटित करता है। वृद्धों की परंपरा और संस्कृति के वाहक भूमिका को उजागर करता है, जो परिवार और समाज के लिए अनमोल है।

अकेलापन और उपेक्षा :–

लावण्यादेवी की दादी अपने अकेलेपन के बारे में कहती हैं, 'मुझे लगता है जैसे अभाव में जी रही हूँ, बहुएं, बच्चे सब अपनी दुनिया में डूबे हैं, और मैं इस घर की खामोशी में खो जाती हूँ।'

यह संवाद वृद्धावस्था की सामाजिक अस्वीकृति और भावनात्मक तन्हाई को संक्षिप्त रूप में दर्शाता है, जो वृद्ध विमर्श का केंद्र विषय है।

आध्यात्मिक अनुभूति :–

ज्योतिर्मोयी देवी डायरी में लिखती हैं, 'जैसे–जैसे उम्र बढ़ती है, ईश्वर की ओर खिंचाव बढ़ता जाता है। जीवन के अर्थ को समझने की लालसा, मन की शांति की खोज यही है वृद्धावस्था की सीख।'

यह उदाहरण आध्यात्मिक विमर्श को प्रकट करता है, जो वृद्ध पात्रों के जीवन में गहरे स्तूति–भाव और जीवन–दर्शन का परिचायक है। ये उद्धरण वृद्ध पात्रों की आंतरिक मनोस्थिति, पीढ़ियों के संवाद, सामाजिक स्थिति और आध्यात्मिकता के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करते हैं। उनकी स्मृतियाँ, संघर्ष, अकेलापन और

जीवन–दर्शन 'लावण्यादेवी' के वृद्ध विमर्श को समृद्ध बनाते हैं। ये पात्र संवाद उपन्यास की सामाजिक और भावात्मक गहराई को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं।

स्मृति और परंपरा में वृद्ध पात्रों की भूमिका :–

लावण्यादेवी के माध्यम से लेखिका ने वृद्ध पात्रों की स्मृति और परंपरा के संवाहक के रूप में विशेष भूमिका प्रदर्शित की है। ज्योतिर्मयी देवी की डायरी उपन्यास में स्मृति का स्रोत बनी है, जिससे न केवल व्यक्तिगत इतिहास बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत भी युवाओं तक पहुंचती है। वृद्ध पात्र अतीत को निरंतर वर्तमान से जोड़ते हैं, जिससे परिवार की जड़ें मजबूत होती हैं और पीढ़ीगत यादें बनी रहती हैं। इसलिए, वृद्ध पात्र उपन्यास में केवल 'जिसे हम बूढ़ा कहते हैं' मात्र नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक इतिहास के वाहक हैं, जिसकी पहचान से परिवार का अस्तित्व जुड़ा होता है।

वृद्धावस्था की मानसिक और सामाजिक चुनौतियां :–

'लावण्यादेवी' में वृद्ध पात्र अनुभव करते हैं कि जैसे–जैसे उम्र बढ़ती है, वे सामाजिक उपेक्षा, अकेलेपन और सम्वेदनहीनता का सामना करते हैं। बदलते संयुक्त परिवार से एकाकी जीवन की ओर बढ़ते संबंध, मानसिक तनाव और खुद को समाज से अनुपयोगी महसूस करना वृद्धावस्था की सच्चाई है। उपन्यास में इसका चित्रण इस प्रकार है कि वृद्ध पात्र अपनी जरूरतों, अनुभवों और उपस्थिति के लिए सदस्यों का सहारा ढूंढ़ते हैं, परन्तु कई बार अस्वीकृति और उपेक्षा के कारण आहत होते हैं। यह युग बदलने की प्रक्रिया में वृद्धों की मानसिक पीड़ा को स्पष्ट करता है, जो आधुनिकीकरण की छाया में अक्सर दब जाती है।

आध्यात्मिकता एवं जीवन-दर्शन में वृद्ध विमर्श :–

कुसुम खेमाणी ने वृद्ध पात्रों के जीवन–दर्शन तथा आध्यात्मिकता पर भी विशेष ध्यान दिया है। उपन्यास में वृद्ध पात्र अपनी उम्र के फलस्वरूप जीवन की क्षणभंगुरता, मरण–सन्निधि और ईश्वर की भव्यता पर चिंतन करते हैं। यह आध्यात्मिक विमर्श उन्हें न केवल मानसिक शक्ति देता है, बल्कि जीवन की अंतिम यात्रा के लिए भी तैयारी कराता है। इस दृष्टिकोण से वृद्ध पात्र उपन्यास के गूढ़ एवं गम्भीर विचारों के वाहक बनते हैं, जो परिवर्तनशील समाज में स्थायित्व की अनुभूति कराते हैं।

पितृसत्ता, महिलाओं की भूमिका और वृद्धावस्था :–

'लावण्यादेवी' में पितृसत्ता और महिलाओं की भूमिका को देखते हुए वृद्ध विमर्श में यह देखने को मिलता है कि वृद्ध महिलाएं पितृसत्ता के दबाव और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच एक संघर्ष करती हैं। लावण्यादेवी स्वयं को पुराने मूल्य–निर्धारणों और निजी स्वतंत्रता के बीच पाती हैं, जबकि उनकी मां ज्योतिर्मोयी देवी और वृद्ध महिलाएं परंपराओं का पालन करते हुए भी बदलाव के संकेत देती हैं। वृद्ध महिलाओं के संघर्ष से उपन्यास में पितृसत्ता के यथार्थ और उसमें वृद्धावस्था की जटिलताओं का पूरा दृश्य उभरता है।

उपन्यास में वृद्ध विमर्श के मुख्य आयाम :–

स्मृति और परंपरा का संवहन :

वृद्ध पात्र केवल भूतकाल के वाहक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक शिक्षा के जीवित स्रोत हैं। ज्योतिर्मोयी देवी की डायरी एक 'स्मृति–ग्रंथ' है जो लावण्यादेवी को न केवल निजी रिश्तों को बल्कि समाज की पुरानी संरचना को समझने में मदद करती है।

अकेलापन और मानसिक द्वंद्व :

वृद्धावस्था में बच्चों की व्यस्तता, बढ़ते अलगाव, और बदलते पारिवारिक ढांचे के बीच बुजुर्ग पात्र अक्सर भावनात्मक एकाकीपन झेलते हैं। उपन्यास में यह मनोदशा संवेदनशील ढंग से उभरती है — जैसे कि पुराने कमरों की खामोशी, त्यौहारों का छोटा होता दायरा, और रिश्तों में संवाद की कमी।

आध्यात्मिकता और जीवन-दर्शन :

वृद्ध पात्रों के विचारों में जीवन की क्षणभंगुरता, ईश्वर में विश्वास, और विदा लेने की तैयारी का भाव आता है। यह केवल धार्मिकता नहीं है, बल्कि जीवन के संघर्षों को स्वीकारने का मानसिक बल है।

पितृसत्ता और परिवर्तन :-

वृद्ध महिलाएं पितृसत्ता की पीड़ित भी रही हैं और उसकी आलोचक भी। लावण्यादेवी का जीवन—पथ यह दिखाता है कि वृद्ध अनुभव केवल परंपरा को ढोना नहीं, बल्कि समय की जरूरत पर बदलाव को स्वीकारना भी है।

अस्तित्व और पहचान का प्रश्न :

वृद्धावस्था में व्यक्ति की पहचान अक्सर 'किसकी मांध्दादी' के रूप में सीमित हो जाती है। उपन्यास में यह प्रश्न उपस्थित है कि क्या उनके सपने, उनकी इच्छाएं, उनकी पहचान भी मान्य हैं?

भाषा एवं शैली में वृद्ध विमर्श का सजीव चित्रण :

डायरी और संस्मरण शैली वृद्ध दृष्टिकोण को विश्वसनीय और आत्मीय बनाने के लिए प्रयुक्त की गई है। अतीत का पुनर्निर्माण व्यक्तिगत अनुभवों से। फ्लैशबैक तकनीक में स्मृतियाँ अतीत के घटनाचक्र को वर्तमान में जीवंत कर देती हैं। संवाद और आत्मसंवाद का प्रयोग पीढ़ियों के टकराव और संगति को प्रकट करने के लिए किया गया है।

उपन्यास की भाषा और शैली वृद्ध विमर्श को जीवित बनाए रखने में सहायक हैं। डायरी, पत्राचार, स्मृतियाँ, संवाद और अंतर्संस्मरण जैसी तकनीकों के माध्यम से वृद्ध पात्रों के अनुभव, भावनाएँ और सामाजिक संदर्भ गहरे प्रभाव के साथ प्रकट होते हैं।

यह साहित्यिक उपकरण वृद्धावस्था के अनुभव को व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर प्रामाणिकता प्रदान करते हैं। इस प्रकार भाषा और शैली उपन्यास के वृद्ध विमर्श को बोधगम्य और संजीव बनाते हैं।

समकालीन सामाजिक यथार्थ में वृद्ध विमर्श की प्रासंगिकता :-

आज के परिवेश में संयुक्त परिवार व्यवस्था टूटने लगी है, जिससे वृद्धों की सामाजिक स्थिति और भी कमजोर हुई है। 'लावण्यादेवी' इस यथार्थ को अपनी कथा में प्रभावी ढंग से चित्रित करती है। उपन्यास के माध्यम से लेखिका एक संदेश देती हैं कि वृद्धों का सम्मान, उनसे संवाद और उनके अनुभवों को स्वीकारना समाज के स्थायित्व और नैतिकता से जुड़ा मुद्दा है। यह विमर्श आज के समाज के लिए जागरूकता का परिचायक है।

निष्कर्ष :-

कुसुम खेमाणी के उपन्यास 'लावण्यादेवी' में वृद्ध विमर्श विस्तृत, गहराईपूर्ण और समकालीन सामाजिक प्रासंगिकता लिए हुए है। वृद्ध पात्र स्मृति, परंपरा और अनुभव के संवाहक हैं। उनके जीवन की मानसिक,

सामाजिक और आध्यात्मिक जटिलताओं को उपन्यास गहराई से उजागर करता है। पितृसत्ता के युग में उनकी भूमिका, अधिकार और संघर्ष उपन्यास की तंतु में बुने गए हैं। भाषा और शैली में वृद्ध के अनुभवों की मौलिक प्रस्तुति उपन्यास को प्रभावी बनाती है। समकालीन समाज में वृद्ध विमर्श इस तरह सामाजिक चेतना जगाने का माध्यम है। इस प्रकार 'लावण्यादेवी' केवल पारिवारिक कथा नहीं, वरन् एक सामाजिक दस्तावेज भी है जो वृद्धावस्था के सार्थक विमर्श और उसकी मानवीय जटिलताओं को सशक्त रूप देती है। कुसुम खेमाणी ने संवेदनशीलता और विस्तार से इस विमर्श को रूपायित किया है। इस उपन्यास से यह शिक्षा मिलती है कि किसी भी समाज की सच्ची प्रगति केवल युवाओं की ऊर्जा से नहीं, बल्कि वृद्धों के अनुभव और स्मृति–धान्य से संभव है।

संदर्भ :–

1. लावण्या देवी, कुसुम खेमानी, पृ. स. 1 से 175
2. https://www.apnimaati.com
3. वृद्धावस्था केंद्रित प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास, अंकिता शर्मा, पृ. स. 118
4. https://www.deshbandhu.com
5. https://mlsu.ac.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 201-205

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित विमर्श : समकालीन साहित्य में स्वर और संवेदना

मरगदवल्ली. बी

पीएच.डी., शोधार्थी, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई–600017

21वीं सदी का साहित्य निरंतर बदलती सामाजिक संरचना तकनीकी विकास और वैश्वीकरण की जटिलताओं को अपने भीतर समेटे हुए हैं। 21वीं सदी का हिन्दी साहित्य नए विमर्शों का साहित्य है – इसमें न्याय, अस्मिता, समानता और गरिमा जैसे मूल्य केंद्रीय हो उठे हैं। यह साहित्य अब केवल सौन्दर्य–बोध ही नहीं बल्कि अनेक विमर्शों का वाहक बन चुका है। जैसे स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, पर्यावरण विमर्श, प्रवासी विमर्श, दलित विमर्श जैसे विविध आयामों ने साहित्य को एक नई दृष्टि प्रधान की है। इसमे हम एक नई संवेदना और नया विस्तार भी देख सकते हैं।

21वीं सदी का साहित्य अपनी परंपरा से नियमित रूप से संवाद करते हुए नए आयामों को जन्म दे रहा है। यह केवल तकनीकी की सदी ही नहीं है बल्कि अनेक क्रांति और सामाजिक चेतनाओं को चुनौती देता है। इस शताब्दी को अनेक संघर्षों की सदी भी हम कह सकते हैं। साहित्य अब केवल कल्पनाशीलता का साधन न रहकर सामाजिक न्याय का एक साधन वन गया है। यह साहित्य केवल भाव–बोध और सौन्दर्य–बोध के सीमा में बंधा हुआ न रहकर समाज में अन्याय और शोषण को प्रश्न उठाता है। साहित्य ने इस शताब्दी में लोकतांत्रिक संवेदनशीलता और सामाजिक न्याय की चेतना को स्वर दिया है।

आज का साहित्य 'नए विमर्शों' का युग है इसमें –

- स्त्री विमर्श में स्त्री की अस्मिता, समानता आदि को दर्शाया है।
- आदिवासी विमर्श में सांस्कृतिक मूल्यों और प्राकृतिक जीवनशैली के संरक्षण का प्रश्न उठाया है।
- पर्यावरण विमर्श में मनुष्य और प्रकृति के एक साथ अस्तित्व में रहने के बारे में बल दिया है।
- किन्नर विमर्श में तीसरे लिंग की पहचान और गरिमा को दर्शाया है।
- दलित विमर्श में भारतीय समाज के हृदय में छपे जातिवाद, अस्पृश्यता और शोषण के बारे में दर्शाया है।

दलित विमर्श :–

प्रस्तावना :

दलित विमर्श का उद्भव २०वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ, परंतु 21वीं सदी में इसका स्वर और अधिक संवेदनशील हुआ है। यह विमर्श केवल दलित जीवन की करुणा या पीड़ा का चित्रण नहीं करता, बल्कि

उनके विद्रोह, आत्मसम्मान, अधिकारों और पहचान की लड़ाई को अभित्यवत करता है। दलित विमर्श भारतीय समाज की जड़ तक फैली जातिगत असमानताओं और शोषण की मानसिकता को चुनौती देता है। दलित विमर्श केवल साहित्यिक आंदोलन ही नहीं बल्कि सामाजिक न्याय का एक अभियान है।

हिन्दी साहित्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय शरणकुमार लिंबाले, रूपनारायण सोनकर जैसे लेखकों ने दलित चेतना पर अनेक लेख लिखे हैं।

21वीं सदी में यह विमर्श और व्यापक हो गया है। यह विमर्श केवल जातीय भेदभाव ही नहीं बल्कि अधिकार और स्वतंत्रता का स्वरूप बन गया है।

दलित विमर्श साहित्य में केवल मनोरंजन ही नहीं बल्कि समाज में परिवर्तन लाना उनका मुख्य उद्ध्देश्य हैं।

समकालीन साहित्य में दलित स्वर और संवेदनाएँ :-

- 'ओमप्रकाश वाल्मीकि' की आत्मकथा 'जूठन', 'रूपनारायण सोनकर' का 'सूअरदान', ये सभी दलित समाज की पीड़ा के स्वर को उजागर करती है।
- 21वीं सदी में दलित लेखन ने यह सिद्ध किया कि दलित साहित्य केवल एक वर्ग का प्रतिनिधि नहीं है बल्कि दलितों की आत्मकथा है।
- इन रचनाओं ने दलित जीवन को सजीव रूप दिया है। इन रचनाओं में लेखकों ने जातीय अपमान और स्वाभीमान की लड़ाई को दर्शाया है।
- दलित साहित्य के माध्यम से लेखक उन दलितों की दया भरी याचना नहीं करना चाहते, वे उनके लिए बराबरी और न्याय माँगते हैं।
- समकालीन दलित कविताएँ, अस्मिता की तलाश करती है और उनकी संवेदनाओं का आयाम करती है।
- दलित संवेदना का माध्यम मनुष्यता की खोज और समानता की मांग है।
- दलित साहित्य केवल वर्ण व्यवस्था ही नहीं बल्कि उनकी सामाजिक शोषण, आर्थिक पिछड़ापन राजनीतिक उपेक्षा और सांस्कृतिक शोषण के खिलाफ भी लड़ती है।
- दलित लेख उनकी गरीबी, अशिक्षा, अस्पृश्यता, बेरोजगारी समस्या, जातीय अपमान आदि को भी दर्शाता है।
- कृष्णा सोबती, कौशल्या बैसंत्री जैसी लेखिकाओं ने अपने लेख में स्त्री दलित के माध्यम से जाति और स्त्री की पीड़ा को दर्शाया है। इन्होंने अपने साहित्य में बहुत गहराई से अपने विचारों को प्रभावित किया है क्योंकि स्त्री लेखन कार्य में उन्हें जाति और लिंग के स्तर पर बलपूर्ण व्यक्त करना है।

दलित विमर्श की विशेषताएँ :-

- दलित साहित्य आत्मकथा की शैली में बहुत ही गहरा प्रभाव लाता है।
- दलित साहित्य इस सदी में केवल करुणा या दया भाव से न रहकर एक विद्रोह का साहित्य बन गया है।
- दलित साहित्य अब स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि से जुड़कर एक मानवीय विमर्श बन गया है।
- दलित साहित्य का वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी इसे अन्य समुदाय के साहित्य के साथ जोड़ा जा रहा है।
- दलित साहित्य में सीधे यथार्थ भाषा का प्रयोग होता है। जो बहुत यथार्थपूर्वक दर्शाई जाती है। लोक बोली या व्यावहारिक भाषा की बोली नहीं होती क्योंकि यह दालित जीवन की सच्चाई को उजागर करती है।
- अनेक आत्मकथाएँ जैसे जूठन, सूअरदान आदि में दलित समाज के सामूहिक संघर्ष को दर्शाया गया है।

- उनके लेख में दलित पात्रों को संघर्ष और विरोध करते हुए दिखाया है।
- दलित विमर्श केवल जाति पर ही नहीं बल्कि वर्ग, लिंग, राजनीति पर भी उल्लेखन किया गया है।
- दलित साहित्य ने 'साहित्यिक भाषा' की कृत्रिमता को तोड़ा है।

आत्मकथा में दलित विमर्श :-

- 'ओमप्रकाश बालमीकि' की 'जूठन' में लेखक ने बालपन से लेकर यौवन अवस्था तक के जातिगत भेदभाव, सामाजिक तिरस्कार जैसे भावों को अपनाया है।
- 'मोहनदास नैमिशराय' के 'अपने–अपने पिंजरे' में दलित जीवन की स्थिति और उनके स्वतंत्रता की लालसा को दर्शाया है।
- 'शरणकुमार लिंबाले' की 'अक्करमाशी' (मराठी के हिन्दी में अनूदित) यह आत्मकथा जाति और वंश के अपमान की गहराई की जाँच करती है।
- 'कौशल्या बैसंत्री' के 'दोहरा अभिशाप' में दलित स्त्री के शोषण को सामने रखा गया है।

उपन्यासों में दलित विमर्श :-

- 'रूपनारायण सोनकर' के 'सूअरदान' उपन्यास में ग्रामीण भारत की अस्पृश्यता की कुरीतियों का उजागर किया गया है।
- 'सुशीला टाकभौरे' के 'नीला आकाश' उपन्यास में गरीबी, अशिक्षा और जातिगत तिरस्कार के बीच दलित जीवन के कष्ट और अस्मिता की खोज दिखाई गई है।

दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र :-

'ओम प्रकाश वाल्मीकि' की पुस्तक दलित साहित्य, सौन्दर्यबोध की एक नई अनुमान प्रस्तुत करती है। बहुत सालों तक हिन्दी साहित्य में जो सौन्दर्यशास्त्र विकसित किया था, वह मुख्यतः ब्राह्मणवादी विचारों, मूल्यों उनकी जीवन शैली पर ही आधारित था। लेकिन इस दलित साहित्य में लेखक ने अलग तरह से दर्शाया है। उनके अनुसार पुराना सौन्दर्यशास्त्र रस, अलंकार, सुख–दुख आदि से भरा हुआ एक काल्पनिक साहित्य भी था। लेकिन दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र में उन्होंने यथार्थवाद और समानता के बारे में प्रस्तुत किया है। यह केवल कलात्मकता को ही नहीं दर्शाता बल्कि इसमें शोषित वर्ग के मानवीयता और सामाजिक न्याय को साहित्य के रूप में प्रदर्शित किया गया है। वाल्मीकी जी कहते हैं कि वर्णवाद और धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण ने कई सालों तक दलितों को मानवीयता के खिलाफ साबित किया है। साहित्य में सत्य न रहकर वह सिर्फ रसात्मक बनकर ही गया। इसलिए दलित जीवन में जो कठगेर सच्चाइयाँ है उसका खुला प्रदर्शन करना चाहते थे।

दलित सौन्दर्यशास्त्र की विशेषताएँ :-

इनका साहित्य अनुभव पर ही लिखा गया है यह कोई काल्पनिक प्रदर्शन नहीं है। इसमे सौंदर्यता नहीं है बल्कि विद्रोह और संघर्ष से भरपूर्ण है। पीड़ा का वर्णन सक्रिय रूप से किया गया है। साहित्यिक भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है बल्कि लोक भाषा जो यथार्थ भाषा है उसका प्रयोग हुआ है। दलित सौन्दर्यशास्त्र का लक्ष्य मानव मुक्ति है। इसमें मुख्यतः आर्थिक समानता, सामाजिक एकता, राजनीतिक न्याय आदि के बारे में ही दर्शाया गया है। इसमें दलित जीवन की पीड़ा, अपमान, विद्रोह आदि के बारे में व्यक्त किया गया है।

श्दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श को सैद्ध्यांतिक आधार प्रदान करने

वाला एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। परंपरागत हिन्दी साहित्य जो रस, अलंकार, सौन्दर्यता प्रधान था, उसे तोड़कर एक नई साहित्य धारणा को अपनाया है जिसमें शोषित वर्गो की पीड़ाओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। लेखक के अनुसार साहित्य का असली सौन्दर्य किसी काल्पनिक लेख की प्रस्तुति में नहीं बल्कि दलित वर्गों की पीड़ा का चित्रण है।

सूअरदान उपन्यास के सन्दर्भ में दलित साहित्य :-

'रूपनारायण सोनकर' का उपन्यास सूअरदान भारतीय ग्रामीण समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव और वर्ण आधारित सामाजिक तिरस्कार की वास्तविकता को गहराई से उजागर करता है। लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार जातिगत ऊँच–नीच की मानसिकता व्यक्ति की स्वतंत्रता, गरिमा और सामाजिक स्वीकृति पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है। उपन्यास के नायक रामचन्द्र त्रिवेदी आधुनिक शिक्षा प्राप्त, आर्थिक रूप से समृद्ध और प्रगतिशील सोच रखने वाले व्यक्ति हैं, लेकिन उनका सूअर पालन व्यवसाय ब्राह्मण समाज की संकीर्ण मान्यताओं को चुनौती देता है।

यहाँ सामाजिक तिरस्कार की चरम देखने को मिलती है, जहाँ व्यक्ति की सामाजिक पहचान केवल उसके व्यवसाय के आधार पर बदल दी जाती है। उपन्यास यह भी दिखाता है कि दलितों और पिछड़ों के जीवन से जुड़े पेशों को हीन मानकर ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने किस प्रकार छुआछूत और सामाजिक अलगाव को स्थायी बना दिया। है। इसी प्रकार, लेखक ने इस बात को भी उजागर किया है कि धर्म और जाति का उपयोग कैसे सामाजिक नियंत्रण के औजार के रूप में किया जाता था। यह उपन्यास न केवल सामाजिक तिरस्कार और बहिष्कार की पीड़ा को सामने लाता है, बल्कि यह भी दिखाता है कि आधुनिकता, शिक्षा और आर्थिक प्रगति के बावजूद भारतीय ग्रामीण समाज में जातिगत सोच कितनी गहरी जड़ें जमाए हुए है।

रामचन्द्र त्रिवेदी आधुनिक शिक्षा प्राप्त, प्रगतिशील विचार वाले व्यक्ति हैं, जो सामाजिक और आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने की कोशिश करते हैं। लेकिन उनका सूअर पालन व्यवसाय ब्राह्मणवादी मानसिकता को चुनौती देता है, जिसके चलते उन्हें कठोर सामाजिक तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। जातिगत संकीर्णता केवल सामाजिक संबंधों तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह व्यक्ति की गरिमा और सम्मान को गहराई से प्रभावित करती है। इसी प्रकार, लेखक दलितों और पिछड़े वर्गों के प्रति सवर्णों के दृष्टिकोण को उजागर करते हैं। जब रामचन्द्र ने अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए सूअर पालन का कार्य शुरू किया, तो ब्राह्मण समाज की संकीर्ण मानसिकता ने इसे 'धर्म और जाति की मर्यादा' के खिलाफ मान लिया।

गांव के लोग रामचन्द्र से घृणा करने लगे। उनके परिवार को सामाजिक जीवन से अलग कर दिया गया। मंदिर में भी उनके प्रवेश पर रोक लगा दी गई थी। यह सामाजिक तिरस्कार का चरम रूप है, व्यक्ति की धार्मिक आस्था, सामाजिक पहचान और सम्मान तीनों पर गहरा आघात होता है। उपन्यास में यह भी स्पष्ट किया गया है कि ब्राह्मणवादी सोच केवल पेशागत भेदभाव तक सीमित नहीं थी, बल्कि धर्म को भी सामाजिक नियंत्रण के औजार के रूप में प्रयोग किया जाता था।

लेखक पात्रों के अनुभवों के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि जातिवाद केवल सामाजिक संरचना तक सीमित नहीं है, बल्कि व्यक्ति की मानसिकता, आर्थिक अवसरों और मानवीय गरिमा पर गहरा प्रभाव डालता है। पुजारी दयाशंकर का चरित्र इस विमर्श का केंद्रीय बिंदु है। वे जन्म से ब्राह्मण हैं, लेकिन जब उनकी बीमारी के कारण उन्हें अपनी ही बिरादरी से कोई मदद नहीं मिली, तब उन्हें समाज के "नीच" माने जाने वाले

दलित–पिछड़े साथियों का सहयोग मिलता है। यह घटना उनके भीतर गहरे आत्ममंथन को जन्म देती है। इस उपन्यास में वर्णवाद की सबसे तीव्र अभिव्यक्ति तब होती है, जब दयाशंकर पुजारी अपनी बेटियों की शादी दलित–पिछड़े युवकों से करने का निर्णय लेते हैं। गाँव के ब्राह्मण इसका तीव्र विरोध करते हैं और उन्हें "नीच" कहकर अपमानित करते हैं।

लेखक शिक्षा के अभाव से उत्पन्न सामाजिक असमानता को भी सामने लाते हैं। शिक्षा की कमी न केवल आर्थिक अवसरों को सीमित करती है, बल्कि दलितों की चेतना और आत्मसम्मान को भी दबा देती है। उपन्यास में पुजारी दयाशंकर का चरित्र धार्मिक आडंबर और अशिक्षा के नकारात्मक प्रभाव को उजागर करता है। उनकी सोच यह दिखाती है कि कैसे सदियों पुरानी परम्पराएँ सामाजिक प्रगति में बाधा बनती हैं। आर्थिक स्वतंत्रता और शिक्षा से वंचित रहने वाले पात्र शोषण और तिरस्कार के शिकार बनते हैं। इसमें स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि दरिद्रता और अशिक्षा दलितों को न केवल आर्थिक रूप से कमजोर बनाते हैं, बल्कि उन्हें उनके मूलभूत मानवाधिकारों से भी वंचित कर देते हैं।

लेखक ने दलित बस्तियों की दयनीय आर्थिक स्थिति को भी सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है। सूअर पालन जैसे पेशों से आजीविका कमाने वाले दलितों को न केवल सवर्ण समाज की उपेक्षा सहनी पड़ती है, बल्कि उन्हें अपमानजनक संबोधनों का भी सामना करना पड़ता है।

उपन्यास में वर्णित घटनाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि कैसे सदियों से चली आ रही वर्ण–व्यवस्था ने दलित समाज को एक निश्चित पेशे से बाँध दिया है, जिससे न केवल उनकी सामाजिक पहचान सीमित हो जाती है बल्कि उन्हें मानवीय गरिमा से भी वंचित रखा जाता है।

जातिगत पेशों के कारण उत्पन्न यह ऊँच–नीच केवल आर्थिक स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानसिक दासता में बदल जाती है। दलित पात्र स्वयं को इस अपमान से मुक्त करने की कोशिश करते हैं। संपूर्ण उपन्यास में जातिगत व्यवसाय को लेकर जो ऊँच–नीच का भाव है, वह मानवाधिकारों के खुले हनन की ओर संकेत करता है।

निष्कर्ष :–

"सुअरदान" में जातिवाद और वर्णवाद का चित्रण केवल सामाजिक तिरस्कार की निंदा नहीं करता, बल्कि यह भी दिखाता है कि कैसे धर्म और परंपरा की आड़ में दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों का शोषण किया गया। लेखक यह संदेश देते हैं कि समाज में समानता और मानवता के मूल्य ही सच्चे विकास के आधार हैं। उपन्यास के ये प्रसंग यह प्रमाणित करते हैं कि दलित विमर्श केवल वर्णव्यवस्था के विरोध का ही नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और अस्तित्व का भी संघर्ष है।

सन्दर्भ सूची :–

1. जूठन (ओमप्रकाश वाल्मीकि)
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि की पुस्तक "दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र"।
3. "दलित साहित्य की अवधारणा"।
4. "रूपनारायण सोनकर" का उपन्यास "सूअरदान"।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 206-210

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी के खंडकाव्य 'भूमिजा' और 'भस्मांकुर' में स्त्री विमर्श

सौ. शिल्पा शिंदे
पीएच.डी. छात्रा, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

शोध सारांश :-

भारतीय संस्कृति के विकासक्रम को यदि देखा जाए तो हम जान जाएंगे कि वैदिक काल मे नारी को समाज में उच्च स्थान था। किंतु मध्यकाल में नारी कि स्थिति दयनीय बन गइे। समाज में बहुविवाह, सतीप्रथा आदि कुरीतियों को प्रचलन बढ गया। आधुनिक काल तक आते आते उसकी स्थिति में काफी बदलाव आया। परंतु 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कई समाज सुधारकों ने नारी जागरण के आंदोलन शुरु किए। जिनमें प्रमुख थे ज्योतिबा फुले, राजाराम मोहन रॉय आदि। प्रगतिवादी साहित्य का नागार्जुन के अपने खंडकाव्यों में नारी विषयक प्रगतिवादी विचार दृष्टिगोचर होते हैं। उन्होंने खंडकाव्यों के माध्यम से नारी समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

कुंजी शब्द :- संस्कृति, व्यक्ति स्वातंर्त्य, पौराणिक, धार्मिक संस्कार, चारित्रिक, पतिव्रता, रुढिबद्ध, एकपक्षीय न्याय व्यवस्था, वैधव्य, आत्मदाह।

नागार्जुन ने अपने पौराणिक खंडकाव्यों 'भुमिजा' और 'भस्मांकुर' में चित्रित नारी जीवन की अनेक समस्याओं को अभिव्यक्त किया है। इसमें कवि ने पौराणिक नारी पात्रों की विविध समस्याओं को उजागर किया है। पात्र चाहे पौराणिक हो या आधुनिक, प्राचीन युग से लेकर अब तक नारी के समस्याएँ वे ही है, सिर्फ परिवेश बदला है।

1) **अकेलेपन की समस्या** – नारी का जीवन उस लता के समान होता है, जो पुरुषरुपी वृक्ष के आधार से पलती है। परंतु वही पुरुष ही अगर उसका त्याग करे तो उसका जीवन अकेलेपन से भर जाता है। 'भूमिजा' की नायिका सीता ऐसे ही अकेलापन का शिकार हुई है। लोकभय के कारण श्रीराम अपनी पत्नी सीता का त्याग कर देते हैं। गर्भावस्था में वनवासिनी सीता महर्षि वाल्मिकी के आश्रम में आश्रय पाती है और वही रहकर दो जुडवां बेटों को जन्म देती है। पति के अनुपस्थिति में किस प्रकार आश्रम में रहकर अपने दोनों बच्चों को पालती है तथा उनपर अच्छे संस्कार करती है। ये सब बातें उसे अकेलेपन में याद आती है।

"कैसे-कैसे ए जुडवा नवजात, अनुप्राणित रह गए प्रसव के बाद,
करूणा विगलित तापसियों के मध्य, हुआ भरण-पोषण इनका किस भाँति,

सारी बातें आती मुझको याद।"[1]

कवि नागार्जुन ने सीता के माध्यम से अकेलपन की शिकार नारी का चित्रण किया है।

2) **व्यक्तिस्वातंत्र/विचारस्वातंर्त्य की समस्या** – आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक देखा जाए तो नारी के स्थिति में विभिन्न बदलाव आए। आदिकाल में स्त्री मात्र भोग्या के रुप में रह गयी थी। उसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। इस युग की स्त्री आश्रिता थी। मध्ययुगीन नारी को तो तुलसीदास जैसे कवियों ने 'ढोल गँवार' की श्रेणी में रखा। आधुनिक काल तक आते–आते महात्मा फुले, महात्मा गांधी, राजाराम मोहन रॉय आदि समाज सुधारकों ने अपने प्रयत्नों द्वारा परंपरागत श्रृंखला से नारी को मुक्त करने का प्रयास किया। बालविवाह, सतीप्रथा आदि कू–प्रथाओं को बंद करना पड़ा।

नागार्जुन ने अपने खंडकाव्यों में पौराणिक नारी पात्रों के व्यक्तिस्वातंर्त्य की समस्या को उजागर करने का प्रयत्न किया है। 'भस्मांकुर' की नायिका रति एक पतिव्रता नारी होते हुए हमेशा पति की परछाया बनकर रहती है। पति से बेहद प्रेम करने वाली रति को फिर भी वैचारिक स्वतंत्रता नहीं है। उसे अपने मन में उठे विचार व्यक्त करने की अनुमति नहीं है। रति के पति कामदेव को शिवजी की तपस्या भंग करने का कार्य देवगणों के द्वारा सौपा जाता है। देवगण पार्वती का विवाह बूढे शिव के साथ करना चाहते हैं। यह बात रति अपने पति से कहने का प्रयत्न करती है तो उसका पति उसे अपना मुँह बंद करने के लिए कहते हैं।

"हुआ क्या तुझको आज?, बकती क्या–क्या बातें उटपटांग,
पगली तू होती है इनके कौन?, तू न करेगी अपनी बकबक बंद,
पागल औरत! भाग अरी, ओ भाग।"[2]

कामदेव के उपरोक्त कथन से अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतीय संस्कृति में स्त्री को हमेशा अपना मुँह बंद करके ही जीना पडा है। कवी नागार्जुन को नारी के प्रति हमेशा हमदर्दी थी। उन्होंने 'भस्माकुर' की नायिका रति के माध्यम से व्यक्ति स्वातंर्त्य/वैचारिक स्वातंर्त्य की समस्या सामने रखने का प्रयत्न किया है। नागार्जुन रचित 'भूमिजा' की नायिका सीता भी ऐसा ही विवश नारीपात्र है, जिसे उसके पति श्रीराम ने अपनी बात कहने का कभी मौका ही नहीं दिया।

3) **अनमेल विवाह की समस्या** – भारतीय संस्कृति में विवाह महत्वपूर्ण धार्मिक संस्कार माना जाता है। विवाह में महत्त्वपूर्ण पक्ष है जीवन साथी के चुनाव का, जिस पर नारी का प्रायः पूरा जीवन ही आधारित होता है। विवाह मात्र दो शरीरों का मिलन न होकर दो मनों का मिलन होता है। और यह तब होता है जब स्त्री और पुरुष दोनों में मेल हो, मित्र भाव हो, आपसी समझ हो। कविवर्य नागार्जुन ने 'भूमिजा' और 'भस्मांकुर' नामक खंडकाव्यों के माध्यम सें समाज में स्थित अनमेल विवाह समस्या पर प्रघात करने का प्रयत्न किया है। नागार्जुन रचित 'भस्मांकुर' खंडकाव्य में पार्वती का बूढे शिवजी के साथ विवाह रचना अनमेल विवाह का ही उदाहरण है। दक्ष प्रजापति की कन्या शिवजी की पहली पत्नी थी। यज्ञ में पिता द्वारा पति का अपमान सुनकर शिवानी हवन कुंड में कूद पड़ी। फिर चिरकाल तक शंकर पत्नी विहीन रहे। फिर एक ऐसा कालखंड आ गया कि महाबली राक्षस तारकासूर सूर–समाज को परेशान करने लगा। इसपर एक ही उपाय था, पार्वती का विवाह यदि शिवजी से हो तो उनसे उत्पन्न पुत्र ही तारकासूर का वध करेगा। सूर समाज की भलाई के लिए नवयौवना पार्वती का विवाह बूढे शिवजी से करना चाहते हैं, जिनकी पहली पत्नी मर चुकी थी।

कवि ने इस खंडकाव्य में तरुणी गिरिजा के स्वप्न की कल्पना करके मनोवैज्ञानिक सत्य बताया है कि युवती सदैव युवा वर के ही स्वप्न देखती है।

“हमने देखे स्वप्न तुम्हारे साथ!, गौरी तरुणी, तरुण-तरुण शिवनाथ,
इन आँखों से पाऊंगी क्या देख, शंकर का वह तरुण-मनोहर रूप” ।[3]

इन काव्य पंक्तियों से हमें पता चलता है कि पार्वती तरुण शिवजी के ही स्वप्न देखती है। लेकिन उसका विवाह शादीशुदा विधुर शिव के साथ होता है।

शिवपार्वती के इस विवाह योजना में कामदेव के साथ उसकी पत्नी रति भी है। लेकिन रति को यह विवाह पसंद न होकर भी पति की सहायता करनी पडती है। परंतु आखिर न रहकर वह कह ही देती है।

“आखिर वह सुकुमारि, क्यों बूढे को करने लगी पसंद?[4]
क्या अनमेल समागम है अनिवार्य?, सूरसमाज की बुद्धि हो गयी है भ्रष्ट।”[5]

यहा नागार्जुन ने पार्वती और शिव के विवाह के माध्यम से समाज में स्थित अनमेल विवाह समस्याओं को उजागर करने की कोशिश की है। नागार्जुन का दुसरा खंडकाव्य ‘भूमिजा’ की अहल्या का भी मुनि गौतम के साथ उम्रगत अनमेल विवाह है।

4) **पति द्वारा अविश्वास की समस्या** – जनकवि नागार्जुन के ‘भूमिजा’ खंडकाव्य की नायिका सीता भी पति द्वारा अविश्वास की समस्या से ग्रस्त नारी पात्र है। एक धोबी के कहने पर श्रीराम उसपर अविश्वास दिखा कर उसे वनगमन की शिक्षा देते हैं। वह भी उस अवस्था में, जब वह गर्भिणी थी। वनवासिनी सीता आश्रम में रहते हुए अपने उपर लगाए लांछन से रघुकुल की एकपक्षीय मर्यादा पर आक्रोश व्यक्त करती है।

“प्रमाणित क्या करना है मुझे?, पावनता अपनी? अपना शील?,
प्रमाणित क्या करना है मुझे?, गुह्य शुचिता? चारित्रिक ओज” ।[6]

दूसरा नारी पात्र ‘भूमिजा’ की अहल्या पति गौतम की अविश्वास से अभिशापित नारी है। अपना रुप बदलकर मुनि गौतम के भेस में देवराज इंद्र अहल्या के पास आकर प्रणय निवेदन करता है। क्रोधिष्ट मुनि गौतम पत्नी पर अविश्वास दिखाते हुऐ शाप देते हैं।

“परनर दूषित, तेरी देह हो जाए निस्पंद कुलीश पाषान!,
निर्लज्जे धिक्कार! छोड मुझे रमति सुर पति के संग,
धारण करके वह मेरा ही रूप, आता है नित कुलटे तेरे पास!,
रखकर पति की छाती पर जो लात, लेती है परसंगति का आस्वाद,
उससे तो वेश्या ही है उत्कृष्ट।”[6]

5) **शोषण की समस्या** – नारी का स्वतंत्र अस्तित्व न होने से परिवार और समाज से उसका शोषण निरंतर होता रहा है। परिवार में पति तथा अन्य सदस्यों द्वारा और विधवा, परितक्ता, असहाय्य नारियों पर समाज द्वारा शोषण किया जाता है। कई बार पति ही उसका शोषक होता है।

‘भूमिजा’ की सीता एक शोषित नारी है। सीता को घर से निष्कासित करना उसपर बडा अन्याय ही है। श्रीराम ने उसकी भावनाओं की कभी कोई कदर नहीं की। ‘भूमिजा’ की सीता अपनी विवशता प्रकट करती हुई कहती है,

"हमारा क्या! हम तो है घास!, भुमि से निकले, समायेंगे वही,
और भला जाएँगे हम क्या कहीं, वहीं है माता, बस वही है पिता,
वही है आसन, वही है चिता।।"[7]

6) **न्याय की समस्या** – नागार्जुन रचित खंडकाव्य में 'भूमिजा' में न्याय की समस्या एक महत्वपूर्ण सामाजिक समस्या है। नागार्जुन मुलतः अन्याय के प्रति विद्रोह करनेवाले कवी थे। न्याय के पक्षधर कवी नागार्जुन ने 'भूमिजा' के माध्यम से नारी से संबंधित न्याय व्यवस्था की समस्या का विवेचन किया है।

'भूमिजा' की नायिका सीता एक शोषित नारी है। जिसके प्रति अन्याय हुआ है। पतिव्रता होने पर भी उसे अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है। अग्निपरीक्षा देने पर भी धोबी द्वारा सतीत्व पर उंगली उठाने पर उसे गृह निष्काषन का दंड दिया जाता है। राजा का धर्म होता है, प्रजा के साथ न्याय करना। सीता केवल राजा की पत्नी ही नहीं थी, वह एक प्रजा के रुप में भी थी। पत्नी के नाते ना सही, एक प्रजा के रुप में तो उसे न्याय पाने का अधिकार था। 'भूमिजा' की सीता रघुकुल के इस एकपक्षीय न्याय व्यवस्था पर आक्रोश व्यक्त करती है।

"हाय रे राजा! हाय री निति! हाय री रुढि बद्ध जनभीति!,
हाय रे पुरुष! हाय रे दंभ! हाय रे एकपक्षीय वह न्याय,
इकहरी मर्यादा का बोध करे साडंबर नारी-मेध, बने पुरुषोत्तम जगविख्यात।"[8]

नागार्जुन ने सीता के माध्यम से नारी के प्रति दोषपूर्ण न्याय व्यवस्था की समस्या को विवेचित किया है।

7) **बलात्कार की समस्या** – नारी जीवन को यातनामय बनाने वाली समस्या है बलात्कार की समस्या। बलात्कारित स्त्री को समाज में अत्यंत घृणास्पद दृष्टि से देखा जाता है। 'भूमिजा' की अहल्या को बलात्कारित नारी दिखाकर नागार्जुन ने इस समस्या का चित्रण किया है। इंद्र द्वारा अहल्या को छल से पिडीत किया जाता है। "कुसमय में अहल्या ने पहले तो उसकी प्रार्थना को अस्विकार कर दिया परंतु पतिव्रता होने के कारण कपट वेशधारी इंद्र के साथ उसे अनिच्छा से संभोग करना पडा।" किसी भी स्त्री के विरुद्ध किया हुआ शारिरीक संबंध बलात्कार ही होता है।

8) **आत्महत्या की समस्या** – जब किसी व्यक्ति को अपने जीवन में आए समस्याओं से मुकाबला तथा उसका हल जीवित रहकर निकालना संभव नहीं होता तो वह समस्या से छुटकारा पाने के लिए मृत्यु को अपना लेता है। नागार्जुन के खंडकाव्य में कुछ नारी पात्र ऐसे हैं, जो अपने समस्याओं से परेशान होकर मजबुरन आत्महत्या कर लेते हैं। तो कभी उदास मनस्थिति अथवा सहनशीलता का अंत इसका कारण होता है। कई बार आत्मिय व्यक्ति का वियोग सहन न कर पाने से भी नारी अपने जीवन का अंत कर देना चाहती है।

"भस्मांकुर' की नायिका अपने पति कामदेव के भस्म होने के बाद अपने प्राणों का अंत करने का निश्चय कर लेती है।

'है असह्य अब क्षणभर भी वैधव्य, क्यो न करु मैं आत्मदाह तत्काल"।[9]

'भूमिजा' की सीता अपनी सहनशीलता का अंत होने पर आत्महत्या के मार्ग का अवलंब करना चाहती है। वह पृथ्वी माँ से अपने में समा लेने की प्रार्थना कर लेती है।

"पहले उमडी थी फेनिल जलराशि, मटमैली आभामय चारों ओर,
हुए विदिर्ण धरा के कोमल वक्ष, कई क्षणों तक गुंज गया आकाश,

आसन सहित हुई वह अंतर्लीन, भुमि गर्भ में समा गयी स्वयमेव।''[10]

9) अंधविश्वास/पाखंड की समस्या –

कवि नागार्जुन ने शिवजी तथा मुनि गौतम के माध्यम से साधुओं का पाखंड सामने रखने का प्रयास किया है। साथ ही महिलाओं में भाग्यवाद या शकुनों पर अंधविश्वास 'भूमिजा' में सीता की सहेली त्रिजटा के माध्यम से प्रदर्शित किया है। 'भस्मांकुर' की रति पति के भस्म होने के बाद भाग्य को कोसती हुई दिखाई गयी है। तो 'भूमिजा' की त्रिजटा भोर समय में सीता से संबंधित पडे दुरूस्वप्न देखकर तुरंत सीता से मिलने आ जाती है।

निष्कर्ष :–

नागार्जुन प्रगतिवादी साहित्यकार होने के कारण उन्होंने खंडकाव्य में चित्रित स्त्री–जीवन की समस्याओं को उजागर करने का भली–भाँति प्रयास किया है। उन्होंने लिखे 'भूमिजा' और 'भस्मांकुर' इन खंडकाव्यों के द्वारा नारी संबंधित व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं को समाज के सामने रखा है। नागार्जुन प्रगतिवादी विचारधारा के होने के कारण शोषितों के प्रति सहानुभूति उनके खंडकाव्य में दृष्टिगोचर होती है।

संदर्भ सूची :–

1. 'भूमिजा'–नागार्जुन, राधाकृष्ण नई दिल्ली, सं. 1981, पृष्ठ 70.
2. 'भस्मांकुर'–नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र.स.1971, पृष्ठ 55.
3. 'भस्मांकुर'–नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र.स.1971, पृष्ठ 44, 42
4. 'भस्मांकुर'–नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्र.स.1971, पृष्ठ 54.
5. 'भूमिजा'–नागार्जुन, राधाकृष्ण नई दिल्ली, सं. 1981, पृष्ठ 61.
6. 'भूमिजा'–नागार्जुन, राधाकृष्ण नई दिल्ली, सं. 1981, पृष्ठ 52, 54.
7. 'भूमिजा'–नागार्जुन, राधाकृष्ण नई दिल्ली, सं. 1981, पृष्ठ 61.
8. 'भूमिजा'–नागार्जुन, राधाकृष्ण नई दिल्ली, सं. 1981, पृष्ठ 61
9. विनय पत्रिका–गोस्वामी तुलसीदास, साहित्य सेवासदन, वाराणसी, संशोधित सं. 1969, पृष्ठ 405.
10. 'भूमिजा'–नागार्जुन, राधाकृष्ण नई दिल्ली, सं. 1981, पृष्ठ 76.

मोबा. 9356846889

Email : shilpashinde5067@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 211-214
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हसीनाबाद उपन्यास में नारी विमर्श

डॉ. अर्चना शर्मा
रिसर्च एसोसिएट, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषाएं, वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

नारी विमर्श एक विचारधारा है, जो महिलाओं के अधिकारों, समानता एवं सशक्तिकरण पर केन्द्रित है। यह महिलाओं के खिलाफ होने वाले सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक भेदभाव को चुनौती देता है और महिलाओं के लिए समान अवसर एवं न्याय की वकालात करता है। व्यापक रूप में हम समझे तो नारी विमर्श, महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर विचार–विमर्श और उनके समाधान खोजने की एक प्रक्रिया है।

हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श की शुरूआत छायावाद काल से मानी जाती है। महादेवी वर्मा की कविताओं में वेदना का विभिन्न रूप देखने को मिलता है। उनकी श्रृंखला की कड़ियाँ स्त्री सशक्तिकरण का सुन्दर उदारण है। ऐसा साहित्य है जिसमें स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं और समाधान का चित्रण हो, स्त्री विमर्श कहलाता है।

समाज के दो पहलू स्त्री–पुरूष एक दूसरे के पूरक है। किसी एक के अभाव में दसू रे का अस्तित्व नहीं है। उसके बाद भी स्त्री–पुरूष समाज में समानता का अभाव है। समाज की पक्षपातपूर्ण दृष्टि ही नारी आंदोलनों का कारक है, जो आज ज्वलतं मुद्दा नारी विमर्श के रूप में दृष्टिगोचर है।

आदिकाल से ही नारियों की दशा दयनीय एवं सोचनीय थी। जहां एक ओर वैदिक काल में देश ''यत्र नार्यस्तु पूज्यतें, तत्र रमन्ते देवता'' कहा जाता था। आज वहीं अनेक रूपों में नारी का अनेक युगों से शोषण होता आ रहा है। स्त्री की दशा में सुधार के लिए अनेक सामाजिक सुधार आंदोलन हुये। सामाजिक सुधार आंदोलन का नतेृत्व राजाराम मोहन राय, ईश्वर चंद विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द देश के विभिन्न भागों में अन्यान्य पुरूषों के हाथ में रहा। इन महान समाज सुधारकों ने महिलाओं की सामाजिक असर्मथताओं तथा उनके जीवन की कठिन दशाओं पर ध्यान केन्द्रित करने में निर्णायक भूमिका अदा की।

महान समाज सुधारकों के विचारों व कार्यो के परिणामस्वरूप ही स्त्री जीवन में परिवर्तन के रूप में सकारात्मक परिणाम सामने आए। इन्हीं परिणामों के फलस्वरूप 21वीं सदी में स्त्री की स्थिति में परिर्वतन आया। फलस्वरूप स्त्रियों के स्वावलम्बन की दिशा में तीव्र प्रयास सामने आये। भूमण्डलीकरण के इस युग में जीवन परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। नारी शिक्षित हुई। उसने अपने कामकाज को अर्थ उपलब्धियों से जोड़ उसका सर्व क्षेत्रीय मूल्य निर्धारित किया है। नवीन परिस्थितियों से नारी का व्यक्तित्व प्रमाणित हुआ है, जिसमें उसने प्राचीन मूल्यों एवं मान्यताओं का विरोध किया है। नारी के रूपों में उसके तनाव, द्वंद्व, कुंठा विद्रोह, स्वछन्दता, स्व की पहचान का कारण सामाजिक न होकर वैयक्तिक है।[1]

समकालीन रचनाकारों ने नारी जीवन के विविध पहलुओं और उनकी समस्याओं को बहुत संवेदनशील और प्रमाणीकता के साथ चित्रित किया है। गीता श्री ने उपन्यास 'हसीनाबाद' में स्त्री जीवन की समस्याएं और स्त्री के सपनों के प्रति विचार को एक नये ढंग से प्रस्तुत किये है। गीता श्री का यह उपन्यास एक गांव की स्त्री के सतह से ऊपर उठने का स्वप्न है। एक स्त्री के द्वारा देखे गये स्वप्न को आदर्श और यथार्थ के सन्तुलन के साथ मंजिल तक पहुंचाने का विचार 'हसीनाबाद' को एक अलग ही रूप में प्रस्तुत करता है। अनके संघर्षो से जुझता स्त्री का जीवन कैसे सपनों को पूरा करने के लिए साहस का परिचय देता है; इसका उदारण उपन्यास में सुन्दरी, गोलमी के चरित्रों से चरितार्थ होता है। 'हसीनाबाद' एक गुमनाम बस्ती जहां ठाकुरों की रक्षिताओं से बस्ती आबाद थी, किन्तु उन रक्षिताओं का और उनकी संतानों का भविष्य विवशता से भरे जीवन से आगे कुछ नहीं था। जाने कितनी ही स्त्रियों का जीवन इतिहास के हर एक युग में हर एक सामाजिक व्यवस्थाओं में शोषित होता बीत गया, चाहे सामंतवाद, राजतंत्र, लोकतंत्र। नारी के घुटते हुए मन को स्वतंत्र करते हुऐ गीता श्री उपन्यास में स्त्री के साहस व दृढ़ता के गुणों को पात्रों में प्रस्तुत करती है।

ठाकुर सजावल सिंह की रक्षिता सुंदरी अपनी बेटी के स्वर्णिम भविष्य के लिए अपने ऐशो आराम की कुर्बानी देती हुई भजन मंडली के साथ आए सगुन महतो के साथ जाने का निर्णय करती है। ''उसकी आत्मा ने दहे के अंधेरे में ऐलान कर दिया था। अपने हाथों में लिखेगी आगे की कहानी'' वह निर्णय की रात थी।[2]

सुन्दरी ने साहस दृढ़ता से परिपूर्ण गोलमी भी अपने लिए अपने जीवन का अलग ही मार्ग चुनती है। गोलमी की नैसर्गिकता ही उसका जीवन बनता है। मनुष्य की स्वभाविकता ही उसका सबसे बड़ा सुख है; एक नारी जो कि युगों से युगों तक अपनी स्वभाविकता में अपना जीवन नहीं जी पाती है। गोलमी के रूप में नारी का एक अलग ही रूप दृष्टिगोचर है। गोलमी का तकिया कलाम '' गोलमी सपने नहीं देखती, सपने बुनती है।''[3]

अपने इन्हीं सपनों के साथ गोलमी जीवन में आगे बढ़ती है। गोलमी का उद्देश्य केवल मां से छुपकर स्कूल के कार्यक्रमों में नृत्य करना नहीं है अपितु वह लोकगीतों को अपनी आन–बान के साथ स्थापित करना चाहती है। समाज उसे नाचने वाली ही क्यों ना कहे, वह अपने उद्देश्य के प्रति समर्पित है। एक स्त्री की नैसर्गिकता व दृढ़ता समाज के प्रबुद्व वर्ग को नतमस्तक होने को मजबूत करता है। ''अपने लक्ष्य से प्रेम और अपने कार्य के प्रति जुनून से नेताओं की फौज भी सोशल इंजीनियरिंग के जमाने में गोलमी के सामने नतमस्तक हो गये।''[4]

महादेवी वर्मा संर्कीणता से ऊपर विस्तृत स्वाधीनता को समाज के हर एक अंग जिसमें स्त्री भी शामिल है, के लिए अनिवार्य मानती है। अपने गुरूतम उत्तरदायित्व के अनुरूप मानसिक तथा शारीरिक विकास के लिए विस्तृत स्वाधीनता चाहिए। संर्कीणता में जीवन का सर्वतोन्मुखी विकास सम्भव ही नहीं है।''[5]

एक स्त्री के विचार समाज के उत्थान और पतन दोनों के कारण बनते है। सुंदरी द्वारा दिखाए गये साहस के द्वारा वह अपनी बेटी को एक नया जीवन दे पाती है किन्तु अपने अतीत को लेकर हमेशा भयभीत रहती है। उपन्यास में सुंदरी के भय का जिस दिन गोलमी के सामने खुलासा होता है तो गोलमी के अपनी मां के लिए व्यक्त विचार ''तुम मेरे लिए मां हो, औरत हो.........दुख बस इस बात का है तुम अपराध बोध से जीवन क्यों जीती रही हो।''[6]

गोलमी के भावों की दृढ़ता स्त्री का एक नैसर्गिक, साहसी रूप सामने लाता है। युगों से पुरूष समाज

द्वारा स्त्री पर आरोप लगाये जाते रहे। उपन्यास में अपनी मां के ऊपर लगाए गये आरोपों का खंडन करते हुए गोलमी ठाकुर सजावल सिंह को उत्तर देती हुई कहती है ''आपको मेरी मां से माफी मांगनी चाहिए। स्त्री को अपने मन का साथी चुनने का हक है।'' गोलमी के भविष्य के प्रगतिशील विचार दिखाई देते है। ''हालात नहीं बदलेंगे सोच नहीं बदलेंगे तो हर एक स्त्री एक दिन बेवफा नजर आयेगी।''[7]

गोलमी के हृदय के उद्गार नारी सशक्तिकरण के प्रमाण है। अपने द्वंद्व से बाहर निकलकर अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानता हुआ मानव वास्तविक अर्थ में सार्मथ्यवान होता है। स्व की पहचान ही जीवन का अर्थ है और उस स्व से जीवन की संतुष्टि प्राप्त करते हुए समाज का हित ही जीवन की सार्थकता है। राजनीति में जीवन का अर्थ, संतुष्टि को ना पाकर गोलमी प्रधानमंत्री के समक्ष पद से इस्तीफा देती है और साहस के साथ अपने विचारों को रखती हुई राजनीति के खोखले जीवन पर व्यंग्य करती है,

''राजनीति में दया, ममता नहीं है। भावुकता कहां होगी? प्रधानमंत्री के लोककला के प्रति उपेक्षणीय भावों को जान अपने जीवन प्रेम लोककला का पक्ष रखती है। ''लोक मर नहीं सकता, भविष्य में यहीं कला आपकी पहचान बचायेगी, याद रखिएगा कि किसी नचनियां ने ऐसा कहा था।[8]

''सोन चिरइयां और आम्रपाली बैण्ड'' निर्माण के द्वारा सुन्दरी देवी गोलमी के जीवन के उद्देश्य को पूरा करती है और नारी समाज के लिए जीवन का नया उदे्श्य रखती है।'' यह बैण्ड हर घर से औरतों को बाहर निकालेगा, साहस देगा, घर–समाज से कुछ अलग करने की प्रेरणा देगा, पैसा कमाने का साधन देगा।''[9]

महादेवी जी पंक्तियॉ ''अवसर मिलने पर गृह के होने की दुर्बल बन्दिनी स्वछन्द वातावरण में वातावरण में बल प्राप्त पुरूष से शक्ति में कम नहीं है। अपने कर्तव्य की गुरूता भली–भांति हृदयगम कर यदि हम अपना लक्ष्य स्थिर कर सके तो हमारी लौह–शृंखलाएं हमारी गरिमा से गलकर मोम बन सकती है। इसमे सन्देह नहीं।''[10]

शृंखला की कड़िया की पंक्तियां गोलमी व सुन्दरी के चरित्र को स्पष्ट करती है। उपन्यास में चर्चित पात्र वैशाली की आम्रपाली जिसको गीता श्री ने निर्भय पात्र के रूप में वर्णित किया है, को गोलमी अपने जीवन का प्रेरणादायी मानती है। आम्रपाली के मगध नरेश के प्रलोभन भरे प्रस्ताव को निर्भयता के साथ ठुकरा दिया था। आम्रपाली की नैसर्गिकता, अपनी प्रजा के प्रति प्रेम, लक्ष्य की स्पष्टता ही उसको निर्भय बनाते है, गोलमी भी आम्रपाली की निर्भयता को अपनाते हुए अपने स्व की नैसर्गिकता को पहचानते हुए अपना जीवन मार्ग स्वंय बनाती है। 'सौन चिरइयां आम्रपाली बैण्ड' के निर्माण द्वारा गोलमी और सुंदरी अपने अस्तित्व को वापस जन्म देती है।

कुल मिलाकर 'हसीनाबाद' में स्त्री के संघर्षो के साथ उसके सपनों की उड़ान, अदम्य इच्छाशक्ति, कला के प्रति समर्पण का मान है। गोलमी का वाक्य ''गोलमी सपने देखती नही, बुनती है।'' नारी के प्रति लेखिका का नारी सशक्तिकरण दृष्टिकोण का परिचायक है।

सन्दर्भ सूची :–

1. डॉ. शहेनाज जाफर बासमहे : कृष्णा सोबती का कथा साहित्य एवं नारी समस्याएं, अभय प्रकाशन, संस्करण 2018, दिल्ली।
2. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।

3. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।
4. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।
5. महादेवी वर्मा : श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2008, प्रयागराज।
6. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।
7. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।
8. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।
9. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।
10. महादेवी वर्मा : श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2008, प्रयागराज।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 215-217
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Gender Discrimination in The Dark Holds No Terrors by Shashi Deshpande

Priya

Ph.D. Research Scholar. Deparment of English, Om Sterling University, Hisar, Haryana.

Abstract :

Shashi Deshpande stands at center in the literary space in India. She is a prominent English writer who has attributed diverse works in form of novels. That Long Silence, Dark Holds No Terrors, The Binding Vine, Roots & Shadows, many short stories are written by her. In most of the works Gender Discrimination has been the central theme through which other themes are linked. This paper tries to present the gender discrimination or exploitation of a single gender by the other one presented in the work "The Dark Holds No Terrors", written by Shashi Deshpande.

Introduction :

Gender Discrimination is a word which means unequal treatment on the basis of gender. This includes harassment or discrimination on the basis on sex, gender expression or identity. Gender discrimination includes restricted access to jobs, education, healthcare, sexual harassment etc. "Gender" is socially constructed and includes the characteristics of men, women, girls or boys. Everyone is entitled to have equal rights and freedom without any type of distinction but many times the freedom is curtailed on the basis of race, sex, language or gender and comes under discrimination. Shashi Deshpande in her works presented this type of exploitation, suppression or discrimination, very artistically. She highlights the problems faced by the female gender in Indian society. She is not given enough opportunities to lead a free and happy life.

Gender Discrimination in the novel "The Dark Holds No Terrors" :

The Dark Holds No Terrors is an outstanding novel written in English language & translated into many languages like German, Russian etc. It was published in 1980. It deals with multiple issues related to women. She deals how educated & professionally qualified women are discriminated and they let themselves be discriminated even after so much knowledge. Sarita, the protagonist is discriminated since childhood. She is considered to be an unwanted child by her mother. Sarita suffers

firstly in the hands of mother, a symbol of Indian orthodoxy and later in the hands of her dominating husband.

The indifferent and discriminated behaviour is evident when importance is given to her brother over her. Her brother was named Dhruva which she recalls - “They had named him Dhruva. I can remember, even now vaguely, faintly, a state of joyous excitement that had been his naming day, the smell of flowers, the black grinding stone that I held in my hand.”[1]

Her birthday was just a normal day while Dhruva’s birthday was a grand celebration - “Always a puja on Dhruva’s birthday. A festive lunch in the afternoon & an arti in the evening… my birthdays were almost the same… but there was no puja.”[2]

Mother was quite hostile & discriminatory in her attitude towards her. She never let her be free and enjoy her life. She says to her - “Don’t go out in the sun. You’ll get even darker… We have to care if you don’t. We have to get you married while her brother is allowed to roam here & there. She says - “He’s different. He’s a boy.”[3]

When her brother dies accidentally then also her mother accuses her. She continuously blames her and even goes forward to say - “You did it, you killed him. Why didn’t you die? Why are you alive, when he’s dead?”[4]

The disillusionment in the mother-daughter relationship widens after her brother’s death. There was a perpetual war which keeps on going b/w the two. She moves forward to state that - “I just didn’t exist for her. I died long before I left home.”[5]

There is segregation of women during their menstrual cycle. The girls who are too young to understand their bodies and are immediately excluded as they reach their puberty & start menstruating. This natural call becomes a means of exploitation and discrimination. Females are not allowed to enter puja room, touch the utensils and had to live alone for 3-4 days. This exclusion give rise to hate for their own femininity. She says - “I can remember closing my eyes and praying… oh God, let it not happen to me. But this once and no more. Let there be a miracle & let me be the one female to whom it doesn’t happen.”[6]

Females are considered to be untouchables during these days and are termed as weak because of this. This natural or biological process only becomes a medium of discrimination.

Women have no freedom even after marriage, they are bowed to next level after in a marriage. The name they had heard and have been identified by it for so many years is changed after marriage. They are given new names which just makes them disillusioned.

In a marriage a husband is kept at high pedestal and everything is endured by females quietly. They are not allowed to put forth their point of views, rights or demands, they had to just submit

quietly. Sarita's husband could not take that she is more successful professionally than him, he rapes her to vent out his frustration of inferiority complex. He constantly insults, harasses as well as thrashes her sexually. In real life nothing is equal - "a+b they told us in mathematics is equal to b+a. But here a+b was not, definitely not equal to b+a. It becomes a monstrously unbalanced equation, lopsided, unequal, impossible."[7]

Sarita always says that why a woman should always be inferior to man? This question runs throughout the novel. She has presented Indian society in context of patriarchal & conventional rules in which family life as well life of females are controlled males.

Conclusion :

Shashi Deshpande brings out different aspects which place woman at lower level and marks their spaces. These are disastrous outcomes faced by women if they try to go beyond these rules & regulations. Females are the prisoners who are discriminated just because of their gender. Deshpande very successfully brings out the discriminated position of women through Sarita; though she gets good education and becomes independent still just because of her gender she has to submit and face discrimination.

References :

1. Deshpande, Shashi (1980), The Dark Holds No Terrors, New Delhi: Vikas, p.152.
2. Ibid., p.153.
3. Ibid., p.40.
4. Ibid., p.173.
5. Ibid., p.27.
6. Ibid., p.55.
7. Ibid., p.37.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 218-221
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरण संरक्षण सें संबंधीत मुल समस्या

डॉ. रमेश काशीराम शेंडे
मातोश्री अंजनाबाई मुंदाफळे समाजकार्य महा– नरखेड जि. नागपूर म.रा।

प्रस्तावना :–

जीवन पर्यावरण पर आश्रीत है। पर्यावरण के निर्माता भूमी, वृक्ष, वनस्पती, पर्वत, जलाशय, नदी, समुद्र, सुर्य, चंद्र, नक्षत्र, प्राकृतिक एवं। अप्राकृतिक जड़ व अचेतन सभी वस्तुऍ, जीव–जंतु, वायु एवं। आकाश ही है जो पृथ्वी, अंतरिक्ष एवं भुलोक आदि परिधियों से संबधित हैं अर्थात जितना भी दृष्ट एवं अदृश्ट विश्व हैं वही पर्यावरण का क्षेत्र हैं। इस शब्द मे सारा भूमंडल समा जाता हैं। पर्यावरण के ये सभी घटक मनुष्य के जीवन को प्रभावित करते हैं। प्रकृती के कार्य–कलापों से इन सभी घटकों में संतुलन बना रहता हैं। इस प्रकार पर्यावरण विज्ञान सृष्टि जीवन विज्ञान से घनिष्ट रूप से संबधित हैं। पर्यावरण में जीव–जगत द्वारा भी परिवर्तन होते रहते हैं। जो परिवर्तन जीव–जगत के लिए अनुकूल होते हैं वे ग्राहय होते हैं और जिन परिवर्तनों से जीव–जगत को प्रतिकुलता प्रतीत होती हैं। वे अग्राहय हैं। अग्प्रहय परिवर्तनों से पर्यावरण की जीवनदायी शक्ति में असंतुलन होता हैं तथा इसी को प्रदुषित पर्यावरण की संज्ञा दी जाती हैं।

विषय विस्तार में जाने से पूर्व पर्यावरण की वर्तमान स्थिती के प्रमुख अंश निम्नांकित हैं।

1. विश्व के करीब 70 करोड़ व्यक्ति कार्बन डाइआक्साइड और नाइट्रोजन गैसों से प्रदूषित वायु में सॉस ले रहे हैं.। आठ महानगरों में सल्फर डाइआक्साइड की सर्वाधिक मात्राऍ पाई गई, जिसमें पॉच महानगर हैं–शेनयांग, तेहरान, सिओल, रियोडिजेनिरो औंर वाइजिंग।
2. विश्व की 10 प्रतिशत नदियॉ प्रदूषित हैं, जिनमें गंगा का स्थान संबसे ऊपर हैं।
3. नए मरूस्थलों का एक करोड तीस लाख एकड़ प्रतिवर्ष की दर से विस्तार हो रहा हैं तथा विश्व की आधे से अधिक सिंचित भूमी विनाश के खतरे में हैं।
4. उष्णकटिबंधीय वनो का दो करोड 70 लाख एकड प्रतिवर्ष की दर से ह्यास हो रहा हैं तथा मिट्टी की ऊपरी परत दो करोड 60 लाख टन प्रति वर्ष की दर से क्षय हो रही हैं।
5. उष्णकटिबंधीय वर्षा वन, जोकि विश्व के अधिकतर पौंधे और जानवरों की जातियों के जन्म–स्थल हैं, 20 हेक्टेयर/मिनट की दर से लुप्त होते जा रहे हैं। इनकी हजारों जातियॉ तो सूचीकरण से पूर्व ही नष्ट हो जाती हैं।
6. ऊपरी वायुमंडल का ओजोन स्तर, जो सूर्य की प्रबल रश्मियों से मनुष्य की रक्षा करता है, दिन पर दिन पतला होता जा रहा है। इससे तापमान बढ रहा है, जिससे विश्व में जीवन समुदाय को खतरा उत्पन्न

हो गया है। संभावना है कि वर्ष 2000 तक विश्व का तापमान 4.5 अंश से बढ जाएगा। फलस्वरूप, हिमानियॉ, पिंघलेगी, सागर का जल स्तर ऊॅचा होगा और बहुत से भाग पानी में समा जाएॅगे। इससे विश्व की एक–तिहाई आगादी के अस्थित्व को खतरा पैदा होगा तथा कृषि को बहुत हानि होगी।

भारत में पर्यावरण संबंधी समस्याओं को दो व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता हैं।

अ. विकास की वास्तविक प्रकिया से उत्पन्न होने वाले नकारात्मक प्रभाव आकर।

ब. गरिबी तथा अल्प विकास की दशाओं से उत्पन्न प्रभाव। पहली श्रेणी का संबंध तीव्र आर्थिक प्रगती और विकास के लिए किए गये प्रयासो के प्रभाव से हैं। कमजोर तरिके से बनाई गई विकास संबंधी योजनाएॅ प्रायः पर्यावरणीय दृष्टि सें विनाशकारी होती हैं। दूसरी श्रेणी का संबंध गरीबी के परिणामस्वरूप, स्वास्थ, भूमि, मिटटी, पानी, वन, वन्यजीव और आकाश जैसे हमारे प्राकृतिक संसाधनों की अखंडता पर पडनेवाले प्रभाव से है।

पर्यावरण मानव को प्रकृति से विरासत में मिला था किंतू विज्ञान–युग के अपने नए ढंग से यह प्राकृतिक पर्यावरण अप्राकृतिक हो रहा है। प्रकृति का संतुलन डगमगाने लगा है, उनकी सादगी व पवित्रता नष्ट हो रही है और कई बुरे परिणाम मानव के सामने मुॅह बाए हुए उसे घेरे खड़े है। अत; उपयुक्त परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण संरक्षण महती आवश्यकता है। अत; योजनाबद्ध तरीके से पर्यावरण के संरक्षण के लिए व्यावहारिक रूख अपनाना ही हितकर है।

शब्द कुंजी :–

इसी अनुसंधान विषय में पर्यावरण के सभी शब्द कुंजी का निर्धारण किया गया है। जीवन पर्यावरण पर आश्रित है। पर्यावरण के निर्माता भूमि, वृक्ष, वनस्पती, पर्वत, जलाशय, नदी, समुद्र, सुर्य, चंद्र, नक्षत्र प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक जड़ और चेतन सभी वस्तुएं जीव जतु, वायु एवं आकाश ही है।

साहित्य परिक्षण :–

यह अनुसंधान किसी विश्वविद्यालय में लिया गया नहीं है। और कोई अनुसंधान की कॉपी नहीं किये है। पहली बार इसी अनुसंधान पर निबंध तौर पर अनुसंधान किया है।

अनुसंधान पद्धतियां :–

कोई भी अनुसंधान वास्तविक तौर पर होने के लिए अनुसंधान पद्धतियां के आधार पर अनुसंधान किये जाते है। इसी अनुसंधान के लिए "पर्यावरण संरक्षण विकास" इसी विषय पर निर्धारण किये गये हैं।

उद्देश्य और गृहितके :–

1. विश्व में पर्यावरण कें प्रति चेतना का विकास हुये है।
2. पर्यावरण कें सभी घटक में मनुष्य जीवन प्रभावित है।
3. पर्यावरण के प्रति व्यावहारिक संरक्षण अपनाना अच्छा है।
4. कानूनी अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए कठोर शिक्षा होनी चाहिए।
5. पर्यावरण संरक्षण के कानूनी विकास बीच में नहीं होने चाहिए।

नमुना चयन :–

यह अनुसंधान में गैर संभाव्यता चयन पद्धतियां का सोईस्कर नमुना पद्धतियां का निर्धारण किये गये है।

अनुसंधान डिजाईन :-

प्रस्तुत अनुसंधान में मुख्य तौर पर निदानात्मक डिझाईन का निर्धारण किया गया है।

तथ्य संकलन :-

प्रस्तुत अनुसंधान में तथ्य संकलन के लिये पहले चरण में निरिक्षण और मुलाखत अनुसूची का निर्धारण किया गया है। दूसरे चरण में किताबें, मासिक, अखबार, योजनाए, इंटरनेट, सरकारी जिआर, यह सभी माध्यम का निर्धारण किये गये हैं।

पर्यावरण संरक्षण :-

पर्यावरण संरक्षण समय की पुकार है। विश्व के अधिकतर देश पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं से ग्रस्त है। पर्यावरण संरक्षण से संबधित मूल समस्याएं निम्न हैं :-

1. जनसंख्या नियंत्रण
2. भूमि का उचित उपयोग
3. उर्जा संसाधनों का समन्वय।
4. पर्यावरण चेतना तथा
5. पर्यावरण और विकास कार्यक्रम।

पर्यावरणीय समस्याओं के मूल में है जनसंख्या वृद्धि। इस वृद्धि की दर विकासशील देशों में ही अधिक है। हमारे देश की आबादी वर्ष 1951 की जनगणना के अनुसार लगभग 36 करोड़ थी जोकि बढकर वर्ष 1986 में 73.2 करोड़ हो गई। अनुमान है कि वर्ष 2001 तक 100 करोड़ हो जाएगी। भारतवर्ष का भौगोलिक क्षेत्रफल संपूर्ण धरती का लगभग दो प्रतिशत है जबकि यहां की आबादी संपूर्ण अनुपात 0.48 हेक्टेयर है जो विश्व में सबसे कम है। अत; जनसंख्या के बढते दबाव से पर्यावरण पर विनाशकारी प्रभाव अवश्यंभावी है।

सम्पूर्ण स्थल क्षेत्र का उचित उपयोग आवश्यक है। मरूस्थलीय क्षेत्रों का प्रसार रोकने के लिए समुचित उपाय करने होंगे, खासतौर से इजराइल जैसे देशों का अनुकरण करते हुए इन क्षेत्रों से लाभ उठाना उचित होगा

ऊर्जा खपत प्रगति की सूचकांक है और साथ ही साथ पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारण भी है। कोयला और तेल जैसे ऊर्जा के परंपरागत स्त्रोत प्रदूषणकारी है। इनके भंडार भी सीमित हैं। इसके विपरित ऊर्जा के वैकल्पिक संसाधन सूर्य, पवन, जल आदि पर्यावरणीय दृष्टि से स्वच्छ हैं तथा इनके भंडार असिमित है। अत; आवश्यकतानुसार ऊर्जा के विभिन्न संसाधनों का समन्वित उपयोग किया जाना चाहिए ताकि पर्यावरण को क्षति न पहुंचे।

सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरण के प्रति चेतना का विकास हुआ है। अभी हाल में ही मानव और प्रकृति के बीच समन्वय के उद्देश्य से पृथ्वी संरक्षण कोष की स्थापना पर बल दिया गया है। इस कोष के लिए प्रत्येक देश को अपने वार्षिक उत्पादन का शतांश देने का सुझाव है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक ने पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए हर संभव सहायता देने का संकल्प व्यक्त किया है।

अनुसंधान निष्कर्ष :-

भारत में इस समय पर्यावरण के संरक्षण के लिए लगभग 30 प्रमुख कानून विद्यमान है, जिन्हे केंद्रीय व राज्य सरकारें लागू करती है। इसमें से प्रमुख कानून है; वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम,1972; वन (संरक्षण)

अधिनियम, 1980; जल (प्रदूषण का निवारण एवं नियत्रंण) अधिनियम, 1974; वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियत्रंण) अधिनियम, 1981; जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) उपकर अधिनियम, 1977 पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986; सार्वजनिक रूण बीमा अधिनियम, 1991; 1988 में संशोधित मोटर वाहन अधिनियम, 1938; फैक्टरी अधिनियम और कीटकनाशक अधिनियम। ये कानून केंद्रिय और राज्य पदूषण नियंत्रण बोर्डो, प्रमुख फैक्टरी निरीक्षकों तथा कृषि विभागों के कीटनाशक निरिक्षकों के द्वारा लागू कराए जाते है। ये निरिक्षक विशेषतौर पर अभियंता ही होते है जो अपने क्षेत्र में कार्य–कुशल होने के अतिरिक्त इन नियमों को कड़ाई से लागू कराते है।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, जो 19 नवंबर 1986 को लागू किया गया, एक ऐतिहासिक कानून है। इसका उद्‌देश्य देश में पर्यावरण संरक्षण तथा दूसरे संबद्ध अधिनियमों की खामियों को दूर करना है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है। केद्र सरकार को निम्न अधिकार दिए गए है :–

1. पर्यावरणीय गुणवत्ता का संरक्षण करना।
2. इस अधिनियम के उद्‌देश्यों से संबद्ध किसी अन्य कानून के तहत राज्यों अभियंताओं, अधिकारियों और अन्य प्राधिकरणों की अतिविधिओं में समन्वय करना।
3. पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम नियंत्रण और इनमें कमी करने के लिए देशव्यापी कसर्यक्रमों की योजना तैयार करना और इन पर अम्ल करना।
4. पर्यावरण प्रदूषण करने वाले पदार्थो की निकासी के लिए सीमा निर्धारण।
5. किसी भी व्यक्ति को किसी संस्था में प्रवेश, निरिक्षण, नमूना लेने और परिक्षण के लिए अधिकृत करना।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. आगलावे प्रदिप– "सामाजिक अनुसंधान पध्दतियॉ और तंत्रे" साईनाथ प्रकाशन, नागपूर.
2. बोधनकर सुधीर– "सामाजिक अनुसंधान पध्दतियॉ" साईनाथ प्रकाशन, नागपूर.
3. देशमुख प्रभाकर– "व्यवस्थापन मुलतत्वे" पिंपळापुरे पब्लीकेशन, नागपूर.
4. गुप्ता अरविंद– "समाज, पर्यावरण और अभियांत्रिकी" राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
5. पाठक अवधेश– "भारत में समाज कल्याण" बेष्ट फ्रेड पब्लीकेशन, इंदोर.
6. ढमढेरे एस.बी.– "भारतीय अर्थव्यवस्था" डायमंड प्रकाशन, पुणे.

मो. 9423604723.

Email- rkshende70@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 222-227
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विकास, विनाश और पर्यावरणीय संकट : इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता का आभ्यंतरीकरण

रेमीसा सी.यु
शोधार्थी, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविध्यालय, कालड़ी।

शोध सारांश :-

पर्यावरण मानव अस्तित्व की आधारशिला है। वर्तमान युग में संपूर्ण विश्व पर्यावरण संरक्षण के प्रति गहन रूप से जागरूक और चिंतित है, क्योंकि पर्यावरणीय संतुलन मानव जीवन के सतत् और सुखमय भविष्य के लिए अनिवार्य है। प्रकृति के बिना मानव जीवन की परिकल्पना ही असंभव है। वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी–प्रधान इस युग में पर्यावरणीय असंतुलन एक जटिल और गम्भीर वैश्विक समस्या के रूप में उभर चुका है। यही कारण है कि विश्व साहित्य में पर्यावरण संबंधी गहरी चिंता और विमर्श परिलक्षित होते हैं। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में भी पर्यावरणीय विमर्श को सृजनात्मकता का एक केंद्रीय विषय के रूप में विशेष महत्व प्राप्त हुआ है। समकालीन कवियों में विनोद कुमार शुक्ल, नरेश सक्सेना, मणि मोहन, विजय राठौर आदि की कविताओं में प्रकृति और पर्यावरण के प्रति गहन संवेदनशीलता दृष्टिगोचर होती है। मानव की विकासवादी प्रवृत्ति, अनियंत्रित हस्तक्षेप तथा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दुरुपयोग से प्रदूषित हो रही प्रकृति को बचाने की बेचौनी इन कविताओं में स्पष्ट रूप से गूंजती है।

प्रस्तावना :-

प्रकृति और मानव के बीच अविच्छिन्न संबंध विद्यमान है। मानव जाति का इतिहास जितना प्राचीन है, प्रकृति और पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा भी भारतीय चिंतन, दर्शन एवं साहित्य में उतनी ही प्राचीन और समन्वित रूप से उपस्थित है। प्रकृति के क्रियाकलापों तथा पर्यावरणीय संरक्षण की संवेदनाओं से अनुप्राणित साहित्य भारतीय साहित्य परंपरा में सर्वत्र परिलक्षित होता है।'पर्यावरण उन सभी दशाओं, प्रणालियों और प्रभावों का सम्मिलित रूप है, जो जीवों तथा उनकी प्रजातियों के विकास, जीवन और मृत्यु को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।'[1] मानव सभ्यता के विकास–क्रम पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि मानव ने अपनी भौतिक प्रगति के प्रत्येक चरण पर प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन किया है। भौतिक सुख–सुविधाओं और विकास की प्रत्येक सीढ़ी चढ़ते हुए उसने प्रकृति एवं पर्यावरण की स्वाभाविक सामंजस्यपूर्ण स्थिति में निरंतर परिवर्तन उत्पन्न किया है।

मानव जाति की प्रगति और विकास का इतिहास जिस प्रकार आगे बढ़ता गया, उसी के समानांतर प्रकृति

एवं पर्यावरण के ह्रास और विनाश का इतिहास भी अभिलेखित होता गया है। जब–जब मानव प्राकृतिक नियमों का अतिक्रमण करता है, तब–तब वह अपनी ही जाति के विनाशकारी परिणामों की प्रक्रिया को आमंत्रित करता है। यही कारण है कि वेदों, उपनिषदों तथा विविध पौराणिक ग्रंथों में प्रकृति की अनिवार्य महत्ता का विशद उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त, संस्कृत साहित्य और हिंदी साहित्य के अनेक कवि–लेखकों ने अपनी कृतियों में प्रकृति के मानवीकरण का सशक्त और गहन चित्रण प्रस्तुत किया है। प्रकृति के विविध रूपों का यह भावनात्मक एवं कलात्मक निरूपण न केवल विश्व–मंगल की आकांक्षा से प्रेरित है, बल्कि यह प्रकृति और उसके समस्त चराचरों के साथ मानव के सह–अस्तित्व तथा सहसंबंध की स्वीकृति भी है।

पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता केवल मानव जाति के अस्तित्व की निरंतरता के लिए ही नहीं, बल्कि संपूर्ण विश्व के चराचर के जीवन–संरक्षण के लिए भी अत्यंत अनिवार्य है। वर्तमान समय में ग्लोबल वार्मिंग, अम्लवृष्टि, जल, वायु, ध्वनि तथा मृदा प्रदूषण जैसी विविध प्रकार की पर्यावरणीय समस्याओं ने समग्र पर्यावरण को भयावह एवं विनाशकारी रूप प्रदान कर दिया है। औद्योगीकरण से प्रभावित महानगरों का वातावरण पूर्णतः विषाक्त एवं असंतुलित हो चुका है। जलवायु चक्र में असामान्य परिवर्तन, हिमनदों का पिघलना तथा अन्य विनाशकारी प्रक्रियाएँ प्रकृति के संतुलन पर गंभीर आघात कर रही हैं। इसके अतिरिक्त, अंतरिक्ष में बढ़ता हुआ अनियंत्रित तापमान, सुनामी, भूकंप और बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाएँ पर्यावरणीय असंतुलन के स्पष्ट द्योतक हैं। इस असंतुलन का प्रभाव केवल प्रकृति तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव जाति के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। सबसे चिंताजनक तथ्य यह है कि मानव इन समस्त संकटों से परिचित होने के बावजूद आत्ममुग्धता के कारण उनसे आँख मूँदकर अज्ञेय बना हुआ है।

भारत की धार्मिक अवधारणाओं में भी पर्यावरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। नदियों, पर्वतों, वृक्षों तथा पशु–पक्षियों को देवत्व का दर्जा देकर पूजने की परंपरा भारतीय धार्मिक प्रणालियों में निहित है। विभिन्न अनुष्ठानों और कर्मकांडों में भी पर्यावरण की सक्रिय सहभागिता परिलक्षित होती है। इस प्रकार हमारे ऋषि–मुनियों एवं कवि–मनीषियों ने प्रकृति की महत्ता और संरक्षण का जो पथ प्रशस्त किया था, उसे आज का वैज्ञानिक युग का मानव विस्मृत कर चुका है। मानव की यही स्वार्थपरक प्रवृत्ति प्रकृति और पर्यावरण के प्रदूषण को उसकी चरमसीमा तक पहुँचा चुकी है। चिंता का विषय यह है कि इस प्रक्रिया में मानव स्वयं को ही घोर संकट में डाल रहा है। इक्कीसवीं सदी के इस परिवर्तित युग में भारत के मनीषियों, साहित्यकारों तथा पर्यावरणविदों का चिंतन और भी अधिक सार्थक एवं प्रासंगिक सिद्ध हो रहा है। समकालीन हिंदी कविता में प्रकृति और पर्यावरण की महत्ता एवं संरक्षण को लेकर रचे गए काव्य पाठकों को उनके संभावित विनाशकारी भविष्य के प्रति न केवल सचेत करते हैं, बल्कि सजग दृष्टि भी प्रदान करते हैं।

विनोद कुमार शुक्ल हिंदी कविता के संसार में आज ऐसे कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिनकी कविता को बिना उनके नाम के भी सजग पाठक पहचान लेते हैं। 'बचाकर रख लेनी चाहिए हवा' उनकी एक महत्वपूर्ण कविता है। वायु प्रदूषण की भयावह स्थिति को कवि ने इस कविता के माध्यम से गहन प्रतीकात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। कविता में यह चेतावनी मुखरित होती है कि जिस प्रकार खाद्य पदार्थ और जल का संरक्षण किया जाता है, उसी प्रकार भविष्य में हमें शुद्ध वायु को भी संजोकर रखना पड़ सकता है। आधुनिक नगरों में कारखानों और वाहनों के कारण वायु प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि स्वच्छ वायु अब एक दुर्लभ वस्तु बनती जा रही है।

:–

'बचाकर रख लेनी चाहिए हवा
सांस लेने के लिए
दूर नल से पानी लाते है
वैसे ही नालियों, दुर्गन्ध से दूर जाकर
एक सबूत घड़े में शुद्ध हवा लानी चाहिए।'[2]

यह कविता न केवल पर्यावरण प्रदूषण की जटिल वास्तविकता को अभिव्यक्त करती है, बल्कि वर्तमान युग की विकास–प्रक्रियाओं और मानव की उपभोग–केंद्रित जीवन–शैलियों पर भी तीव्र आलोचनात्मक दृष्टि प्रस्तुत करती है। कवि व्यंग्यात्मक स्वर में संकेत करते हैं कि एक दिन मानवता को प्रमाण–सामग्री संकलित करनी पड़ सकती है, ताकि यह ऐतिहासिक तथ्य सिद्ध किया जा सके कि कभी इस धरती पर शुद्ध वायु भी उपलब्ध थी।

नरेश सक्सेना हिंदी कविता के विशिष्ट और महत्वपूर्ण रचनाकारों में से एक हैं। उनके चिंतन और सृजन के केंद्र में पुल, वृक्ष, पानी और नदी जैसी जीवनदायी प्राकृतिक तत्वों को पर्याप्त और गहन स्थान प्राप्त है। 'पानी क्या कर रहा है' उनकी प्रतिनिधि और उत्कृष्ट कविता है, जिसमें पर्यावरणीय और मानवीय संकट का सशक्त एवं मार्मिक उद्‌घाटन मिलता है। इस कविता में प्रकृति की संतुलन–क्षमता और मानव की असंतुलनशील प्रवृत्तियों का सूक्ष्म और प्रभावी निरूपण किया गया है। वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो पानी का 4 डिग्री सेल्सियस तापमान उसकी सर्वाधिक घनत्व–स्थिति को दर्शाता है। यही कारण है कि शीतऋतु की चरमावस्था में जल की सतह पर बर्फ जम जाती है, किंतु नीचे जीव–जगत के लिए एक सुरक्षित एवं जीवन–समर्थक परत संरक्षित रहती है। इस प्रकार, जल सर्दियों में मछलियों के लिए एक प्राकृतिक संरक्षण कवच का निर्माण करता है, जिसके नीचे वे अपने जीवन का उत्सव निरंतर मना सकती हैं :

'तीन डिग्री हल्का
दो डिग्री और हल्का और
शून्य डिग्री होते ही, बर्फ बनकर
सतह पर जम जाता है
इस तरह कवच बन जाता है मछलियों का।'[3]

आगे की पंक्तियाँ संकट की परिस्थितियों में मानव के अविवेक पर तीखी आलोचना प्रस्तुत करती हैं। जब पानी अपने भीतर जीवों के संरक्षण का दायित्व निभा रहा है, तब मानव पर्यावरण और सामाजिक जीवन में उत्पन्न विभिन्न दबावों के कारण प्रकृति, खेती, संतान तथा अपने ही जीवन–स्रोतों का विनाश कर रहा है :–

'आदमी के प्राण कहाँ बसते है, दोस्तो
इस वक्त कोई कुछ नहीं बचा पा रहा
किसान बचा नहीं पा रहा अन्न को
अपने हाथों से फसलों को आग
लगा दे रहा है

माताएं बचा नहीं पा रही बच्चे
उन्हें गोद में ले
कुओं में छलांगें लगा रही है।'[4]

मणि मोहन की कविता 'अपने गाँव के लिए एक शोकगीत' में बाँध निर्माण, उसके परिणामस्वरूप हुए भौगोलिक परिवर्तनों तथा उससे जुड़ी सामाजिक–सांस्कृतिक हानियों को कवि ने मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। कवि उस नदी की तलाश करता है, जिसकी लहरें कभी समृद्ध जीवन का प्रतीक थीं, किंतु बाँध निर्माण के बाद वह नदी एक कृत्रिम झील में बदल गई है। कवि के लिए नदी मात्र जल का स्रोत नहीं, बल्कि पूर्वजों के जीवन केंद्र और गाँव की आत्मा का वाहक भी है। यह कविता केवल कवि की भावनात्मक खोज नहीं है, बल्कि एक गहन पर्यावरणीय संकट की चेतावनी भी प्रस्तुत करती है :–

'आज पानी से लबालब भरे
इस बाँध की दहाड़ मारती लहरों में
मैं तलाश रहा हूँ
वही सगड़ा नदी
जिसके किनारे कभी रुके थे
थके हारे पूर्वज
और बसा था यह गाँव।'[5]

नदी और गाँव के डूबने के दृश्य मात्र प्राकृतिक आपदा नहीं रह जाते, बल्कि वे विस्थापित लोगों के दर्द और विस्थापन से उत्पन्न सामाजिकदृसांस्कृतिक मृत्यु के प्रतीक बन जाते हैं। कवि की आशंका यह है कि जब गाँव की भौगोलिक स्थिति ही लुप्त हो चुकी है, तब धीरे–धीरे विस्थापित लोगों की स्मृतियाँ भी धुंधली पड़ जाएँगी। अपना गाँव, घर, खेती, संस्कार और पहचान खो देने के बाद, जब वे आसपास के शहरों और कस्बों में रोजमर्रा की जद्दोजहद में पिसेंगे, तो अतीत की स्मृतियों को अपने भीतर कितने समय तक जीवित रख पाएँगेकृयही कवि की सबसे बड़ी चिंता है :

'अब पता नहीं
कितने दिन यह गाँव
विस्थपित लोगों की स्मृतियों में रहेगा
आसपास के कस्बों और शहरों में
रिक्शा चलाते, ठेला धकाते या मजदूरी करते किसान
कितने दिन जिंदा रख पाएंगे
बाँध में डूबे हुए अपने गाँव को।'[6]

इक्कीसवीं सदी के कवियों ने मनुष्य और प्रकृति के बीच बिगड़ते संतुलन को अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से चित्रित किया है। विजय राठौर अपनी कविता में इस कटु सच्चाई की ओर संकेत करते हैं कि जहाँ मनुष्य की संख्या निरंतर बढ़ रही है, वहीं पेड़ों की संख्या लगातार घटती जा रही है। जनसंख्या–वृद्धि और वन–नाशीकरण के इस विरोधाभास को कवि ने व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। मानव अपने स्वार्थ और लाभ की प्रवृत्ति के

कारण पेड़ों का विनाश कर रहा है, किन्तु उनकी पुनः स्थापना अथवा संरक्षण के प्रति उदासीन है। पेड़ जीवनदायिनी सत्ता हैं, किंतु वे अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष नहीं करते। इसके विपरीत, चिंतनशील प्राणी होते हुए भी मानव उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों में डूबकर न केवल प्रकृति के विनाश का कारण बनता है, बल्कि अपने ही अस्तित्व को संकट में डाल रहा है :

'बढ़ते मनुष्य और घटते पेड़ों की चिंता
पेड़ कर ही नहीं सकते
और मनुष्य करना ही नहीं चाहते
किसी प्रकार की चिंता
जल्दी मरने को सारी प्रक्रिया पूरी करके भी
मनुष्य मरना नहीं चाहता बहुत जल्दी
हालाँकि वह सब कुछ कर रहा है
अपनी साँसों के विरुद्ध।'[7]

मनुष्य को अपने जीवन से अधिक प्रिय कुछ नहीं होता, किंतु विडंबना यह है कि वही मनुष्य अपने कर्मों से जीवन के आधारभूत स्त्रोतों का विनाश करता जा रहा है। पेड़ों की अंधाधुंध कटाई, विभिन्न प्रकार के प्रदूषण, भूमि का असीमित दोहन और प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित शोषणकृये सभी क्रियाएँ उसकी मृत्यु को और अधिक निकट ला रही हैं। सबसे विरोधाभासी तथ्य यह है कि मनुष्य अपने ही श्वासों के विरुद्ध कार्य करता हुआ भी जीने की तीव्र आकांक्षा रखता है।

हेमंत कुकरेती की कविता 'प्लास्टिक युग में' उनकी गहरी सामाजिक – पर्यावरणीय संवेदनशीलता का परिचायक है। इस कविता में कवि ने न केवल 'प्लास्टिक' जैसे विनाशकारी पदार्थ की समस्याओं को रेखांकित किया है, बल्कि समूची मानव सभ्यता की विडंबना को भी उजागर किया है। आधुनिक युग को उन्होंने 'प्लास्टिक युग' की संज्ञा दी है, जो कि किसी वैज्ञानिक या सभ्यतागत प्रगति का प्रतीक न होकर, दरअसल पर्यावरणीय संकट की अनिवार्य परिणति पर उनकी तीक्ष्ण व्यंग्यात्मक टिप्पणी है।

मानव अपनी विकास यात्रा में निरंतर प्रकृति के विरुद्ध आचरण करता आया है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उसने अनेक कृत्रिम पदार्थों का निर्माण किया, जिनसे उसकी आकांक्षाएँ तो पूरी हुईं, किंतु वे पृथ्वी के लिए स्थायी बोझ बन गए। इनमें 'प्लास्टिक' सबसे बड़ा उदाहरण है। कवि का गहरा भय यह है कि मानवशास्त्र का अध्ययन परंपरागत रूप से जहाँ हड्डियों के अवशेषों से किया जाता है, वहीं भविष्य में शायद मानव सभ्यता का अध्ययन प्लास्टिक के अवशेषों से करना पड़े। मनुष्य नश्वर होते हुए भी 'अनश्वर' वस्तु का सृजन कर चुका है। इसलिए सम्भव है कि आने वाले समय में प्लास्टिक ही मानव सभ्यता का सबसे बड़ा और स्थायी प्रमाण बन जाए :–

'यह प्लास्टिक युग है। इसका कोई संभ्रांत
वैज्ञानिक नाम भी होगा
आदमी नृशंस है और उसका नृतत्व शास्त्र है।
उसके लिए सबसे जरूरी है हड्डियाँ

नश्वर आदमी ने प्लास्टिक जैसी यह कैसी अमर चीज
को पैदा कर दिया कि पल्ले पद गया दुर्वह बोझ।'[8]

पृथ्वी पर मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है, किंतु अपने अहंकार और उपभोक्तावादी प्रवृत्ति में डूबा हुआ वह इस सत्य को भुला बैठा है। उसने 'प्लास्टिक' जैसे कृत्रिम पदार्थ का निर्माण कर लिया है, जो मनुष्य के विलुप्त हो जाने के बाद भी पृथ्वी को प्रदूषित करता रहेगा। वस्तुतः मनुष्य ने प्लास्टिक के रूप में एक ऐसी 'विनाशकारी अमरता' का सृजन किया है, जो धरती के पारिस्थितिकी तंत्र को दीर्घकालिक और अपरिवर्तनीय हानि पहुँचाती है।

निष्कर्ष :-

इक्कीसवीं सदी के हिंदी कवियों की सृजनात्मक चेतना में पर्यावरण संकट और उसके संरक्षण का स्वर अत्यंत मुखर एवं संवेदनशील रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इस चेतना का प्रमुख उद्देश्य जनमानस को प्रकृति और पर्यावरण संरक्षण के महत्त्व से परिचित कराना तथा उन्हें इसके प्रति उत्तरदायी बनाना है। समकालीन कवि पेड़ों की अंधाधुंध कटाई, वन–विनाश, वायु एवं जल प्रदूषण, बाँध निर्माण, प्लास्टिक के अतिरेक उपयोग तथा नदियों और जलस्रोतों के प्रदूषण जैसी विभीषिकाओं और उनके विनाशकारी परिणामों से गहन रूप से अवगत हैं। यही कारण है कि वे अपनी कविताओं में बार–बार उद्घोषित करते हैं कि पर्यावरणीय संतुलन मानव जीवन की सुख–समृद्धि, उसकी स्थायित्वशीलता और अस्तित्व के लिए अपरिहार्य है। वस्तुतः मानव सभ्यता का वास्तविक विकास प्रकृति के नियमों का अतिक्रमण करके नहीं, बल्कि उसके साथ सामंजस्य और सह–अस्तित्व स्थापित करके ही संभव है। अन्यथा मनुष्य स्वयं अपने विनाशकारी भविष्य का निर्माता सिद्ध होगा। इस प्रकार, पर्यावरणीय असंतुलन और संकट जैसी वैश्विक समस्या के प्रति जनमानस को चेतस, संवेदनशील और सक्रिय बनाना इक्कीसवीं सदी के हिंदी कवियों की सृजनात्मकता का एक केंद्रीय उद्देश्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. सुमन सिंह, भारतीय साहित्य में पर्यावरण संरक्षण (2011), रौशनी पब्लिकेशन्स, पृ. 5
2. विनोद कुमार शुक्ल, आकाश धरती को खटखटाता है (2006), आधार प्रकाशन, पृ. 193
3. नरेश सक्सेना, सुनो चारुशीला (2012), भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 70
4. वही, पृ. 70
5. मणि मोहन, शायद (2013), अंतिका प्रकाशन, पृ. 14
6. वही, पृ. 15
7. विजय राठौर, इत्यादि के पहले (2010), बोधि प्रकाशन, पृ. 67
8. हेमंत कुकरेती, चाँद पर नांव (2003), भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 47

Email : remeesacu7@gmail.com
मोबाईल 8089260731

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 228-232
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक काल में नारी विमर्श

डॉ. के. प्रिया नायडू
एसोसियेट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, भाषा विभाग, विमेन्स क्रिस्टियन कॉलेज, चेन्नई।

यह वह समय था जब भारतीय समाज विदेशी शासन की गुलामी झेल रहा था। स्त्रियों की गुलामी इस मायने में दोहरी थी कि वे एक ओर भारतीय समाज का हिस्सा होने के नाते विदेशी गुलामी की शिकार थी तो दूसरी ओर पुरुषों द्वारा नियंत्रित गुलामी झेलने को अभिशप्त थी। पति. सास–ससुर आदि बुजुर्ग सभी उस पर अपना शासन करते थे। स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्रियों की भागीदारी से समाज, राजनीति एवं स्त्रियों की अपनी स्थितियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। १५ अगस्त १९४७ को जब भारत सदियों की गुलामी के बाद आजाद हुआ तब यहाँ अशिक्षा, अज्ञान और पिछडेपन का साम्राज्य था। स्त्रियों की कोई अहमियत नहीं थी। खेत खलिहानों में पुरुषों से ज्यादा श्रम करने के बावजूद घर–परिवार में उसकी भूमिका को लेकर कोई गंभीर प्रगति नहीं हुई।

१९वीं शताब्दी में महिला शिक्षा पर ध्यान दिया गया और अनेकों प्राथमिक पाठशालाएँ खोली गयी। परंपरागत घर की चारदीवारी में रहने वाली स्त्री ने नये कार्यक्षेत्रों में प्रवेश किया, ये वे कार्यक्षेत्र थे जो परंपरागत दृष्टि से पुरुषों के समझे जाते थे और स्त्रियों के लिए वर्जित थे। स्त्री अब केवल रमणी या भार्या नहीं रही, वरन् घर के बाहर भी समाज का एक विशेष अंग तथा महत्वपूर्ण नागरिक बनकर प्रस्तुत हुई है। परिणामतः नारी धीरे–धीरे सभी परंपरागत सीमाओं को तोडती हुई कार्यालयों की ओर बढ़ने लगी है। इस प्रकार समाज में नारी का एक नया महत्वपूर्ण रूप उभर कर हमारे सामने आया।

आधुनिक नारी का परिवर्तित रूप :–

प्राचीन काल से ही लज्जा, सहनशीलता, त्याग एवं बलिदान भारतीय नारी के महत्पूर्ण आभूषण माने गये हैं। इन्हीं गुणों के कारण भारतीय समाज में उसे गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। नारी शिक्षित हो या अशिक्षिता किसी भी स्थिति में वह अपने शील एवं संकोच को तिलांजलि नहीं देती। उसे अपनी परम्पराओं के प्रति अनुराग होना चाहिए। जीवन में समरसता लाने के लिए आदर्श का होना और इसका पालन करना आवश्यक है। नारी में इस परिवर्तन का दूसरा कारण यह भी है कि प्राचीन परम्परायें अब रूढ़ियों का स्थान ले रही है और कई बार अंधविश्वास का रूप भी धारण करती है जो आज की जागृत नारी को मान्य नहीं है। इसके प्रति विश्वास करना वह अपने लिए तथा समाज के लिए घातक समझ रही है, इसलिए वह पारम्परिक आदर्शवाद का चौला उतार कर आधुनिक बनने की चेष्टा कर रही है। यहाँ आधुनिक बनने से यह अभिप्राय नहीं है कि नारी शील एवं संकोच का त्याग करे। आधुनिकता उसके विचारों में होना चाहिए। आधुनिक वही है जो सोच समझ कर जीवन जीता है। आधुनिक कहलाने वाले व्यक्ति के विचार विनाशकारी न होकर विकासोन्मुख एवं प्रगतिशील होने चाहिए।

'श्रीमती बिन्दु अग्रवाल' का कहना है 'आधुनिक शिक्षा के प्रचार–प्रसार के फलस्वरूप इस काल में नारी के व्यक्तित्व का यथेष्ट विकास हुआ है। इस शिक्षा से उसे नई दृष्टि मिली, उसका विवेक जागृत हुआ, अपनी स्थिति का ज्ञान मिला और उसका मन प्राचीन स्थिति के बंधन से मुक्त होकर अपने विकास के स्वप्न देखने लगा।[1]

आधुनिक नारी परम्परागत वर्जनाओं से मुक्ति पाने का हर सम्भव प्रयास कर रही है। आज धीरे–धीरे हर निर्णय लेने में वह स्वतंत्र होती जा रही है और पूर्जत्व की खोज में प्रयत्नशील है। वह अपने व्यक्तित्व के प्रति भी सजग है। 'डॉ. स्वर्णलता' के विचारानुसार 'आज नारी समानता के भाव से बढ रही है, और व्यक्तित्व के प्रति सजग है, जो परम्परागत सामाजिक तत्व है, जिनके लिए उदार संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है ताकि उसके भावों को अनुप्रमाणित किया जा सके और आधुनिकता तथा प्राचीनता का समन्वय हो सके।'[2]

आधुनिक युग में पराधीनता, उत्पीडन, शोषण, अन्याय, रुढियाँ, कुरीतियों आदि के विरुद्ध चलने वाले सामजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक आंदोलनों में नारी को भी सार्वजनिक मंच पर ला खड़ा किया है और उसके सम्मुख जीवन यापन के नीवन संदर्भ प्रस्तुत किये हैं। इन्हीं नवीन संदर्भ को अपनाने के फलस्वरूप आज नारी को समाज के प्रति घर परिवार के प्रति, धर्म के प्रति जीवन के समस्त क्षेत्रों के प्रति और कभी–कभी मानवता के प्रति भी मान्यतायें बदलती हुई नजर आती है। 'डॉ. ङि विमला शर्मा' के अनुसार 'आधुनिक चेतना संपन्न नारी अपने किसी भी रूप में स्वयं को दयनीय नहीं मानती। वह किसी प्रकार के भ्रम द्वारा आर्थिक उपार्जन करके सदा स्वावलम्बन के गौरव भाव से खंडित रहती है। नैतिकता और अनैतिकता के कारण को लांघने के उपक्रम में आज की नारी पिछली मान्यताओं को झुठलाने में लगी दिखाई देती है। स्पष्ट है कि आज की नारी बदलती परिस्थितियों में एक नवीन दृष्टिकोण को अपनाकर जीना चाहती है।'[3]

नौकरीपेशा नारी का स्वरूप :–

एक नौकरीपेशा नारी की भागदौड़ सवेरे से लेकर रात सोने तक रहती है। नारी किसी विवशता के तहत घर से बाहर निकल कर अपना परिवार चलाने के लिए धन अर्जित करती है। लेकिन नारियों के लिए उनकी नौकरी उनके अपने खर्च और रहन–सहन के स्तर में बढौत्तरी का है। एक तरह नौकरी की अपनी माँगे और जिम्मेदारियाँ हैं। भारत में पुरुष जितना भी समझदार हो घर तो संभालना स्त्री को ही है। घर तो एक फुलटाईम जॉब है, फिर नारी को कैसे घर और नौकरी में सामंजस्य हो? लम्बे समय से यह विषय समाज में विवाद का मुद्दा रहा है। पर इस खींचातान के बीच भी नारी किसी न किसी वजह से अपना काम चलाती ही है। घर का काम जैसे–तैसे निपटाकर जब वह ऑफिस पहुँचती है तो पुरुष सहकर्मी तिरछी निगाह से उसे देखते हैं. कुछ सहकर्मी यही चाहते हैं कि नारी किसी भी तरह हथियार डाल दें उनकी चापलूसी करें, उनके कहे अनुसार चले. जो नारियों सरेंडर कर देती है उन्हें ये छोड देते हैं और जो इनके खिलाफ आवाज उठाती है। उसे वे दबाने की पूरी कोशिश करते हैं, इस अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए कई बार घर के लोग भी साथ नहीं देते। उनका भी यह कहना होता है कि और भी तो नारियों नौकरी करती हैं? उन्हें कोई परेशानी नहीं है तुम्हें ही क्यों है? चाहे जितने कानून बन जाए जब तक नारियाँ अन्याय के खिलाफ एक जुट नहीं होगी अन्याय यूं ही नारियों को भय दिखाकर फलता–फूलता रहेगा।

दूसरी ओर नौकरीपेशा नारियों की सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ने के बजाय गिर रही है। आजकल अपने से

कम शिक्षित, नौकरी न करने और विवाह के बाद पति के चाहने पर नौकरी छोड देने को आश्वासन देने वाली लडकी की माँग विवाह—मार्केट में बढ़ने लगी है। शिक्षित प्रशिक्षित लडकियों भी फिर से नौकरी के बजाय गृह—जीवन के पक्ष में राय प्रकट करने लगी। इसका कारण परिवारों में अशांति, विघटन. दफ्तरों व घरों में नौकरीपेशा नारी के लिए शंका आलोचना भरे अशुद्ध वातावरण और दुहरे कार्यभार व मानसिक दबाव से स्वयं उसका द्वन्द्वों कुंठाओं से घिर जाना ही है।

जब तक नौकरीपेशा नारी के प्रति समाज का सम्मानजनक दृष्टिकोण विकसित नहीं किया जाएगा। जब तक घरों में उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण सहयोगी सुख का निर्माण नहीं होगा, तब तक न तो नौकरीपेशा नारी की वर्तमान समस्याएँ हल होंगी, न महिला रोजगार की स्थितियों में ही अपेक्षित सुधार होगा। पर इसके लिए नारी को ही सबसे पहले आत्म—निरीक्षण कर अपनी कमजोरियों पर विजय पाना है। वर्तमान में जटिल स्थितियों को सुलझाने में नारी संगठनों, समाजशास्त्रियों, नेताओं की सम्मिलित भूमिका से भी अपनी—अपनी जगह स्वयं स्त्रियों की व्यक्तिगत भूमिका कहीं अधिक प्रभावी होगी।

आर्थिक स्वतंत्रता के कारण नारी का बदलता स्वरूप :—

नारी ही परिवार की आधारशिला है। अतः उसका सर्वप्रथम दायित्व परिवार की सुयवस्था तथा इसमें रहनेवाले सदस्यों के कल्याण में निहित है। छोटे बच्चों के उचित विकास का आयोजन, शिक्षित और विदूषी नारियों समुचित ढंग से कर सकती है। परन्तु आज की अधिकांश नारियाँ परिवार के संचालन कार्य में कोई विशेष आकर्षण अनुभव नहीं कर रही है। इसके स्थान पर अन्य सांस्कृतिक, सामाजिक व आर्थिक कार्यक्रमों में भाग लेना आज की शिक्षित नारी को अधिक रुचिकर लगता है. पत्नी को परिवार का केन्द्र बिन्दु माना जाता है परिवार के प्रति उपेक्षित दृष्टिकोण रखकर वह इस ढाँचे को अस्त—व्यस्त कर देती है। जिसका कड़वा परिणाम परिवार के प्रत्येक सदस्य को भुगतना पडता है और इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से परिवार के बच्चे सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। यह बात सही है कि समय को देखते हुए तथा घर के सम्यक संचालन के लिए आज नारी को पुरुष के साथ अर्थोपार्जन में योगदान देना पडता है। परन्तु इस योगदान के उपक्रम में जब वह घर—परिवार के हित भुला देती है तो नारी के अस्तित्व पर एक बहुत बडा प्रश्नचिह्न लग जाता है। 'डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी' के विचारानुसार 'आज वह अपनी समस्त शिक्षा दीक्षा का संबंध घर परिवार के सुव्यवस्था तथा सुरुचिपूर्ण संचालन की भावना से न जोड कर मात्र अपने स्वतंत्र आर्थिक विचारधारा के ही सही नहीं है कि युग चेतना से प्रभावित नारी अपने व्यक्तित्व का स्वतंत्र रूप से विकास करे'।[4]

नारी चाहे कितनी ही बडी ओहदे पर क्यों न हो, आज भी उसे पुरुष की वास्नात्मक दृष्टि से गुजरना पड रहा है। पुरुष उसे सदा से ही बोझ समझता आया है, चाहे वह उससे हर दर्जे में उँची ही क्यों न हो। उसकी समस्त परिस्थिति के बावजूद यदि गौर किया जाये तो इसी निष्कर्ष पर पहुँच पाते हैं कि नारी आज भी अधूरी है। हर ओर से यह उलझी हुई पहेली के रूप में दिखाई दे रही है। शिक्षा ने जहाँ उसे स्वावलंबी बना दिया है वहीं कई तरह से आज उसकी अवनति भी हो रही है। आज भी दूषित शिक्षा व्यवस्था ने उस पर कई प्रश्न चिहन लगा दिये हैं। एक तो वह पुरुषों की भांति ही बेरोजगारी की लाइन बढ़ा रही है, दूसरे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत वह अपनी पसंद का पति पाने में भी कई बार असफल रह जाती है। ऐसे कितने ही उदाहरण देखने को मिलते हैं कि लड़कियां अपनी योग्यता के अनुकूल पति न पाने के कारण या तो बड़ी उम्र में विवाह करती

है या फिर कुंवारी ही रह जाती है।

आज प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या नारी आर्थिक स्वतंत्रता के साथ–साथ मानसिक रूप से भी स्वतंत्र हो पाई है? इस प्रश्न का उत्तर भी सर्वथा नकारात्मक लगता है। मानसिक रूप से नारी कभी भी स्वतंत्र नहीं हो पाई है और शायद आगे भी नहीं होगी। बचपन से लेकर बूढापे तक उसे कई विरोधात्मक स्थितियों से गुजरना पडता है। नौकरीपेशा नारियों या स्कूल कॉलेज आदि संस्थानों में पढने पढ़ाने वाली लड़कियों को विशेष कर इन द्वन्द्वात्मक स्थितियों से गुजरना पड़ता है। नौकरीपेशा नारी भले ही अपने घर परिवार के लिए जान खपा दे लेकिन घर आने में चन्द मिनटों की देरी हो जाये तो घर पहुँचते ही उस पर प्रश्नों की बौछार होती है। कहीं किसी व्यक्ति से किसी जान पहचान वाले से बात करते देखा तो अनेक प्रश्न से उसे गुजरना पडता है। दफ्तर में हो या और कहीं नौकरी करती हो या स्वतंत्र काम काज हमेशा अपने आप को प्रश्नों के एक बहुत बडे दायरे में पाती है। इस प्रकार मानसिक रूप से वह अपने आपको कभी भी स्वतंत्र नहीं पाती और उसे सदा एक सहारे की तलाश रहती है। घर बाहर सब जगह स्वतंत्र होते हुए भी वह अपने आप को परतंत्र महसूस करती है। यह स्थिति उसके व्यक्तित्व पर एक प्रश्नचिह्न बन जाती है।

मानव मूल्यों में आये बदलाव :–

जो कल था वह आज नहीं है और जो आज है वह कल नहीं होगा। कितनी ही नई शाखाएँ फूट पड़ी है, कितने ही नये वृक्ष उत्पन्न हो गये हैं। परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है। मानव भी इस परिवर्तन के साथ–साथ अपना चोला बदलता दिखाई देता है। परम्परागत नारी और आधुनिक नारी के मूल्यों में जो बदलाव आया है इसके बारे में 'डॉ. शशि प्रभा शास्त्री' लिखती हैं 'लेखक लेखिकाओं के द्वारा चित्रित नारी का स्वरूप आज मनोवैज्ञानिक सामाजिक, व्यक्तिवादी तथा परम्परावादी दृष्टिकोण से तोला गया है। इसका कारण है आज के परवर्तित मूल्य नारी आज पुरुष के हाथ में मात्र खिलोना नही है, उसकी इच्छाएँ आकांक्षाएँ पृथक से है, जिनकी पूर्ति के लिए वह प्रयत्न भी करती है। ये प्रयत्न किसी भी प्रकार के हो सकते हैं, इस प्रकार आज की नारी परम्परागत नारी से हट कर है। आज नारी क्यों ऐसी है जैसी वह दिखती है इसी के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है।'[5]

आज की प्रबुद्ध नारी अपने आपको पुरुष के समकक्ष मानने लगी है। नारी के नये संबंधों के नये आयामों से एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसे देखकर सती सावित्री जैसे आदर्श नारियों की कल्पना अर्थहीन बन गई है। बदलते सामाजिक परिवेश में नारी ने अपने आज को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में घोषित करने का संकल्प किया है। वह समाज के अधकचरे नियमों में अपने आपको जकड़कर ऐसे पुरुष के पल्ले नहीं पड़ना चाहती जो झूठा एवं बेईमान है और अन्य लड़कियों के साथ संबंध रखता है। इस तरह आधुनिक नारी एक नये समाज की स्थापना करना चाहती है और भारतीय नारी थोपे गये सड़े–गले नियमों को झुठलाना चाहती है।

विवाह के प्रति नारी की बदलती दृष्टि :–

आधुनिक शिक्षित नारियाँ विवाह को बंधन मानती हैं। वह किसी पर निर्भर रहना नहीं चाहती। साथ ही दिन ब दिन हो रहे विवाह विच्छेद को देखने के बाद वह वैवाहिक संस्था के प्रति अविश्वास जताती है। शिक्षा के प्रचार प्रसार और तकनीकी विकास के कारण नारी आत्मनिर्भरता के साथ साथ आर्थिक निर्भर भी बन गयी। वह किसी के नियंत्रण में रहना नहीं चाहती। वह जीवन को स्वेच्छा से जीना चाहती है। परम्परागत मूल्यों के

अभाव के कारण वह विवाह के प्रति प्रश्नचिह्न लगाती है। भौतिक संस्कृति एवं भौतिक सुख–सुविधाओं के कारण उसे किसी भी प्रकार के कमी महसूस नहीं होता। साथ ही 'डेटिंग', 'लिव इन रिलेशन' आदि के कारण उसकी इच्छाओं की पूर्ति विवाह के बगैर ही हो जाता है। फिर उन्हें विवाह की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार आधुनिक नारियाँ खासकर जो अधिक शिक्षिता एवं नौकरीपेशा है वह ही विवाह को बोझ मानकर उससे मुक्त होने के लिए प्रयत्नरत है।

निष्कर्ष :–

सदियों से नारियाँ अत्याचार सहते हुए आ रही हैं। लेकिन कुछ ऐसी भी नारियाँ हैं जो अन्याय या प्रतिकार करती हैं, जिसे नारी विद्रोही कहते हैं। पुरातन काल से लेकर आज तक अनेक नारियों ने अन्याय और अत्याचार के प्रति विद्रोह किया है। यह विद्रोह पति, समाज, धर्म आदि के प्रति होता है। अब नारी केवल नारी के लिए या नारी समस्याओं के लिए लड़ने वाली नारी नहीं है, वह कटघरे से बाहर निकलकर मानवतावादी बन गयी है। समग्र मानव जाति के लिए या दलित पीड़ित, पददलित, बंधनयुक्त आदि समग्र मानव जाति की मुक्ति के लिए एवं उनके उद्धार के लिए लड़ने वाली नारी है। आज भी नारी की प्रतिभा उसके साहस, उसके अस्तित्व, उसकी बराबरी को पुरुषीयत मानसिकता समानता का दर्जा देने के लिए तैयार नहीं है। आज भी पुरुष नारी को घर परिवार, अधिकार, सत्ता संपत्ति या धार्मिक विधि–विधानों में बराबरी का दर्जा देने में हिचकिचाता है। आज भी कम अधिक मात्रा में नारी को अबला की दृष्टि से ही देखा जाता है। आज बदलते परिवेश में भी स्त्रियों की कम ज्यादा मात्रा में, वही अवस्था है जो आदिकाल एवं मध्यकाल में थी।

संदर्भ सूचि :–

1. श्रीमती बिन्दु अग्रवाल, मेरा नरक अपना है, निरूपमा सेवती, पृ – 13
2. डॉ. स्वर्णलता, मेरा नरक अपना है, निरूपमा सेवती, पृ – 145
3. डॉ. डि. विमला, पृ. 67
4. डॉ. सत्येंद्र चतुर्वेदी, पृ. 55
5. डॉ. शशि प्रभा शास्त्री स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास, डॉ. कांति वर्मा, पृ. 154

मोबाईल– 9884308800

ईमेल – humsaaath1979@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 233-238
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी में राजनीतिक विवाद बनाम नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग : नव विचार विमर्श

डॉ. रमेश राम
सहा. प्रा. (अतिथि व्याख्याता) राजनीति विज्ञान, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय परिसर, चम्पावत (उत्तराखंड)

सार :–

पिछले दो दशक से 'नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था' की स्थापना का सपना देखा जा रहा है। इस सपने को साकार करने के लिए दो प्रकार से प्रयत्न हुए–एक तो अमीर और गरीब देशों के बीच संवाद स्थापित कर जिसे 'उत्तर–दक्षिण संवाद' कहते हैं और दूसरा गरीब विकासशील देशों के मध्य आपसी सहयोग स्थापित कर जिसे 'दक्षिण–दक्षिण सहयोग' कहते हैं। नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए दो प्रकार के विचार–विमर्श या संवाद की शुरूआत हुई है– (1) उत्तर–दक्षिण संवाद एवं (2) दक्षिण–दक्षिण संवाद।

प्रस्तावना :–

भौगोलिक दृष्टि से हमारी पृथ्वी दो गोलार्द्धों में बंटी है। (1) उत्तरी गोलार्द्ध, एवं (2) दक्षिणी गोलार्द्ध। उत्तरी गोलार्द्ध में अधिकांशतया उत्तरी अमरीका और यूरोप के देश आते हैं, जो उन्नत, समृद्ध, विकसित और औद्योगिक दृष्टि से प्रगतिशील हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में लैटिन अमरीका और अफ्रीका के देश आते हैं जो निर्धन, पिछड़े हुए, गरीब, शोषित और विकासशील हैं। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में जब उत्तर और दक्षिण शब्दों का प्रचलन हुआ तो उत्तर से तात्पर्य हुआ– पश्चिमी विकसित राष्ट्र जिनकी अर्थव्यवस्था पूंजीवादी विचारधारा पर आधारित है तथा जिन्होंने तकनीकी और औद्योगिक क्षेत्र में चहुंमुखी प्रगति कर ली है। इन राष्ट्रों में बचत एवं पूंजी–निर्माण की दर काफी ऊँची है, जहां राजनीतिक एवं वित्तीय स्थिरता पाई जाती है। संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि उत्तर के देश माने जाते हैं। इसके विपरीत दक्षिण से तात्पर्य हुआ अधिकांश रूप से वे देश जिनको 'विकासशील' अथवा तीसरी दुनिया के देश कहा जाता है। इन देशों में निर्धनता, पूंजी की कमी, जनसंख्या विस्फोट, बेरोजगारी, कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था, तकनीकी ज्ञान की कमी, रूढ़िवादिता पाई जाती है।

उत्तर–दक्षिण संवाद की पृष्ठभूमि :–

उत्तर के देश लंबे समय तक साम्राज्यवादी देश रहे हैं। उन देशों में औद्योगिक क्रांति भी पहले हुई। उत्तर के देशों ने दक्षिण देशों पर अपना साम्राज्य लंबे समय तक रखा है। इसलिए उत्तर के देशों ने अपनी अर्थव्यवस्था दक्षिण के देशों पर थोप दी। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् दक्षिण के अधिकांश देश यद्यपि राजनीतिक रूप से

स्वतंत्र हो गए हैं, परंतु आर्थिक रूप से वे पूंजीवादी देशों के अधीन है। विश्व अर्थव्यवस्था ने एक ऐसे ढ़ांचे को जन्म दिया है, जो विकासशील देशों के पक्ष में नहीं है। आंकड़े बताते हैं कि दक्षिण के विकासशील राष्ट्रों की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का 73.6% है, जबकि विश्व के कुल उत्पादन में उनकी भागीदारी मात्र 21.5% है। इसके विपरीत उत्तर के विकसित राष्ट्रों की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या की मात्र 26.4% है, जबकि विश्व के कुल उत्पादन में उनकी भागीदारी 78.5% है। विकासशील राष्ट्रों की प्रति व्यक्ति आय 730 डालर है जबकि विकसित राष्ट्रों की प्रति व्यक्ति आय 10,720 डालर है।[3]

दक्षिण के विकासशील राष्ट्र इस बात को अनुभव करने लगे हैं कि आर्थिक सहायता के नाम पर उत्तर के समृद्ध देश वास्तव में उनकी सहायता करते हैं पर वे ऐसी व्यूह रचना करते हैं, जिसमें विकासशील राष्ट्रों पर ऋण का बोझ बढ़ता जाता है। विपरीत व्यापार की शर्तों और बढ़ते हुए ऋण भार ने विकासशील देशों के भुगतान संतुलन को प्रतिकूल बना दिया है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं प्रतिवर्ष विकासशील राष्ट्रों को जितना ऋण देती है, उससे काफी अधिक वे ब्याज तथा भुगतान के रूप में वसूल करती है। 'विश्व विकास आंदोलन' की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व बैंक ने वर्ष (1992) में भारत, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश को कुल 3 अरब डॉलर का ऋण दिया, परंतु ऋण के ब्याज तथा भुगतान के उपरांत इन राष्ट्रों को मात्र 88 करोड़ 50 लाख डालर ही प्राप्त हो सके।

दुनिया बदल रही है?

21वीं सदी का पहला दशक कई मायनों में महत्वपूर्ण है : यह विश्व व्यवस्था के अनुक्रम में बदलाव का संकेत देता है, यह एक ध्रुवीयता को दरकिनार कर राष्ट्रों के बजाय सभ्यताओं के राजनीतिक एकीकरण का इशारा करता हैं। यह विश्व अर्थव्यवस्था में अमेरिका के लंबे एकाधिकार को चुनौती देता है और उसके स्थान पर चीन, भारत, ब्राजील जैसे राष्ट्रों की महाशक्ति की दावेदारी प्रस्तुत करता है। भू–मण्डलीकरण के कारण सारी संस्कृतियां एक सी होती जा रही हैं.........तकनीक अब तक के सर्वोच्च स्तर को छूती है.........आतंकवाद विश्वव्यापी समस्या बनकर उभरा है.............विश्व व्यापार संगठन शक्ति का नया केंद्र बनकर उभरा है। जी–8, जी–20, ब्रिक, इब्सा जैसे नित नए–नए संगठन बनते जा रहे हैं। राजनीतिक विवादों के बजाए आर्थिक एवं वाणिज्यिक मुद्दे महत्वपूर्ण बनते जा रहे हैं।[4]

नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था : अर्थ :–

'नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था' अवधारणा से अभिप्राय है– नवोदित विकासशील देशों के मन में इस बात की उत्कंठा कि उनका आर्थिक विकास पूंजीवादी देशों की स्वेच्छा पर निर्भर न रहे, बहुराष्ट्रीय निगम उन्हें कच्चा माल उत्पन्न करने वाले उपनिवेश न मानें।[5] विश्व आर्थिक व्यवस्था का संचालन एक–दूसरे की संप्रभुता का समादर, अहस्तक्षेप तथा कच्चे माल पर उत्पादक राष्ट्र का पूर्णाधिकार आदि सिंद्धातों पर हो।[6]

वस्तुतः ये सिद्धांत विकालशील राष्ट्रों के राष्ट्रीय हितों के अनुकूल हैं चूंकि विश्व के आधे से भी अधिक कच्चे माल पर उनका क्षेत्राधिकार हे। औचित्यपूर्ण आर्थिक स्वाधीनता की स्थापना के लिए तीसरी दुनिया के राष्ट्रों ने नवीन अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के निर्माण की मांग की है।[7] विकासशील देशों को नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के निर्माण की काफी आशाएं हैं चूंकि निवर्तमान विश्व आर्थिक व्यवस्था का पुनर्निधारण उनके हितों के अनुकूल होने की संभावना है।[8] नवीन अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के बुनियादी सिद्धांत निम्न प्रकार है।[9]

1. खनिज पदार्थों और समस्त प्रकार के आर्थिक क्रियाकलापों पर किसी राष्ट्र की संप्रभुता की स्थापना करना।
2. कच्चे माल की कीमत को घटाने–बढ़ाने की प्रवृत्ति का विरोध तथा कच्चे माल और तैयार माल की कीमतों में ज्यादा अंतर न होना।
3. विकसित देशों के साथ व्यापार की वरीयता का विस्तार।
4. विश्व मुद्रा व्यवस्था में सामान्यीकरण करना।
5. विकासशील देशों द्वारा उत्पादित औद्योगिक माल के निर्यात को प्रोत्साहन देना।
6. विकासशील देशों द्वारा विकसित देशों के मध्य तकनीकी उत्थान की खाई को पाटना।
7. विकासशील देशों पर वित्तीय ऋणों के भार को कम करना।
8. बहुराष्ट्रीय निगमों की गतिविधियों पर समुचित नियंत्रण लगाना।

उपर्युक्त सभी मांगें विश्वव्यापी हैं और विकासशील तीसरी दुनिया के राष्ट्रों के हितों के अनुकूल हैं।

नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए विचार–विमर्श :–

नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए दो प्रकार के संवाद या विचार–विमर्श की शुरूआत हुई। एक तो उत्तर–दक्षिण संवाद तथा दूसरा दक्षिण–दक्षिण सहयोग। उत्तर–दक्षिण संवाद से तात्पर्य है विकसित और विकासशील देशों के मध्य परस्पर सहयोग के लिए विचार–विमर्श तथा दक्षिण–दक्षिण संवाद से अभिप्राय है विकासशील देशों के मध्य परस्पर सहयोग और आत्मनिर्भरता की खोज के लिए विचार–विमर्श।

1. उत्तर–दक्षिण संवाद[10] :–

उत्तर–दक्षिण संवाद से अर्थ विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों के बीच परस्पर सहयोग के लिए विचार–विमर्श से है। 'उत्तर' अमीर अथवा विकसित राष्ट्रों का प्रतीक है, जबकि 'दक्षिण' में गरीब अथवा विकासशील राष्ट्र आते हैं। नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की संयुक्त राष्ट्रसंघों की घोषणा के पश्चात् अमेरीका की पहल पर अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के लिए (दिसंबर 1975) में एक सम्मेलन प्रारंभ हुआ जो (जून 1977) तक चला। इसे 'अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग सम्मेलन' भी कहते हैं। इसमें अमेरीका के नेतृत्व में 8 विकसित राष्ट्रों (उत्तर) एवं 19 विकासशील राष्ट्रों (दक्षिण) ने भाग लिया। तेल संकट से मजबूर होकर विकसित राष्ट्रों ने विकासशील राष्ट्रों को कुछ छोटी–मोटी रियायतें एवं सुविधाएं देने का प्रस्ताव किया। इसमें विशेष रूप से उपभोक्ता वस्तुओं तथा कच्चे माल के स्थायित्व के लिए सामान्य कोष बनाने का प्रस्ताव किया गया था। इनके बदले में विकसित राष्ट्रों ने तेल निर्यातक राष्ट्रों से तेल की आपूर्ति में कुछ रियायतों की मांग की। इन मांगों को विकासशील राष्ट्रों ने नामंजूर कर दिया। इस कारण से पेरिस में आयोजित यह 'पेरिस सम्मेलन' विफल हो गया।

पेरिस सम्मेलन की विफलता के पश्चात् विश्व बैंक के तत्कालीन अध्यक्ष रॉबर्ट मैकनमारा ने 'अंतर्राष्ट्रीय विकास मुददों के बारे में स्वतंत्र आयोग' बनाने का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्तावित गैर–सरकारी आयोग ने दिसंबर 1977 में काम करन प्रारंभ किया। यह आयोग ब्रॉट आयोग के नाम से प्रसिद्ध हुआ, क्योंकि इस आयोग के अध्यक्ष पश्चिमी जर्मनी के भूतपूर्व चांसलर विली ब्रांट थे। विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के बारे में अपनी दो रिपोर्टों में अस्तित्व और समान संकट के कार्यक्रम के अंतर्गत ब्रांट आयोग ने वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का स्वरूप और परस्पर 'प्रबल निर्भरता' का एक पूर्ण एवं स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया। इस आयोग ने जोर देकर

के यह कहा था कि विश्व शांति के लिए विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में 'परस्पर–निर्भरता' अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए आयोग ने विश्व के नेताओं की अनौपचारिक बैठक बुलाने का प्रस्ताव किया। मैक्सिको के राष्ट्रपति ने यह बैठक अपने यहां रखने का सुझाव दिया। इसके परिणामस्वरूप अक्टूबर 1981 में 22 राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्ष कानकून में इकट्ठे हुए, जिससे कि अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संवाद के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर किया जा सके। विकसित राष्ट्रों के हटपूर्ण रवैये के कारण 'कानकुन शिखर सम्मेलन' विफल रहा।

वस्तु स्थिति यह है कि 'उत्तर–दक्षिण संवाद' एवं उसके आधार पर अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना के कार्य में अभी तक सफलता नहीं मिल सकी है। इस असफलता का महत्वपूर्ण एवं मुख्य कारण यह है कि विकसित अथवा धनी राष्ट्र विकासशील अथवा पिछड़े हुए राष्ट्रों के विकास के लिए अपनी अर्थव्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन एवं सुधार, संशोधन आदि के लिए तैयार नहीं हैं।

2. दक्षिण–दक्षिण संवाद[11] :–

दक्षिण–दक्षिण संवाद का अर्थ है कि विकासशील राष्ट्रों के बीच परस्पर सहयोग एवं आत्मनिर्भरता की खोज के लिए विचार–विमर्श करना है। विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों के बीच सार्थक संवाद या विचार–विमर्श एवं सहयोग स्थापित न होने पर यह विचारा गया कि दक्षिण–दक्षिण संवाद अथवा विकासशील राष्ट्रों में अधिकतम संभव सीमा तक परस्पर आर्थिक सहयोग की स्थिति को अपनाया जाना चाहिए। दक्षिण–दक्षिण संवाद का मूलरूप से सूत्रपात (1968) में नई दिल्ली में हुए द्वितीय अंकटाड के सम्मेलन में विकासशील राष्ट्रों में आपसी सहयोग की आवश्यकता पर जोर देने के साथ हुआ था। इसके पश्चात् गुट–निरपेक्ष शिखर सम्मेलनों में नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना की मांग की गई। (1964) में स्थापित ग्रुप–77 जिसके सदस्य राष्ट्रों की संख्या आजकल 134 हैं, ने अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना हेतु प्रस्ताव पारित किए। पिछले वर्शों में 'दक्षिण–दक्षिण' संवाद' के लिए जी–15 ने त्वरित प्रयत्न प्रारंभ किए हैं। जी–15 या तीसरे विश्व के 15 विकासशील राष्ट्रों के ग्रुप की स्थापना (1989) में बेलग्रेड में गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन के समय की गई थी। जी–15 के राष्ट्रों का पहला शिखर सम्मेलन जून (1990) में मलेशिया के कुआलालम्पुर में हुआ था। इस सम्मेलन में दो प्रमुख मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया गया था– (1) विकासशील राष्ट्रों का कर्ज एवं (2) विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के बीच वास्तविक उदारवाद। इसमें विकासशील राष्ट्रों के लिए साउथ बैंक की स्थापना का भी सुझाव दिया गया था। कुआलालम्पुर में जिन मुद्दों पर ध्यान दिया गया था, उनके अतिरिक्त काराकास में आयोजित दूसरे शिखर सम्मेलन नवंबर (1991) की कार्यसूची में विकास की नई दिशाएं, विकासशील राष्ट्रों के बीच सहयोग तथा शीत–युद्ध की समाप्ति के पश्चात् के युग में विकसित और विकासशील राष्ट्रों के बीच संवाद जैसे कई मुद्दों को सम्मिलित किया गया। काराकास सम्मेलन में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव ने कहा कि अधिक समानता पर आधारित नई विश्व व्यवस्था की दिशा में बढ़ने के लिए न तो विकासशील राष्ट्रों के लिए मांग चार्टर तैयार करने और न ही अत्यधिक टकराव का रास्ता अपनाने की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि आज की सबसे बड़ी आवश्यकता संवाद या बातचीत प्रारंभ करने की है।

जी–15 के राष्ट्रों के शिखर सम्मेलन की समाप्ति पर जारी विज्ञप्ति में विकासशील राष्ट्रों के बीच एकजुटता एवं सहयोग तथा विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के बीच अंतःसंबंध स्थापित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के जकार्ता शिखर सम्मेलन सितम्बर (1992) में विकसित तथा विकासशील

राष्ट्रों के बीच व्यापक बातचीत की आवश्यकता, महत्व आपसी सहयोग के विस्तार की आवश्यकता पर बल दिया गया।

जी–15 के राष्ट्रों का तीसरा शिखर सम्मेलन दिसंबर (1992) सेनेगल की राजधानी डाकार में आयोजित किया गया। इसमें विकासशील राष्ट्रों ने विकसित राष्ट्रों से मांग की कि वे विकसित राष्ट्र प्रमुख अंतर्राराष्ट्रीय मुद्दो, विशेष रूप से आर्थिक मुद्दों का हल विकासशील राष्ट्रों के साथ बातचीत करके निकालें। जी–15 के राष्ट्रों ने अपने तीसरे शिखर सम्मेलन में विश्व व्यापार के मुद्दे पर उरूग्वे दौर की से बातचीत की सफल और संतुलित समाप्ति की अपील की। इस समूह ने यह भी चेतावनी दी कि यदि गैट योजना के माध्यम से कुछ प्रतिकूल कदम उठाए गए तो उन विकासशील राष्ट्रों के आर्थिक विकास को बड़ा धक्का लगेगा, जहां पुनर्संरचना तथा उदारीकरण का दौर चल रहा है। जी–15 के राष्ट्रों के हरारे शिखर सम्मेलन 3–5 नवंबर (1996) में व्यापारिक मुद्दे ही हावी रहे। इस सम्मेलन में विकसित राष्ट्रों द्वारा एक पक्षीय रूप से श्रम मानकों को विदेशी व्यापार के साथ जोड़ने के प्रयत्नों का संयुक्त रूप से विरोध करने के प्रति आम सहमति व्यक्त की। भारत के प्रधानमंत्री देवेगोडा ने स्पष्ट रूप से कहा कि श्रम मुद्दे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंद्ध नहीं है। अतः इन्हें विश्व व्यापार संगठन से बाहर ही रखा जाना चाहिए। जी–15 के राष्ट्रों की काहिरा में जुलाई 1998 में बैठक हुई। इसमें विश्वव्यापी आतंकवाद से बढ़ रहे स्वरूप के विरूद्ध संयुक्त रूप से आवाज उठाई गई। इस बैठक में बायोर्जनेटिक संसाधनों की सुरक्षा के बारे में भी निर्णय लिया गया तथा विकासशील राष्ट्रों के प्राकृतिक संसाधनों के शोषण के विरूद्ध भी अपने विचार व्यक्त किए। जी–15 के राष्ट्रों की नौवीं बैठक जमैका में फरवरी (1999) में हुई जिसमें इसके 17 सदस्यों ने भाग लिया। इसमें यह सुझाव दिया गया कि विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी आर्थिक संस्थाओं में अधिक तालमेल होना चाहिए। यद्यपि इस समूह के सदस्य राष्ट्रों की संख्या 17 हो गई थी, किंतु इस समूह ने अपना नाम जी–15 ही बनाए रखा। 2003 में जी–15 ने अपने कार्यकाल के चौदह वर्ष पूर्ण कर लिए। इसके प्रयत्नों ने न तो विश्व आर्थिक व्यवस्था पर और न ही विकासशील राष्ट्रों की आर्थिक नीतियों और आपसी आर्थिक संबंधों पर कोई विशेष महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा।

उत्तर दक्षिण तनाव :–

अपनी महत्वपूर्ण आर्थिक स्थिति और अफ्रीका एवं एशिया के नए बाजारों में उन्नतशील साझेदारी के द्वारा चीन दक्षिण–दक्षिण सहयोग के एक वास्तविक अग्रणी के रूप में उभरा है। यह उत्तर के राष्ट्रों खासकर अमेरिका के समक्ष, जो चीन को अपना एक रणनीतिक दुश्मन समझता है, कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियां उपस्थित करता है।[12]

निष्कर्ष :–

नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के लिए गरीब और विकासशील देशों का यह संघर्श वस्तुतः आर्थिक स्वाधीनता का संघर्श है। इस संघर्ष में धीरे–धीरे तीसरे दुनिया के राष्ट्र संगठित होते जा रहे हैं ओर उपनिवेशवाद विरोधी रूख अपना रहे हैं। दक्षिण अब ऐसी स्थिति में है जहां वह विकास के पुराने मॉडलों को अपने संसाधनों और अपने अनुभवों से संवर्धित करके प्रभावित कर सकता है और नया आकार दे सकता है साथ द्विपक्षीय सहयोग के अन्य पहलुओं पर नए प्रतिस्पर्धी दबाव बना सकता है। उदाहरण के लिए कुछ उभरती अर्थव्यवस्थाओं के घरेलू अनुभवों और उन्हें मिली सीखों ने विचार–विमर्श को बेहतर अधोसंरचना पर दोबारा ध्यान देने के उत्प्रेरक की भूमिका अदा की है।

संदर्भ :-

1. डॉ. एस. सी. सिंहल, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, पृ. 274
2. वही, पृ. वही।
3. वही, पृ. 274–275
4. डॉ. बी. एल. फड़िया, अंतर्राष्ट्रीय संबंध, पृ. 456
5. डॉ. कुलदीप फड़िया, डॉ. बी. एल. फड़िया, अंतर्राष्ट्रीय संबंध, पृ. 523–524
6. वही, पृ. वही।
7. वही, पृ. वही।
8. वही, पृ. वही।
9. वही, पृ. वही।
10. डॉ. प्रभुदत्त शर्मा, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति सिद्धांत एवं व्यवहार, पृ. 476
11. वही, पृ. 476–477
12. तपन बिस्वाल, अंतर्राष्ट्रीय संबंध, द्वितीय संस्करण, पृ. 292

Email : aptech.ramesh1984@gmail.com

Mobilr no.7465967280

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 239-243
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श : ममता कालिया के कहानी संग्रह 'खुशकिस्मत' के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. रेखा शर्मा
203/, E- block, Behind B.D.O Office, New Roshanpura, Najafgarh, New Delhi-110043

प्रस्तावना :–

वर्तमान सदी में स्त्रियों के जीवन स्तर में ही नहीं बल्कि पूरे सामाजिक परिवेश में अप्रत्याशित बदलाव देखने को मिल रहा है। शिक्षा के स्तर पर हो आत्मनिर्भरता के स्तर पर या निर्णय लेने के स्तर पर। इन बदली हुई परिस्थितयों ने न सिर्फ स्त्रियों के व्यक्तिगत बल्कि पारिवारिक जीवन में भी नईं समस्यायों को दस्तक दी है। संवेदनाओं का शुष्क हो जाना, मन ही मन में पनपती कुंठाएँ आपसी संबंधों में प्रेम सम्मान को सुखाने लगती हैं और सबसे बड़ी समस्या जो इस सदी में तेजी से पाँव पसारती दिख रही है और जो इस संग्रह 'खुशकिस्मत' का केन्द्रीय विषय भी है, वह है अकेलापन। परिवार हो या व्यक्ति कोई इससे अछूता नहीं है।

बीज शब्द :– स्त्री, पारिवारिक जीवन, सामाजिक परिवेश, अकेलापन।

मूल आलेख :–

साहित्य का एक निहित उद्देश्य है। अपने समय में घट रही घटनाओं, हो रहे परिवर्तनों पर गहरी नज़र रखना, वर्तमान में उनकी उपादेयता और प्रासंगिकता को मानवीयता की कसौटी पर कसना और इस प्रकार पुरानी जड़ पड़ गयीं चीजों को बहिष्कृत, या परिष्कृत कर नये विचारों और धारणाओं का समावेश कर समाजोपयोगी बनाना। इस प्रकार वह हमेशा परिष्कार की प्रक्रिया से गुजरता रहता है। परिष्कार की यह प्रक्रिया ही एक साहित्यकार की कृति बन जाती है। हिन्दी भाषा का साहित्य विशाल एवं समृद्ध है। अनेक साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से हिन्दी साहित्योत्थान को पल्लवित और पुष्पित किया है। इनमें से साठोत्तरी हिन्दी साहित्य में अपना उल्लेखनीय योगदान देने वाली ममता कालिया का साहित्य बहुमुखी है। ममता जी ने अधिकतर नारी मन की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया।

"नारी अस्मिता सदियों की जड़ मानसिकता और सामाजिक अंतःक्रियाओं और असमानताओं के प्रति बदलाव लाना चाहती है। शिक्षा के प्रसार और संचार माध्यमों के कारण बढ़ती जागरूकता के कारण समाज में नारी एक परिवर्तित संस्करण के रूप में सामने आयी है। पुरानी परिस्थितियाँ बदलीं हैं, परिवार व्यवस्थाएँ बदली हैं, अधिकार चेतना बदली है किन्तु नारी की मुलभूत स्थिति में अंतर नहीं आया। नारी को परिवार के दायरे तक ही सीमित मानने की मानसिकता, पत्नीत्व और मातृत्व की रूढ़ अवधारणायें और कठोर बंधन तथा चिंतन की आदर्श छवि के प्रति जकड़न उसे किसी भी स्वतंत्र सोच से परहेज करना सिखाती है।"[1] यह उद्धरण उनके

कहानी संग्रह 'खुशकिस्मत' के स्त्री पात्रों की स्थितियों का बिल्कुल सटीक आंकलन प्रस्तुत करता है। देखा जाये तो "वे तीनों देर तक बैठे रहे, एक ही कमरे में अलग–अलग तरह से अकेले।"[2] वर्तमान की पारिवारिक सत्यता को बयां करता है। इस अकेलेपन ने परिवार के सदस्यों के बीच एक अनकहा सा तनाव पैदा कर दिया है। इस अकेलेपन का शिकार ज्यादातर औरतें ही हैं। कारण भले ही सबके अलग–अलग हैं लेकिन अंत्योतगत्वा नियति सभी की एक जैसी ही है। जैसे 'तस्वीर अकेली है' की तानिया अस्तित्ववाद की आँधी में शादी को लेकर एक असमंजस की स्थिति में सोचती है–"एक अजनबी कौन उसे इतना प्रभावित कर लेगा! उसके सारे विस्तृत व्यक्तित्व को कौन ऐसे अपनी बाँहों में बाँध लेगा कि फिर उसे कोई प्यास न सताए! अगर उसके बाद भी असंतोष ही उसकी पूँजी रही।" आस–पास के परिवारों पर दृष्टि डाली तो तानिया का संशय बोला, "तुम्हें क्या पता, इनकी खिलखिलाहटों के पीछे कितने सुबकते सपने हैं ! हृदय से कौन किसका कितना है।" परायी इच्छाओं के कटघरे में वह बंद होना चाहेगी?"[3] इसलिए वह शादी से मना कर देती है। किन्तु बाद में भाभी के साथ हुए संवाद से उसे अपने अकेलेपन का एहसास होता है। ठीक ऐसी ही मनोदशा 'कौवे और कोलकाता' की हेमा की है। माँ–बाप के ना होने के कारण या शादी के प्रति अपनी सोच के कारण अविवाहित है और सैकत के शादी के बात छेड़ने पर उसे आड़े हाथों लेती हुए कहती है–"तुम लोग शादी के चौखटे से बाहर रखकर लड़कियों के बारे में कुछ सोचते ही नहीं।"[4] लेकिन हेमा के मन का यह भाव भी स्थायी नहीं रह सका। और शादी के लिए प्रयत्नशील होती है। ऐसी ही एक और पात्र है सूनी उर्फ़ सुनन्दा। जो कॉलेज में प्रोफ़ेसर है। सुनन्दा का दुख कुछ अलग ही तरह का है जहाँ अकेली रह जाने के असुरक्षा भाव के कारण उसकी माँ ही सुनन्दा की शादी में रोड़े अटकाती है।

अविवाहित स्त्रियों के जीवन में अकेलापन जहाँ किसी के नहीं होने की रिक्तता के एहसास से उत्पन्न अकेलापन है, वहीं विवाहित स्त्रियों का अकेलापन परिवार के सदस्यों की उपेक्षा से उत्पन्न अकेलापन है। 'रायेवाली' की पात्र कालिन्दी हो, 'तस्कीं को हम न रोयें' की आशा या 'एक अदद औरत' की नायिका मानस की पत्नी, ये पारिवारिक जीवन में अकेलेपन का संत्राश झेलने को विवश स्त्रियाँ हैं। इनके दुःख का मुख्य कारण इक्कीसवीं सदी में भी हमारे अन्दर बैठा 18वीं या 19वीं सदी के मानव या स्त्रियों के विशेष उपेक्षा का भाव है। दरअसल हम नई ख्वाइशों के साथ शारीरिक रूप से तो नई सदी में प्रवेश कर गए किन्तु मानसिक स्तर पर हम आये उसी पुरातन परम्पराओं के रथ पर सवार होकर हैं। इसलिए हमारे कुछ पुरानी पीढ़ी के लोग और हमारी चेतना में बैठे ये पुरातन संस्कार स्त्रियों पर शासन और शोषण में ही मर्दानगी की तुष्टि पाते हैं। और यह मर्दानगी की भावना सिर्फ मर्दों में ही नहीं बल्कि स्त्रियों में भी विद्यमान है। जैसा कि 'रायेवाली' कहानी में कालिन्दी की सास के किरदार में देखा जा सकता है। जो न सिर्फ कालिन्दी का बल्कि अपने बेटे का भी शोषण करती है। रात को उसके दुकान से आने के बाद देर रात तक पैर दबवाती और जब थककर सोने जाने लगता तो कालिन्दी को बुला लेती है– "अरी ओ क्या नाम, रायेवाली, जरा मेरी कमर तो दबा जा....।' ..... पौ फटने से पहले कमर शांत नहीं होती थी।"[5] अभी ठीक से आँख लगी भी नहीं होती कि सुबह हो जाती। और कालिन्दी की सास का ताना फिर शुरू हो जाता। "अरी बहु तूने तो कुम्भकरण को मात कर दियौ। शरम कर, दिन चढ़े भरतार को लेकर सोई पड़ी है।"[6] इस प्रकार कालिन्दी की सास ने ऐसी स्थिति पैदा कर रखी थी जिससे उसे न शारीरिक सुख मिलता, न मानसिक न ही दाम्पत्य सुख ही प्राप्त हो पाता। किसी भी प्रकार के अधिकार और सुख से वंचित।

जब प्रतिकार करना चाहा तो माँ के रंग में रंगा मोहन उल्टा उसी के ऊपर टूट पड़ा–"जबान लड़ाती है, बदज़ात कहीं की।"[7]

"हम प्रायः अपनी सनातन धारणा का जितना अधिक मूल्य समझते हैं उतना दूसरे व्यक्ति के अभाव और दुःख का नहीं। यही कारण है कि जब तक व्यक्तिगत असन्तोष सीमातीत होकर हमारे संस्कारजनित विश्वासों को आमूल नष्ट नहीं कर देता तब तक हम उसके अस्तित्व कि उपेक्षा ही करते रहते हैं। स्त्री की स्थिति भी युगों से ऐसी ही चली आ रही है।"[8] जब तक समाज में संरचनात्मक बदलाव नहीं आएगा महिलाओं के जीवन में यह संघर्श निरंतर बना रहेगा।

मदारी के बन्दर–बंदरिया के खेल के बहाने चित्रा मुद्गल स्त्रियों की ऐसी ही स्थिति को लक्ष्य कर कहती हैं– "बंदरिया रूठ सकती है अपने दुल्हे से। दुलहिनें नहीं रूठ सकतीं घरों में अपने दुल्हों से, नाटक ही सही। बंदरिया सा साहस दुलहिनों में कहाँ? भाता है खेल। खेल में तमाशा। तमाशे में दुस्साहस। मना कर देती है दुल्हे के संग जाने से!"[9]

दरअसल खेल–तमाशों का यह स्वांग तो प्रशिक्षण का ही एक अंग हैं ना। बन्दरियों की तरह लड़कियों को जीवन के इस खेल–तमाशे में दुस्साहस करने का प्रशिक्षण दिया ही कहाँ जाता है? उन्हें तो बस पति और उसके परिवार के इशारे पर नाचने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जैसे कि आशा की माँ ने आशा को शादी के वक्त दिया था –"अब से जिंदगी में केवल दो चीजों पर भरोसा करना, एक प्रार्थना, दूसरी सहनशक्ति।"[10] जो वे जीवन भर करतीं रहती हैं। हम सब जीवन के इसी खेल के अभ्यस्त हैं। यही खेल हमें खुशी देता है। ऐसा ही एक किरादर 'एक अदद औरत' की मानस की पत्नी के रूप में दिखाई पड़ता है। जब मानस की पत्नी मानस की इच्छा के विरुद्ध जापानी नृत्य देखने से मना कर देती है लेकिन मानस के गुस्से का एहसास कर उसके साथ जाने के लिए तैयार होती हुई सोचती है–"नहीं मुझे अपनी नाराज़गी नहीं दिखानी है, एक आदर्श पत्नी की तरह ऊब को भी पतिव्रत का हिस्सा मानकर झेलना है, मुझे मुस्कराना है, मुझे खुश होना है, मुझे सहमत में सिर हिलाते चलना है।"[11] "तस्कीं को हम न रोयें" की आशा भी पति व बच्चों के अपने–अपने में व्यस्त हो जाने और उसे समय नहीं दिए जाने के कारण अवसादग्रस्त हो उठती है। हताशा और चिड़चिड़ाहट हर समय उस पर भारी रहती है। प्रतिकार भी करती है, किन्तु–"सुबह छह बजे वह उसी तरह चाय की ट्रे हाथों में ले प्रातःकालीन रेड़ियो के साथ–साथ 'आपकी सेवा में उपस्थित होते हैं, जैसा विनम्र नाटक अभिनीत कर रही थी।"[12]

किन्तु सबसे बड़ी बात जो उन्होंने दिखाने की कोशिश की है वह यह है कि परिवार के प्रति स्त्रियों की जिम्मेदारी कोई चाकरी या शोषण नहीं है। जैसे पुरुष की जिम्मेदारियाँ होती हैं वैसे ही स्त्री की भी जिम्मेदारियाँ होती हैं जिन्हें वह पूरी शिद्धत से जीवन पर्यन्त निभाती भी हैं जैसा कि तनी और भाभी के संवाद में भाभी के तनी को दिए जवाब के माध्यम से सामने आता है–"तुम्हारा यह दर्शन तो मेरी समझ में नहीं आता। इतना जानती हूँ यह जो तुम खामख़्वाह आठों पहर सोचती रहती हो न, यह तुम्हें कोई सही राह नहीं ले जा रहा तनी! हम कोई बवंडर नहीं हैं जो चलें, थमें और चुक जाएँ। मेरे आस–पास जीवन की जो गति है, वह तो एक सी चलती रहने वाली हवा है, जिसका वेग–अवेग पता न चले, पर वह अनिवार्य है। ..... यह कोई सशरीर चीज नहीं है जिसका आज अब जन्म हुआ है और कल मरण होगा। तुम तो सम्बन्ध के प्रारंभ होने की एक घड़ी मानती हो और अंत की भी। संबंधों में कोई कल, परसों नहीं, आज भी नहीं। वे तो बस हैं और उनका होना ही स्वयं में

सत्य है।"[13]

रिश्ते अपने आप में प्रेम, आपसी सौहार्द और सामंजस्य का द्योतक होते हैं परंतु जब इन संबंधों की गरिमा को बनाए रखने और घर की जिम्मेदारियों का सारा दारोमदार स्त्री पर ही ड़ाल दिया जाता है तब सवाल वाज़िब हो जाता है घुटनभरी स्थिति तब पैदा होती है जब सवाल पूछे जाने का ख़ामियाज़ा भी उसे व्यक्तित्व को छलनी होते हुए देखने से करना पड़ता है। निश्चय ही यह एक विड़म्बनापूर्ण स्थिति है। जिसको लक्ष्यकर इस लेखिका द्वारा उठाया गया सवाल आज भी बहुत प्रासंगिक है–

"शताब्दियों से एक तरह का जीवन व्यतीत करने के कारण उनमें हीन भावना घर कर गई है, इसलिए आज औरत बहुत कुछ भौतिक रूप से प्राप्त करके भी कहीं पहुंची नहीं है। उसको देखने का दृष्टिकोण बदला नहीं है। बहुत कम, सफल महिलाओं का वैवाहिक जीवन पूरी तरह से सुखी है, उसका कारण वह कुंठा है जो उनके सफल व्यक्तित्व के चलते उनके पति के मन में घर कर जाती है। इसलिए मुझे कई वार गंभीर रूप से यह सवाल परेशान करता है कि हम पुरुषों पर काम करना कब आरंभ करेंगे? उनकी कुंठाओं की गिरह, कमजोरियों और परेशानियों से भरी उलझनों को कब सुनेंगे और समझेंगे? पढ़ी–लिखी या समझदार औरत के साथ एक मर्द को कैसे पेश आना चाहिए क्या इस पर हमने लेख लिखे और सेमिनार किए हैं? समय आ गया है जब प्रबुद्ध महिलाएं इसकी पहल करें और मर्द के साथ समाज की मानसिकता बदलें।"[14]

निष्कर्ष :–

इस कहानी संग्रह के माध्यम से ममता कालिया ने स्त्रियों की समस्याओं को बड़ी गहनता के साथ प्रस्तुत किया है। नई सदी में उभरकर आयी नईं समस्याओं के कारणों की पड़ताल करने की कोशिश की है। और विमर्श से आगे बढ़कर जीवन में सामंजस्य और सहअस्तित्व की जरुरत पर विशेष बल देती नज़र आतीं हैं। आधुनिकता के प्रवाह में कैरियर या अन्य कारणों से अकेले रहने वाली स्त्रियों के माध्यम से पारिवारिक जीवन की जरुरत पर ध्यान आकृष्ट कराया है, पुरुषों द्वारा स्त्रियों को तरज़ीह दिए जाने की जरुरत पर प्रकाश डाला हैं। तो वही माँ और सास जैसी स्त्रियों के द्वारा बहू और बेटियों के शोषण के चरित्र को भी उद्‌घाटित किया है। इन कहानियों के माध्यम से उन्होंने स्त्रियों को अपने अकेलेपन, घुटन, संत्राश और मुक्ति की छटपाहट से बाहर आने के लिए अपनी मानसिकता में सकारात्मक बदलाव लाने की जरुरत पर भी ध्यान आकृष्ट कराती हैं।

संदर्भ सूची :–

1. कालिया, ममता, खुशकिस्मत (कहानी–संग्रह), मुखौटा, नई दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2013, पृष्ठ सं० 63
2. कालिया, ममता, खुशकिस्मत (कहानी–संग्रह), खाली होता घर, नई दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2013, पृष्ठ सं०–110
3. कालिया, ममता, खुशकिस्मत (कहानी–संग्रह), एक अकेली तस्वीर, नई दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2013, पृष्ठ सं० 15
4. कालिया, ममता, खुशकिस्मत (कहानी–संग्रह), कौवे और कोलकाता, नई दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2013, पृष्ठ 29

5. कालिया, ममता, खुशकिस्मत (कहानी–संग्रह), रायेवाली, नई दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2013, पृष्ठ सं० 85–86
6. वही, पृष्ठ सं०–87
7. वही, पृष्ठ सं० 88
8. महिला लेखन के सौ वर्ष 20वीं सदी : गघ साहित्य, सत्पादक : ममता कालिया, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश 2020
9. मुद्गल, चित्रा, पेंटिंग अकेली है (कहानी–संग्रह), सन्निपात, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, सामयिक बुक्स, 2014, पृष्ठ सं० 123
10. कालिया, ममता, खुशकिस्मत (कहानी–संग्रह), तस्कीं को हम न रोयें, नई दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2013, पृष्ठ सं० 100
11. कालिया, ममता, खुशकिस्मत (कहानी–संग्रह), एक अदद औरत, नई दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2013, पृष्ठ सं० 111
12. कालिया, ममता, खुशकिस्मत (कहानी–संग्रह), तस्कीं को हम न रोयें, नई दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2013, पृष्ठ सं० 2
13. कालिया, ममता, खुशकिस्मत (कहानी–संग्रह), एक अकेली तस्वीर, नई दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2013, पृष्ठ सं० 17
14. शर्मा नासिरा, औरत के लिए औरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ सं० 128

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 244-245

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Role of Yoga and Fitness in Enhancing Performance of Hockey Players

Mr. Jitender Kumar

Faculty of Physical Education, Tantia University, Sri Ganganagar

Abstract :

The present study explores the role of yoga and fitness training in improving the performance of hockey players. Hockey is a fast-paced, high-intensity sport that requires strength, endurance, flexibility, and mental focus. Traditional fitness training helps in developing physical capacities, while yoga provides additional benefits such as improved concentration, stress management, flexibility, and injury prevention. The combination of yoga and modern fitness programs can significantly enhance both the physiological and psychological aspects of hockey performance. This paper highlights the importance of integrating yoga into regular training schedules to achieve holistic development and better competitive results.

Keywords :

Yoga, Fitness, Hockey, Performance, Flexibility, Mental Focus.

Introduction :

Hockey is one of the most popular team sports across the world, requiring a unique blend of strength, stamina, agility, and quick decision-making. The modern game has become more competitive and physically demanding, necessitating advanced training methods for players. While conventional physical training focuses primarily on strength and endurance, yoga offers a holistic approach by addressing flexibility, breathing efficiency, balance, and mental concentration. This paper examines how the integration of yoga with fitness training can enhance the performance of hockey players.

Review of Literature :

Previous research highlights that physical fitness is a crucial determinant of hockey performance. Studies on yoga and sports indicate that yoga can improve flexibility, coordination, mental clarity, and emotional control. According to Smith (2019), athletes practicing yoga experienced better recovery and fewer injuries compared to those relying solely on traditional training. Similarly,

Sharma & Gupta (2021) found that yoga techniques such as pranayama and meditation helped athletes maintain focus during high-pressure matches. These findings suggest that yoga, when combined with regular fitness training, has the potential to enhance overall hockey performance.

Methodology :

The present paper is based on a theoretical and analytical approach. Secondary data was collected from published research articles, books, and reports on yoga, fitness, and hockey training. The findings of existing studies were reviewed, analyzed, and synthesized to draw conclusions about the role of yoga and fitness in hockey performance. No primary experimental data was collected for this paper.

Discussion :

Fitness training develops muscular strength, cardiovascular endurance, and agility, which are essential for hockey players. Yoga complements this by enhancing flexibility, posture, and breathing control. Specific yoga asanas such as Surya Namaskar, Trikonasana, and Bhujangasana improve spinal flexibility and balance, while pranayama techniques like Anulom-Vilom and Kapalbhati boost lung capacity and focus. Meditation practices further aid in controlling anxiety and improving decision-making under stress. The integration of yoga into hockey training schedules can therefore provide a balanced approach to both physical and mental conditioning.

Conclusion and Suggestions :

The study concludes that yoga and fitness training together can significantly enhance the performance of hockey players. While fitness training builds strength and stamina, yoga provides flexibility, mental focus, and recovery support. Coaches and trainers should consider integrating yoga sessions into regular training programs for hockey players. Future research may include experimental studies with larger samples to quantify the impact of yoga-based interventions on hockey performance.

References :

1. Smith, J. (2019). The effect of yoga on athletic performance. Journal of Sports Science, 12(3), 45-52.
2. Sharma, P., & Gupta, R. (2021). Yoga as a tool for enhancing sports performance. International Journal of Physical Education, 18(2), 101-108.
3. Singh, A. (2020). Role of physical fitness in hockey. Indian Journal of Sports Studies, 15(1), 88-95.
4. Brown, L. (2018). Mind-body connection in sports: Yoga and meditation for athletes. Sports Medicine Review, 22(4), 203-210.
5. Verma, K. (2022). Integrating yoga into modern sports training. Asian Journal of Physical Education, 9(2), 65-73.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 246-252

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Revisiting Joanna Russ in the 21st Century : Feminist Science Fiction and New Discourses of Identity

Soundara Rajendren Nayagi

Former HOD English, Shri Andal Alagar Institute of Technology, Chennai,

Former Journalist & Soft Skill Trainer Frankfinn.

1. Introduction :

Joanna Russ's *The Female Man* (1975) is a famous feminist science fiction novel that reshaped the landscape of speculative fiction and feminist literary discourse. It dismantles conventional gender norms, critiques systemic oppression, and interrogates identity through the interplay of four parallel worlds. Russ introduces four protagonists, Joanna, Jeannine, Janet, and Jael, each represent a variation of the same woman shaped by different social and historical features.

Science fiction is a genre that explores the impact of scientific, technological, and social changes on individuals and societies, often set in futuristic or speculative realities. It asks "What if?" questions, blending imagination with logical extrapolation.

American Science Fiction often reflects cultural concerns such as technological progress, democracy, race, gender, and identity. In the 20th century, it became a platform to examine Cold War anxieties, civil rights, and feminism. Russ's work is a prime example, using speculative worlds to interrogate gender oppression.

The novel's title, *The Female Man*, portrays the central irony: a woman to survive and thrive in a patriarchal world, she has to adopt , "masculine traits." This sharp commentary invites readers to question whether these qualities are inherently male or merely products of patriarchal labeling. With its fragmented narrative, biting satire, and intellectual rigor, the novel remains a seminal text in feminist literature and a cornerstone of science fiction studies.

2. Background and Context

2.1. The Feminist Wave of the 1970s :

Russ wrote *The Female Man* during the height of second-wave feminism, a movement that

sought workplace equality, reproductive rights, and cultural recognition of women's voices. Thinkers such as Betty Friedan (*The Feminine Mystique*, 1963) highlighted the dissatisfaction of women confined to domestic roles, while Kate Millett (*Sexual Politics*, 1970) critiqued patriarchal ideology embedded in literature and art.

Russ, an academic, critic, and outspoken feminist, employed speculative fiction not simply to imagine alternate worlds but to stage confrontations with entrenched gender hierarchies. Her militancy distinguished her from some contemporaries: while Ursula K. Le Guin explored gender in subtle, allegorical ways, Russ wielded satire and confrontation as direct tools of critique.

2.2. Position in the Science Fiction Canon :

Before Joanna Russ, science fiction had been dominated by the "Golden Age" voices of Isaac Asimov, Robert Heinlein, and Arthur C. Clarke—writers who typically centered male protagonists and celebrated technological progress. Although earlier works by figures such as Charlotte Perkins Gilman (*Herland*, 1915) and C.L. Moore hinted at feminist possibilities, they were exceptions within a largely male-controlled literary space.

By the 1970s, however, women authors including Ursula K. Le Guin, James Tiptree Jr. (the pseudonym of Alice Sheldon), and Octavia Butler began to reimagine the genre's boundaries. Russ's work was particularly distinctive because of its unapologetically political orientation. *The Female Man* operates less as a detached speculative scenario than as a deliberate intervention, confronting sexism both in the broader culture and within the traditions of science fiction itself.

3. Structure and Narrative Technique

3.1. Fragmented and Nonlinear Form :

Russ refuses conventional linear storytelling. The novel shifts abruptly between first-person accounts, metafictional commentary, stream-of-consciousness passages, and satirical dialogues. This fragmentation mirrors the nature of female identity under patriarchism. The refusal of smooth linearity becomes an act of feminist resistance, undermining what Hélène Cixous later called the "phallocentric order" of traditional narrative.

For example, the novel often breaks the fourth wall, directly addressing the reader with wry observations about sexism. These metafictional intrusions highlight that the text is not merely a story but also an argument, a provocation, and a demand for political awareness.

3.2. Multiplicity of Voices :

The four protagonists—Joanna, Jeannine, Janet, and Jael—function as variations of the same identity. Their multiplicity dramatizes Judith Butler's later idea of gender as performative: a set of roles enacted differently depending on social context. The interplay between them suggests that identity

is not essential but contingent, shaped by history, economics, and ideology.

4. Characters and Their Worlds

4.1. Joanna – The Female Man :

Joanna inhabits a world much like 1970s America. An educated, career-driven woman, she faces persistent sexism in professional and social spaces. At one point, she reflects on the absurd rituals of femininity—smiling when not amused, dressing to please men, deferring in conversations. Her choice to "become a man" is not literal but symbolic: rejecting these constraints and claiming autonomy. In many ways, Joanna resembles Russ herself, a feminist academic navigating a male-dominated field.

4.2. Jeannine – The Woman Who Waits :

Jeannine inhabits an alternate history in which the Great Depression never ended, producing a culture of economic stagnation and limited social mobility. Within this environment, women remain economically dependent on men, and conservative gender roles are preserved as the dominant norm. Jeannine herself internalizes these constraints: she dreams only of marriage, convinced that it represents the sole secure future available to her. Her desires are not rooted in personal aspiration but in the survival strategies that a patriarchal economy enforces.

Through Jeannine, Russ critiques the enduring cultural myth that female fulfillment is achieved exclusively through romantic attachment and domesticity. The character embodies a deep frustration similar to that identified by Betty Friedan in *The Feminine Mystique*, where suburban housewives found themselves constrained by the narrow definition of womanhood as wife and mother. By situating Jeannine in a perpetually depressed society, Russ underscores how economic stagnation amplifies gender inequities and forecloses opportunities for women's independence.

4.3. Janet – The Woman Without Men :

Janet comes from Whileaway, a Utopian Society three thousand years in the future where men died out from a plague century earlier. Whileaway is both agrarian and technologically advanced, with egalitarian structures and communal child-rearing. In this world, lesbianism is normalized not as a deviation but as an ordinary aspect of life. Janet exudes confidence, strength, and freedom from the self-consciousness imposed on women in patriarchal cultures.

Janet's presence often startles the other women: she refuses to understand why women tolerate subordination. Her clashes with Jeannine and Joanna underscore how deeply ingrained patriarchal values become, even when women consciously resist them. In feminist literary tradition, Whileaway echoes Charlotte Perkins Gilman's *Herland*—yet Russ's utopia is more nuanced, exploring tensions between individual autonomy and communal harmony.

4.4. Jael – The Woman of War :

Jael belongs to a dystopian world where men and women have separated into warring societies. In Jael's world, society is split into two opposing camps—one controlled by men and the other by women—where hostility has intensified into open violence and secret warfare. Jael herself embodies militant pragmatism: half-human, half-machine, she is willing to use violence to secure women's survival.

Her world exaggerates patriarchal aggression to its extreme: male power becomes openly militaristic, while female power turns combative in response. If Janet represents the feminist dream of harmony without men, Jael embodies feminist rage against centuries of exploitation.

5. Major Themes

5.1. Feminism and Patriarchy :

At its core, *The Female Man* interrogates patriarchy, understood as the systemic structures that privilege men while subordinating women. The world of the protagonist's represented here have a distinct dynamic facet.: Joanna's America n gestures exposes the subtle yet pervasive sexism embedded in everyday life; Jeannine's Depression World illustrates the economic stagnation that reinforces women's domestic dependency; Janet's Whileaway demonstrates how the absence of patriarchy creates space for equality; and Jael's War World embodies the violent endpoint of unresolved gender conflict. Simone de Beauvoir's assertion that "woman is defined as the Other" resonates across these parallel realities, as Russ dramatizes the consequences of both resisting and embracing such "otherness."

5.2. Utopian and Dystopian Projections :

The contrast between Whileaway and Jael's world shows two very different visions of feminism. Whileaway imagines a peaceful society where gender divisions no longer exist, while Jael's world offers a darker warning—that if hostility between men and women continues, it could lead to open conflict and violence. Later works dealing with feminism like Marge Piercy's *Woman on the Edge of Time* and Margaret Atwood's *The Handmaid's Tale* continued utopia/dystopia dialogues.

5.3. Identity and Multiplicity :

The four central characters in *The Female Man* each represent different dimensions of women's experiences. Jeannine reflects the pressures of social conformity, Joanna embodies a struggle toward resistance, Janet symbolizes the possibility of liberation, and Jael channels rage into acts of retribution. Together they question whether womanhood is a unified category or a fractured set of possibilities. This aligns with Judith Butler's claim in *Gender Trouble* (1990) that gender is not an essence but a series of performances shaped by power.

5.4. Satire and Social Critique :

Russ wields biting satire to expose gender absurdities. In one passage, Joanna reflects on the "duties" of being a woman—smiling, apologizing, tolerating condescension. By exaggerating these rituals, Russ reveals their constructed nature. Similarly, she mocks heterosexual courtship rituals, depicting them as performances that entrap women in dependency.

5.5. Partnership and Desire Beyond Norms :

In Whileaway, relationships between women are fully normalized—partners build families, raise children collectively, and pursue careers without any form of stigma. This stands in contrast to the heteronormative structures of Joanna and Jeannine's worlds. Adrienne Rich's concept of "compulsory heterosexuality" is particularly relevant here: once the social expectation of heterosexuality is absent, same-gender relationships arise naturally as authentic expressions of human desire and connection.

6. Style and Language

6.1. Experimental Narration :

Russ blends narrative modes: satirical dialogue, essayistic commentary, direct addresses, and fragmented storytelling. This hybridity aligns her with postmodern writers like Kurt Vonnegut and Thomas Pynchon, yet her purpose is more explicitly feminist. The textual disjunctions demand active interpretation, refusing readers the comfort of passive consumption.

6.2. Humor and Irony :

Even though the novel addresses serious themes, it is filled with sharp humor and irony. Russ, for example, mocks the idea of traditional marriage by presenting it as a staged performance. Through this satire, she undermines patriarchal authority and turns criticism into playful but biting ridicule.

7. Critical Reception and Impact :

When published, *The Female Man* provoked polarized responses. Admirers hailed it as a feminist masterpiece, while detractors accused it of militancy and "man-hating." Some science fiction readers found the fragmented style challenging, while feminist critics embraced its defiance of convention.

Over time, the novel achieved canonical status. Today, the novel holds a central place in literature and gender studies curricula, frequently studied alongside Ursula K. Le Guin's *The Left Hand of Darkness* and Margaret Atwood's *The Handmaid's Tale*. Writers such as Nicola Griffith, Kameron Hurley, and N.K. Jemisin acknowledge Russ's influence. The novel anticipated theoretical debates about gender performativity, intersectionality, and feminist separatism.

8. Symbolism and Key Motifs :

- **The Title, *The Female Man***? paradox of adopting "male" traits for survival.
- **Parallel Worlds**? metaphor for the social construction of identity.
- **Violence in Jael's World**? symbol of feminist rage and the consequences of entrenched binaries.
- **Mirrors and doubling**? recurring motifs highlighting fractured identity.

9. Comparative Analysis :

Russ's work is often compared with Ursula K. *The Left Hand of Darkness* (1969) by Le Guin's. Both explore gender, but Le Guin's approach is allegorical and philosophical, while Russ's is satirical and confrontational. Where Le Guin imagines an androgynous species, Russ insists on dramatizing the lived realities of women under patriarchy.

Comparisons also extend to Charlotte Perkins Gilman's *Herland*, a utopian novel where women thrive without men, and to Margaret Atwood's *The Handmaid's Tale*, a dystopia of enforced reproductive control. Russ sits between these visions: her Whileaway echoes Gilman's optimism, while Jael's war-torn world foreshadows Atwood's nightmare.

10. Conclusion :

The Female Man remains provocative, stylistically daring, and politically uncompromising. By weaving satire, fragmented narrative, and speculative worlds, Russ exposes the contractedness of gender and challenges readers to imagine alternatives. Her vision—angry, ironic, and visionary—continues to resonate in contemporary debates on gender and identity. Science fiction is not an illusion it's about possibilities, predicts a prophecy. Test tube babies, Surrogacy Mothers, Man changing his physique as Female and vice versa etc. is possible in Science Fiction which is not a fantasy but it is about reality and facts.

13. References :

1. Russ, Joanna. *The Female Man*. Bantam Books, 1975.
2. Atwood, Margaret. *The Handmaid's Tale*. McClelland and Stewart, 1985.
3. Beauvoir, Simone de. *The Second Sex*. Translated by H. M. Parshley, Vintage, 1989.
4. Butler, Judith. *Gender Trouble: Feminism and the Subversion of Identity*. Routledge, 1990.
5. Friedan, Betty. *The Feminine Mystique*. W. W. Norton, 1963.
6. Gilman, Charlotte Perkins. *Herland*. Pantheon Books, 1979. Originally published 1915.
7. Griffith, Nicola. *Ammonite*. Del Rey, 1993.
8. Hurley, Kameron. *The Geek Feminist Revolution*. Tor, 2016.

9. Le Guin, Ursula K. *The Left Hand of Darkness*. Ace Books, 1969.
10. Millett, Kate. *Sexual Politics*. Doubleday, 1970.
11. Piercy, Marge. *Woman on the Edge of Time*. Alfred A. Knopf, 1976.
12. Rich, Adrienne. "Compulsory Heterosexuality and Lesbian Existence." *Signs: Journal of Women in Culture and Society*, vol. 5, no. 4, 1980, pp. 631–660.
13. Sheldon, Alice (as James Tiptree Jr.). *Her Smoke Rose Up Forever*. Tachyon Publications, 1990.
14. Jemisin, N. K. *The Fifth Season*. Orbit, 2015.

Email : soundaranayagi14@gmail.com
Phone : 9629466316

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 253-254
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शिवमूर्ति के कथा-साहित्य में ग्राम्य जीवन का यथार्थ में नारी विमर्श

जयदीप कुमार पाण्डेय
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जननायक चन्द्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया, उ0 प्र0

भूमिका :-

राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा किसी भी राष्ट्र के अस्तित्व की आधारशिला होती हैं। स्वतंत्र भारत के निर्माताओं में सरदार वल्लभभाई पटेल का स्थान विशेष हैं जिन्होंने भारत के विविध रियासतों को एकजुट कर एक अखण्ड राष्ट्र की संरचना की। वहीं, स्वतंत्रता के बाद के भारत में शिवमूर्ति जैसे कथाकारों ने ग्रामीण भारत की समस्याओं को उजागर करते हुए सामाजिक और मानसिक एकता की आवश्यकता को रेखांकित किया।

यह शोध पत्र दोनों क्षेत्रों के योगदानों को एक दृष्टिपथ में रखकर यह विश्लेषण करने का प्रयास हैं कि सरदार पटेल जहाँ राजनीतिक एकता के शिल्पी थे, वहीं शिवमूर्ति सामाजिक चेतना और एकजुटता के साहित्यिक वाहक हैं।

1. सरदार पटेल : अखण्ड भारत के स्थापत्य शिल्पी :-

सरदार पटेल को 'लौह पुरुष' के रूप में जाना जाता है जिन्होंने 562 देशी रियासतों को भारत संघ में मिलाकर अखण्ड भारत की नींव रखी। उनके योगदान निम्नलिखित हैं :-

- **देशी रियासतों का एकीकरण :** हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर जैसी जटिल रियासतों को भारत में शामिल करना।
- **राष्ट्रीय एकता का दृष्टिकोण :** धार्मिक, जातीय और सांस्कृतिक विविधता के बावजूद भारत को एकसूत्र में बाँधना।
- **प्रशासनिक व्यवस्था :** भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) की नींव रखकर देश को एक समान और संगठित प्रशासन देना।
- **राष्ट्रीय सुरक्षा का दृष्टिकोण :** सीमाओं की रक्षा के लिए संगठित सेना और नीतिगत मजबूती की पहल।

2. शिवमूर्ति का कथा साहित्य : ग्रामीण भारत की सामाजिक चेतना :-

शिवमूर्ति समकालीन हिन्दी कथा साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं उनकी कहानियाँ सामाजिक विसंगतियों, जातीय भेदभाव, स्त्री संघर्ष और ग्रामीण भारत की वास्तविकताओं को उजागर करती हैं। उन्होंने समाज में व्याप्त विखण्डन को रेखांकित करते हुए सामाजिक एकता को चेतना जगाई।

प्रमुख कहानियों में चित्रित सामाजिक विषय :-

- **जातीय विषमता :** कसाईबाड़ा, अस्पताल।
- **स्त्री सशक्तिकरण :** तिरियाचरित्तर, भरतनाट्यम।
- **सामाजिक समरसता और जागरूकता :** डंकिनगंज की आत्मा, हँसिया—हथौड़ा।

3. तुलनात्मक दृष्टिकोण : सरदार पटेल और शिवमूर्ति :-

विषय	सरदार वल्लभभाई पटेल	शिवमूर्ति
कार्य क्षेत्र	राजनीति प्रशासन	साहित्य समाज
उद्देश्य	राष्ट्रीय चेतना	सामाजिक चेतना
साधन	एकीकरण नीति, पुलिस, प्रशासन	कथा, पत्र, ग्रामीण यथार्थ
दृष्टिकोण	राष्ट्रवादी, व्यावहारिक	मानवतावादी, यथार्थवादी
प्रभाव	भारत की भौगोलिक अखण्डता	मानसिक व सामाजिक समरसता

4. शिवमूर्ति की कहानियों में राष्ट्रीय एकता के प्रतीक :

- **'कसाईबाड़ा' :** इस कहानी में पिछड़े वर्ग के युवक की संघर्षशीलता और जातीय भेदभाव के विरूद्ध लड़ाई सामाजिक एकता की आवश्यकता को रेखांकित करती है।
- **'तिरियाचरित्तर' :** यह कहानी ग्रामीण परिवेश में स्त्री की अस्मिता और न्याय के लिए संघर्ष को दर्शाती हैं। स्त्रियों को भी राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में बराबरी का अधिकार देने का संदेश निहित है।
- **'भरतनाट्यम' :** यह कहानी न केवल सांस्कृतिक समरसता को दिखाती हैं, बल्कि यह भी बताती हैं कि ग्रामीण समाज में कला, संस्कृति और महिला भाक्ति किस प्रकार परिवर्तन का साधन बन सकती है।

5. निष्कर्ष :-

सरदार पटेल और शिवमूर्ति दोनों ने अपने—अपने क्षेत्र में एकता और सुरक्षा की भावना को प्रकट किया जहाँ एक ओर सरदार पटेल ने भारत को भौगोलिक रूप से एक किया, वहीं शिवमूर्ति ने भारत को सामाजिक—सांस्कृतिक रूप से जोड़ने का कार्य किया।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत की असली एकता सिर्फ सीमाओं से नहीं, बल्कि समाज की सोच से तय होती हैं — और इस सोच को बदलने में साहित्यकारों की भूमिका भी किसी राष्ट्र निर्माता से कम नहीं।

संदर्भ सूची :-

1. पटेल, वी0 के0 — सरदार पटेल : राष्ट्र निर्माता।
2. शिवमूर्ति — तिरियाचरित्तर, कसाईबाड़ा, भरतनाट्यम।
3. गुहा, रामचंद्र — India After Gandhi
4. सिंह, नामवर — आलोचना और दृष्टि।
5. तिवारी, नवीन — शिवमूर्ति का कथा साहित्य : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन।
6. पाण्डेय, सुधाकर — समकालीन हिन्दी कथा : यथार्थ और आधुनिकता।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 255-264

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हरियाणा के अहीरवाल क्षेत्र के लोकगीतों में कृषक दशा : विमर्श एवं अवलोकन

सुनीता कुमारी, शोधार्थी,
प्रो. गीता कपिल, शोध निर्देशिका,
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, निवाई, राजस्थान, भारत।

सारांश :-

हरियाणा प्रदेश के लोक जीवन में अर्थ के महत्व का वर्णन यहाँ के लोक साहित्य की सभी विधाओं में मिलता है। यहाँ के गृहस्थाश्रम के लिए अर्थ की उपयोगिता बहुत है। यहाँ के ग्रामीण लोग रूखा–सूखा खाकर अपने घर में मस्त एवं प्रफुल्लित रहते है। कहा भी गया है–''रूखा–सूखा खाई के ठण्डा पाणी पी।'' अहीरवाल का समाज और यहाँ के अधिकतर लोगों का जीवन कृषि पर निर्भर है। अहीरवाल क्षेत्र के कर्षको की आर्थिक स्थिति खेती पर निर्भर करती है। प्रस्तुत आलेख मे हरियाणा के लोकगीतों के माध्यम से किसानों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति का अध्ययन किया गया है। साथ ही अहीरवाल क्षेत्र के किसान विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का सामान करते हैं इसका विमर्श प्रस्तुत आलेख में किया गया है। इसमे यह भी दर्शाया गया है कि किस प्रकार अहीरवाल क्षेत्र के किसान एकजुट रहकर विभिन्न प्रकार की प्राक्रतिक व आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद अपना पारिवारिक व सामाजिक जीवन व्यतीत करते हैं।

बिज शब्द : अहिरवाल क्षेत्र, कृषक दशा, कृषि कार्य, ऋण–ब्याज, औद्योगीकरण, आर्थिक दशा।

मूल आलेख :-

हरियाणा के आर्थिक पक्ष को लेकर प्रो.टी.आर.कुंडू ने कहा– ''हरियाणा ने आर्थिक पक्ष में लंबी छलांग लगाई है। हरियाणा ने सबसे पहले अपने हर गांव व शहर में बिजली व सड़क पहुंचाकर आने वाले समय में विकास की नीवं रखी। प्रदेश ने कृषि में एवं औद्योगिक क्षेत्र में प्रगति के नए कीर्तिमान बनाए। आज हरियाणा की गिनती देश के चुनिंदा समृद्ध राज्यों में होती है।''[1] इस क्षेत्र में उस राज्य का भौगोलिक परिवेश, जलवायु, भूमि, खनिज पदार्थ, कृषि, पशुपालन, उद्योग–धन्धे आदि आते हैं। अहीरवाल क्षेत्र की आर्थिक गति यहाँ की खेती पर निर्भर करती है। सामान्यतः कृषि खेतों में उत्पादन का एक व्यवसाय है। अहीरवाल का समाज और यहाँ के अधिकतर लोगों का जीवन कृषि पर निर्भर है। उनके जीवन में आने वाली खुशियाँ, त्यौहार, उत्सव, विवाह, भात, सीधा, कोथली, रीति–रिवाज व जीवन से जुड़े हुए उनके संघर्ष खेती व फसल से जुड़े हैं। बच्चों की स्कूल, कॉलेज की फीस, पढ़ाई–लिखाई का खर्च सब फसल पर निर्भर है। इसलिए अधिकांश आबादी इसी से अपना

रोजगार, काम–धन्धा चलाती है। ये उनकी आजीविका का प्रमुख साधन है।

कृषि कार्य पर निर्भरता :–

हमारा देश कृषि–प्रधान देश है। यहाँ अधिकतर लोग कृषि पर निर्भर रहते हैं। यह क्षेत्र कर्म के बल पर स्वावलम्बी एवं धरती स्वर्ग के समान दिव्य रूप धारण किये हुए है। यहाँ की आर्थिक स्थिति कृषि पर निर्भर है। कृषि की स्थिति अच्छी है तो आर्थिक स्थिति अच्छी है। ये सब यहाँ के किसानों की आर्थिक स्थिति को जानकर पता लगाया जा सकता है। कई बार प्राकृतिक आपदाओं के कारण भी किसानों को फसले अच्छी नहीं मिल पाती हैं तो कई बार कर्जदारों के शोषण के कारण भी इनकी आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती है।

अहीरवाल क्षेत्र का किसान कृषि कार्य में बड़ा निपुण है। कृषि–प्रधान देश में किसान से बढ़कर मेहनती एवं परिश्रमी अन्य कोई नहीं हो सकता। ये सब अहीरवाल क्षेत्र के लोकगीतों में देखने को मिल जाएगा। कृषि संबंधी गीतों में फसलों का बोना, उनकी गुड़ाई करना, पानी देना, पकना एवं काटना–काढ़ना तथा सामान्य लोकानुभूति की चर्चा होती है ये गीत किसान के भावों एवं आत्मबलिदान की कहानी कहते हैं। हाँलाकि कृषि को उतम व्यवसाय माना जाता है किंतु फिर भी किसान के शौषण ने उसकी हालत चिंताजनक बना दी है। एक गीत के माध्यम से कृषक की बेटी बादलों से नाराज होकर कहती है कि वह ऊपर–ऊपर क्यों जा रहे हैं। उसके पिता को पानी की जरूरत है तो उसके खेतों में क्यों नहीं बरस रहा। बिना बारीश के उसके खेत खराब हो रहे हैं। इस गीत में वह बादलों के प्रति अपना गुस्सा दिखा रही है :–

'ऊपरां बादलिया ऊपरां क्यूं जा बरसै तै क्यूंना म्हारे देस
छन मै करदे धूलम धूलछन मैं तो भर दे जोहड खाबडा
सूत्या रे पालिडा रूखा की छां खेत उजाडा मेरे बाप का
होय रे पालिडा जेरी रांड खेत उजाडा मेरे बाप का।'[2]

आषाढ़–सावन में वर्षा की पहली बौछार के साथ ही किसान का खेत बिजाई संबंधी कार्य शुरु हो जाता है। सुबह सवेरे ही घर के पुरुष हल बैल के साथ खेतों की ओर प्रस्थान करते हैं और शाम को घर हारे थके लौटते हैं। उनका खाना–पीना भी बाद में स्त्रियाँ घर का काम खत्म करके खेत में ले जाती हैं। उदाहरणार्थ एक गीत प्रस्तुत है :–

'जवारे आली तेरा भूखा मरग्या हाली तू रोटी ले जा खेत मैं
घाम सतावै जी दुःख पावै सांझ पडी घर आवै
न किसे चीज की आशा तू रोटी ले जा खेत मैं
सांझै थक कै पड कै सौज्या उठै पहर कै तडकै
सांटा ले कै सीधा होलै खेत मैं तू रोटी ले जा खेत मैं।'[3]

किसान कृषि कार्यों में कड़ी मेहनत करता है। उसके बाद फसलों से जो आमदनी आती है उससे अपने परिवार का गुजर–बसर करता है। एक कृषक की पत्नी अपने पति से पूछती है कि उसने खेत में क्या–क्या बो दिया। क्योंकि कृषक का परिवार कृषि पर निर्भर करता है। अहीरवाल क्षेत्र में वर्षा ऋतु से संबंधित अनेक गीत गाये जाते हैं। यहाँ सिंचाई के लिए अब तो नहरों की सुविधाएँ हैं। परन्तु यहाँ के बहुत से हिस्सों में खेती अब भी वर्षा पर निर्भर करती है। कृषि से संबंधित गीतों में किसानों द्वारा वर्षा के लिए प्रार्थना की जाती है। अच्छी

वर्षा होने से फसल भी अच्छी होगी तथा किसान का जीवन सुख शान्ति से व्यतीत होगा। उदाहरणार्थ एक गीत प्रस्तुत है–

'म्हारां खेत सीचण आवै बादली रै
पोटां आयो खड्यो बाजरो कोडया रै जवार बादली
मोठ–मूंग फली रै नीसरी वगरां आयो गवार बादली
सौ–सौ आंगल बिरखा करज्या भरज्या सरवर ताल बादली।'[4]

किसान का जीवन बड़ा ही संघर्षमय रहा है। कभी बहुत अधिक बारीश हो जाती है। तब किसान खेती में कुछ नहीं कर सकता। तो कभी बारीश ही नहीं होती अकाल पड जाता है तो किसान फसल नहीं उगा पाता और उसके पास खाने तक को कुछ नहीं होता। घर में मेहमान आते हैं और किसान के पास उनको खिलाने–पिलाने के लिए कुछ नहीं होता है। सारी इज्जत और मेहनत अकाल पड़ने से खराब हो जाती है। इस गीत के माध्यम से किसान की दयनीय दशा को दर्शाया गया है :–

'पड रह्या छप्पनिया का काल पड रह्या किसा री दुकाल
दिया री महंगाई नै मार दमडी का हो गया चार
कपडा मिलै ना टाट अन्न आल का टोटा पड गया
पड रह्या छप्पनिया का काल पड रह्या किसा री दुकाल।'[5]

वर्तमान दौर में किसान व किसानों से जुडे मूल्य बदलते जा रहे हैं। जैसे–जैसे परिवेश व वातावण बदल रहा है। किसानों का जीवन मूल्य व उनके संघर्ष भी वैसे–वैसे बदलते जा रहे हैं। कृषि के साथ–साथ किसान पशुओं से भी आमदनी प्राप्त करता है। पहले दूध को पैसे के बदले बेचना समाज में पाप समझा जाता था। बेटी के विवाह पर गाँव के लोग अपनी इच्छा से उस घर को दूध दे देते थें। कोई अतिथि आए तो उसको बिना दूध पिलाए नहीं जाने देते थे। लेकिन अब वो परम्पराएँ, वो समाज का आपसी सहयोग,प्यार–प्रेम के मूल्य टूट गये हैं। आज तो किसान अपने घर में दूध की एक बूंद भी नहीं रखते। सारे का सारा दूध बेचने की सोचता है कि किसी तरह दो पैसे आए तो घर का खर्च चल सके। इस गीत में किसान की समस्या का वर्णन किया गया है :–

'अन्नदाता सुण मेरी बात तूं हाँग्गा लाकै दे रूक्का
सारे जग का पेट भरै तू फेर भी क्यूं रहजया भूखा
माट्टी गेल्यां माट्टी हो तेरा गात खेत म्है गलज्या रै
सारी उम्र कमा कै मरज्या तेरी जान रेत म्है रूकज्या रै।'[6]

किसान बड़ी मेहनत से फसले उगाता है और फसलों में बीमारी लगने तथा कीड़ा लगने के कारण किसान की सारी फसल नष्ट हो जाती है। इसके साथ–साथ प्रकृति की मार भी किसान को झेलनी पड़ती है। किसान की अधिकतर खेती वर्षा पर निर्भर करती है। यदि मानसून जरूरत से ज्यादा आती है तो बाढ़ आ जाती है। यदि वर्षा कम होती है तो सूखे की मार किसान को झेलनी पड़ती हैं ऐसे में किसान के लिए अपने परिवार का भरण–पोषण करना अति कठिन हो जाता है। इस गीत में किसान की मनोदशा को दिखाया है :–

'जमींदार नै सरसम बोए दई उसकै फल लाग्या ना फूल

हे जी एक जमींदार फिकर मैं सूकै सै वो फली मोर कै देखै सै
उसमें दाणा लकडया ना एक हे जी एक जमींदार फिकर मैं सूकै सै।'[7]

अहीरवाल क्षेत्र कृषि प्रधान क्षेत्र है। यहाँ किसान पूरी तरह से कृषि पर निर्भर रहता है। किसानों की आजीविका खेती पर ही निरर्भर करती है। उसका जीवन उसका परिवार सब कृषि और पशु पालन पर ही चलता है। कृषि कार्यों में मौसम का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रहता है। अगर बारिश ना हो तो भी मुसिबत और अगर बारिश अधिक हो जाए तो भी मुसीबत। बिना पानी के या अधिक पानी में खेती कार्य नहीं हो सकता। कृषि के लिए पानी का विशेष महत्व है। बिना पानी के खेती नहीं की जा सकती। इसलिए वर्षा आने पर सबके चेहरे खिल उठते हैं। बरसात होने पर चने, गेहूं की फसले अच्छी होती है। अच्छी फसल खुशहाली और उन्नति का प्रतीक है।

कृषकों की दयनीय स्थिति :–

हरियाणा एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ के अधिकतर लोग खेती कार्य करते हैं। कृषि कार्य में किसान–मजदूर अपना खून–पसीना एक कर देता है। चाहे गर्मी हो, सर्दी हो, बारीश हो, शरीर पर कपडा नहीं पैर में जूती नहीं फिर भी खेतों में पसीना बहाते हुए कार्य करना पड़ता है। इतना परिश्रम करने पर भी किसान की हालत बहुत ही दयनीय होती है। किसान के पास रहने के लिए ढ़ंग का घर नहीं,पहनने को कपड़ा नहीं, खाने को ढंग का भोजन नहीं। किसानों के बच्चे भी हर छोटी–छोटी चीजों के लिए तरसते है।

इस गीत में किसान के जीवन का यर्थाथ चित्रण किया गया है। इसमें बताया गया है कि सबसे बुरी हालत आज किसान और मजदूरों की है। दीपावली जैसे त्यौहार पर सब अपने बच्चों के लिए खिल–खिलौने लाते हैं। लेकिन किसान के पास अपने बच्चों के लिए लाने को कुछ नहीं होता है। दीपावली के दिन भी वो रात की बची खिचड़ी को खाते हैं। गर्मियों के दिनों में तेज धूप के कारण लोगों का हाल बेहाल हो जाता है। उसी गर्मी में किसान पसीना बहात हुए कृषि कार्य करता है। उसके शरीर पर फटे कपडे और पैर में टूटी हुई जुतियाँ होती हैं। वह रात में देर से सोता है और सुबह जल्दी उठता है। फिर भी उसकी स्थिति दयनीय ही रहती है। तीस साल में ही वह कठोर परिश्रम करते–करते बूढ़ा हो जाता है। वह सबके लिए अन्न,कपड़ा तैयार करता है। फिर भी कोई उसका सम्मान नहीं करता :–

'कात्यक बडी या मावस आई दिन था खास दिवाली का
आंख्या कै मैं आंसू आग्ये देख्या घर जद हाली का
सबी पडोसी बालकां खातर खील खीलेने ल्यावैं थे
दो बालक हाली के बैठे उनकी ओर लखावै थे।'[8]

किसान की दयनिय दशा को देखकर हर किसी की रूह कांप उठती है। क्योंकि किसान का जीवन बहुत ही दुःखदायी होता है। ना समय पर खाना मिलता है ना पहनने को कपड़े मिलते हैं। दिन और रात इतनी मेहनत करने पर भी उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होती है। बडे परिश्रम से सबकी जरूरत की चीजे उगा कर देता है, फिर भी कोई उसका सम्मान नहीं करता है। जो इस गीत में बताया गया है :–

'देख रौंगटे खडे होगे या मेरी छाती धडकै
गरीब किसान की जिंदगी क्युकर बितै सै मर पडकै

गर्मी म्हं आकाश तन सै कोरी आग बरसै
पाटटी धोती टूटे लित्तर पेट म्हं आग सिलगै।'[9]

आर्थिक स्थिति का भी लोकगीतों में वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए कृषि प्रधान देश में कृषक जीवन की समूची तस्वीर मौजूद है। किसान की आर्थिक स्थिति कृषि पर निर्भर करती है। एक कृषक पत्नी के इस गीत को देखिए जिसमें वह फसल के बारे में जानना चाहती है ताकि अपनी आजीविका का पता लगा सके :–

'बाजरे की रोटी पोई रे हालीडा बथुआ को रांध्यो साग
बरसण लागी रे हालीडा बादली किसोक जाम्यो रै हालीडा बाजरो
किसीक जामी सै जुवार लम्बा तो सिरटा गोरी धन बाजरा।'[10]

जैसा की हमने जाना है कि अधिकतर जगह किसान खेती के लिए वर्षा के पानी पर निर्भर करता है। किसान वर्षा का इंतजार करता है कि कब वर्षा हो और वह खेतों में बिजाई का काम शुरू करे। कई बार बिजाई के बाद भी बारीश नहीं होती और बिना पानी के फसल सूख जाती है। एक गीत के माध्यम से किसान बादल से प्रार्थना करता है कि हे बादल तुम बरसों हमारे खेत सूख रहे हैं :–

'बादली तू चमकै क्यू ना हे बादली तू बरसै क्यू ना हे
म्हारे सूकै सारे खेत बादली तू बरसै क्यू ना हे
थलिया मैं सूकै बाजरो डहरां मैं सूकै जवार हे
बादली तू चमकै क्यू ना हे बादली तू बरसै क्यू ना हे।'[11]

किसान जो अपने साथ–साथ सम्पूर्ण समाज का पेट भरने के लिए धरती का सीना चीर कर उसमें बीज ड़ाल कर फसल पैदा करता है। जिस तरह से माँ अपने नवजात बच्चे की दिन देखभाल कर उसका पालन–पोषण करती है ठीक उसी तरह किसान भी उस बीज को बुंदों से सींच कर समाज का भरण–पोषण करता है। वो फसलों को उगाने के लिए गर्मी–सर्दी, बरसात, आंधी, तूफान आदि की परवाह किए बिना अपने कार्य में तल्लीन रहता है। अहीरवाल का किसान करने में सक्षम है। लेकिन इसके लिए उसे तमाम मुसीबतों व कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक गीत के माध्यम से किसान की मुसीबतों व समस्याओं को चित्रित किया है :–

'किसान की मुसीबत नै जाणै सै किसान
लूट, खसोट, मचावणियाँ तु के जाणै बेईमान
माह पोह के पाले म्ंह बी लगाणा पाणी हो
दिन रात रहे जा बंद पै कस्सी बजाणी हो।'[12]

वर्तमान दौर में किसानों के सामने नई–नई चुनौतियाँ आ रही हैं। उनके जीवन मूल्य भी बदल रहे हैं। सामूहिकता की संस्कृति की जगह बढ़ते औद्योगिकरण व मशीनी युग ने ले ली। जिसकी वजह से किसान व श्रमिक वर्ग के संबंध टूटते जा रहे हैं। अब मशीनों के आ जाने से किसानों को खेती के लिए अधिक लोगों की आवश्यकता नहीं है। एक व्यक्ति भी सारे खेतों को जोत सकता है। अब खेतों को जातने के लिए बैलों की आवश्यकता नहीं रही, क्योंकि उनके स्थान पर ट्रेक्टर आ गए। पहले जो उन पशुओं के साथ किसान व उसके परिवार का आत्मीय लगाव था,अब वो टूट गया है। अब व्यक्तियों के जीवन मूल्य वस्तु केन्द्रित होते जा रहे हैं।

यह एक तरह से खेती करने वाले तथा उन पर आश्रित कामगारों का बदलता रिश्ता है। वर्तमान दौर में खेती का क्षेत्र भी लगातार घटता जा रहा है। सरकार किसानों की उपजाउ जमीन का विकास के नाम पर अधिग्रहण कर रही है। एक गीत के माध्यम से इस समस्या का चित्रण किया है :–

'खुल्ले पण का खेल सै सारा सब दरवाजे खोल दिए
खेती आले खेत खोस कै अब मिट्टी के मोल दिए
कानून–कायदे थे जो सरकारी उन्हीं हवाले बोल दिए
आज हमारे हक राजा नै रद्दी के भा म्हं तोल दिए।'[13]

अहीरवाल खेतीहार क्षेत्र है। इस क्षेत्र में किसान से बढ़कर मेहनती एवं परिश्रमी अन्य कोई नहीं हो सकता। किसान खेतों में सिंचाई के लिए कुओं,नहरों या फिर कुओं पर रहट लगाकर पानी की पूर्ति करते हैं। इतनी मेहनत करने पर भी किसान की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती है। कभी ज्यादा बारीश होने के कारण फसल खराब हो जाती है तो कभी बारीश ना होने के कारण सूखा पड जाता है तो कभी देनदार शोषण करके किसान की हालत खराब कर देता है। इसलिए इतनी मेहनत के बाद भी उसका जीवन सुखमय नहीं रहता है। आये दिन किसान को नई–नई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

कृषि कार्यो में स्त्री की भूमिका :–

कृषि संबंधी पुरुष वर्ग के श्रम गीतों के उपरान्त स्त्री वर्ग के श्रम गीतों की चर्चा करना भी आवश्यक है। दिनचर्या से संबंधित चक्की–चरखे एवं पनघट के कार्यों के गीत संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इन गीतों में स्त्रियों द्वारा किये जाने वाले प्रतिदिन के कार्यों की झलक देखने को मिलती है। अहीरवाल क्षेत्र की औरते बहुत ही कष्टदायक जीवन व्यतीत करती है। दिन–रात परिश्रम करती हैं फिर भी खुश रहती हैं। ये औरते कठोर से कठोर समय को भी गीत गाकर व्यतीत कर देती हैं।

नीचे दिए गए गीत में स्त्री दिन रात खेतों में काम करती है। फिर घर आकर घर का सारा काम करती है जिससे वह परेशान हो जाती है। इस काम के होते वह ओढ़ना–पहरना भी ढंग से नहीं कर पाती है। जिससे वह अपने पति को कहती है कि अबकी बार खेत में मक्का नहीं बोना, पिछली बार मक्का का काम करते उसके पेट में जो दर्द हुआ था वो अब तक ठीक नहीं हुआ है। इसलिए अबकी बार इतना काम वह नहीं कर पाएगी। इस प्रकार देखा जाये तो स्त्री को पुरुषों से भी ज्यादा काम करना पड़ता है :–

'पांच पचास की नाथ घडाई पडगी लामणी पहरन ना पाई
सांझ ताई करी लामणी सांझ पडै घरां डिगराई
आगै सासू लडती पाई दिख्या कोन्या काम बख्त ना आई
सास मेरी नै मक्की री सुकाई उसनै पिसण मै बठाई।'[14]

स्त्री घर का काम करने के साथ–साथ खेत के कामों में भी हाथ बटती है। स्त्री पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती है। स्त्री किसी भी काम में पुरुषों से पीछे नहीं है। वह हर जिम्मेदारी को बखूबी निभाती है। लेकिन समाज में स्त्रियां फिर भी पुरुषों के बाद ही आती है। एक स्त्री का पति फौज में नौकरी करता है। उसके पास पैसा होता है फिर भी वह अपने परिवार के साथ खेत में काम करने जाती है। इसका उदाहरण नीचे दिया गया है :–

'राजा जी छुट्टी आयो ए माता कित गई बिमला नार
खेत मै गई सै रै वैका देवर जेठ सब साथ
खेत मैं गया सै ए मेरा सबतै आगै फेर
छरांती गेर दे रै गोरी छुट्टी आया भरतार
दराती ना गिरती ओ म्हारै यो जमीदारो काम।'[15]

निसन्देह श्रम किसान के जीवन का अभिन्न अंग है। इसी के आधार पर सारा समाज खड़ा है। अहीरवाल क्षेत्र में श्रम का बोलबाला है। इस क्षेत्र में पुरुष और महिलाएं कंधे से कंधा मिलकर कार्य करते रहते हैं। अहीरवाल क्षेत्र कृषि प्रधान होने के कारण यहाँ की महिलाओं और बालिकाओं को कृषि कार्य में अपना पूर्ण सहयोग देना पड़ता है। स्त्रियाँ घर–गृहस्थी के कार्य संभलने के साथ–साथ खेतों में भी पुरुषों का हाथ बटाती है। घर का काम खत्म करके फिर वह खेत में काम करने को जाती है। स्त्रियाँ हर एक क्षेत्र के कार्य में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अहीरवाल क्षेत्र के लोक जीवन का कोई भी कार्य लोक गीतों से अछूता नहीं है। लोक गीतों में अनेक प्रकार के श्रम गीत गाए जाते हैं। श्रम की थकान को दूर करने के लिए लोक गीतों ने भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

ऋण व ब्याज के कारण संघर्षमय जीवन :–

गरीब लोग पैसा नहीं होने पर अमीरों से कर्ज लेते हैं। ऋण या ब्याज लेते समय भूमि आदि को गिरवी रखना पड़ता है। कर्ज लेन–देन की यह प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। कर्ज चुका देने पर गिरवी रखी चीज वापस लौटा दी जाती है। ऋण और ब्याज देन लेन का काम ज्यादातर बड़े जमींदारों का रहा है। वे छोटे किसानों को ऋण या ब्याज देते और बदले में उनकी जमीन रख लेते थे। बेचारा किसान एक बार कर्ज लेने के बाद उसको चुका ही नहीं पाता था। जमींदार ब्याज पर ब्याज लगाकर उस कर्ज को कई गुणा बढ़ा देता था। किसान की सारी उम्र निकल जाती है,उस कर्ज को उतारने में पर वो कर्ज नहीं उतार पाता है। कई बार तो कर्ज के बदले जमीदार उसकी जमीन को ही हड़प लेता है। इस प्रकार से किसान का सारा जीवन ऋण व ब्याज चुकाने के लिए संघर्ष करते करते निकल जाता है। उसका जीवन बड़ी कठिनाईयों से गुजरता है।

कर्ज से दबे हुए किसान की करुण स्थिति को गीतों के माध्यम से अंकित किया गया है। ऋण व ब्याज के कारण उसकी जमींन उससे छीन ली जाती है, तो खेत का काम भी उसके पास नहीं बचता है। भूख से व्याकुल बालकों को देखकर पत्नी अपने पति से मजदूरी करने का आग्रह करती है। मूल से भी ज्यादा ब्याज चुकाने वाला किसान महाजनों के शोषण से तंग आ जाता है। ऐसे ही किसान और मजदूरों की स्थिति एवं जमींदारों और पूंजीपतियों द्वारा हुए शोषण का वर्णन इस गीत में किया गया है :–

'थम करजो सिर मत करियो ओ मन भरिया
यो करजा भहोत बुरा सै ओ मन भरिया।'[16]

किसान अपना सारा काम लेन–देन,तीज–त्यौहार, भात–छूछक, बच्चों की पढ़ाई की फीस, ब्याह–सगाई आदि सब फसल बेचकर ही करता है। लेकिन जैसे ही फसल जैसे ही निकलके आती है तो साहूकार अनाज लेने को आ जाता है। और अनाज लेके चला जाता है। इतना महंगा खाद बीज लगाकर भी उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ता है। उसे जो कुछ भी करना होता है वो सब कर्ज लेकर करना पड़ता है। ओर फिर सारा जीवन वह

उस कर्ज को उतारने में लगा देता है :–

'नाज बेचकै काम हुवै सब टाबर टीकर ब्याहने
माट्टी के संग माट्टी होज्या जिब हो सै दो दाने
भात अर छूछक आले टेले सारे फर्ज निभाणे
कबै कोठडी पडै बणाणी बालक साथ पढाणे।'[17]

अधिकांश किसानों के घरों में ऋण व ब्याज के कारण जितना कमाते हैं सब इनको चुकाने में चला जाता है। इतना ही नहीं ब्याज को चुकाने में किसान अपनी जमीन तक गिरवी रख देता है, फिर भी ब्याज नहीं चुका पाता है। सारा जीवन ठेकेदारों के कमाता–कमाता आखिर किसान मर ही जाता है। सरकार ने भी किसानों की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया, उन्हें कोई सुविधा उपलब्ध नहीं करवाई :–

'सारी कमाई जा ले थी ना सूद पाटै था
ठेठ गरीबी के मैं सारी उमर काटै था यो
शेर बणग्या स्यार बट्टा लग ग्या लाज म्हं
जमीन गिरवी धरली तेरी सब ब्याज ब्याज म्हं।'[18]

ऋण और ब्याज के कारण अब किसान के लिए खेती का कार्य करना नुकसान का हो गया है। इससे अच्छा तो कही मजदूरी कर ले तो सही है। खेतों में तो कही उसके सिर पर कर्जा रहता है तो कही बाढ़ के आ जाने से फसल खराब हो जाती है तो कही सूखा पड़ने से खराब हो जाती है। ऐसे में वो अपना ब्याज कैसे चुका पाएगा, इसलिए अब वह खेती के कार्य को छोड़ने की सोचने लगा है। उसके लिए खेती घाटे का सौदा हो गया है :–

'दब्या करज म्हं अन्नदाता इब किस्त जावै ना पाडी
घाटे का यो सौदा होरया इब खेती और बाडी
बखत पुराणा नहीं रह्या इब हाल बदलग्या सारा
टेम गया वो नेम गया वो बदलग्या ईब नजारा।'[19]

ऋण व ब्याज के कारण व्यक्ति का जीवन बड़ा ही संघर्षमय रहता है। कुछ भी घर का अन्य कार्य निकल जाए उसको कर्ज लेना पड़ता है। एक किसान को अपनी बेटी की शादी करनी होती है। तो अपनी जमीन और मकान गिरवी रख कर वह ब्याज पर पैसे लेता है। गीत के माध्यम से उसकी मनोदशा को दर्शाया गया है :–

'कर्जे दाखिल दे लाला मन्नै पूरे पांच सै
ब्याह करणा बेटी मेरी हुई जवान सै
कर दया दे दिए मांगू आज रूपये मैं
छटे महीने दे दयूंगा तेरे ब्याज रूपये मैं।'[20]

औद्योगिकरण के कारण अब खेतों की जगह कम्पनियों ने ले ली है। एक तो पहले ही किसान की दशा खेती से अच्छी नहीं चल रही, ऊपर से बची कसर इन कंपनियों ने पूरी कर दी। जो थोड़ी बहुत खेती की जगह थी वह कंपनियों ने खरीद ली। अब ना तो किसानों के पास खेत रहे ना खेतों में काम करने की मजदूरी रही। सबके चेहरे पर परेशानी दिखाई देती है। एक छोटे से काम के लिए भी कर्ज लेना पड़ता है। इस तरह के जीवन

से तंग आकर ये सब आपस में एक दूसरे के दुश्मन बन गए।

'खेत मजदूरी कम होगी और काम मिलता ना
बुसे-बुसे मुँह होगे चेहरा कदे भी खिलता ना
हारी बीमारी के कर्जे सरंला सिर पै लटकैं सै
गोली चला एक दूजे पै खुद फंदे पै लटकैं सैं।'[21]

निष्कर्ष :–

वर्तमान दौर में सरकार उपजाउ जमीन को बडे–बडे उद्योगपतियों को दे रही है। जिस से खेती की जोतें छोटी हो रही है। खेती घाटे का सौदा जानकर किसान खेती से पालायन करता जा रहा है। छोटी जोत में ही ज्यादा उत्पादन करके ज्यादा मुनाफा कमाने का दबाव भी किसान पर आता जा रहा है। इसलिए अब वह उद्योग–धन्धों पर निर्भर हो गया, जहां से उसका शोषण और बढ गया। जमीन को रबर की तरह नहीं बढाया जा सकता है। किसान के सामने एक ही सोच है कि ज्यादा से ज्यादा पैदावार करे। इसके लिए खेती की लागतों में नयी चीजे जुडती गई जैसे सिंचाई के साधन, उवर्रक, कीटनाशक, ज्यादा उपज देने वाले बीज, मशीन आदि नई लागते किसान खुद तैयार नहीं कर सकता था। इन्हें तैयार करने वाले उद्योगों की एक पूरी कतार खडी हो गई। इसके साथ ही किसान की आत्मनिर्भरता भी खत्म हो गई। अब किसान अपनी जरूरत के हिसाब से फसलें नहीं उगा सकता बल्कि उसे वे फसले उगानी पडती हैं जिनकी बाजार में ज्यादा मांग थी जाकि वह अपनी उपज बेचकर वह ज्यादा नकदी हासिल कर सके। इस प्रकार से किसान की खेती पर दूसरों का कब्जा हो गया और किसान दिन–रात ऋण व ब्याज के नीचे दबता चला गया। किसान का सारा जीवन इस संघर्ष में निकल जाता है कि किसी भी तरह वह इस ऋण व ब्याज के बोझ से मुक्त हो जाए।

सन्दर्भ :–

1. टी आर जैन, आर्थिक सांख्यिकी, वी. के. ग्लोबल पब्लिकेशन, पृ–61
2. शास्त्री, राजाराम, हरियाणा के लोकगीत, हरियाणा लोक सम्पर्क प्रकाशन, चण्डीगढ, पृ–59
3. स्वयं संकलित।
4. श्रीवास्तव, पुर्णिमा, लोकगीतों मे समाज, मंगल प्रकाशन, जयपुर, पृ–22
5. उप्रेती, डॉ कुन्दनलाल, लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ, पृ–53
6. शर्मा, मनोहर, लोक साहित्य की सांस्कृतिक परम्परा, रोशन लाल जैन एण्ड संस, जयपुर, पृ–64
7. धनखड़, राजबीर सिंह, हरियाणवी साहित्य में जीवन दर्शन, सुकृति प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ–88
8. मिश्रा, डॉ जे पी, भारतीय अर्थव्यवस्था, साहित्य भवन पब्लिकेशन, लखनऊ, पृ–55
9. श्रीवास्तव, पूर्णिमा, लोकगीतों में समाज, मंगल प्रकाशन, जयपुर, पृ–87
10. स्वयं संकलित।
11. स्वयं संकलित।
12. गुरुमैता, डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद, हरियाणा : कला व संस्कृति, ज्ञानवर्धन प्रकाशन, दिल्ली, पृ–114
13. शर्मा, डॉ केशोराम, गन्धर्व पुरुष लख्मीचन्द, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ–69

14. स्वयं संकलित।
15. भारद्वाज, डॉ. चन्द्रशेखर, हरियाणा : इतिहास,समाज, कला व संस्कृति, विश्व भारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ–193
16. स्वयं संकलित।
17. स्वयं संकलित।
18. शर्मा, डॉ रामविलास, लोक जीवन और साहित्य, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ–72
19. प्रभाकर, डॉ देवीशंकर, हरियाणा : लोक गीतों की धरती, उमेश प्रकाशन, दिल्ली, पृ–39
20. स्वयं संकलित।
21. राही, डॉ रविन्द्र कुमार, हरियाणा की लोक परम्परा, संजय प्रकाशन, हरियाणा, पृष्ठ–47

पत्राचार पता :–
सुनीता कुमारी,
फ्लैट नंबर : B-204, श्री श्याम सोसायटी
हुडा सेक्टर–3, रेवाड़ी, पिन कोड– 123401, हरियाणा, भारत
9416842598, 8053952283, sunitajataula@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 265-267
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Role of Yoga in Pain Management and Rehabilitation

Dr. Surjeet Singh Kaswan, Research Supervisor,
Mr. Vishal Dhaka, Research Scholar,
Faculty of Physical Education, Tantia University, Sriganganagar, Rajasthan.

Abstract :

Pain is one of the most common health challenges affecting individuals across different age groups and professions. Conventional medical treatments, while effective, often come with side effects or limited long-term efficacy. In recent years, Yoga has emerged as a holistic and non-invasive approach in pain management and rehabilitation. This paper explores the role of Yoga in alleviating chronic pain, accelerating recovery from injuries, and improving overall physical and psychological well-being. The study synthesizes theoretical insights, evidence from clinical research, and practical applications of Yoga in rehabilitation programs. Findings suggest that Yoga, when integrated with conventional therapy, can significantly reduce pain, improve functional mobility, and enhance quality of life.

Keywords : Yoga, Pain Management, Rehabilitation, Physical Education, Chronic Pain.

Introduction :

Pain, whether acute or chronic, impairs physical performance, reduces productivity, and negatively impacts the quality of life. Rehabilitation sciences have increasingly recognized the role of alternative and complementary therapies alongside conventional treatment. Among these, Yoga stands out as an ancient Indian practice integrating physical postures (Asanas), breathing techniques (Pranayama), and meditation (Dhyana), which collectively contribute to holistic healing.

Physical Education and sports sciences often deal with athletes and individuals suffering from musculoskeletal injuries, stress, and fatigue. Yoga provides a cost-effective, accessible, and scientifically validated approach to pain management and rehabilitation. This paper examines Yoga's physiological and psychological mechanisms in reducing pain and its role in rehabilitation practices.

Review of Literature :

Several studies highlight Yoga's efficacy in pain reduction :

- **Chronic Back Pain :** Sherman et al. (2011) reported that Yoga reduced functional disability and improved spinal mobility in patients with chronic low back pain.
- **Arthritis :** Cramer et al. (2013) concluded that Yoga interventions significantly improved pain, joint flexibility, and physical function in arthritis patients.
- **Post-Surgical Rehabilitation :** Research indicates that Yoga enhances circulation, improves respiratory capacity, and accelerates healing after surgery.
- **Sports Rehabilitation :** Studies in sports medicine emphasize the importance of Yoga in restoring flexibility, balance, and neuromuscular coordination.

Despite these findings, the integration of Yoga into mainstream rehabilitation programs remains limited due to lack of awareness and structured implementation.

Methodology :

This study adopts a qualitative and descriptive research design, based on secondary data from published articles, clinical studies, and Yoga therapy manuals. Comparative analysis was undertaken to evaluate Yoga's impact across different pain conditions and rehabilitation contexts.

Discussion :

1. Physiological Mechanisms :

- **Reduction of Muscle Tension :** Asanas enhance musculoskeletal alignment and reduce spasms.
- **Improved Circulation :** Yoga postures increase blood flow, aiding tissue repair.
- **Neuroendocrine Balance :** Pranayama regulates cortisol levels, reducing inflammation and stress-induced pain.

2. Psychological Benefits :

- Yoga promotes mindfulness, reducing anxiety and depression often associated with chronic pain.
- Meditation fosters positive coping strategies and improves emotional resilience.

3. Yoga in Rehabilitation :

- **Orthopedic Rehabilitation :** Asanas such as Bhujangasana (Cobra Pose), Setu Bandhasana (Bridge Pose), and Shalabhasana (Locust Pose) help strengthen back muscles and alleviate spinal pain.
- **Neurological Rehabilitation :** Breathing exercises and meditation improve neural plasticity, supporting recovery after stroke or nerve injuries.

- **Sports Rehabilitation :** Athletes practicing Yoga demonstrate enhanced flexibility, reduced injury recurrence, and faster recovery time.

Results :

The analysis indicates that Yoga :

- Reduces chronic musculoskeletal pain by 30–50% as reported in multiple clinical trials.
- Enhances functional mobility and physical performance in rehabilitation patients.
- Provides holistic recovery by integrating physical, mental, and emotional healing.
- Minimizes dependency on pharmacological treatments, thereby reducing side effects.

Conclusion :

Yoga serves as a highly effective complementary therapy in pain management and rehabilitation. Its multidimensional approach addresses not only the physiological aspects of pain but also the psychological and emotional burdens associated with it. Incorporating Yoga into physical education and rehabilitation curricula can empower patients, athletes, and the general population to achieve sustainable recovery and improved well-being.

Recommendations :

1. Integration of Yoga modules in physical education and rehabilitation programs.
2. Collaboration between physiotherapists, sports trainers, and Yoga therapists.
3. More empirical studies with larger sample sizes to establish standardized Yoga-based rehabilitation protocols.
4. Policy-level recognition of Yoga as a cost-effective therapy in healthcare systems.

References :

1. Sherman, K. J., et al. (2011). Yoga for chronic low back pain: A randomized trial. Annals of Internal Medicine, 155(9), 569–578.
2. Cramer, H., et al. (2013). Yoga for arthritis: A systematic review. Rheumatology International, 33(7), 1633–1642.
3. Field, T. (2016). Yoga research review. Complementary Therapies in Clinical Practice, 24, 145–161.
4. Woodyard, C. (2011). Exploring the therapeutic effects of yoga and its ability to increase quality of life. International Journal of Yoga, 4(2), 49–54.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 268-274
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी का स्त्री विमर्श : अल्पना मिश्र और के. आर. मीरा के कथा साहित्य के विशेष सन्दर्भ में

सजिना. एम
शोध छात्रा, हिंदी विभाग, सरकारी आर्ट्स एन्ड साइंस कॉलेज, मींचंदा, कालीकट, केरला।

साहित्य समाज का आइना होता है। समाज और साहित्य का आपसी सम्बन्ध बहुत गहरा और अटूट है। व्यक्ति और समाज साहित्य से अछूता नहीं है। ठीक उसी प्रकार साहित्य भी सामाजिक क्रिया कलापों से अछूता नहीं है। प्रत्येक समय का साहित्य आपने युग के परिवेश एवं परिस्थितियों को अपने में समेटे रहता है। सामाजिक गतिविधियों का साहित्य का तथा साहित्यिक विचार–विमर्श का विषय बनना स्वाभाविक है। साहित्यकार दीर्घदर्शी होता है। वह अपने समय के साथं चलते हुए भी समय के आगे रहता है। वह युगीन परिवेश के देखे–भोगे अनुभवों को सृजनात्मकता के जरिये अभिव्यक्ति का अवसर देकर उसे समाज के सम्मुख रखता है। साहित्यकार समाज का केवल हू–ब–हू चित्र ही नहीं दिखाता बल्कि सामजिक व्यवस्था में मौजूद खोट, न्यूनताएँ, अमानवीयता एवं संवेदनहीनता को फटकार लगाते हुए सामाजिक विसंगतियों के लिए कारक तत्वों की कटु आलोचना करते हुए त्रुटियों को सुधारने का प्रयास करता है। साहित्य सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करता है। साहित्य वह सशक्त अस्त्र है जिससे सामाजिक कटुताओं व विडम्बनाओं के प्रति असहमति जाहिर करता है। हमारे भारतीय समाज में आज भी परिधि से बाहर किये गए वर्गों की संख्या में बहुलता दिखाई देती है। स्त्री, आदिवासी, दलित, किन्नर, आदि इनमें शामिल है। इन हाशियेकृत वर्गों को मुख्यधारा में लाने और समाज में वांछित स्थान दिलाने का ही प्रयास साहित्यक विमर्श करता है। अल्पना मिश्र और के. आर. मीरा के कथा साहित्य में झलकते स्त्री विमर्श के विद्रोही तेवर को आंकते हुए पितृसत्तात्मक समाज द्वारा पीड़ित–प्रताड़ित, अपने ही वजूद से अनभिज्ञ, अपने अस्तित्व व महत्व से अनजान स्त्री जाती को समाज में यथोचित स्थान देने केलिए इन स्त्रीवादी लेखिकाओं द्वारा किए गए सराहनीय प्रयासों का विश्लेषण करना तथा स्थिर की उन्नति व उद्धार में इनके योगदान का अध्ययन करना इस प्रपत्र का लक्ष्य है।

स्त्री और पुरुष दोनों ही समाज की अभिन्न इकाई हैं। दोनों से ही समाज बनता है। समाज जीवंत रहता है। किन्तु स्त्री विरोधी दोहरे मानदंडों के चलते स्त्री और पुरुष को उनकी शारीरिक संरचना और बनावट के अलावा भी अन्य कई दोहरे मानदंडों के कारण उन्हें पृथक ही ठहराया गया है। भारतीय समाज पितृसत्तात्मक व्यवस्था का अनुगमन करता है। हमारा समाज पुरुष के हित में बनाये गए पुरुषवादी दृष्टिकोण का अंधानुसरण करता है। यहाँ स्त्री को पुंसवाद द्वारा परिभाषित किया गया है जो कि उनके जन्मजात रूप व गुणों से बिलकुल

मेल नहीं खाता। स्त्री कि पहचान किसी न किसी पुरुष से जुड़े बिना असंभव हैं। किसी की बेटी, माँ और पत्नी के रूप में ही उसकी पहचान होती हैं। अपने ही स्वत्व और व्यक्तित्व से वंचित अभागिन स्त्री जाती। जिसकी कोख से निर्मित उसी को विस्मृत करना। समाज और सनस्र की सृष्टिकर्ता किन्तु पराधीन व पहचान विहीन। पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री के ऊपर आदर्श और उदात्तता की छवि को थोपा गया है, उसकी जड़ें स्त्री के मन –मस्तिष्क में इतनी गहारी पैठ तक गढ़ गयी हैं कि इनसे बाहर आना खुद स्त्री के लिए दुष्कर बान गया है। वर्चस्ववाद स्त्री के ऊपर इस हद तक हावी हो चुकी है कि इन बेड़ियों को तोड़ने कि कोशिश करते हुए उसे यह कोई अपराध–सा लगने लगता है। यही तो उनकी जीत है। किन्तु निरंतर प्रयत्नों के फलस्वरूप स्त्री कि सोच व स्थिति में बड़े पैमाने पर परिवर्तन व प्रगति विद्यमान हैं।

हिंदी की महिला लेखिकाओं ने स्त्री विरोधी मुद्धों पर लेखनी चलाते हुए समाज में उपस्थित स्त्री विरोधी परिवेश व इनसे आतंकित स्त्री चित्त की विह्वलतों को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। पुंसवादी विचारधारा व दृष्टिकोण का खंडन करते हुए स्त्री के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण ही इंक लक्ष्य है। पुंसवादी समाज द्वारा स्त्री के आगे लगाए गए प्रतिबंधों व रूढ़िग्रस्त सोच के ऊपर अपने अस्तित्वबोध को जगाते हुए उसकी पहचान को बुलंद करना तथा अपने लिए वांछित स्थान की स्थापना करने में उनकी सहायता करना ही इन स्त्रीवादी लेखिकाओं का मुख्य लक्ष्य है। इन लेखिकाओं के कथा साहित्य में अनुभूति की प्रामाणिकता एवं जीवंतता पायी जा सकती है। स्त्री को उत्पीड़ित करने वाले कारक तत्वों का पुनर्पाठ करते हुए स्त्री के हित में सामजिक व्यवस्था का पुनर्गठन करना ही इन की साहित्यक सृष्टियों का मुख्य लक्ष्य है। पुरुष सन्दर्भ के बिना स्त्री की कल्पना तक करना असंभव बन गया है। स्त्री को कभी भी स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में देखना पितृक समाज को मंजूर नहीं है। जैसे स्त्री जन्मी ही पुरुष के छत्र छाया में पलने के लिए है। स्त्री को संपूर्ण रूप से अपने अधीनस्थ बनाने हेतु पुरुष मेधा समाज द्वारा साजिश रचने का सिलसिला तो युगों सचलता आया है। स्त्री को उदात्तता, नैतिकता, सनातन मूल्यों व आदर्शों की पट्टी पटाकर उसे सदैव अबला ठहरने की कोशिश की जा रही है।

भारतीय नारी को लेकर जनमानस में प्रतिष्ठित परम्परागत रूढ़ छवि में आज परिवर्तन दिखने लगा है। पुरुष लेखकों द्वारा स्त्रीवादी दृष्टिकोण को लेकर रचित साहित्य में स्त्री लेखिकाओं–सी अनुभूति की प्रामाणिकता नहीं होगी। भारतीय साहित्य को विशेषकर हिंदी साहत्य के इतिहास को देखा जाए तो पुरुष लेखकों द्वारा स्त्री के सन्दर्भ में बहुत कुछ लिखा गया है। किन्तु उनमें निहित अनुभूति केवल अनुमानित होती है। वह वास्तविकता से दूर होता है। पुरुष द्वारा स्त्री की संवेदनाओं को समझने की परिसीमा होती है। उसका कारण है उनका स्त्री न होना। पुरुष स्त्री के प्रति सहानुभूति और संवेदनशीलता जता तो सकता है किन्तु वह भोगे हुए यथार्थ के निकट नहीं आएगा। स्त्री की पीड़ा को केवल स्त्री भली–भाँति जान सकती है। जिस भेद भाव, अन्याय, अपमान, हीनता और हेयता अनुभव वह करती है उसका कारण है उस का स्त्री होना। स्वतंत्रता के पश्चात ही स्त्री विमर्श बलवत बना। इसका समग्र रूप में विकास तो १६वीं–२०वीं सदी में हुआ। नारी के अतीत के कटु अनुभवों से प्रेरणा .पाकर उसके आज और आने वाले कल को उसके अनुकूल उसके लिए हितकारी बनाने में इन लेखिकाओं की भूमिका कुछ कम नहीं है। स्त्री अपनी शारीरिक संरचना को मद्देनजर रखते हुए उसकी मानसिक प्रबलता को अनदेखा नहीं करना चाहिए। स्त्री की इसी मानसिक शक्ति पर कब्जा पाने के लिए तथा उसके दायरे निर्धारित

करने के लिए पारिवारिक स्तर से ही पृष्ठभूमि तैयार की जाती है।

आधुनिक नारी अपने स्वत्व को लेकर अत्यंत सचेत है। पुंसवादी व्यवस्था के परम्परागत, रूढ़, संकुचित मानसिकता का खंडन करते हुए अपना रास्ता स्वयं तय करती है। स्त्री जीवन की सार्थकता केवल विवाह या सन्तानोत्पादन पर नहीं टिकी है। इक्कीसवें सदी का हिंदी साहित्य ने विचार–विमर्श के द्वार खोल दिए। आज का साहित्य स्त्री जीवन की अनेक पहलुओं को उद्घाटित करता है, जैसे स्त्री पुरुष सम्बन्ध, वैवाहिक सम्बन्ध, घरेलू हिंसाएं, दहेज सम्बन्धी समस्याएं, कार्यक्षेत्र से सम्बंधित समस्याएं, यौन शोषण, आदिवासी स्त्री जीवन की समस्याएं, दलित स्त्री जीवन की समस्याएं आदि विषयों पर लेखिकाओं ने लेखनी चलायी।

नारी के अंतर्मन की अनकही बातें उसकी अनसुनी सिसकियों तथा अनचीन्ही पीड़ा की जीवंत अभिव्यक्ति अल्पना जी और मीरा जी के कथा साहित्य में मिलती है। सदियों से दबोचे रखे जाने पर एक इन दमितों के आंसुओं का दहाड़ के रूप में परिणत होकर विवशता की जगह विद्रोह का आना तो स्वाभाविक है ही। इन लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं के माध्यम से आधुनिक नारी की विह्वलताओं की प्रस्तुति की है। इनके नारी पात्रों में विविधता पायी जा सकती है। विवाह संस्था को नकारने वाले, शारीरिक व मानसिक संतुष्टि व संतृप्ति हेतु विवाहेतर यौन सम्बन्ध रखने वाली, वैवाहिक जीवन से नाखुश होकर सम्बन्ध विछेद करने वाली, अपने स्वतंत्रता और स्वाभिमान को सर्वाधिक महत्व देने वाली सशक्त नारी पात्र इनकी कहानियों की विशेषता है।

सदियों से नारी को अनेकों बर्बरता एवं भेदभाव का सामना करना पड़ा है। बाल विवाह, अनमेल विवाह, बहु विवाह, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, बलात्कार, कन्या भ्रूण हत्या/गर्भपात, शिक्षा से दूरी ऐसी अनेकों प्रतिकूल परिस्थितियों का उन्हें सामना करना पड़ा है। अर्थोपार्जन व आत्मनिर्भरता की कामना से शिक्षा–दीक्षा पाकर कार्यक्षेत्र की और निकलते नारी को कार्यक्षेत्र में भी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। इन दोनों स्त्रीवादी लेखिकाओं ने अपने साहित्य में स्त्री जीवन को उसकी समग्रता के साथ समेटते हुए उनके जीवन के हर पहलू को आंकने का प्रयत्न किया है।

इक्कीसवीं सदी की नारी हालातों के आगे मजबूर होकर समझौता नहीं करती, बल्कि वह अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने को भी तैयार है। स्त्री की अपने प्रति सजगता तो ठीक है किन्तु स्त्रियों क विषय में पुरुष वर्चस्ववाद का दृष्टिकोण अडिग होता है। इसी पुंसवादी दृष्टिकोण की जगह स्त्रीवादी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा करना इनका उद्धेश्य है। इनकी रचनाओं में चित्रित नारी पात्रों में गतिशीलता दीख पड़ती है। कहीं विवशता है तो कहीं अपने लिए विकल्प तलाशती नारी मिलती है। अपनी नियती स्वयं लिखने वाली सशक्त नारी पात्र इनके विशेषता है। इनका स्त्रीवादी साहित्य स्त्री विमर्श के नए प्रतिमानों का निर्माण करता है। स्त्री को बेदखल करने वाली पीड़ाएँ यहाँ विद्यमान है। अपने जीवन पूरा लगाम किसी और के हाथ में। कैसी विडम्बना है यह।

अल्पना मिश्र :–

स्त्री जीवन की ज्वलंत समस्याओं को अल्पना जी ने अपनी रचनाओं में यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है। नवीन भावबोध से भरपूर इनकी कह्यानियाँ पाठकों को सोचने पर विवश करने वाली है। पितृक समाज के बुनी हई जाल में फंसकर घुटती स्त्री की उलझनों को अत्यंत सूक्ष्मता के साथ विश्लेषित किया गया है।

इनकी 'मुक्ति प्रसंग' में अपनी मुक्ति के प्रथम पड़ाव के तौर पर आर्थिक स्वावलम्बन चाहते हुए घर के जिम्मों के साथ बाहर कार्य क्षेत्र को भी बखूब संभालती नारी के आगे उपस्थित पारिवारिक व सामाजिक विकृतियों

का चित्र प्रस्तुत है। कहानी में स्त्री मुक्ति की सिर्फ कामना की गयी है किन्तु वह तो अब भी बहुत दूर प्रतीत होता है। पारिवारिक व सामाजिक विसंगतियों के बीच घुटती स्त्री को, घर के भीतर पति की विकृत काम भावनाओं व आर्थिक स्वावलम्बन को लेकर जताई गयी नाखुशी, सबसे तंग आकर काम पर निकलते नारी की प्रतीक्षा में रास्ते में छिपे गिद्धों की कुत्सित मानसिकता का भी शिकार होने पड़ता है। इन सबके बीच संत्रस्त नारी को दिखाया गया है। मुक्ति के प्रसंग की असंभव तलाश करती नारी जाति।

'भय' में तो स्त्री के शारीरिक व मानसिक क्लेशों का चित्र प्रस्तुत किया गया है। साथ ही अनचाहे शारीरिक सम्बन्ध, मासिक चक्र से जुडी समस्याएं, गर्भ धारण, गर्भपात जैसे स्त्री चित्त को झखझोर कर देने वाली विसंगति का चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'कथा के गैर जरूरी प्रदेश' में पारिवारिक, वैवाहिक संबंधों की शिथिलता को दर्शाया गया है। अपने ही छात्रों के ऊपर भद्दी नजर डालते, पत्नी की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करते, कामलोलुप पति के हर बुरे बर्ताव को समाज के डर से सामाजिक मर्यादाओं के उल्लंघन ना करते हुए शादी बचाने हेतु चुपचाप सहन करती अरुंधती उन तमाम नारियों का प्रतीक है जो यौन शोषण व पुरुष के चरित्रहीनता को चुपचाप झेलती है। इन सबसे बहार आना जैसे कोई अपराध है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जड़ें स्त्री के भीतर इतनी गहराई तक छाई हई है कि वह यह समझ ही नहीं पा रही है कि क्या गलत और क्या सही है।

'अँधेरे सुरंग में टेढे मेढे अक्षर' : पुरुष मेधा समाज पीढ़ी दर पीढ़ी औरतों को अपना गुलाम बनाकर अपना काम साधता है। पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी इससे बराबर से आतंकित है। राजरानी देवी और विधु अलग –अलग पीडियों के होते हुए भी शोषण का बराबर से शिकार है। संसार का सब कुछ परिवर्तनशील है। किन्तु पुंसवादी दृष्टिकोण अपरवर्तित एवं अविचलित है। पितृक व्यवस्था द्वारा स्त्री के व्यक्तित्व व् जन्मजात अधिकारों के हनन का इस में चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'बेतरतीब' : समाज पुरुष को हर प्रकार की छूट देता है किन्तु स्त्री को अजीबो गरीब अनुशासन प्रणालियों में बंधे रहने की सीख देता है। पारिवारिक सम्बन्धो में उत्पन्न दरारें, पति पत्नी संबंधों में आये मूल्य च्युति, आपसी रिश्तों का विघटन तथा इन सब के संतानों के मन–मस्तिष्क पर प्रभाव आदि इस में चित्रित है। परिवार के भरण–पोषण हेतु निस्वार्थ प्रयत्न कर खुद को पूर्णतः समर्पित करने वाली औरतों को बदले में केवल तकलीफ ही मिलती है। पति का पराई औरत के पास वहले जाना, घर के अंदर आतंक मचा रखना अपनी ही माता पर बच्चों कि उपस्थिति में पिता द्वारा बदसलूकी करनी इन सबसे बच्चों के स्वभाव व सोच में परिवर्तन आता है। माता–पिता के असंतुष्ट वैवाहिक जीवन से तंग आकर स्वयं शादी न करने का फैसला इसका उदाहरण है।

'भीतर का वक्त': संकट की घड़ी में भी हिम्मत साधते हुए विद्रोही कदम उठाती बहादुर स्त्री को इस कहानी में प्रस्तुत किया गया है। ससुराल वालों की बदसलूकी के कारण समझौते की जगह स्वाभिमान को चुनकर ससुराल को पीछे छोड़कर आश्रय के लिए ने जन्मे बचे को लेकर मायके पहुँचती औरत के मायकेवालों के उदासीन व्यवहार पाकर मायके को भी पीछे छोड़कर अपन बच्चे को लेकर अपने लिए नए मंजिल की तलाश में निकलती है। नारी यहां यह सीख देती है कि औरतों को अपने दम घोटते संबंधों व सन्दर्भों से बेझिझक मुड़कर अपनेलिए नए विकल्प की तलाश में निकलना चाहिये। स्वयं से रू बा रू होना नितांत अनिवार्य है।

उनकी 'उपस्थिति' कहानी में शादी के पश्चात अपना समूचा अस्तित्व व पहचान खो बैठने वाली मामूली घरेलू औरतों के जीवन के यथार्थ को दिखाया गया है। शादी, घर–गृहस्थी, बाल–बच्चे इन सब का सिर्फ औरत के जीवन पर ही क्यों असर पड़ता है, जबकि इन सब में पुरुष का भी उतना ही हिस्सा होता है जितना स्त्री का। फिर केवल स्त्री पर ही ये सारे जिम्मे लागू होते होते है। पुरुष विवाहोपरांत भी अपनी इच्छानुसार जीवन बिताते है किन्तु विवाहोपरांत स्त्री का समूचा व्यक्तित्व ही बदल जाता है। प्रस्तुत कहानी में तो ससुरालवालों के दबाव में आकर स्त्री को अपना नाम तक बदलना पड़ता है। नाम किसी भी व्यक्ति की पहचान का द्योतक होता है। और वही नाम उससे छीनने का मतलब होता है उससे उसकी पहचान का हनन करना। वैवाहिक संस्था की पुंसवादी दृष्टिकोण के कारण संवेदनहीनता और अमानवीय व्यवहार का शिकार होती लाचारी औरतो की व्यथा का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया है। स्त्री किसी की पालतू नहीं है। उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व व व्यक्तित्व होता है। जिस पर जोर देना आवश्यक है।

'इस जहां में हम' कहानी में बड़ी ही बारीकी के साथ यह दिखाया गया है कि भारतीय समाज में स्त्री आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने पर भी व्यक्ति के रूप में स्वततन्त्र नहीं हो पाती। उसे अपनी कमाई का हिसाब पति को देना पड़ता है। उसके तनख्वाह का विशेष ख्याल रहता है सब को किन्तु उसकी मेहनत की किसी को कदर नहीं। कार्यक्षेत्र में भी स्त्रीयो को अनेकों मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। अपने सह कर्मचारियों द्वारा अश्लील बातों व छेड़छाड़ का उसे शिकार होना पड़ता है। घर के भीतर–बाहर उसका अपमान ही होता है जिसका कारण है उसका स्त्री होना। स्त्री चाहें कुछ भी कर लें लेकिन पुरुष मेधा समाज उसे स्वीकारने से कतराता है।

'कत्थई नली धारियोंवाली कमीज' एक ऐसी कहानी है जो पुरुष कि सामंती मानसिकता पर प्रहार करती नारी के विद्रोह को प्रस्तुत करती है। अपने पुराने प्रेमी का वापस आ जाने तथा उसके द्वारा उसकी संगिनी के रूप में चयनित होने से मना करती शुचि अपनी जज्बातों पैर काबू कर प्रेमी के स्त्री विरोधी दृष्टिकोण के कारण उसे दूसरा मौका देने से साफ मना करते हुए अपने व्यक्तित्व व गरिमा को जोर से पकड़ लेती है। जरूरी नहीं कि स्त्री सदा पुरुष द्वारा प्रदत्त मार्ग पर चले, उससे विचलित होकर एक विकल्प की तलाश करने का उसे भी पूरा अधिकार है।

इन सारी कहानियों में कहीं नारी उत्पीड़ित तो कहीं विद्रोही दिखाई देती है। अल्पना जी ने नारी की आत्मसंघर्षों की सूक्ष्म परतों को खोलते हुए उनकी कुंठाओं को बल्हूबी से प्रस्तुत किया है।

के. आर. मीरा :–

मीरा जी आधुनिक मलयालम साहित्य को अपनी विद्रोही चेतना से समृद्ध करने वाली एक सशक्त सामाजिक प्रतिबद्धता को मद्धेनजर रखते हुए लिखने वाली लेखिका है। इनका साहित्य अपने समय के यथार्थ को बेबाकी से प्रस्तुत करने वाला है। इनका स्त्रीवादी साहित्य स्त्री विरोधी शक्तियों के प्रति गंभीर रूप से आक्रोश करता है। ये अपने स्त्रीवादी साहित्य के जरिये स्त्री को लिंग भेद के आधार पर प्रताड़ित करने वाली पुंसवादी रणनीतियों की निर्मम आलोचना करती हैं। साहित्यकार जिन विषयों पर खुलकर बोलने लिखने से झिझकते है उन पर मीरा जी बेझिझक खुलकर लिखती हैं। इनकी कहानियों में 'व्यभिचारम' कहानी में स्त्री के प्रति प्रचलित सामाजिक विडम्बनाओं का चित्र प्रस्तुत किया गया है। स्त्री की यौन शुचिता, शुद्धता, और सर्वगुण संपन्न होने की मांग करता समाज पुरुष के विवाहेतर सम्बन्ध एवं अवैध, अनैतिक हरकतों को अनदेखा करता है। कहानी

पति के अवैध सम्बन्ध से टूटकर प्रतिशोध करने केलिए व्यभिचार करने को निकलती पत्नी के भीतर के आत्मसंघर्ष एवं पीड़ाओं का बखान करता है।

'सर्पयज्ञम' कहानी में आधुनिक युग में भी समाज में प्रचलित दहेज प्रथा व पति द्वारा उत्पीड़ित स्त्री की व्यथाओं को अभिव्यक्त किया गया है। इस में सर्प को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। सर्प यहां पति द्वारा पीड़ित, अपमानित नारी की दमित भावनाओं व इच्छाओं का प्रतीक बनकर आता है तो कभी पति द्वारा अनछुए उसकी संवेदनाओं को समझने वाले, उसकी हर चोट पर मरहम लगाने वाले एक काल्पनिक प्रेमी के रूप में। कहानीकार ने वर्तमान समाज में पुरुष द्वारा अपने पैरों तले रौंदी जा रही स्त्री की आत्मा को अभव्यक्ति प्रदान की है।

'मच्चाकाते तच्चान' में युगों–युगों से पितृसत्तात्मक सत्ता द्वारा स्त्री के ऊपर कस्ते आ रहे बंदिशों की लगाम को चित्रित किया गया है। औरत पर पुरुष का वर्चस्व तो चलता रहता है। पिता, पुत्र, पति यूं चलता रहेगा ये शोषण का सिलसिला। नारी को अपने अधीन बनाये रखने की ये कला तो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती आई है। भारतीय पितृक व्यवस्था बाल्यावस्था में ही पारिवारिक स्तर पर ही स्त्री पर पाबंधियाँ लगाने का कार्य शुरू किया जाता है। इनसे मुक्ति स्त्री के लिए असाध्य–सा बन गया है।

'ओरमायूडे नाराम्बु' में पारिवारिक स्तर पर उपेक्षा की पात्र बनी स्त्री का पुंसवाद की गुलामी से मुक्ति पाने के लिए आत्महत्या करने की कोशिश व गलत नस में चोट पहुँचने पर याददाश्त खो बैठने की विडम्बना को दिखाया गया है। अस्तित्वविहीन और पहचान विहीन होने से तो बेहतर याददाश्त खो बैठने को बेहतर मानकर जीने वाले औरत अपनी नियती से समझौता कर जीवन बिताने को अभिशप्त तमाम नारियों का प्रतिनिधि है।

'स्ववर्ग सांगडांगाल' में स्त्री द्वारा पुरुष के अहम् को चोट पहुँचाने का प्रसंग है। कहानी में स्त्री द्वारा पुरुष के अहम् को तोड़ने की बात से प्रचंड रूप धारण करने वाला पुरुष सारा दोष स्त्री को देता है। स्त्री जब पुरुष मेधा समाज को फटकार लगाती है तब वह चरित्रहीन बन जाती है, परिवार और परवरिश को दोष दिया जाता है। कहानी में स्त्री के मुँह से 'लिंग' शब्द सुनकर, पुरुष के वर्चस्व को तोड़ने की बात सुनकर हंगामा मचाने वाला पुरुष यह जानकार हैरान रह जाता है कि उसकी पत्नी और माशुका का भी यही ख्याल है। अर्थात हर स्त्री पुंसवाद की विकृत मानसिकता से मुक्ति की चाह रखती है। किन्तु इसका खुलासा करते कम लोग है।

स्त्री को सभी बंधनों एवं पूर्वाग्रहों से मुक्त करना और मानव रूप में प्रतिष्ठित करना ही स्त्रीवाद का लक्ष्य है। दोनों ही लेखिकाएं अपने स्त्रीवादी दृष्टी के जरिए एक ऐसी व्यवस्था की मांग करती है जहां स्त्री के प्रति व्यापक दृष्टिकोण हो, सम्मान हो। स्त्री मुक्ति का प्रश् केवल स्त्री की मुक्ति नहीं बल्कि समूचे मानव जाति की मुक्ति का है। स्त्री जीवन में भरे अवसाद के कारण को दूर करना ही इनकी साहित्यक सृष्टियों का मुख्य लक्ष्य रहा है। सामजिक, पारिवारिक, शैक्षणिक,आर्थिक स्तर पर स्त्री को बराबरी का अधिकार दिलाना और हर क्षेत्र में उनकी साझेदारी को सुनुश्चित करना हीं स्त्री विमर्श का मंशा है। समय की मांग के अनुरूप लिखने की आवश्यकता को दोनों ही लेखिकाएं भली भाँती समझती है। स्त्री लेखन को मिल रही स्वीकार्यता से ही स्त्रीवाद की प्रासंगिकता का अनुमान लगाया जा सकता है। आज की नारी अपने अस्तित्व को लेकर सजग है सचेत है। इस बदलाव में साहित्य की भूमिका अविस्मरणीय है। नारी को सावधान करने में स्त्रीवादी साहित्य एवं स्त्री विमर्श का बहुत बड़ा हाथ रहा है। स्त्री के आत्मसम्मान को सर्वोपरि प्रतिष्ठित करने में तथा स्त्री को मुक्ति के पथ की

ओर अग्रसर करने में तथा आज स्त्री का जो विद्रोहीपन दिख रहा है ये अब स्त्री विमर्श व स्त्री चेतना को लेकर सृजित स्त्रीवादी साहित्य का स्थान उल्लेखनीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. हिंदी महिला कहानी लेखन–स्त्री जीवन के विविध आयाम, डॉ बनजा तालदी, प्रथम संस्करण २०२१ ई, विकास प्रकाशन। कानपुर – २०८०२७, पृ. सं. 17
2. वही, पृ. सं. 83
3. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, जगदीश चतुर्वेदी, २०१८, अनामिका पब्लिशर्स एन्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा) लिमिटेड, नयी दिल्ली ११०००२, पृ. सं. 195
4. वही, पृ. सं. 196
5. इक्कीसवीं सदी की लेखिकाओं की कहानियों में स्त्री विमर्श, डॉ जी पद्मावती, प्रथम संस्करण २०२१ ई, विकास प्रकाशन, कानपुर २०८०२७, पृ. सं. 19
6. वही, पृ. सं. १२२
7. अल्पना मिश्र एक शिनाख्त। 2022 सम्पादक, अर्चना त्रिपाठी ,प्रलेक प्रकाशन (प्रा) लिमिटेड, नयी दिल्ली ११००४४ पृ सं, 39
8. छावनी में बेघर, अल्पना मिश्रा, २००८ दूसरा संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली ११००३२, पृ.सं. 9
9. वही, पृ. सं. 110
10. भतर का वक्त, अल्पना मिश्र, दूसरा संस्करण २००६, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली ११००३२, पृ. सं. 9
11. वही, पृ. सं. 27
12. वही, पृ. सं. 97
13. ओरमायुडे नारंबु, के आर मीरा, २००२, करंट बुक्स त्रिशूर।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 275-280
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साठोत्तरी हिंदी लेखिकाओं की कहानियों में चित्रित नारी के अलग–अलग रूप

प्रा. सुषमा बाळाराम खोत
भाऊसाहेब नेने कला, विज्ञान और वाणिज्य महाविद्यालय, पेण, रायगड।

प्रस्तावना :–

समकालीन हिंदी कहानी में महिला कथाकारों का योगदान अभूतपूर्व रहा है। उनकी कहानियों में विद्रोह, आक्रोश एवं कलात्मक सहजता की लय मिलती है।

साठोत्तरी काल की नारी का कार्यक्षेत्र बदल गया है। जीवन की परिस्थितियों में बदलाव आया है और लेखिकाओं के अनुभव क्षेत्र भी व्यापक हुए हैं इसलिए कहानियों में भी विविधता दिखाई देती है। परंपरागत स्त्री दृष्टि ही थी और स्त्री अपने आप को पुरुष द्वारा बनाए हुए दृष्टि से ही देखती थी।आज स्त्री की अपनी दृष्टि विकसित हो रही है और वह अपनी संवेदनाओं का स्वयं अनुभव करने लगीं हैं। इन सारी बातों की अभिव्यक्ति कहानियों के माध्यम से होने लगी है।

साठोत्तरी हिंदी लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में नारी के अनेक रूप चित्रित किए, जिनमें पारंपरिक स्त्री के संघर्ष, शोषण के विरुद्ध विद्रोह, और आर्थिक व सामाजिक चुनौतियों का सामना करती आधुनिक नारी शामिल है। लेखिकाओं ने पारिवारिक घुटन से लेकर आत्म–अस्तित्व की खोज तक और शिक्षा व आर्थिक स्वतंत्रता के माध्यम से अपने अधिकारों के लिए लड़ने वाली नारी का सजीव चित्रण किया है। उन्होंने नारी के मानसिक और शारीरिक शोषण के साथ–साथ प्रेम और दांपत्य जीवन के जटिल रूपों को भी मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रस्तुत किया है।

निरुपमा सेवती, मृदुला गर्ग, मेहरुन्निसा परवेज, ममता कालिया, चित्रा मुद्‌गल, सुधा अरोड़ा, राजी सेठ, कृष्णा अग्निहोत्री, मंजुल भगत, मृणाल पांडे, दीप्ति खण्डेलवाल जैसे महिला रचनाकारों की कहानियों का दायरा अधिक विकसित हुआ है और स्त्री चरित्रों के अनेक रूप उभरकर सामने आए हैं।

जिसका चित्रण निम्न प्रकार से है –

अकेली : मन्नू भंडारी –

मन्नू भंडारी आधुनिक काल की प्रमुख रचनाकार है। 'अकेली' कहानी इनके द्वारा रचित एक लोकप्रिय और स्मरणीय कहानी है। नारी मन की पीड़ा और अकेलेपन की त्रासदी का मर्मस्पर्शी चित्रण इस कहानी में हुआ है। आज का मनुष्य रिश्तों की टूटन और एकाकीपन का बोझ लेकर जी रहा है। वृद्धों की समस्या और अवस्था

की ओर भी यह कहानी संकेत करती है। कहानी की मुख्य पात्र सोमा बुआ जीवन भर असहाय और अकेली रह जाती है।

सोमा बुआ के एकमात्र पुत्र 'हरखु' की मृत्यु के पश्चात उसके पति संन्यासी होकर हरिद्वार चले गए थे। यों हर साल एक महीने के लिए उनके पति उनके पास आकर रहते थे। "उन्होंने कभी पति की प्रतीक्षा नहीं की, उनकी राह में आंखें नहीं बिछाई जब–तक पति रहते, उनका मन और भी मुरझाया हुआ रहता।" बुआ पड़ोसियों से अच्छे संबंध बनाए रखकर अकेलेपन से राहत पाने का प्रयास करती है। किसी के यहां शादी हो, मुंडन हो, छठी हो अथवा गमी हो इन सब में शामिल ही नहीं होती थी बल्कि आवश्यकता अनुसार काम भी करती है। बुआ का सहज स्वभाव उनके पति को पसंद नहीं आता था। वह बुआ को निरंतर डांटते, फटकारते थे। पति का स्नेहहीन व्यवहार और पति द्वारा लगाए जाने वाला अंकुश उन्हें कष्ट देता है। बुआ को लगता कि वह मर्द वाली होकर भी बेमर्द की है। उसे ही सब निभाना पड़ता है।

जिन दिनों उनके पति आए हुए होते थे, उसी समय सोमा बुआ के दूर के किसी रिश्तेदारी में ब्याह था। बुआ शादी में अच्छी भेंट वस्तु लेकर जाना चाहती है, टूटे रिश्ते को फिर से जोड़ना चाहती है लेकिन उनके पति उसे साफ निर्देश देते हैं कि जब–तक उनके घर से न्योता न आए सोमा बुआ वहां नहीं जाएंगी। बुआ न्योते का इंतजार करती है साथ ही मन में न्योते की प्रसन्नता लिए ब्याह में भेंट देने के लिए अपने मरे हुए बेटे की एकमात्र निशानी 'सोने की अंगूठी' भी बेचती है– "उसे उठाते समय उनका दिल धड़क गया, बड़े–बड़े आर्थिक संकटों के समय में उसे अंगूठी का मोह नहीं छोड़ सकी थी।" अपने हाथों में लाल–हरी चूड़ियां पहन कर जाने वाली साड़ी को पीला रंग मांड कर बुआ पांच बजे के मुहूर्त के निमंत्रण का इंतजार करने लगती है। दूसरे दिन सुबह से लेकर शाम तक बुआ प्रतीक्षा करती है, परंतु बुलावा आता ही नहीं। वह सोचती है– "पर सात कैसे बज सकते हैं मुहूर्त तो पाँच बजे का था।" बुआ को अब समझ में आता है कि गरीब के रिश्ते नहीं होते।

आज न जाने कितनी सोमा बुआ :–

हमारे आस–पास हैं और अपने अकेलेपन से लड़ रही है और दूसरों की खुशी में अपने को खुश रखने का भ्रम पालकर पास जी रही हैं। 'एकाकीपन' सोमा बुआ के जीवन का अटूट हिस्सा बन गया है। बेटे की मृत्यु, पति की बेरुखी और संन्यास से बुआ का भाव विश्व और सामाजिक भूमिका ही तहस–नहस हो गई हैं। बुआ को आजीवन अकेलेपन का अभिशाप भुगतना पड़ा है। इस कहानी में मन्नू भंडारी जी ने सोमा बुआ का चरित्र–चित्रण बहुत ही संवेदनापूर्ण ढंग से चित्रित किया है।

तपिश के बाद–दीप्ति खण्डेलवाल :–

इस कहानी में लेखिका ने कामकाजी महिलाओं की समस्या पर प्रकाश डाला है। आज के जमाने में कामकाजी नारी को दोहरे तनाव का किस तरह शिकार होना पड़ता है वह दीप्ति खंडेलवाल जी ने इस कहानी में बड़े अच्छे ढंग से वर्णित किया है।

इस कहानी में आनंद और सुमी पति–पत्नी हैं। आनंद एल. आय. सी एजेंट है तो सुमी बैंक में काम करती हैं लेकिन उसके पति आनंद उसकी घर में कोई मदद नहीं करते। सुबह लड़के को स्कूल के लिए तैयार करना, उसका टिफिन, पति की मदद, उसका खाना बनाना तथा खुद बैंक के लिए तैयार होना यह सब करते–करते बेचारी थक जाती हैं। कभी–कभी उसका मन द्वंद्वी हो उठता है वह सोचती है, "एक रूटीन बाय को झेलती

मैं जब दरवाजे तक आती हूं तब मन में विचार आता है, घर ही ना लौटूं। जीवन के नीरस ढर्रे के बीच कुछ पलों की मिठास के लिए छटपटाता मन विद्रोह करने लगता है। न चाहते पर भी मैं सोचने लगती हूं आखिर मैं भी कमाती हूं, फिर इस छटपटाहट का प्रतिकार क्यों न लूं?" पति से थोड़ा प्यार मिलने की उसकी इच्छा पूरी नहीं हो पाती अपने पति द्वारा इग्नोर किए जाने पर एक अतृप्ति का दंश लिए वह छटपटाती रहती हैं। देह सुख के अलावा एक मानसिक सुख की अभिलाषा उसे अपने पति से हैं लेकिन वह सोचती है कि बार–बार ऐसे क्षण आते हैं जब उसका नारी मन समर्पण के फूल लिए पति की ओर बढ़ता है, टकराकर बिखर जाता है।

अपनी सहेली सविता के उन्मुक्त व्यवहार को देखकर सुमी का मन भी द्वन्द्वात्मक होता है, "आज मैं भी आराम से घर लौटूंगी, आखिर मेरे भी कुछ अधिकार है। कटे उड़ते बालों के साथ उड़ती–फिरती सविता की तुलना में मुझे अपना बंधा जूड़ा एक बंधन–सा असहय लगने लगता है। जी चाहता है कि रास्ते में ही किसी हेयर–ड्रेसर के यहां उतर जाऊं और अपने इन लंबे केशों का बल्हान कांट फेंकू लेकिन केश काट फेंकने से ही क्या होगा? उन बंधनों का क्या होगा जो मेरे नारी मन की अपनी ही विवशताएं है।

घर देर से आने पर पति आनंद की सख्त नजरों का सामना उसे करना पड़ता है। पति से जब झगड़ा होता है, तब पतिदेव जबान लड़ने के जुर्म में तडातड़ पीटने लगते हैं। पति–पत्नी के झगड़े में जब लड़का टीटू बीच–बचाव करता है तो थोड़ी देर बाद पति–पत्नी को अपनी गलती का अहसास होता है।

इस प्रकार से कामकाजी महिला को दोहरी भूमिका निभाते समय कई बार द्वंदात्मक स्थिति से गुजरना पड़ता है। कभी वह मन के अंतर्द्वंद्व में उलझती हैं तो कभी पारिवारिक द्वंद्व का सामना उसे करना पड़ता है। एक बहुत ही स्वाभाविक स्थिति पर लिखी गई यह एक सुंदर कहानी है। लेखिका ने सुमी के मन के द्वंद्व को बड़ी खुबी से पेश किया है।

हरी बिंदी–मृदुला गर्ग :–

मृदुला गर्ग की यह कहानी आज की आधुनिक नारी की घुटन, अपनी शर्तों पर जीने की चाहत और परंपरा के बंधन से मुक्ति की तलाश को दर्शाती है, जिसमें हरी बिंदी महिला की परिवर्तित, मुक्त चेतना का प्रतीक है।

आज नारी हर क्षेत्र में पुरुष की बराबरी कर चुकी है, फिर भी उसे पति के अनुशासन में रहना पड़ता है, इसलिए वह घुटन महसूस करती है और अवसर मिलते ही अपनी नितांत वैयक्तिक जिंदगी बिताने का प्रयास करती है। इस कहानी को पढ़ते–पढ़ते हुए बार–बार जेहन में यह सवाल उठता है कि क्यों एक स्त्री को हमेशा पुरुष के अनुसार ही चलना पड़ता है? एक स्त्री को अपने अनुसार एक पूरा दिन बिताने को कभी नहीं मिलता। अब नारी अपनी इच्छा और अस्तित्व के प्रति सजग हुई है। ऐसी ही नारी इस कहानी में दिखाई देती है।

कहानी की स्त्री का पति एक दिन दिल्ली जाने के कारण उसे आजादी मिलती है। उस आजादी का सदुपयोग वह अपनी मर्जी से करना चाहती है। अपने पति के साथ जीते वक्त अपनी इच्छा के अनुसार वह कुछ कर नहीं पाती थी। वह सुबह देर से उठती है ठंडे पानी से नहाती है और नीले कपड़े पहनकर मैचिंग न करते हुए,'हरी बिंदी' लगाकर अकेले ही घूमने निकलती है।

कहानी के नायिका को टैक्सी में बैठकर सर्वप्रथम सुझता है– 'जहांगीर आर्ट गैलरी' स्वतंत्रता या स्वच्छंदता का एहसास सर्वप्रथम स्त्री को अनायास ही कला की ओर खींच ले जाता है। सड़क के किनारे एक

रेस्तरां को देखकर उसे याद आती है कि उसे जोरों की भूख लगी है। एक गरमागरम टिकिया की प्लेट और एक साथ आइसक्रीम खाने की ऑर्डर देती है। रेस्तरां से बाहर निकलकर युवती की सोच पिक्चर देखने के बात आती है। वह पति के पसंद के विरुद्ध की पिक्चर देखने जाती है। सिनेमाघर में पिक्चर देखने के दौरान मजाकिया दृश्य पर अपनी हंसी के उन्मुक्तता को बंधन में बांधे बगैर सिनेमा का पूरा आनंद लेती हैं। बाद में वह सिनेमाघर में मिले एक पुरुष के साथ होटल जाती है। आम पुरुषों की तरह वह पुरुष इस स्त्री के साथ न रूमानी बातें करता है न उसके पति आदि के बारे में पूछता है। पुरुष की यह आदत उसके मन को छू जाती है क्योंकि उसे पति के नाम से अपना परिचय देना अच्छा नहीं लगता था। पुरुष ने उसके 'हरी बिंदी' को महत्व दिया था। हरा रंग उल्हास और उमंग का प्रतीक है। हरी बिंदी मन के हरेपन का प्रतीक है।

आज वह वे सारी बातें करना चाहती है जो पति के रहते नहीं कर पाती।वह पति की सत्ता से अलग, अपनी पसंद की वैयक्तिक जिंदगी एक दिन क्यों न हो जीने का प्रयास करती है। रोजमर्रा की यंत्रवत जिंदगी से वह निजात पाती है और बाद में घर लौट आती है।

यह कहानी बताती है कि कैसे आज की नारी अपने दांपत्य जीवन के बंधनों से मुक्ति चाहती है और अपनी शर्तों पर जीना चाहती है, लेकिन साथ ही वह अपनी मर्यादा भी जानती है। कहानी नारी के विद्रोही मन और अपनी पहचान स्थापित करने के प्रयास को भी दर्शाती है। वह और उसकी 'हरी बिंदी' नारी की बदलती मानसिकता का सशक्त प्रतीक है।

खोज-मंजुल भगत :-

'खोज' मंजुल भगत की एक ऐसी कहानी है जिसमें एक कामकाजी नारी का चित्रण किया गया है जो दैनिक जीवन की आपाधापी में भी अपने अस्तित्व और सत्व की खोज करती रहती है।

इस कहानी का नायिका मिसेज नीलिमा वर्मा। वह एक 'क्रिएटिविटी एडवरटाइजिंग एजेंसी' में कॉपीराइटर है। उसके पति मिस्टर वर्मा की राय यह है कि, 'यह नीलिमा, मेरी पत्नी भई! आई. एम. रियली वेरी–वेरी लकी, घर और बाहर दोनों दक्ष!' ऐसी पत्नी को पाकर मिस्टर वर्मा अपने–आपको बड़ा धन्य समझते हैं। वह घर और नौकरी की दोहरी जिम्मेदारी से व्यस्त है। जीवन की आपाधापी में वह अपने भीतर के 'मैं' को ढूंढना चाहती है। उसे 'स्व' की तलाश है। वह अपने आस–पास के परिवेश में अपने–आपको खोजती है।

दफ्तर से घर पहुंचने के बाद ऑफिस की मिसेज वर्मा नीलिमा बनकर घरेलू कामकाज निपटाती हैं, पति के लिए वह सिर्फ नीलू बनती है। वह सोचती है 'नीलू भी केवल 'मैं' रह जाएगी.... यह मैं हूं मिसेज वर्मा और नीलिमा से भी अधिक महत्वपूर्ण, केवल 'मैं' अनाम किंतु फिर भी 'मैं'! कभी–कभी तो उसे ऐसा लगता है जैसे 'उसका कोई नीचे अस्तित्व ही नहीं है, मिसेज वर्मा, नीलिमा नीलू सब अलग–अलग नाटक में किए गए अलग–अलग रोल है। 'उसके अंदर का जो 'मैं' है उसका रोल क्या है?' नीलिमा की त्रासदी यही है कि वह अपनी जिंदगी को अपने अनुरूप नहीं जी पाती। इस प्रकार जीवन में सतत स्वयं को खोजने वाले नीलू की यह तृष्णा उसी समय शांत हो जाती है जब वह एक बच्चे की मां बनती है। नवजात शिशु को देखकर वह सोचती है–यही है क्या वह 'मैं' जो पकड़ाई में नहीं आ रहा था। क्या मैं इसे ही खोजती रही थी?'

'स्व' की खोज में बेचैन रहने वाली नीलिमा 'मातृत्व' को ही मैं समाज का संतुष्ट होती है।

वास्तव में मातृत्व की प्राप्ति स्त्री के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण अंश है, परंतु मातृत्व ही व्यक्तित्व की पूर्णता

है ऐसा मानना गलत है। व्यक्तित्व की खोज आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है जो कभी समाप्त नहीं होती। नीलिमा को मां बनने के बाद लगता है कि उसकी स्व की तलाश पूर्ण हुई है। वह श्स्वश की खोज को मातृत्व वह में ही पूर्ण मानती है। उसके इस निर्णय से उसका संतुलित रूप दिखाई देता है।

ढाई आखर प्रेम का–मालती जोशी :–

'ढाई आखर प्रेम का' कहानी में एक ऐसे आदर्श नारी का चित्रण किया गया है, जिसने अपना संपूर्ण जीवन अविवाहित रहकर अपने प्रेमी के लिए अर्पित कर दिया। नारी के त्याग, समर्पण और बलिदान की यह कहानी एक ऐसे आदर्श की स्थापना करती हैं जो अपने आप में अतुलनीय है।

इस कहानी की त्यागी और तपस्विनी नारी का नाम है जयंती शास्त्री। वह कॉलेज में इतिहास की प्राध्यापिका है। जयंती अधिक समय कॉलेज में बिताती है तभी उसका परिचय दलजीत चौहान से हुआ। राजपूत जाति के इस युवक के व्यक्तित्व पर जयंती कुछ इस प्रकार रीझ गई कि उसे अपना दिल दे बैठी। दलजीत उससे शादी भी करना चाहता है पर हर बार जयंती ने ही मना किया क्योंकि दोनों अलग–अलग जात के होने से जयंती दलजीत को उनके माता–पिता से अलग नहीं करना चाहती है पर दलजीत अपने निर्णय पर अधीग रहा।

इन्हीं दोनों बंगला देश का मुक्ति संग्राम छिड़ गया दलजीत मिलिटरी से आठ दिन की छुट्टी लेकर आया था पर जैसे ही वह जंग पर गया दुर्भाग्य से उसके सिर्फ कपड़े ही लौटे। वह जंग में शहीद हुआ इस समाचार से जयंती दुःखी होती है पर अपना दुःख भूलकर दलजीत के माता–पिता की सेवा में खुद को समर्पित कर देती है। अपने प्रेम के खातिर वह आजीवन कुंवारापण अपनाकर अपने प्रेम को अमर रखती है।

इस तरह कहानीकार ने जयंती के माध्यम से भारतीय नारी की प्रतिमूर्ति को ही साकार किया है। साथ ही नारी में कितनी उच्चकोटि की त्याग भावना होती है इस और कहानीकार ने संकेत किया है।

लेखिका की प्रवृत्ति यह है कि आज की पढ़ी–लिखी युवती में भी त्यागमय जीवन अपनाकर अपना अपना आदर्श सिद्ध करने की हिम्मत हो सकती है।

निष्कर्ष :–

इन कहानियों के अध्ययन के पश्चात यह समझ में आता है कि साठोत्तरी हिंदी लेखिकाओं की कहानियों में चित्रित नारी स्वतंत्रता की पक्षधर है। वह नारी व्यक्तित्व की रक्षा के लिए प्रयत्नशील है। आर्थिक आत्मनिर्भरता, शिक्षा, सामाजिक जागृति, पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव, परिवेश परिवर्तन आदि के कारण नारी में नया आत्मविश्वास निर्माण हुआ है। वह स्वावलंबी और स्वयं पूर्ण बनकर अपने निर्णय के कारण नारी में नया आत्मविश्वास निर्माण हुआ है। इसके कारण परिवार, पारिवारिक संबंध और समाज में संघर्ष करती, टूटती, बिखरती तो कही अपने आप को स्थापित करके नारी का रूप कहानियों में उभर रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. दीप्ति खंडेलवाल, नारी मन, 'तपीश के बाद'–पृष्ठ क्र–161, 162, 163, 164.
2. मन्नू भंडारी, प्रतिनिधि कहानियाँ, 'अकेली' राजकमल प्रकाशन, 1–बी नेताजी सुभाष प्रा. लि. मार्ग, नई दिल्ली–110 002 द्वारा प्रकाशित, पुनर्मुद्रित–1993,1997. पृष्ठ क्र. 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37.

3. के. एम. मालती, साठोत्तरी हिंदी कहानी, लोकभारती प्रकाशन 15–ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद–1. प्रथम संस्करण 1991.
4. डॉ. मीना जोशी, प्रतिनिधि महिला कहानीकारों में चित्रित नारी, शैलजा प्रकाशन 57–पी, कुंज विहार–2 (यशोदानगर) कानपुर–208 011.
5. मंजुल भगत, खोज, गुलमोहर के गुच्छे, पृ. सं–10, 11.
6. मालती जोशी, मालती जोशी की कहानियाँ, ढ़ाई आखर प्रेम का।

ई–मेल आयडी–Sushmakhot88@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 281-288

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संवेदनहीन होती मनुष्यता और हिन्दी कविता की भूमिका

डॉ. वी पद्मावती
हिन्दी विभागाध्यक्ष, पीएसजीआर कृष्णम्माल महिला महाविद्यालय, कोयम्बत्तूर–4

शोध सार :–

कविताओं के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं को सशक्त रूप से अभिव्यक्ति दी जा सकती है। लेकिन जब मनुष्यता संवेदनहीन होती तो उसका भी चित्रण कविताओं के माध्यम से सबल रूप से होता है। इक्कीसवीं शताब्दी में भूमण्डलीकरण, उदारीकरण, बाजारवाद, मशीनीकरण, कम्प्यूटरीकरण आदि कारणों से मनुष्य अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को अत्यधिक महत्व देने लग गया है। इसलिए सभी स्तरों पर अन्तर्वैयक्तिक संबंधों पर प्रभाव पड़ता है जिसका सजीव अंकन समकालीन हिन्दी कविताओं में हुआ है। समकालीन कवि अपनी परिस्थितियों के प्रति सजग हैं। अपनी इस सचेत दृश्टि के कारण वे पाठकों के सम्मुख वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करते हैं जिससे समाज लाभान्वित होता है।

मुख्य शब्द :– समकालीन कविताएँ, बदलते परिवेश, संवेदनहीनता, काव्यांदोलन, वास्तविकता, नकारात्मकता, सकारात्मकता इत्यादि।

हिन्दी काव्य–धारा भारतेंदु युग से लेकर, द्विवेदी युग, छायावादी युग, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नयी कविता, अकविता, समकालीन कविता इत्यादि अनेक पड़ावों से गुज़रकर निरंतर बहती चली आ रही है। हर एक काव्य–धारा अपनी पुरानी परंपरा से खुद को अलग दिखाने के प्रयास में निरंतर लगे रहते हैं। डॉ. चंद्रा सदायत के अनुसार, "कला और साहित्य की विकासशीलता की एक विशेषता यह है कि साहित्य या कला का प्रत्येक नया आंदोलन पूर्ववर्ती आंदोलनों से अपनी भिन्नता और नवीनता स्थापित करते हुए ही आगे बढ़ता है, लेकिन पूर्ववर्ती आंदोलनों से भिन्नता और नवीनता की घोषणा के बावजूद नया आंदोलन पुराने से पूरी तरह विच्छिन्न नहीं होता।" समय के साथ–साथ समाज बदलता है। मनुष्य की जीवन–शैली और सोच बदलती है। "डॉ. जगदीश गुप्त ने ऐसे काव्यान्दोलनों के लिए एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था– 'किस्म–किस्म की कविता। नयी कविता के बाद सनातनी कविता, अकविता, सहज कविता, विचार कविता, समकालीन कविता, ग्लोबवादी कविता, जैसे न जाने कितने नाम सुनायी देने लगे। कवि वही थे, काव्य के आंदोलनों के नाम अलग थे। संभवतः यही कारण था कि ये आंदोलन अपने नाम में ही सिमटकर रह गए।" व्यष्टि और समष्टि के स्तर पर होने वाले इन परिवर्तनों का असर सामाजिक व्यवस्था में पड़ता है। कभी–कभी समाज और राजनीति के परस्पर होने वाले प्रभावों से परिवर्तनों की दिशा इतनी तेज़ी से बदलती है जिसके तेज़ रफ़्तार को स्वीकार करने में असमर्थ मानव जीवन में असफ़ल हो जाते है। संत्रास, वेदना, घुटन, तनाव आदि कई कारणों से पीड़ित होने

वाले ये मानव अपने हृदय की नमी खोते हुए करुणा, दया, ममता, परस्पर प्रेम की भावना आदि खोते हुए संवेदनहीन बन जाता है। आज की सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था हर एक मनुष्य को यंत्रवत् बनाता है तो कृत्रिम मेधा एवं रोबोट आदि के ज़रिए यंत्रों में मानवीय कौशल एवं भाव–जगत को खोजा जाता है। ऐसी परिस्थिति में साहित्य एवं कविता की भूमिका अत्यंत संश्लिष्ट बनती है। मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने वाली कविताओं के क्षेत्र में कई सारे विमर्श दिन प्रतिदिन उगते हुए नज़र आते है। डॉ. रजत रानी 'मीनू' जाति एवं वर्गभेद के योगदान को भी महत्वपूर्ण मानती है– "भारतीय समाज जातियों और वर्गों में बंटा हुआ है, जो भिन्न–भिन्न स्तरों पर जीवन जीता है। जब तक वह संस्तरणें में बंटा हुआ है, तब तक एक संस्तरण का व्यक्ति अन्य सब स्तर के जीवन अभुभवों को अभिव्यक्ति नहीं दे सकता।" भूमण्डलीकरण, उदारीकरण एवं बाज़ारवाद के परिणामस्वरूप मनुष्य को यंत्र बनाकर उसकी संवेदनाओं के साथ खिलवाड़ किया जाता है। श्री विजय कुमार जी के शब्दों में– "भूमण्डलीकरण के बहुमुखी नकारात्मक प्रभाव के फलस्वरूप जो 'अपसंस्कृति' पूरे भारत में छा गयी, उसको कई कोणों से उजागर करने में वर्तमान पीढ़ी के कवि रत हैं। किसी ठोस दर्शन के स्पष्ट प्रभाव से मुक्त अब की कविता स्त्री–विमर्श, दलित–विमर्श, पारिस्थितिक विमर्श जैसे सामाजिक चिन्तन के नये मुद्दों को भी सफलता से आत्मसात करते हुए अपने अभीष्ट पथ पर सक्रिय और गतिशील है।" लेकिन अपनी सृजन शीलता एवं सामाजिक प्रतिबद्धता के कारण समकालीन कवि सामाजिक विद्रूपताओं, अमानवीय परिस्थितियों एवं यांत्रीकरण से उद्भूत संवेदनहीनता की जर्जर व्यवस्था के प्रति जागरूक हैं। वे इन्हें समाज, देश एवं विश्व के लिए खतरनाक मानते हैं और अपनी कविताओं के माध्यम से इन संवेदनहीन परिस्थितियों को उजागर करते हुए नज़र आते हैं।

अरुण कमल की कविता "नए इलाक़े में" कविता में वक्ता शहरीकरण एवं मकानों की अत्यधिक वृद्धि से युक्त माहौल में अक्सर गाँव सहित कई स्थानों का नक्शा ही बदल जाता है। नवीनीकरण एवं निर्माण की कौतूहलता की वजह से हर एक स्थान का नक्शा ही बदल रहा है।

"धोखा दे जाते हैं पुराने निशान
खोजता हूँ ताकता पीपल का पेड़
खोजता हूँ ढहा हुआ घर
और ज़मीन का ख़ाली टुकड़ा जहाँ से बायें
मुड़ना था मुझे
फ़िर दो मकान बाद बिना रंग वाले लोहे के फ़ाटक का
घर था इक मंज़िला।"

असद ज़ैदी अपनी व्यथित दुर्वस्था का परिचय देते हुए उसके परिणामस्वरूप अपने दोस्त और किसी स्त्री के साथ थोड़ा समय बिताता है जो सुखद नहीं है। उसमें तनाव है। चप्पल सुधरवाते समय रूमाल खोने वाले, अपनी ही इच्छाओं से धोखा खाने वाले, शाम को उल्टी करने वाला वक्ता अपने दोस्त से टकरा गए तो उसके साथ उनका व्यवहार उतना संतोषजनक नहीं था।

"चक्कर में पड़ गया क्या करूँ मैं
कुछ नहीं कर सका उसको एक गंदी चाय पिलाने के सिवा।"

किसी स्त्री के साथ मिलते समय भी उनके लिए माहौल सुखद नहीं था।

"हम क्या हैं यहाँ?
दो अभागे घर?
अपनी चिंताओं से डरे
इच्छाओं से घिरे
मितलियों से भरे?
हम क्या हैं यहाँ?"

मदन कश्यप की कविता "पुरखों का दुख" में अपने दादा और दादी के जीवन के सकारात्मक पक्ष का वर्णन करते हुए कवि अपनी माँ–बाप के विपरीत गुणों के कारण भोगे जाने वाले दुख का वर्णन करते हैं :–

"मैंने माँ की आँखों और पिता की चुप्पी में
महसूस किया था जिस दुख को
अचानक उसे अपने रक्त में बहते हुए पाया।"

मनुष्य की विकृतियों में क्रूरता अत्यंत खतरनाक है। क्रूरता पहले हृदय में आती है। उस समय वह उसके चेहरे में दिखाई नहीं देता। इसके दुष्परिणामों के बारे में कुमार अंबुज बताते हैं कि,

"धीरे–धीरे क्षमाभाव समाप्त हो जाएगा
प्रेम की आकांक्षा तो होगी मगर ज़रूरत न रह जाएगी
झर जाएगी पाने की बेचैनी और खो देने की पीड़ा
क्रोध अकेला न होगा वह संगठित हो जाएगा
एक अनंत प्रतियोगिता होगी जिसमें लोग
पराजित न होने के लिए नहीं
अपनी श्रेष्ठता के लिए युद्धरत होंगे।"

समकालीन परिस्थितियों में कलाकार या नाटककार की विवशता या गलत रुखों की ओर इशारा करते हुए विमल कुमार उनके प्रति सचेत करते हुए 'सूत्रधार' नामक अपनी कविता को प्रस्तुत करते हैं,

"मैं इस लंबे और उबाऊ नाटक का सूत्रधार हूँ
लचर कथानक और ढीले संवादों से बोर हो चुका हूँ
लेकिन क्या करूँ अब मंच पर आकर बोल रहा हूँ
कि लोकतंत्र में कोई भी जन–प्रतिनिधि कह सकता है।"

सूत्रधार अपने नाटक में प्रतिकूल बातों को दर्शकों के सम्मुख रखने के लिए बाधित होता है। भूखी जनता को अपने राष्ट्रप्रेम का परिचय देने के लिए कहता है। नंगी जनता को यह समझने के लिए कहता है अपने अंग ढकने से ज्यादा बम बनाना ज़रूरी है। वह बच्चों को सिखाता है कि युद्ध से ही उनका भविष्य सँवर सकता है। औरतों को वह बताता है कि सौंदर्य प्रदर्शन में ही उनकी आज़ादी छिपी है। चर्चा के दौरान इस बात पर बल दिया जाता है कि आज़ादी के पचास सालों के बाद इस देश का निर्माण लुटेरे ही कर सकेंगे। लुटेरों में नेतृत्व की अत्यधिक क्षमता होती है। लेकिन ये सब अनैतिक काम सूत्रधार क्यों कर रहा है? उस नाटक के लेखक एवं

निर्देशक के दबाव से वह विविध हो जाता है। अर्थात् जन–संचार के माध्यम भी समाज में विशैली बातों को ही फैला रही है।

यौवन और श्रृंगार की भावनाओं के लिए विख्यात डॉ. कुमार विश्वास की कविता 'कितने दिन बीत गए' में प्रियतमा से बिछुड़ने की व्यथा झलकती है,

"कितने दिन बीत गए
देह–की नदी में
नहाए हुए
सपने की फिसलन के डर जैसा,
दीप बुझी देहरी के घर जैसा,
जलती लौ नेह चुके दीपक–सा
दिन डूबा वंशी के स्वर जैसा।"

अपने चारों तरफ़ के समाज की घटनाओं से पीड़ित होने वाले कवि के मन में कई सारे सवाल उठते हैं कि इस समाज में अत्याचार एवं अनाचार क्यों होते हैं? सभी सवालों के कोई भी उत्तर नहीं मिलते। कवि अरुण कमल को इस समाज के सुधार में कोई मार्ग नहीं दिखाई देता तो वह इतना रुष्ट हो जाते हैं और ऐलान करते हैं कि जिस देश में बच्चे, माताएँ और गाएँ भूखे हों, उस देश को धरती पर रहने का हक़ नहीं है।

"सबसे ज़रूरी सवाल यही है मेरे लिए कि इतने लोग
भादों की रात में भीग क्यों रहे हैं
कहाँ गए वे लोग इन बस्तियों को छोड़कर
हमारी गौवें क्यों खड़ी हैं कूड़े के ढेर में
इस अँधेरी रात में किसने फेंका मेरी माँ को घर से बाहर?"

पुरानी मान्यताएँ, सामाजिक प्रतिबद्धताएँ, रूढ़ियों, पारिवारिक प्रतिबंधों से जकड़ने वाली स्त्री की दयनीय दशा को अनामिका अपनी 'स्त्री' कविता में वाणी देती हैं। अक्सर दिन रात मेहनत करने पर भी उसका परिश्रम अनदेखा रह जाता है। उसका शारीरिक श्रम एवं तज्जनिक दर्द अदृश्य हो जाते हैं। विडंबना यह है कि अपनी इस दयनीय दशा को वह अत्यंत स्वाभाविक रूप से स्वीकार कर लेती है।

"सारा शहर चुप है,
धुल चुके हैं सारे चौकों के बर्तन।
बुझ चुकी है आख़िरी चूल्हे की राख भी,
और वह
अपने ही वजूद की आँच के आगे
औचक हड़बड़ी में खुद को ही सानती
खुद को ही गूँथती हुई बार–बार
खुश है कि रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी।"

जीवन में परिवर्तन अपरिहार्य माना जाता है। लेकिन कई अवसरों पर ऐसा हो जाता है कि इस परिवर्तन

का बोध भी हमें नहीं होता है। जब पता चलता है तो सब वश से बाहर निकल जाते हैं। उषा किरण जैन की कविता 'कगार की तरह' में कवयित्री इसी स्थिति का वर्णन करती है।

"पता ही नहीं चला
कब परिवर्तित
हो गए इस तरह द्वीप में
कब कटे आत्मीयता
की ज़मीन से
खिसकते चले आए
जाने कब अपनी ही
ज़मीन से
इतनी दूर।"

शहर में बसने की इच्छा हर एक के मन में होती है। कई तरह के सपने संजोते हुए गरीब लोग भी शहर की चमक–दमक में खुद को खो देते हैं। मंगलेश डबराल के शब्दों में–

"यह कौन–सी सभ्यता थी कौन–सा समय
वे किसकी रोशनियाँ थीं जो तुम्हारे आगे–पीछे चमकती रहती थीं
तुम शहर के भीतर प्रवेश करना चाहते थे उसके रक्त में
उसकी रातों में जिसकी सड़कें कई–कई हाथों से तुम्हें छूती थीं।"

लेकिन वह शहर अत्यंत परिवर्तनशील है कि सुबह उठकर देखने पर सड़कें धुँधले हो जाते हैं तथा चौराहें अदृश्य हो जाते हैं। परिचित लोग भी गायब अपने पता बदल देते है। शहर में आदमी का कोई अपना नहीं रहता।

एकांत श्रीवास्तव ने अपनी कविता 'लोहा' में लोहे के बारे में बताते हुए उसके द्वारा लगने वाले जंग की ओर सचेत करते हैं। अपने खून में निहित लोहे के बारे में बताते है तो दूसरी ओर इस संसार में जीने के लिए रोज़ संघर्ष करना पड़ता है।

"जीने के लिए इस संसार में
रोज़ लोहा लेना पड़ता है
एक लोहा पुरखों के बीज को
बचाने के लिए लेना पड़ता है
दूसरा उसको उगाने के लिए।"

जन्म और मरण किसी भी जीव राशि के लिए निश्चित एवं अपरिहार्य घटनाएँ हैं। लेकिन मृत्यु की तिथि मात्र से मानव ज्यादातर अपरिचित होता है। ऐसी परिस्थिति में संसार में अधिकांश जनता की हालत इतनी खराब है कि उनके द्वारा भोगे जाने वाले दर्द असीम और मृत्यु के बराबर है। नीलेश रघुवंषी की कविता 'खुट जाएँ की सिंघाड़े बेचने वाली की हालत पाठकों को झकझोर डालती है।

"नए साल के आगमन पर पूछा गया सिंघाड़े बेचने वाली से
नए साल के बारे में क्या सोचा है तुमने

सिंघाड़े बेचती स्त्री ने कहा
नए साल में हम खुट जाएँ
खुट जाएँ मतलब....
खुट जाएँ मतलब खुट जाएँ याने हम मर जाएँ।"

समकालीन समाज और उसकी व्यवस्था में मानवीय दृष्टि ओझल हो गयी है। स्वार्थपरकता एवं आर्थिक तनाव से ग्रस्त दौड़–भाग से युक्त जीवन शैली से युक्त लोगों के लिए सुबह से सड़क पर दमकने वाले खून के धब्बे के प्रति कोई परवाह नहीं होती :–

"जो भी उधर जाता था
देखता था धब्बे को
फिर आँख बचा दायें या बायें से
निकल जाता था आग।"

लेकिन बारिश से जब यह धब्बा धुल जाता है तो कवि की आशावादी दृष्टि दिखाई देती है।

वैज्ञानिक एवं तकनीकि प्रगति ने मनुष्य के हृदय की नमी को सुखा दिया है। वह मशीनों के पीछे लग गया और आत्म विस्मृति के कारण वह खुद मशीन बन गया। उसके भीतर की संवेदना सूख गयी। वह अपने संबंधों एवं रिश्तों के प्रति निर्मम हो गया है। कवि के शब्दों में–

"धन्यवाद टेक्नोलॉजी
कि सबसे गयेरुगुज़रे कवि को भी तो दिया ही है एक टेलिफ़ोन
काँपती हुई कभी–कभी आती है
बामियान के पहाड़ो से उसकी आवाज़।"

बद्री नारायण ने अपनी कविता 'तय इससे होगा' कविता में नब्बे के बाद की भारतीय व्यवस्था और तंत्र की निर्ममता को तीखे व्यंग्य के साथ कवि ने इस कविता में चित्रित किया है। एक जमाने में जिन मानव–मूल्यों की उपस्थिति में हम गौरवान्वित थे, आज वे मूल्य तो धराशायी ज़रूर हो चुके हैं, अलावा इसके, उनके स्थान पर अपसंस्कृति फैलाने वाले तत्व मजबूत हो रहे हैं।

"फिर 'ह्यूमन' 'इमोशन' 'सहायता' 'सहयोग' जैसे शब्दों मे चक्कर में
कौन पड़े।
शब्द तक तो ठीक है
अब अर्थों के चक्कर में कौन पड़े।"

निष्कर्षतः ऐसा कहा जा सकता है कि बाज़ारवाद के कठोर दौर में बनावटीपन एवं दिखावे को अधिक बल मिलने के कारण मानव समाज संवेदन हीन होता जा रहा है। साहित्यकार इन परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण करने में कठिनाई महसूस कर रहे हैं। वैज्ञानिक–तकनीकि एवं मीड़िया के बोलबोले के कारण कभी–कभी यह निर्णय करना भी कठिन हो जाता है कि कौन–सी बात सही है और कौन–सी गलत। "जब संसार एक बाजार की शक्ल ले रहा हो, 'मीडिया' के दबाव में छपे हुए शब्द सहम रहे हों, तब ऐसी कौन–सी विवशता है कि लगातार कविताएँ लिखी जा रही हैं, अन्य विधाओं की तुलना में कहीं अधिक कविता संग्रह छप रहे हैं?" इन

कविताओं के प्रकाशन में भी तकनीकि के विकास के कारण अधिक कठिनाई झेलनी नहीं पड़ती। सोशल मीड़िया, ब्लॉग, एवं अन्य साधनों के माध्यम से कवि–हृदय से युक्त कोई भी अपनी कविता को सहृदय पाठकों तक पहुँचा रहा है। एक ओर कविताओं की ढेर लगती है तो दूसरी ओर उन कविताओं में संवेदनहीन होती परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण दिखाई देता है। फ़िर भी इन कविताओं के माध्यम से पाठक एवं समाज को वास्तविकता का सच्चा बोध होता है। निश्चित रूप से बुरी स्थितियों से उभरने की और मानवीय संवेदना को सुदृढ़ करने की दिशा में इन कविताओं के माध्यम से प्रेरणा मिलती है।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची :–

1. आधुनिक भारतीय कविता संचयन, सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, साहित्य अकादमी, सं. 2012
2. कालयात्री कविताएँ, सं. डॉ.वी. विजय कुमार, अरुणोदय प्रकाशन, नई दिल्ली–2017, प्र.सं. 2017
3. काव्य–कुसुमावली, सं. सुरेशकुमार जैन और डॉ ऋचा शर्मा, अरुणोदय प्रकाशन, नई दिल्ली–2017, प्र. सं. 2009
4. नयी कविता की काव्यानुभूति, डॉ चंद्रा सदायत, धरती प्रकाशन, गंगाशहर, बीकानेर–334 001, प्र.सं.1987
5. हिन्दी कविता आधुनिक और समकालीन, वेदप्रकाश अमिताभ, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा–281001, प्र. सं. 2014
6. हिन्दी दलित कविता, डॉ रजत रानी 'मीनू', नवभारत प्रकाशन, दिल्ली–83, प्र. सं. 2009

- डॉ चंद्रा सदायत, नयी कविता की काव्यानुभूति, पृ. 142
- सं. डॉ. सुरेशकुमार जैन और डॉ. ऋचा शर्मा, काव्य–कुसुमावली, पृ. 6
- डॉ रजत रानी 'मीनू', हिन्दी दलित कविता, पृ. 61
- डॉ बी. विजय कुमार, कालयात्री कविताएँ, भूमिका।
- अरुण कमल, 'नए इलाके में', आधुनिक भारतीय कविता संचयन हिंदी, पृ. 184
- असद जैदी, आधुनिक भारतीय कविता संचयन, पृ. 186
- वहीं, पृ. 187
- मदन कश्यप, 'पुरखों का दुख', पृ. 189
- कुमार अंबुज, 'क्रूरता' पृ. 193
- विमल कुमार, 'सूत्रधार', पृ. 204
- डॉ कुमार विश्वास, 'कितने दिन बीत गए', सं. "कोई दीवाना कहता है", फयूजन बुक्स, नई दिल्ली– 20 सं. 2015,
- अरुण कमल, 'सबसे ज़रूरी सवाल', https://www.hindwi.org/kavita/sabse-zaruri-sawal-arun-kamal-kavita?sort=popularity-desc
- अनामिका, 'स्त्री', आधुनिक भारतीय कविता संचयन, पृ. 210–211
- उषा किरण जैन, 'कगार की तरह', सं. "रेत घड़ी", संकलनकर्ता : मंगलेश डबराल, दी स्टुडेण्ट्स बुक

कंपनी, जयपुर, 1992

- मंगलेश डबराल, 'शहर फिर से', https://www.hindwi.org/kavita/shahr-phir-se-manglesh-dabral-kavita
- एकांत श्रीवास्तव, कविता : 'लोहा" , सं. आधुनिक भारतीय कविता संचयन, पृ. 213
- नीलेश रघुवंशी, कविता : 'खुट जाएँ', सं. आधुनिक भारतीय कविता संचयन, पृ. 226
- केदारनाथ सिंह, 'धब्बा', सं. कालयात्री कविताएँ, संपादक : डॉ विजय कुमार, पृ. 59
- उदय प्रकाश, 'टेलीफ़ोन', सं. कालयात्री कविताएँ, संपादक : डॉ विजय कुमार, पृ. 65
- बद्रीनारायण, 'तय इससे होगा', सं. कालयात्री कविताएँ, डॉ विजय कुमार. पृ. 79

E mail: vpadmavathy@psgrkcw.ac.in
Mobile No. : 98430 98446

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 289-296
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी में किसान और मजदूर विमर्श

डॉ. सुमित्रा देवी
हिन्दी विभाग, विभागाध्यक्ष

सार :–

भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था की नींव किसान और मजदूर वर्ग पर टिकी हुई है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक यह वर्ग न केवल उत्पादन का आधार रहा है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की धुरी भी बना हुआ है। 21वीं सदी में जब विज्ञान, तकनीक, वैश्वीकरण और औद्योगिकीकरण ने दुनिया को नई दिशा दी है, तब किसान और मजदूरों की भूमिका और भी जटिल एवं चुनौतीपूर्ण हो गई है। यही कारण है कि इस युग में "किसान और मजदूर विमर्श" विशेष महत्व का विषय बन गया है।किसान की स्थिति पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि भूमि का लगातार खंडन, कृषि की बढ़ती लागत, प्राकृतिक आपदाएँ, जलवायु परिवर्तन और उचित मूल्य के अभाव ने उसकी स्थिति को अस्थिर बना दिया है। किसान को खाद्य आपूर्ति का केंद्र और अन्नदाता माना जाता है, परंतु विडंबना यह है कि वही किसान भूख, गरीबी और कर्ज के बोझ से दबा हुआ है। आत्महत्या जैसे त्रासद घटनाक्रम इस संकट की गम्भीरता को रेखांकित करते हैं।दूसरी ओर, मजदूर वर्गकृचाहे खेतिहर हो या औद्योगिककृदेश की उत्पादन प्रक्रिया में अनिवार्य भूमिका निभाता है। निर्माण कार्य, उद्योग, खदानें और खेत सब मजदूरों की मेहनत पर निर्भर हैं। फिर भी उन्हें न्यूनतम मजदूरी, श्रमिक अधिकार, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी मूलभूत सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है। प्रवासी मजदूरों का संकट, विशेषकर कोविड–19 महामारी के समय, उनकी दयनीय स्थिति का स्पष्ट उदाहरण है।

21वीं सदी में किसान और मजदूर विमर्श केवल उनकी आर्थिक चुनौतियों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, समानता और लोकतांत्रिक मूल्यों से भी जुड़ा हुआ है। साहित्य, आंदोलनों और नीतियों के स्तर पर इन वर्गों की समस्याएँ लगातार सामने लाई गई हैं। प्रेमचंद के साहित्य से लेकर समकालीन लेखकों तक, किसान और मजदूर की पीड़ा और संघर्ष विमर्श का केंद्र बने हुए हैं। आधुनिक दौर में यह विमर्श और भी प्रासंगिक हो गया है क्योंकि डिजिटल क्रांति, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), कॉर्पोरेट खेती और वैश्वीकरण जैसे कारक इनके जीवन पर गहरा असर डाल रहे हैं। सरकार ने किसानों और मजदूरों की स्थिति सुधारने हेतु कई योजनाएँ चलाई हैं, जैसे प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, फसल बीमा योजना, श्रम योगी मानधन योजना, न्यूनतम मजदूरी कानून आदि। लेकिन जमीनी स्तर पर इन योजनाओं का लाभ सभी तक समान रूप से नहीं पहुँच पा रहा। इससे यह स्पष्ट होता है कि नीतियों और उनके क्रियान्वयन के बीच गहरी खाई मौजूद है।

अतः "21वीं सदी में किसान और मजदूर विमर्श" हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि विकास का

वास्तविक अर्थ केवल औद्योगिक वृद्धि या तकनीकी तरक्की नहीं है, बल्कि समाज के सबसे निचले तबके तक समान अवसर और सम्मान पहुँचना है। जब किसान और मजदूर वर्ग को सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक स्थिरता और सम्मानजनक जीवन मिलेगा, तभी भारत का भविष्य सशक्त और आत्मनिर्भर बन पाएगा।

प्रस्तावना :–

भारत की सभ्यता और संस्कृति का आधार गाँव, किसान और मजदूर रहे हैं। कृषि केवल अर्थव्यवस्था की रीढ़ नहीं, बल्कि यह भारतीय जीवन–दर्शन, परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों की धुरी है। वहीं मजदूर वर्ग, चाहे वह खेतों में काम करने वाला कृषि मजदूर हो या औद्योगिक उत्पादन से जुड़ा श्रमिक, राष्ट्र के निर्माण और विकास का मूल आधार रहा है। 21वीं सदी में जब वैश्वीकरण, उदारीकरण और तकनीकी क्रांति ने पूरे विश्व को नई दिशा दी, तब किसान और मजदूर विमर्श भी नए रूप में उभरा। आज यह विमर्श केवल आर्थिक या सामाजिक प्रश्न नहीं रह गया है, बल्कि यह अस्तित्व, अस्मिता, अधिकार और न्याय का प्रश्न बन गया है।

"सिपाही को अपनी लाल पगड़ी पर, सुन्दरी को अपने गहनों पर और वैद्य को अपने सामने बैठे रोगियों पर जो घमंड होता है, वही किसान को अपने खेतों को लहराते हुए देखकर होता है।"

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :–

- भारतीय समाज में किसान और मजदूर विमर्श कोई नया विषय नहीं है।
- स्वतंत्रता संग्राम के दौरान किसान आंदोलनों (चंपारण सत्याग्रह, किसान सभा आंदोलन) ने ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दी।
- मजदूर संगठनों ने भी मजदूरी, श्रम अधिकार और शोषण के विरुद्ध संघर्ष किया।
- संविधान ने किसानों और मजदूरों के लिए सामाजिक–आर्थिक न्याय का वचन दिया, परंतु वास्तविकता में वे लगातार असमानताओं और शोषण का शिकार बने रहे।

20वीं सदी तक यह विमर्श ज्यादातर भूमि सुधार, जमींदारी उन्मूलन, मजदूरी और श्रम कानूनों के इर्द–गिर्द था। किंतु 21वीं सदी में इसमें नए आयाम जुड़े–वैश्विक बाजार, कृषि संकट, श्रमिकों का विस्थापन और तकनीकी बेरोजगारी।

21वीं सदी में किसान विमर्श :–

खेत–खलिहान रो रहे हैं,
भूख से मजदूर तड़प रहे हैं।
कब तक यूँ ही सहते रहेंगे,
किसान आंसू पूछ रहे हैं।

1. कृषि संकट और आत्महत्याएँ :

21वीं सदी के पहले दो दशकों में भारत में सबसे अधिक चर्चित विमर्श किसानों की आत्महत्याओं का रहा।

- ऋणग्रस्तता,
- बढ़ती लागत,
- न्यूनतम समर्थन मूल्य की कमी,

- प्राकृतिक आपदाएँ,
- और खेती की अलाभकारी स्थिति–इन सबने किसानों को आत्महत्या की ओर धकेला।

किसान विमर्श अब केवल अन्नदाता की गरिमा का प्रश्न नहीं रहा, बल्कि यह जीविका संकट का गंभीर विषय बन गया।

2. हरित क्रांति से नई चुनौतियाँ :

हरित क्रांति ने 20वीं सदी के उत्तरार्ध में उत्पादन बढ़ाया, लेकिन इसके दुष्परिणाम 21वीं सदी में सामने आए :–

मिट्टी की उर्वरता घट गई,
भूमिगत जलस्तर नीचे गया,
कीटनाशकों और रासायनिक खादों पर निर्भरता बढ़ी,
और छोटे किसान हाशिए पर चले गए।

3. उदारीकरण और वैश्वीकरण का प्रभाव :

1991 के बाद के उदारीकरण ने कृषि क्षेत्र को भी प्रभावित किया।

- बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बीज और खाद बाजार पर कब्जा,
- अनुबंध खेती (Contract Farming) का उदय,
- कृषि उत्पादों के अंतरराष्ट्रीय दामों का असर–इन सबने किसान विमर्श को वैश्विक संदर्भ से जोड़ा।

4. किसान आंदोलन :

- 21वीं सदी में किसान आंदोलन नए रूप में सामने आए।
- 2017–18 में विभिन्न राज्यों में किसानों के बड़े आंदोलन,
- 2020–21 का ऐतिहासिक किसान आंदोलन, जिसने तीन कृषि कानूनों के विरोध में दिल्ली की सीमाओं पर एकजुटता दिखाई। इन आंदोलनों ने दिखाया कि किसान विमर्श अब केवल गाँव तक सीमित नहीं है, बल्कि यह राष्ट्रीय और वैश्विक राजनीति का हिस्सा बन चुका है।

21वीं सदी में मजदूर विमर्श

1. असंगठित क्षेत्र का संकट :

भारत में लगभग 90 प्रतिशत मजदूर असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं।

- कोई स्थायी रोजगार नहीं,
- श्रम कानूनों का पालन नहीं,
- न्यूनतम वेतन की गारंटी नहीं,
- सामाजिक सुरक्षा योजनाओं से वंचित।

21वीं सदी में मजदूर विमर्श का सबसे बड़ा पहलू असंगठित मजदूरों के अधिकार और सुरक्षा का है।

2. प्रवासी मजदूरों की स्थिति :

कोविड–19 महामारी के दौरान प्रवासी मजदूरों का संकट पूरे देश ने देखा।

- लाखों मजदूर अपने गाँव लौटने को मजबूर हुए।

- परिवहन, भोजन और रोजगार का अभाव उनके जीवन की त्रासदी को उजागर कर गया।

प्रवासी मजदूर विमर्श ने यह प्रश्न खड़ा किया कि भारत का विकास मॉडल मजदूरों के श्रम पर टिका है, परंतु उनकी सुरक्षा और सम्मान क्यों नहीं सुनिश्चित किया गया?

3. तकनीकी बदलाव और श्रम संकट :

ऑटोमेशन, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डिजिटल क्रांति ने श्रम बाजार को बदल दिया।

- कई पारंपरिक रोजगार खत्म हो रहे हैं।
- मजदूरों को नई तकनीकी कौशल की आवश्यकता है।
- 'गिग इकोनॉमी' (जैसे– उबर, जोमैटो) ने अस्थायी और असुरक्षित रोजगार बढ़ाए हैं।

4. मजदूर संगठन और नए विमर्श :

21वीं सदी के मजदूर विमर्श में यूनियनों की भूमिका कमजोर हुई है।

लेकिन सामाजिक सुरक्षा, न्यूनतम मजदूरी, सम्मानजनक कामकाज और स्वास्थ्य सुविधा की मांगें आज भी प्रासंगिक हैं।

किसान और मजदूर विमर्श का अंतर्संबंध :

किसान और मजदूर विमर्श को अलग–अलग नहीं देखा जा सकता।

- किसान भी मजदूर बन रहे हैं, जब उनकी जमीन छोटी और अलाभकारी हो जाती है।
- ग्रामीण इलाकों से मजदूर शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं।
- खेतिहर मजदूरों की स्थिति और भी दयनीय है, क्योंकि वे न तो किसान कहलाते हैं और न ही उन्हें संगठित श्रमिकों जैसी सुविधाएँ मिलती हैं।

इस प्रकार किसान और मजदूर विमर्श आज आर्थिक असमानता, सामाजिक न्याय और मानवाधिकार के व्यापक संदर्भ से जुड़ता है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में विमर्श :

21वीं सदी में यह विमर्श केवल भारत तक सीमित नहीं है।

- अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका में किसान भूमि अधिकार और जलवायु संकट से जूझ रहे हैं।
- मजदूर वर्ग बहुराष्ट्रीय कंपनियों के शोषण, प्रवास और असुरक्षा से प्रभावित है।
- जलवायु परिवर्तन ने किसानों की आजीविका पर बड़ा संकट डाला है।

सामाजिक और राजनीतिक विमर्श :

किसान और मजदूर विमर्श आज राजनीतिक पार्टियों के घोषणा पत्र का हिस्सा है।

- किसान कर्जमाफी,
- न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP),
- न्यूनतम मजदूरी कानून,
- मनरेगा जैसी योजनाएँ– ये सब विमर्श की परिणति हैं।

लेकिन वास्तविकता यह है कि नीति निर्माण में अब भी किसानों और मजदूरों की आवाज को बराबर महत्व नहीं मिलता।

साहित्य और विमर्श :

- हिंदी साहित्य और लोकसाहित्य में भी 21वीं सदी का किसान और मजदूर विमर्श स्पष्ट दिखाई देता है।
- कविताओं, कहानियों और उपन्यासों में किसान–मजदूर की पीड़ा, संघर्ष और स्वप्न चित्रित किए जा रहे हैं।
- यह विमर्श केवल अर्थव्यवस्था तक सीमित नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता का हिस्सा भी बन चुका है।

चुनौतियाँ और संभावनाएँ :

चुनौतियाँ :

1. बढ़ती बेरोजगारी और पलायन।
2. कृषि का अलाभकारी होना।
3. तकनीकी असमानता।
4. जलवायु परिवर्तन।
5. असंगठित श्रम का शोषण।

संभावनाएँ :

1. सहकारी खेती और सामूहिक श्रम।
2. डिजिटल तकनीक के माध्यम से बाजार तक पहुँच।
3. सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का विस्तार।
4. शिक्षा और कौशल विकास।
5. किसान–मजदूर एकजुटता से सामाजिक परिवर्तन।

समाधान और भविष्य की दिशा :

(क) किसानों के लिए :

- फसल का उचित मूल्य सुनिश्चित करना।
- छोटे किसानों के लिए विशेष सहायता योजनाएँ।
- जल संरक्षण, जैविक खेती और आधुनिक तकनीक का न्यायपूर्ण उपयोग।
- कृषि शिक्षा और प्रशिक्षण को प्रोत्साहित करना।

(ख) मजदूरों के लिए :

- न्यूनतम मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा का प्रभावी कार्यान्वयन।
- असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को बीमा, पेंशन और स्वास्थ्य सुविधाएँ।
- प्रवासी मजदूरों के लिए रोजगार और आवास की गारंटी।
- तकनीक के साथ श्रम का संतुलन बनाए रखना।

(ग) सांझा समाधान :

- किसान और मजदूर संगठन को मजबूत करना।
- शिक्षा और कौशल विकास कार्यक्रम।
- सरकार, उद्योग और समाज के बीच सहयोग की भावना।

किसान और मजदूर विमर्श की आवश्यकता :

21वीं सदी का विमर्श केवल समस्याओं पर चर्चा भर नहीं, बल्कि समाधान खोजने की दिशा में सार्थक कदम उठाना है। किसान और मजदूरों की स्थिति पर विमर्श इसलिए आवश्यक है क्योंकि :–

- ये वर्ग समाज और अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं।
- इनकी स्थिति बेहतर किए बिना 'विकास' अधूरा है।
- असमानता और शोषण को समाप्त करना लोकतांत्रिक व्यवस्था की जिम्मेदारी है।

21वीं सदी में विमर्श का नया आयाम :

आज वैश्वीकरण के कारण एक ओर अवसर बढ़े हैं तो दूसरी ओर प्रतिस्पर्धा और असमानता भी। डिजिटल क्रांति, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और रोबोटिक्स जैसी तकनीकें जहाँ उद्योगों को आगे बढ़ा रही हैं, वहीं मजदूरों की नौकरियों पर खतरा भी पैदा कर रही हैं। इसी प्रकार, कृषि में भी नई तकनीक और कॉर्पोरेट खेती किसानों के लिए चुनौती बन रही है। अतः विमर्श केवल पारंपरिक समस्याओं तक सीमित न रहकर भविष्य की चुनौतियों और समाधानों पर भी केंद्रित होना चाहिए।

किसान और मजदूर विमर्श की प्रासंगिकता :

21वीं सदी में किसान और मजदूर विमर्श केवल उनके आर्थिक हालात तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, समानता और लोकतंत्र की मजबूती से भी जुड़ा हुआ है।

- यदि किसान और मजदूर खुशहाल होंगे तो समाज में स्थिरता और शांति बनी रहेगी।
- उनकी समस्याएँ केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक असमानता, शिक्षा और स्वास्थ्य से भी संबंधित हैं।
- यह विमर्श हमें यह सोचने पर विवश करता है कि विकास के मॉडल में इनका स्थान कहाँ है?

सरकार की पहल :

सरकार ने किसानों और मजदूरों की स्थिति सुधारने के लिए कई योजनाएँ लागू की हैं :–

- किसानों के लिए प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, फसल बीमा योजना, MSP, जैविक खेती को बढ़ावा, और ई–नाम पोर्टल जैसी पहलें।
- मजदूरों के लिए श्रम कानूनों में सुधार, सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ, आयुष्मान भारत योजना, और कौशल विकास कार्यक्रम।
- फिर भी जमीनी स्तर पर इन योजनाओं का लाभ सभी तक नहीं पहुँच पाता।

किसान और मजदूर आंदोलनों की भूमिका :

इतिहास साक्षी है कि किसान और मजदूर जब–जब संगठित हुए, उन्होंने समाज को नई दिशा दी। 21वीं सदी में भी किसान आंदोलन (जैसे 2020–21 का आंदोलन) और मजदूर संगठनों ने यह स्पष्ट कर दिया कि उनका विमर्श केवल आर्थिक नहीं, बल्कि लोकतंत्र की आत्मा से जुड़ा हुआ है। यह आंदोलन यह संदेश देते हैं कि विकास केवल कॉर्पोरेट और शहरी वर्ग तक सीमित नहीं रह सकता।

महिला किसान और मजदूर विमर्श :

किसान और मजदूर विमर्श को और व्यापक रूप देने के लिए महिला किसानों और महिला मजदूरों की स्थिति को भी समझना होगा।

- खेतों में सबसे अधिक श्रम महिलाएँ करती हैं, परंतु उन्हें "किसान" की पहचान तक नहीं मिलती।
- मजदूरी करने वाली महिलाओं को बराबर काम के बावजूद कम वेतन मिलता है।
- शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाओं से वंचित रहना उनकी स्थिति को और जटिल बनाता है।

निष्कर्ष :

21वीं सदी का किसान और मजदूर विमर्श केवल आर्थिक मुद्दा नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और लोकतंत्र की असली कसौटी है। यदि किसान और मजदूर खुशहाल नहीं होंगे तो विकास का कोई भी मॉडल स्थायी नहीं रह सकता। किसान और मजदूर वही वर्ग हैं, जो धरती से अन्न उपजाते हैं और अपने श्रम से उत्पादन करते हैं। इनकी उपेक्षा राष्ट्र की आत्मा की उपेक्षा है। इसलिए आज जरूरत है 21वीं सदी में किसान और मजदूर विमर्श केवल आर्थिक प्रश्न नहीं रह गया है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकार से गहराई से जुड़ा हुआ विषय है। आज भी भारत की रीढ़ किसान और मजदूर ही हैं, किंतु उनकी स्थिति असुरक्षित, शोषणग्रस्त और संघर्षपूर्ण बनी हुई है। एक ओर किसान बढ़ते कर्ज, प्राकृतिक आपदाओं और फसल के उचित मूल्य न मिलने से जूझ रहा है, तो दूसरी ओर मजदूर असंगठित क्षेत्र, बेरोजगारी और पलायन जैसी समस्याओं से पीड़ित है। इन चुनौतियों के बीच आशा की किरण यह है कि किसान और मजदूर अब अपनी समस्याओं को लेकर अधिक सजग और संगठित हो रहे हैं। उनके आंदोलन और विमर्श नीति–निर्माताओं को मजबूर करते हैं कि वे ठोस और व्यवहारिक सुधार करें। तकनीक, शिक्षा और संगठनबद्धता के सहारे वे अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि भारत की प्रगति, आत्मनिर्भरता और समृद्धि का मार्ग तभी प्रशस्त होगा जब किसान और मजदूर दोनों वर्ग सशक्त, सुरक्षित और सम्मानित होंगे। इन्हें न्याय, सुरक्षा और विकास के समान अवसर प्रदान करना ही 21वीं सदी का सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक दायित्व है।

संदर्भ-सूची :-

1. प्रेमचंद – 'गोदान' उपन्यास में किसान से मजदूर बनते हुए होरी का मार्मिक यथार्थ चित्रण मिलता है, जो किसान–मजदूर विमर्श का मजबूत साहित्यिक आधार है।
2. प्रेमचंद की अन्य कहानियाँ जैसे 'बलिदान' (1918) और 'विध्वंस' (1921) में खेत और किसान के साथ भावनात्मक जुड़ाव और विस्थापन की पीड़ा की कहानी मिलती है।
3. फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' (1954) ग्रामीण जीवन और किसानों की विपन्नता का आंचलिक वर्णन।
4. राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' (1966) पूर्वांचल के जमींदार और छोटे किसानों के जीवंत रिश्तों का चित्रण।
5. गिरिराज किशोर का 'इन्द्र सुनो' (1978) शिक्षा, गरीबी और अंधविश्वास से जूझते किसानों–मजदूरों की त्रासदी।
6. कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रों मरजानी' (1967) और 'जिंदगी–नामा' (1979) में पंजाब के किसानों का सामाजिक–ऐतिहासिक चित्रण।
7. जगदीश चंद्र के उपन्यास 'मुट्ठीभर काँकर' (1976) और 'घारा गोदाम' (1905) में दिल्ली के आस–पास

के किसानों के विस्थापन की कहानी।
8. अंबेडकर, भीमराव. श्रम और जाति प्रश्न. नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग, 2010.
9. गांधी, मोहनदास करमचंद. किसान और गाँव. अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन, 2005.
10. सेन, अमर्त्य. विकास और स्वतंत्रता. नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2012.
11. स्वामी सहजानंद सरस्वती. किसान सभा आंदोलन और किसान की समस्या. पटना : पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 2013.
12. सिंह, रणजीत. भारतीय कृषि और किसान आंदोलन. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2017.
13. कुमार, धर्मेंद्र. भारतीय मजदूर वर्ग : स्थिति और चुनौतियाँ. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2018.
14. मिश्रा, रघुवंश. भारतीय कृषि संकट और आत्महत्या. लखनऊ : भारतीय ज्ञानपीठ, 2019.

Mobile No: 7871138043
Email ID : avichihindi2019@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 297-298

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Effect of Yoga on Kho-Kho Players

Dr. Rakesh Kumar

Assistant Professor, Faculty of Physical Education, Tantia University, Sri Ganganagar.

Abstract :

Kho-Kho is a traditional Indian sport which requires great agility, speed, flexibility, and endurance. Yoga is an ancient practice known for improving flexibility, balance, concentration and stress management. The purpose of this research was to study the effect of yoga practices on the performance and well-being of Kho-Kho players. A group of 30 male players was divided into experimental and control groups. The experimental group followed a 12-week yoga training program along with their routine practice while the control group only continued their routine practice. Pre and post-test results on flexibility, agility, balance, and stress were collected and analyzed. The findings revealed that the yoga group showed significant improvement in flexibility, agility and balance along with reduction in stress levels. It was concluded that yoga training is beneficial for Kho-Kho players.

Introduction :

Kho-Kho is one of the oldest traditional sports in India and it demands high levels of speed, agility, endurance and mental alertness. Players need to make sudden directional changes, sprints, and maintain concentration throughout the game. Yoga, being a mind-body discipline, has been widely used by athletes for improving physical as well as psychological performance. Practices like asanas, pranayama and meditation contribute to better flexibility, core strength, balance, relaxation and stress control. Therefore, this study was conducted to explore the role of yoga in improving the performance of Kho-Kho players.

Literature Review :

Several studies have highlighted the importance of yoga in the field of sports and physical education. Yoga has been shown to improve flexibility, reduce stress, and enhance balance and concentration in athletes. Research has indicated that yoga can complement traditional training methods and improve overall athletic performance. However, very few studies have focused on Kho-Kho players, which creates a gap that this research attempts to address.

Methodology :

The study was conducted on 30 male Kho-Kho players aged between 18 to 24 years. The participants were randomly divided into two groups: experimental group (n=15) and control group (n=15). The experimental group practiced yoga for 12 weeks, 5 days a week for 60 minutes per day, in addition to their routine training. The control group continued with their normal training without any yoga intervention. The training program included asanas such as Surya Namaskar, Tadasana, Trikonasana, Bhujangasana, and Shavasana, along with pranayama practices. Pre and post-tests were conducted to measure flexibility, agility, balance, and stress levels.

Results :

The data analysis showed that the experimental group had significant improvements in flexibility, agility and balance when compared to the control group. There was also a notable reduction in stress levels among the yoga group participants. On the other hand, the control group did not show any significant changes in their performance parameters. This indicates that yoga had a positive effect on the overall performance of Kho-Kho players.

Discussion :

The findings of the study clearly suggest that yoga practices are beneficial for Kho-Kho players. The improvement in flexibility and balance can be attributed to regular practice of asanas. Agility improvements may be linked to enhanced neuromuscular coordination and better posture control. The reduction in stress levels shows the psychological benefits of pranayama and meditation practices. These results are consistent with earlier studies on yoga and athletic performance.

Conclusion :

Yoga is an effective supplementary training method for Kho-Kho players. It not only improves physical attributes like flexibility, agility and balance, but also contributes to stress management and overall well-being. Therefore, it is recommended that yoga should be included as a regular part of Kho-Kho training programs.

References :

1. Cowen VS, Adams TB. (2005). Physical and perceptual benefits of yoga exercise in college students. Journal of Health Education.
2. Tran MD, Holly RG, Lashbrook J, Amsterdam EA. (2001). Effects of hatha yoga practice on the health-related aspects of physical fitness. Preventive Cardiology.
3. Woodyard C. (2011). Exploring the therapeutic effects of yoga and its ability to increase quality of life. International Journal of Yoga.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 299-301
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अब्दुल बिस्मल्लाह की कहानियों में कृषक संघर्ष

डॉ. आलपाटि भानु प्रसाद
हिन्दी प्राध्यापक, यस.आर.आर – सी.वी.आर शासकीय महाविद्यालय (स्वायत्त), विजयवाडा।

भारत गाँवों का देश है। यहाँ की जनता में लगभग 70% जनता गाँवों में ही रहते हैं। इनके मुख्य पेशा कृषि ही है। इसीलिए भारत को कृषि प्रधान देश कहते हैं। भारत में कृषकों का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि भारत एक अट्टालिका के समान है तो किसान उस अट्टालिका की नींव है। कृषक भारतीय समाज की आत्मा है। पर समाज में उनका शोषण प्राचीन काल से आ रहा है। "जमींदारों का जमीन पर एकाधिकार होने के कारण कृषकों को शोषण की चक्की में पीसा जा रहे हैं। जमींदार की सदैव यह धारणा होती है कि जमींदार जमींदार रहे और कृषक, कृषक ही रहे। भारत आज आजाद होने के बावजूद भी, यही कारण है कि किसान तथा मजदूर शोषण से मुक्त नहीं हो सके हैं।"[1] कृषकों का जीवन बड़े ही सीमित दायरों में बंधा होता है। वे स्वभावतः परंपरावादी, रूढ़िवादी तथा अंधविश्वासी होते हैं। किसान की सबसे बड़ी समस्या जमीन की है। जमीन के सवाल को हल करना भारतीय सामाजिक व्यवस्था का सबसे बड़ा कार्यभार है।

भारतीय किसान को गांव के दलालों द्वारा परेशान किया जाता है। वह साहूकार और कर संग्राहकों से परेशान रहते इसलिए वह अपने ही उपज का आनंद नहीं कर पाते हैं। उनके पास उपयुक्त निवास करने के लिए घर नहीं होता। वह भूसे फूस की झोपड़ी में रहते है। उसका कमरा बहुत छोटा है और डार होता। जबकी बड़े किसानों का बहुत सुधार हुआ है, छोटे भूमि धारकों और सीमांत किसानों की हालत अब भी संतोषजनक से भी कम है। पुराने किसानों की अधिकांश जनता अनपढ़ तथा ज्यादा पढी–लिखी नहीं थी लेकिन नई पीढ़ी के अधिकतर किसान शिक्षित हैं। उनके शिक्षित होने के नाते उन्हें बहुत मदद मिलती है। वे प्रयोगशाला में अपने खेतों की मिट्टी का परीक्षण करवा लेते है। वे समझ जाते की उनके क्षेत्रों में सबसे ज्यादा फसल किसकी होगी। भारतीय किसान सरल संभव तरीके से सामाजिक समारोह मनाता है। वह हर साल त्योहार धूम से मनाते है। वह अपने बेटे और बेटियों की शादी का जश्न भी धूम से मनाते। वह अपने परिजनों और दोस्तों और पड़ोसियों के मनोरंजन भी करने में कसर नहीं छोडते।

भारतीय किसानों की दशा का चित्रण कहानीकार अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अत्यंत मार्मिक ढंग से किया है। अपनी 'जीनिया के फूल' कहानी संग्रह की 'मिट्ठा' कहानी में इस प्रकार किया कि– "दरअसल किसान की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि वह पैदा सिर्फ अनाज करता है और उपभोग के लिए उसे विभिन्न वस्तुओं की आवश्यकता होती है, जिनके लिए उसके पास एकमात्र साधन अनाज ही होता है। उसी को वह खाता है और उसी का कुछ अंश बेचकर जरूरत की अन्य वस्तुएँ खरीदता है। ..जिसके घर में नौकरी करने वाला कोई व्यक्ति

नहीं है, वह अनाज को कमासुत बेटे की तरह मानता है।"[2] किसान खेती–बाड़ी करने के लिए साहुकारों तथा जमींदारों से धन उधार लेते हैं। देश में ज्यादातर किसान नादान तथा अनपढ़ थे। उन्हें हिसाब–किसाब का ज्ञान भी नहीं होता है। इस कारण साहुकार तथा सेठ लोग उन्हें धोखा देते रहते है। सालों भर पैसे देने पर भी उनको उधार से मुक्ति न मिलते। आखिर उन्हें अपने जमीन को खो देना पड़ता है। 'मिट्ठा' कहानी में अब्दुल बिस्मिल्लाह ने किसानों की संघर्ष–चेतना का चित्रण किया। भल्लूसेठ तथा गंगादीन के बीच संवाद इस प्रकार हुआ है कि– "अगली फसल तक तुम्हारे ऊपर और कर्जा चढ़ जाएगा, फिर उसकी अदायगी कब होगी! कितनी बार कहा कि कुछ बचाकर रखो.........

कहाँ से बचाएँ सेठ! देख तो रहे हो कितनी परेशानी है ! खाने को पूरा हो ही नहीं रहा है !

अच्छा भाई, मुझे विदा करो अब, अबेर हो रही है।

भल्लू ने बात बदल दी और मिट्ठा के दादा कुरो लेकर अनाज नापने बैठ गए।

इस बार सेठ, पूरा न ले जाओ। कुछ रियायत कर दो, बड़ी कृपा होगी।

बोरे में गल्ला भरते हुए एक बार फिर उन्होंने गिड़गिड़ाने की कोशिश की तो भल्लू खड़ा हो गया–

नहीं भाई, इसके लिए मुझे मजबूर न करो। मैं अपना–भर ही तो लेता हूँ, जो कुछ बच जाता है उसे छोड़ जाता हूँ कि नहीं......।"[3] इस प्रकार भल्लू सेठ सारा फसल लेने को तैयार हो जाता है। गंगादीन चुप हो जाता है। पर उसकी पोती मिट्ठा भल्लू सेठ के शोषण के विरुद्ध लड़ने को तैयार हो जाती है तथा कहती है कि–

"कैसी बातें करते हो सेठ? तुम हर बार पूरी फसल ले जाते हो, फिर भी तुम्हारा बकाया नहीं खतम होता?. ..तुम ब्याज कितना जोड़ते हो कभी अपनी बही भी दिखाते हो हमें?"[4] मिट्ठा की बातों से भल्लू सेठ कृद्ध हो जाता है और कहता कि – "तुम लोग कौन होते हो बही देखनेवाले देख रहे हो गंगादीन, तुम्हारी छोकरी कैसी बातें कर रही है इसे काबू में रखो, पराए घर जाना है।"[5] गंगादीन मिट्ठा को चुप कराता है। भल्लू सेठ अनाज से लदे घोड़े को पीछे से हाँकते हुए खोरी से निकल गए थे। इस प्रकार किसान लोग जो अनाज उगाते, पर अपने दो वक्त के खाना के लिए मुँहताज होना पड़ता है।

गाँव के कृषक नादान होते हैं। उन्हें साहुकार तथा ठाकुर लोग हमेशा शोषण करते रहते हैं। पर किसान लोग उस शोषण के विरुद्ध लड़ने में असफल हो जाते हैं। उनका हृदय आंतरिक संघर्ष से भर जाता है। फलतः कुछ किसान पागल हो जाते हैं। इसका चित्रण अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपनी 'रैनबसेरा' कहानी संग्रह की 'पगला राजा' कहानी में अत्यंत मार्मिक ढंग से किया।

"भुल्लन की अक्ल इस बार भस्ट हो गई। और भुल्लन पागल हो गया। उसके दिमाग में पता नहीं कहाँ से यह वहम पैदा हो गया कि वह राजा है। कुछ लोग कहते हैं, चूँकि उसका बड़ा बेटा असमय में ही चल बसा इसलिए उसका दिमाग फिर गया और कुछ लोगों का विचार है कि उसकी बड़ी लड़की मेले में गायब हो गई इसलिए वह पागल हो गया। लेकिन यह किसी को नहीं मालूम है कि भुल्लन की बीघ बर जमीन को जब ठाकुर हरबंससिंह ने अपने खेत के साथ मिला लिया तो रघुनाथ बाबा के उस कानून ने उसकी कोई सहायता नहीं की जिसकी रोशनी में भुल्लन को समझाया गया था कि अब इस धरती पर उसका राज्य आनेवाला है। और अपनी जमीन की मेंड़ पर खड़े होकर जिस रोज पहली बार भुल्लन ने मुँह में फेन भर आने की हद तक अपना भाषण दिया था उस रोज उसके मुँह से अंतिम बात निकली थी, वह कुछ इस प्रकार थी–

ठाकुर हरबंससिंह को समझ लेना चाहिए कि भुल्लन से जगड़ा मोल लेना हंसी–खेल नहीं है। अब इस धरती पर अंग्रेजों का नहीं भुल्लन का राज्य है।"[6] इस प्रकार समाज में कृषक लोग साहुकार, सेठ तथा ठाकुरों के शोषण का सामना करना पड़ता है। बिस्मिल्लाह की कहानियों में कृषकों की संघर्ष–चेतना आंतरिक ही रह गयी। उसे बाहर व्यक्त करने का परिवेश नहीं है।

संदर्भ :–

1. हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. रमेश तिवारी, पृ. 226, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं–1972
2. ताकि सनद रहे, जीनिया के फूल, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 384
3. ताकि सनद रहे, जीनिया के फूल, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 384, 385
4. ताकि सनद रहे, जीनिया के फूल, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 385
5. ताकि सनद रहे, जीनिया के फूल, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 385
6. ताकि सनद रहे, रैनबसेरा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 10

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 302-306
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अभिमन्यु अनत के साहित्य में प्रवासियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. सीमा दास
22. बी.एल.सी मिल्स बाई लेन, महेश, श्रीरामपुर, हुगली, 712202. पश्चिम बंगाल.

सारांश :–

अभिमन्यु अनत ने अपने समस्त रचनाओं में सामाजिक रुढ़िवादी समस्याओं को उजागर किया है। साथ ही जड़ हो चुकी परम्पराओं एवं मान्यताओं को भी पाठकों के सामने अंकित किया है। ताकि पुरानी मान्यताओं से, प्रवासियों की समस्याओं से, घरेलू नोक–झोख से यानी घरेलू कलह आदि से मुक्ति का मार्ग मिल सकें। वर्तमान समय में, आधुनिकता की चकाचौंध ने पाश्चात्य संस्कृति की ओर लालायित किया, जिससे लोग उस ओर तो निकल पड़े किन्तु, दूसरी ओर आधुनिकता के बढ़ते प्रभाव के कारण व्यक्ति एवं समाज में परिवर्तन काफी तेजी से देखा गया। जिसके परिणामस्वरूप विखंडन की समस्या, रिश्तों में तनाव आदि की समस्या ऊभर कर सामने आई। दो पीढ़ियों के खान–पान, रहन–सहन, आचार–विचार आदि में भी अनेक अंतर अनत के साहित्य में परिलक्षित होता है।

कुंजी पटल :– गिरमिट, गिरमिटिया, प्रवास, प्रवासी, संस्कृति आदि।

प्रस्तावना :–

प्रवासी हिन्दी साहित्य जगत में 1937 ई. में जन्में अभिमन्यु अनत ने 20वीं सदी से लेकर 21वीं सदी के इस लंबी अवधि में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बनाने वाले साहित्यकार रहे हैं। प्रवासियों के साथ एक ओर जहाँ समाज में शोषण अत्याचार किया जा रहा था, जिसका दंश न केवल स्त्रियों को सहना पड़ता बल्कि पुरुष वर्ग भी इसका शिकार होते, क्योंकि भारत से शर्तबंदी प्रथा के माध्यम से अपने वतन से दूर प्रलोभन दिखा कर जो ठेकेदार या बिचौलिए उन्हें ले जाते वे मुलतः भारतवंशी ही हुआ करते। अतः अभिमन्यु अनत के साहित्य में प्रवासियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने हेतु गिरमिटिया बनाम प्रवासियों के जीवन–संघर्ष को जानना अति–आवश्यक है, जो इस प्रकार से हैं :

गिरमिटिया शब्द की उत्पत्ति एवं प्रयुक्ति :

अभिमन्यु अनत के साहित्य में जिन प्रवासी मजदूरों की गाथा को चित्रित किया गया है, वास्तव में वह गिरमिटिया काल के मजदूर है जो कि 19वीं शताब्दी के पूवार्द्ध में भारत से अधिकांश मजदूरों को मजदूरी करने के लिए मॉरिशस लाया गया। उनमें ज्यादातर गरीब परिवार के लोग थे। गौरतलब बात यह है कि अनुबंध पर

जाने वाले अनपढ़ लोग अपने को गिरमिटिया कहने लगे। "गिरमिटिया शब्द की उत्पत्ति 'गिरमिट' शब्द से मानी जाती है। यह शब्द अंग्रेजी के एग्रीमेंट (Agreement) शब्द का भोजपुरीकरण रूप है– एग्रीमेंट / ग्रीमेंट / गिरमेंट शब्द बना।"[1] अर्थात् इन गरीब मजदूरों के बीच उनकी लोक–संस्कृति रची–बसी थी, जिसका स्पष्ट स्वरूप को इस प्रकार जाना जा सकता है– जब वे धान काटते, रोपाई करते, दाना निकाल कर दौनी करते हुए इत्यादि। अर्थात् उन गरीब भारतीय मजदूरों की लोक भाषा भोजपुरी हुआ करती, जबकि पढ़े–लिखे लोग बोलचाल की भाषा के रूप में खड़ीबोली हिंदी का उपयोग करतें।

'प्रवासी' शब्द का अर्थ :

जबकि, प्रवासी शब्द का प्रादुर्भाव 80 के बाद आया। हिंदी शब्द 'प्रवासन' की तुलना में 'डायस्पोरा' शब्द प्राचीन है। यह शब्द मूलतः ग्रीक भाषा का है। डायस्पोरा या Diaspora को ग्रीक भाषा के Diaspora शब्द से गया है। यह दो शब्दों से मिल कर बना है। Dia+sperien जिसका अर्थ है– "बीजों को बोना, छितराना या बिखेरना, फैलाना" आदि है।

सामाजिक समस्या :-

'तीसरे किनारे पर' उपन्यास में राकेश प्रायः होटलों में जाता रहता है। उसे बीयर और शराब दोनों का शौक है– "तीन घंटे में राकेश ने बीयर की चार बोतलें खुली कर डाली थी और उसने अपने पैरों में लड़कड़ाहट महसूस की।"[2] इसके साथ ही साथ 'वह बीच का आदमी' कहानी गरीबी से उत्पन्न सामाजिक समस्या का चित्रण करती है, जिसमें नायक अपनी तीन बेटियों के विवाह हेतु धन जुटाने, अच्छी जीवन यापन के लिए नौकरी करने के उद्देश्य से अपने घर–परिवार को छोड़कर दूर देश जा पहुँचता है और वहीं जा बसना पड़ता है। परन्तु, जा बसने के दौरान उन्हें अनेक दंश झेलने पड़ते हैं।

बेरोजगारी की समस्या :

अभिमन्यु अनत कृत 'माथे का टीका' कहानी में बेरोजगारी की समस्या सामने ऊभर कर आती है। इस कहानी में नवयुवक चोरी करके अपनी गरीबी व बेरोजगारी की समस्या को दूर करने की सोचता है। परन्तु, वह असफल हो जाता है, जिसका भुगतान चीनी के पाग (रस) को शरीर पर थौंप कर धूप में पेड़ों पर लटका दिया जाता, जो कि चीटियों का भोजन जा बनता है। जबकि छोटी सी भी भूल पर छड़ी या कोड़ो की मार पड़ती। "कम से कम कुछ दिनों के लिए यह तो भूल जायेंगे कि इस स्वतंत्र और धन–धान्य पूर्ण देश में हम बेकार हैं।"[3] अभिमन्यु अनत जिन्हें मानवीय संवेदनाओं के कवि तथा भारतीयता के प्रति सजग रहने वाले साहित्यकार कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

कामकाजी प्रवासी स्त्रियाँ :

स्त्रियाँ कामकाजी होने बावजूद भी वे स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन जी नहीं सकती थी। वे स्त्रियाँ मुख्यरूप से गोरे मालिकों की गुलाम बन चुकी थी। अतः वह ब्रिटिश सरकार के हाथों की कठपुतली मात्र बनकर रह गई थी, जिसे वह जब चाहे व्यवहार करे और जब जी भर जाए तब उसे उतार कर फेंक दे। दरअसल, फैक्टरी में मजदूरी कर रही औरतों का खुले आम शोषण होता, खूब काम करवाया जाता। इसके विरुद्ध में 'मुड़िया पहाड़ बोल उठा' की नायिका नेहा दृढ़ संकल्प साधे अत्याचारों के विरुद्ध बोल उठती है– "जिम्मेदार लोग पत्थर ही बने हुए थे, पर साथ–ही–साथ सरकार से संबंद्ध लोग भी मुड़िया पहाड़ की तरह अंधे और गूंगे बने हुए थे।"[4] नेहा अपने

सामर्थ्य के अनुसार कर्मक्षेत्र में कूदकर नौकरी करने के लिए ठान लेती है, साथ–ही–साथ वह पशुपालन का भी कार्य संभालती हैं और मजदूरी करके अपना घर चलाती है।

बंधुआ जीवन-संघर्ष :

प्रवासी भारतीयों के जीवन के विविध पहलुओं पर विचार करें तो पाएंगे कि प्रवासियों को कहीं संघर्ष का सामना करना पड़ता है, तो कहीं मानसिक टकराहट का शिकार होना पड़ता है, तो कहीं द्वंद्व को झेलना पड़ता है। लेकिन मुख्यरूप से उन्हें अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़नी पड़ती है। आज विभिन्न देशों में प्रवासी भारतीय अपनी जीविका–यापन कर रहे हैं। प्रवासी, प्रवास में रहकर कितना भारतीय है? इसका सीधा नाता गिरमिटिया मजदूरों से हैं, जो प्रवास में गये परन्तु, अपनी पहचान भारतवंशी के रूप में दिए। गिरमिटिया देशों की भारतीयता के प्रश्न पर डॉ. मृदुला कीर्ति लिखती है– "गिरमिटिया हमसे कहीं अधिक भारतीय है, जो गुलाम बनकर गये लेकिन अपने मन को गुलाम नहीं होने दिया।"[5] कई बार ऐसा भी होता है कि एक प्रवासी जब स्वदेश लौटना चाहता है तो वह पाता है कि अब वहाँ उसका कोई नहीं है।

गिरमिटिया मजदूरों की प्रताड़ना :

अभिमन्यु अनत की रचनाओं में गिरमिटिया मजदूरों की प्रताड़ना, लांछना एवं अपमान के घूंट पीकर जी रहे जिंदगी को उजागर किया है। अनत के शब्दों में– "मैं किसी प्रतिबद्धता का ढिंढोरा नहीं पीटना चाहता, फिर भी मेरा लेखन एक समर्पित लेखन है। मैं उन सभी वर्गों की पीड़ा को शब्द देने का प्रयास करता हूँ, जिनकी आवाजें जब्त हैं।"[6] लेखक का आम आदमी के प्रति अनोखा झुकाव रहा है तथा भारत के प्रति जुड़ाव कर्म के आधार पर रहा है। अतः इनके साहित्य में मॉरिशस के गिरमिटिया मजदूरों की गाथा चित्र खींचा गया है। अर्थात् आतीत से वर्तमान की ओर प्रतिबिम्बित हुआ है।

प्रवासियों का संघर्ष :

'हम प्रवासी' उपन्यास में नायक अपनी छोटी सी उम्र में अपने आँखों के सामने अपने भाई की मृत्यु को देखता है और ऐसे में वह अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाने का प्रण साधता है। बिना परिवार के अकेला रहना, अपनों से दूर जाने की पीड़ा, घुटन, संत्रास का रूप धारण करता है, क्योंकि बिना परिवार के जिन्दगी कैसे जिया जा सकता। परन्तु, प्रकाश अपनी असीम यातनाओं के बावजूद भी आगे बढ़कर औरों की मदद करने को तत्पर रहता है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि अभिमन्यु अनत ने अपने साहित्य में बालक, बुजुर्ग, मजदूर. युवा, स्त्रियों आदि की समस्याओं पर बल दिया है, जबकि ये सभी कोई और नहीं बल्कि भारतीय गिरमिटिया मजदूर है जो कि प्रवास जा बसे हैं। प्रवासी स्त्री जीवन के संघर्ष को व्यक्त करते हुए अभिमन्यु अनत अपनी कहानी संग्रह 'एक थाल समंदर' में वे कहते हैं– "कारखानों में, खेतों में काम करने वाली स्त्रियों को अनेक बार शोषण का शिकार होना पड़ता है। इनकी 'ज्वार–भाटा' व 'भीतर आना मना है।"[7] अपनी रचनाओं के माध्यम से इन्होंने मानवीय संबंधों को हर दृष्टिकोण के साथ उकेरा है।

आर्थिक संसाधन की कमी :

'अपनी–अपनी सीमा' उपन्यास में उपन्यासकार ने आर्थिक अभाव के चलते स्त्री को काम करना पड़ता है और आर्थिक संसाधन की कमी के कारण पति–पत्नी का दाम्पत्य जीवन उलझन भरा होता है। वर्तमान समय में हर रिश्ता खोखला होता जा रहा है, प्रत्येक संबंध शर्त और स्वार्थ की जमीन पर टिका हुआ है। क्योंकि पत्नी

का घर के बाहर जाकर काम करने की वजह से पति शंकालु प्रवृति का हो जाता है, जिससे थक–हार कर पत्नी कह उठती है– "जिस दिन मैं अपना सिर किसी दूसरे मर्द के कंधे पर रख दूंगी, उस दिन के बाद इस चार दिवार के भीतर कदम नहीं रखूंगी।"[8] दाम्पत्य जीवन में बिखराव आने का मुख्य कारण था– आर्थिक विपन्नता। अपने पति आलोक की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण घर की बहु सीमा काम करने के लिए निकल पड़ती है। परिणाम यह होता है कि पति आलोक को उसका बाहर जाकर काम करना नहीं भांता, यही कारण है कि वैवाहिक जीवन टूटने की कगार पर जा खड़ा होता है।

शोषण की चरम-सीमा :

'अपनी–अपनी सीमा' उपन्यास में सीमा इन सभी परिस्थितियों से तंग आकर विद्रोह करने को सोचती है– "अब घोषणा कर दे कि अब यह नहीं चलेगा। अगर वह जुल्म था तो उसके विरुद्ध खड़ा होना चाहिए।"[9] 'मार्क ट्वेन का स्वर्ग' में देह व्यापार की समस्या को उजागर किया गया है कि किस प्रकार गोरे मालिक अपनी बिस्तर गर्म करने के लिए गिरमिटिया स्त्रियों को जबरन घसीट कर ले जाते और उनका शारीरिक शोषण करते, अपना भोग की वस्तु मात्र बनाते।

प्रवासी जीवन की त्रासदी :

'जम गया सूरज' उपन्यास में बताया गया है कि "कैसे भारतीयों को बहला–फुसला कर व अच्छे जीवन के ख्वाब दिखाकर मॉरिशस ले जाया गया था और वहाँ उनके साथ पशुवत व्यवहार किया जाता था। न उन्हें भर पेट खाना मिलता, न पहनने को कपड़े, न रहने की छाया।"[10] अतः अभिमन्यु अनत का समस्त उपन्यास साहित्य प्रवासी समाज में कुली मजदूरों की पीड़ा, उनकी दर्द भरी दास्ताँ एवं अभावग्रस्त जिन्दगी को दर्शाया गया है। साहित्यकार ने केवल प्रवासी मजदूरों की पीड़ा की बात नहीं कही है बल्कि इसके साथ साथ प्रवासिनी स्त्री के जीवन की विडम्बना तथा उनके जीवन की त्रासदी को नया आयाम देकर उभारने का प्रयास किया है ताकि पाठक आसानी से प्रवासी समाज की तमाम गतिविधियों से रु–ब–रु हो सकें।

निष्कर्ष :

प्रवासी साहित्यकार अभिमन्यु अनत ने अपने लेखन विषय का केंद्र गिरमिट जीवन के अतीत से वर्तमान का परिदृश्य से लेकर प्रवासी जीवन, उनके द्वंद्व, उनकी जीवन शैली एवं उनके जीवन में आए दिन नित नये–नये परिवर्तन तथा प्रवासी जीवन की त्रासदी आदि परिवेशगत समस्याओं का वर्णन किया है। साथ ही दो विभिन्न संस्कृति के टकराहट से उत्पन्न मानसिक अंर्तद्वंद्व को भी उकेरा है, ताकि प्रवासी व्यक्ति के जीवन को तथा प्रवासी की स्थिति को प्रवासी व्यक्ति ही जान सकें। इन्होंने मनोवैज्ञानिक समस्याओं को भी अपने कथा–साहित्य का विषय बनाया। साथ ही मनोवैज्ञानिक समस्याएँ जैसे– अंतर्द्वंद्व, संत्रास, जीवन की त्रासदी, घुटन, अपराधबोध, कुंठा, बाल–मनोदशा, स्त्री–जीवन की कुंठा, सांस्कृतिक टकराव, जीवन संघर्ष आदि जैसे अनेक पहलुओं को उजागर किया है।

संदर्भ सूची :–

1. लाल, ब्रज.(सं). सनाढ्य, तोताराम की कथा : गिरमिटिया के अनुभव. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 2012. पृष्ठ. 9.
2. अनत, अभिमन्यु. 'तीसरे किनारे पर.' उपन्यास. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 1976. पृष्ठ. 10.

3. अनत, अभिमन्यु. 'माथे का टीका' (कहानी), 'खामोशी की चीत्कार' कहानी संग्रह, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 1976. पृष्ठ. 12.
4. अनत, अभिमन्यु. 'मुड़िया पहाड़ बोल उठा'. उपन्यास. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 1970. पृष्ठ. 120.
5. डॉ. कीर्ति, मृदुला. अभिमन्यु अनत का रचना संसार. नई दिल्ली : सामायिक प्रकाशन. 1977 पृष्ठ. 33.
6. गोयनका, कमल किशोर. अभिमन्यु अनत एक बातचीत. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 1970. पृष्ठ.32.
7. अनत, अभिमन्यु. 'एक थाल समंदर' कहानी संग्रह. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. 1988. पृष्ठ. 29.
8. अनत, अभिमन्यु. 'अपनी–अपनी सीमा'. उपन्यास. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 1983. पृष्ठ. 82.
9. वहीं, पृष्ठ. 90.
10. अनत, अभिमन्यु. 'जम गया सूरज'. उपन्यास. बीकानेर : सूर्य प्रकाशन. 1973. पृष्ठ. 26

संपर्क 8921233522 / 7510211834.
ईमेल– seemadas.hindi@gmail.com/seemadascukerala@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 307-310
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक कहानी के बदलते सामाजिक परिवेश

प्रा. डॉ. गायके
एम. एम., हिंदी विभाग प्रमुख, राजर्षी शाहु महाविद्यालय, परभणी (महाराष्ट्र) ४३१ ४०१

प्रस्तावना :-

मानव जाति के जन्म से ही कहानी का उद्भव माना जाय तो गलत नही होगा। मनुष्य को कहानी सबसे ज्यादा पसंद है। कहानी के आधार पर मानव अपना जीवन सवारता चला आया है। बचपन में कही कहानियो के संस्कारों के कारण अपने जीवन में बदलाव करता आया है। इसके उदाहरण हम माँ जिजाउँ द्वारा कही रामायण, महाभारत की कहानियाँ कहने से छत्रपति शिवाजी महाराज जिन्हे अपने जीवन को बदल दिया है। कहानी के माध्यम से जीवन मैं बदलाव हो सकता। यह विश्वास पैदा किया गया है।

कहानी हर समय और मोड पर अपने में बदलाव करती दिखाई देती है। इसी आधार पर कहानी में विषय चयन, कथानक, भाषा शैली और नये विचार प्रवाह स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श को लेकर चलती हुई आधुनिक परिवेश की कहानी उभरकर सामने आई है।

उद्देश्य :

कहानी के क्षेत्र में आये बदलाव को समझाना साथ ही मानव जाति के लिए कहानी का योगदान विशद करना रहा है।

विषय स्पष्टीकरण :

प्राचिन काल से आज तक कहानी का प्रचलन रहा है। कहानी प्राचीन काल में देवी देवताओं की हुआ करती जिसमें देवताओं का राक्षसो पर विजय बताया गया है। बुराई पर अच्छाई की विजय बताई है। मध्य काल मे राजा महाराजाओं को खुश करने के लिए विररस पूर्ण कहानियों का निर्माण किया जाने लगा।

आजादी के कुछ वर्ष बाद लोगों में संपत्ति के प्रति मोह जाग उठने से रिश्वतखोरी राजनीति और प्रशासन व्यवस्था में आने से स्वतंत्रता सेनानियों का अपेक्षा भंग कैसा हुआ इस पर कहानी लिखी जाने लगी। स्वतंत्रता के बाद शिक्षा का द्वार सभी के लिए खुला कर देने से साहित्य में नये नये परिवर्तन एंव बदलाव आने लगे। साहित्य लेखन एक समाज तक सिमित था। अब शिक्षा के कारण सभी वर्ग के लोग साहित्य, कहानियाँ लिखाना शुरु कर देने से कहानी क्षेत्र में नये विचार प्रवाह निर्माण होते दिखाई देते है। जिसमें स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श और भाषा शैली में बदलाव के साथ ही विषय की दृष्टि से सामाजिक, राजनैतिक, स्त्री–पुरुष सम्बन्ध आदि विषयों पर कहानियाँ लिखी जाने लगी।

स्त्री विमर्श यह विचार प्रवाह कहानी क्षेत्र में नया था। जिसके माध्यम से स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार

और स्त्री का संघर्षमय जीवन की चर्चा की गई है। जिसमें डॉ. निहारिका की कहानी 'नारी तुम केवल सबला हो' इस कहानी में नारी पर होने वाले अत्याचार और आज की नारी सशक्त रुप में उसका सामना धाडस के साथ करती हुई बताई है।

इस कहानी में रचना और नरेश पती–पत्नी है। उनका बीस–पचीस साल का पारिवारिक जीवन का बड़ा आनंद से गुजरता है। बच्चे होने के बाद पत्नी का प्यार बच्चों और परिवार में समाहित होने और पारिवारिक जिम्मेवारी के कारण रचना हमेशा बिमार रहती है। जिससे नरेश को शारीरिक संबंध स्थापित करने में रचना सहयोग देती नहीं। इसी कारण एक दिन नरेश जूली नामक युवती से शादी करता और अपना अलग सा जीवन व्यतीत करता।

नरेश वृद्धावस्था की ओर झुकता तब जुली जो स्वच्छंद विचारोंवाली है वह नरेश से कहती आप वृद्ध हो गये हो, मेरी तृष्णा आपसे पूरी नहीं होती इसलिए अन्य नव युवकों के साथ सम्बध रखती है। नरेश को पश्चाताप होता और रचना के पास वापिस आता तभी रचना उसे बिते संघर्षपूर्ण दिन वापिस लौटाने का प्रश्न करती और नरेश निरुत्तर होकर लौट जाता। रचना नरेश को अपने घर में जगह नहीं देती।

इस कहानी के माध्यम से आज की नारी प्राचीन काल की अबला न होकर सबला बन गयी जिसका मुख्य कारण वह शिक्षित होकर नौकरी करते हुए पैरों पर खडी हुई है। इसी कारण उसमें आत्मविश्वास भरा हुआ दिखाई देता है।

आधुनिक कहानीकार रजतरानी मीनू द्वारा लिखीत 'धोखा' कहानी स्त्री–पुरुष सम्बधो पर आधारीत है। रजत रानी मीनू जी की धोखा यह कहानी आज के नये विचार प्रवाह सहजीवन पद्धती पर प्रकाश डालती दिखाई देती है। जिसमें हमे पुरुष प्रधान संस्कृती स्त्रियों पर हावी होते हुये विवाह संस्था को नकारने का कार्य करते है। स्वच्छंद पूर्ण जीवन को अपनाती है। नव युवक और युवती को यह बडा अच्छा लगता क्योंकि स्त्री–पुरुष किसी के साथ शादी के बिना एक साथ रहकर सम्बध स्थापित कर सकता है। और जब चाहे छोड कर अन्य पुरुष तथा स्त्री के साथ सम्बध स्थापित करता है। बाहरी तौर पर स्त्री–पुरुष समानता दिखाई देती। विचारों की आजादी दिखाई देती रिश्तों से छुटकारा होता हुआ लगता है। लेकिन इस व्यवस्था ने नारी पर अन्याय किया गया है। इन सम्बधों के बीच बच्चा पैदा हो जाता तो उसकी जिम्मेदारी पुरुष नहीं लेता वह अपना दिल भर जाने पर अन्य स्त्री के साथ सम्बध स्थापित करता। लेकिन बच्चों की माँ के साथ कोई अन्य पुरुष सम्बध स्थापित नहीं करना चाहता उसे नयी स्त्री चाहिए होती यही पुरुषी मानसिकता की शिकार अमिषा अपनी पुत्री श्रेया जब सहजीवन सम्बध अमीत के साथ रखती तो अमिषा उसे अपनी आप बीती सुनाकर जागृत करती है।

इस कहानी के माध्यम से स्त्री–पुरुष सम्बध जिस्म तक ही सिमीत न होकर पारिवारिक जीवन से जोडे जाने की कोशिश कहानीकार की रही है।

कहानी और साहित्य के क्षेत्र में स्त्री विमर्श के बाद आदिवासी विमर्श का प्रचलन रहा है। आजादी के बाद औद्योगिकरण के कारण आधुनिक समाज जंगल कि और बढा।

'टिस' इस कहानी में शिबु काका जो साँप पकड़कर उसका खेल बताकर अपना पारिवारीक जीवन चला कर बहोत खुश थे। आर्थिक विपन्नावस्था के बावजुद भी शिबुकाका और मताई आनंद से रहते थे। लेकिन गाँव का पुजारी भट्टाचार्य के नजर मताई पर पड जाती और पुजारी उसे अपने वश में कर लेता और एक दिन जब

शिबु काका घर पर नहीं देखकर पुजारी भट्टाचार्य मताई के साथ शारीरिक सम्बध स्थापित करता है। उसी समय शिबु काका अपने घर आ जाता तो देखता की मताई और पुजारी भट्टाचार्य शरीर संबंध का आनंद ले रहे है। शिबु काका का गुस्सा खौल उठता है और गुस्से में वह मताई की हत्या कर देता है। इसी बीच पुजारी अंधेरे का फायदा उठाकर भाग जाता है। शिबु काका चाहता की पुजारी को सजा हो लेकीन हमारी भ्रष्ट प्रशासन व्यवस्था पुजारी को आजाद छोड़ती है। इस बात का आघात शिबु काका पर हो जाता अंत मे मानसिक संतुलन खो देने के कारण पागल खाने भेजा जाता और वही पर उसका अंत हो जाता। हमारा लालच आदिवासी के जीवन में तनाव पैदा कर रहा है। इसका परिणाम स्वरुप नक्सलवाद जैसी समस्या सामने उभारकर आयी है।

हमारे समाज में स्त्री और आदिवासीयों के बाद जिन पर सबसे ज्यादा अत्याचार हुऐ और हो रहे है वह दलित समाज है। प्राचीनकाल से पिछडे वर्ग के लोगो पर सवर्ण लोगो ने बहुत अत्याचार किये है। आजादी के बाद भारत का संविधान डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर द्वारा लिखा गया जिसमे समता, स्वातंत्र, और बंधुता को सर्वोच्च स्थान देकर समाज व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

आंबेडकरजी के मंत्र को अपनाती कहानी 'मुंबई कांण्ड' ओमप्रकाश वाल्मिकि द्वारा लिखीत है। शहर में डॉ. आंबेडकरजी के पुतले को अपमानित किया गया जिसके कारण दंगा हो जाता उस पर पुलिस द्वारा गोलीयॉ चलाने से दस–बारह लागों की मौत हो जाती यह खबर सुनकर सुमेर हिल जाता और मुझे कुछ करना चाहिए इसी बेचैनी में रहता। आखिरकार वह सोचता कि जिस तरह डॉ. बाबासाहेब के पुतले का अपमान किया गया उसी तरह वह भी किसी पुतले का अपमान करना चाहता है और महात्मा गांधी जी का पुतला चयन करता है। जुतों की माला पहनाने के लिए वह पुतले के पास जाता तभी उसे याद आता है कि कुछ निर्दोष लोगों की जान बाबा के लिए गयी उसी तरह बापु के लिए कुछ निर्दोष लोगों की जान चली जा सकती है। निर्दोष लोगों की जान लेकर मैं क्या प्राप्त करने जा रहा हूँ। मै तो बुद्ध और आंबेडकरजी का अनुयायी हुं। मैं निर्दोष की हत्या नहीं कर सकता। इसी विचार के कारण सुमेरु अपना विचार और प्रतिशोध की ज्वाला ठंडी करते हुये मानवता की ज्वाला प्रेरित करता है।

आधुनिक कहानी अपने समये अनुसार विषयो में परिवर्तन तथा विविधता दिखाती है।

इसी तरह शहरों में नौकरी के कारण बेटी और बहु रहती, गाँव में वृद्ध माता–पिता को बेटा पैसे भेजकर अपना कर्तव्य पूर्ण हुआ ऐसा मानता है। बेटा एक दिन माँ को अपने साथ ले जाता है। तब अकेला वृद्ध बाप बेचैन हो जाता है अपनी पत्नी बिना वह रह नहीं पाता। जब पत्नी आ जाती तभी वह खुश हो जाता। वृद्धावस्था में एक–दूसरे की आवश्यकता इस बात को समझने और समझाने के साथ वृद्ध माता–पिता की देखभाल की सामाजिक समस्या को उजागर करती कहानी 'उपर उठता हुआ मकान' दिखाई देती है।

भाषा शैली की दृष्टि से हर एक कहानी अपने अपने परिवेश को बरकरार रखते हुए दिखती है।

निष्कर्ष :

१. आधुनिक कहानी लोकाभिमुख ज्यादा होती दिखाई देती है।

२. आधुनिक कहानी अपनी कहानी पाठक को लगती है।

३. आधुनिक कहानी मानवता के प्रति प्रतिबद्ध दिखाई देती है।

४. आधुनिक कहानी में स्त्री–पुरुष सम्बधों को उजागर किया गया है।

५. स्त्री के मन के अंत द्वंद्व को स्त्री लेखिकाओं ने सम्मान दिया।

६. आधुनिक कहानी परिवेश में सामाजिक स्वास्थ्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण दिखाई देता है।

संदर्भ सहाय्यक ग्रंथ :-

१. नारी तुम केवल सबला हो – लेखिका डॉ. निहारिका।

२. धोखा – रजतरानी मीनू।

३. टीस– राम सजीवनप्रसाद संजीव।

४. मुंबई काण्ड – ओमप्रकाश वाल्मिकि।

5. ऊपर उठता हुआ मकान – कमलेश्वर ।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 311-316
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'बवंडरों के बीच' आत्मकथा में आधुनिक दलित स्त्री की छवि

आकांक्षा
शोधार्थी, डॉ. बी. आर अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली।

भारतीय समाज में स्त्री और दलित–दोनों ही लंबे समय तक शोषण और उपेक्षा के शिकार रहे हैं, लेकिन जब स्त्री और दलित दोनों की अस्मिता किसी एक व्यक्ति के कारण दमित और शोषित की जाती हैं, तब उसका जीवन दोहरे संघर्षों से घिरा होता है। यही अनुभव दलित स्त्रियों की आत्मकथाओं को अत्यंत मार्मिक और प्रामाणिक बनाता है। कौशल पँवार की आत्मकथा 'बवंडरों के बीच' आधुनिक दलित स्त्री की ऐसी ही छवि को सामने लाती है। भारतीय समाज जाति और लिंग आधारित असमानताओं से लंबे समय से ग्रस्त रहा है। इसमें दलित स्त्रियाँ सबसे अधिक शोषित और उपेक्षित रही हैं। वे न केवल जातिगत अपमान का बोझ उठाती हैं, बल्कि स्त्री होने के कारण पितृसत्तात्मक उत्पीड़न भी झेलती हैं। ऐसे में उनकी आत्मकथाएँ हमें उनके जीवन संघर्ष और चेतना का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करती हैं। कौशल पँवार की आत्मकथा 'बवंडरों के बीच' आधुनिक दलित स्त्री की वही छवि सामने लाती है, जिसमें पीड़ा, संघर्ष, शिक्षा की आकांक्षा, विद्रोह और आत्मसम्मान के कई पहलू जुड़े हुए हैं। कौशल पँवार का जीवन जातिगत भेदभाव और स्त्री होने के कारण पितृसत्तात्मक बंधनों से जूझता रहा। फिर भी उन्होंने हार नहीं मानी और शिक्षा को अपनी ताकत बनाया। संस्कृत विषय में उच्च शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने उस परंपरागत सोच को चुनौती दी जो इसे केवल सवर्णों की भाषा मानती थी। इस तरह शिक्षा दलित स्त्री के लिए आत्मनिर्भरता और सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने का माध्यम बनती है।

"मैं आठवीं में संस्कृत लेकर पढ़ना चाहती थी इसलिए मैंने मास्टर सुरेन्द्र शास्त्री जी की कक्षा में जाना जो संस्कृत पढ़ाते थे, तो मेरे मास्टरजी ने मुझसे कहा, "संस्कृत तुम्हारे बस की है और वैसे भी तुम्हें घरों का गोबर एवं कूड़ा–कचरा ही तो उठाना है, जितना पढ़ रही है, उतना बहुत है, मैं तेरे बाप से बात करूंगा।"[1] मैंने ठान लिया था कि दिन मैंने भी संस्कृत में ही सबसे ऊंची डिग्री न ली तो। फिर खयाल आया कि मास्टर जी तो शाम को घर आएंगे। दुबारा से मैंने कक्षा में बैठने की सोची, ये सोचते हुए कि जो होगा देखा जाएगा। अगले दिन मैं समयानुसार कक्षा में पहुंच गई। हमारा छठवां घंटा संस्कृत का होना था लेकिन पांचवें पीरियड तक आते–आते मैं बहुत डर गई थी, पूरा ध्यान शास्त्री मास्टर की ओर था। जैसे ही घंटी बजी, मेरा दिल बहुत बुरी तरह से धड़कने लगा था, वही हुआ जिसका डर था। मास्टरजी ने देखते ही मुझ पर दहाड़ना शुरू कर दिया और आगे की ओर बुलाया, मैं डरी सहमी मास्टर की कुर्सी की ओर गई, और उसने कहते हुए कि तुम्हें कुछ समझ नहीं आता, तुम मेरे मना करने के बाद भी कक्षा में संस्कृत पढ़ने के लिए बैठ गई, सीधे मुंह से बात समझ नहीं आई, तेरे बाप से बात की थी, हाथ जोड़ कर माफी मांगी थी उसने, इसलिए पता तुम्हें पढ़ने दिया है, वरना

तुम्हें कौन सा कलक्टर बनना है, हमारे घरों में गंद ही ढोना है इस सिर पर। मेरी चोटी को पकड़कर, झटकते हुए कहा, मेरे थोड़े से बोलने पर कि मैं पढ़ लूंगी, मेरे मुंह पर जोरदार तमाचा जड़ दिया जिसकी गूंज से पूरी कक्षा सहम गई थी।"[2] हमारे समाज में शिक्षा का अधिकार सबके लिए बराबर नहीं माना गया। जातिवादी सोच और संकीर्ण दृष्टिकोण ने ज्ञान की राह में बड़ी रुकावटें खड़ी कीं। शिक्षक, जिन्हें मार्गदर्शक होना चाहिए था, वही सबसे बड़ी बाधा बन गए। संस्कृत जैसी भाषा जिसे देववाणी कहा जाता है, उसे दलित और स्त्रियों से दूर रखने का प्रयास किया गया। फिर भी अपमान और कठिनाइयों के बीच लेखिका ने यह निश्चय किया कि वह शिक्षा का मार्ग नहीं छोड़ेगी। असल चोट छात्रा को नहीं, बल्कि शिक्षक को लगी उसने अनजाने में ही सही एक प्रेरक की भूमिका निभाई जिद्दी होने के कारण लेखिका ने संस्कृति विषय से पीएच. डी. की डिग्री हासिल की। यह आत्मकथा यह भी दर्शाती है कि दलित स्त्री का संघर्ष केवल सामाजिक या आर्थिक स्तर पर ही नहीं है, बल्कि मानसिक और भावनात्मक स्तर पर भी गहरा है। लेखिका अपने जीवन में हुए शोषण का जिक्र करते हुए लिखती हैं कि स्कूल शिक्षा के दौरान सतबीर कटाक्ष करते हुए बोलता है– "चूहड़ों ने उनके घर के चूल्हों में गंदगी फैला रखी है। इन्हें तो इनके घरों के सूअरों, भेड़–बकरियों और मुर्गों के साथ–साथ जलाकर खत्म कर देना चाहिए। मैं खून का घूंट पीकर रह गई। क्लास में आकर बैठ गई। पढ़ाई से मन बार–बार उचट रहा था। फिजिकल ही था। मैं भी थोड़ी दूर खड़ी हो गई। फिजिकल के टीचर डिस्कस थ्रो की प्रेक्टिस करवा रहे थे। मेरा भी नंबर आया। मैं डिस्कस फेंकने के लिए बीच के प्वाइंट पर आ गई। सभी मेरी ओर देख रहे थे कि तभी सतबीर लड़कों के झुंड में से निकलकर मुझसे सटता हुआ, मेरे हाथ से डिस्कस छीनता हुआ आगे आकर बोला–शडिस्कस फेंकना इसके बस की बात नहीं है। वह मेरे और नजदीक आकर कहने लगा कि– वैसे भी इसे तो हमारे घरों में कूड़ा और गोबर ही उठाना है या सुअर ही चराने हैं। हमारी बराबरी करने का इसे न अधिकार है और न ही वह ऐसा कर सकती है।"[3] जातिगत अपमान और स्त्री होने का अपमान– दोनों मिलकर उसके जीवन को और जटिल बनाते हैं। फिर भी कौशल पँवार ने डॉ. अंबेडकर के विचारों से प्रेरित होकर अपने स्वाभिमान को बनाए रखा और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई।

'बवंडरों के बीच' आधुनिक दलित स्त्री को केवल सहनशील और पीड़िता के रूप में प्रस्तुत नहीं करती, अपितु उसे संघर्षशील, शिक्षित, विद्रोही और आत्मसम्मानी स्त्री के रूप में सामने लाती है। स्कूल शिक्षा ग्रहण करने के दौरान शिक्षक ने जाति पहचानने के लिए स्कूल में अलग–अलग रंग की वर्दी के लिए कपड़ा दिया था हमें नीले रंग की वर्दी थी। जिस कारण जातिगत अपमान अधिक सहना पड़ा– "चाचा को मैंने बताया– "मैंने जैसे आपसे कहा, वैसे ही हेडमास्टर को भी बोल दिया कि इस वर्दी के कपड़े का रंग नीला है जिसे देखकर बच्चे मुझे 'चूहड़े की, चूहड़े की' कह कर सारा दिन तंग करते रहते हैं। दूसरे सभी बच्चे सफेद रंग की वर्दी पहनकर आते हैं। इसका रंग मुझे अच्छा नहीं लगता, क्योंकि इसका अलग रंग है, नीला। जैसे ही हेडमास्टर ने मेरा जवाब सुना, मेरे मुंह पर जोर से थप्पड़ मारा। गुस्से में आकर मुझसे कहा– "तुम्हारी इतनी हिम्मत कि तुम ये कहो कि स्कूल से जो वर्दी का कपड़ा मिलता है वह अच्छा नहीं है, सफेद या गुलाबी नहीं है। अब तुम मुझे समझाओगी कि अगर सरकार बच्चों को कपड़ा देती है तो उसे सफेद या गुलाबी देना चाहिए ताकि सारे बच्चे एक जैसे दिखें और तुम सब भी हमारे बच्चों की बराबरी कर सको। एक तो तुम लोगों का स्कूल में नाम दर्ज करवाकर ही हम लोग गलती कर रहे हैं और ऊपर से अब तुम्हारी जबान भी चलने लगी है। स्कूल से केवल नीले रंग का ही

कपड़ा मिला करेगा, सफेद नहीं। अब तुम जैसे चूहड़ों के बच्चे हमें सिखायेंगे कि हमें किस रंग का कपड़ा खरीदना है? तुम्हारी पहले भी मेरे पास कई शिकायतें आ चुकी हैं और अब तो तुम मेरे सामने भी... स्कूल से नाम काटकर घर भेज दूंगा अगर मुझे तुम्हारी कोई शिकायत दुबारा मिली तो?"[4] यह घटना बताती है कि समाज में दलित बच्चों को पढ़ाई के दौरान भी अपमान और भेदभाव सहन करना पड़ता है। स्कूल के अध्यापक ने बच्ची को सिर्फ वर्दी के रंग पर ताने मारे जिससे उसकी गरीबी और जाति दोनों का मजाक उड़ाया गया। जातिगत अपमान न सहना पड़े। इसीलिए लेखिका के पिता श्मशान से सफेद कपड़ा उठा लाते हैं, किन्तु किसी को बताते नहीं। मां के जोर देने पर पता लगता है कि कपड़ा कहाँ से आया। वो विद्रोह करती है कि मैं अपनी बेटी को यह कपड़ा नहीं पहनने दूंगी, लेकिन पिता का दृढ़ संकल्प की 'मैं बस उसे खूब पढ़ाना चाहता हूं।' शांत और दृढ़ भाव के साथ कहा था मां को समझाते हुए "वैसे भी मरने के बाद कुछ नहीं बचता शरीर का, सिर्फ राख रह जाती है, फिर उससे क्या डर? हमें तो सिर्फ इंसानों से ही डरना चाहिए। उसको सिर्फ पढ़ना है और मुझे उसे आगे बढ़ते हुए देखना है पीछे हटते हुए नहीं। मैं अभी बाहर की कोठरी में ही थी और मैंने मां और चाचा जी की सारी बातें सुन ली थीं। 'अब मैं दुगने उत्साह से अपनी पढ़ाई पूरी करूंगी', इस बात का यह दृढ़ संकल्प कर चुकी थी कि एक न एक दिन चाचा जी के सपने को जरूर पूरा करूंगी। मैंने घड़े में से पानी लिया, हाथ मुंह धोया और खाट पर रखे हुए कपड़े को उठा लिया। मैं हंसती हुई दर्जी की ओर चल पड़ी थी वर्दी सिलवाने के लिए। मैंने उस वर्दी को बड़े चाव से पहना था। मुझे कभी नहीं लगा कि यह कपड़ा किसी शमशान घाट से लिया गया है। चाचा ने मेरे अंदर स्वाभिमान कूट–कूट कर भर दिया था।"[5]

'बवंडरों के बीच' आत्मकथा जो आधुनिक दलित स्त्री की छवि को बड़े सशक्त और मार्मिक रूप में प्रस्तुत करती है "मेरे लिए पढ़ाई अब नौकरी का जरिया होने के साथ–साथ चेतना, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता और तर्कशीलता होती जा रही थी। परिवर्तन जो न केवल विचारों में आया, बल्कि व्यवहार में भी आने लगा था। जिद्दी लड़की कहलाने लगी थी अब मैं। स्कूल के टीचर भी 'छोरी बड़ी जिद्दी है' कहने लग गए थे।"[6] यह आत्मकथा केवल व्यक्तिगत जीवन कथा नहीं है, बल्कि इसमें दलित समाज की पीड़ा, स्त्रियों के संघर्ष, सामाजिक अन्याय और बदलते समय की चेतना को भी गहराई से उकेरा गया है– "आज मैं एक कामयाब महिला अपने आपको कह सकती हूँ। ये कामयाबी यूँ ही हासिल नहीं हुई है। बरसों की तपस्या इसमें शामिल है। कितना शोषण, दुःख, दर्द, तकलीफ पीड़ा और दुत्कार सहे होंगे, इसका हिसाब करने बैठूंगी तो ये कामयाबी कुछ भी नहीं, उसके सामने। फिर भी मैं उन महिलाओं से, लड़कियों से अलग तो हूँ ही जो आज भी अपने सर पर गंदगी ढोने का काम करती हैं। आज भी हमारी महिलाएं सड़कों पर काम करती हैं और शोषण का शिकार होती हैं। उनको पुरुषों के बराबर मजदूरी भी नहीं मिलती, क्योंकि वे औरतें हैं और औरत मर्द की बराबरी मजदूरी करते हुए भी नहीं कर सकती। दूसरों के खेतों में काम करती हैं और ताउम्र खपती रहती हैं। बस यही जीवन है उनका। स्वतंत्र समाज से उनका आज भी कोई लेना देना नहीं है।"[7]

संघर्षशील और जिजीविषा कौशल पँवार ने बचपन से ही जातिगत भेदभाव और सामाजिक उपेक्षा झेली। उनके प्राध्यापक बनने तक का सफर कठिनाइयों से भरा था। यह उनकी अडिग इच्छाशक्ति और जिजीविषा का परिचायक है। इस संघर्षशील रूप में आधुनिक दलित स्त्री अब केवल पीड़िता नहीं, बल्कि योद्धा बनकर सामने आती है। कौशल पँवार ने बचपन से ही जातिगत भेदभाव और स्त्री होने के दोहरे शोषण को झेला। उच्च शिक्षा

प्राप्त करने और प्राध्यापक बनने तक का उनका सफर सामाजिक प्रतिरोध और उपेक्षा के बावजूद निरंतर संघर्ष का प्रतीक है। एम.फिल. की डिग्री रोहतक एम.डी.यू से प्राप्त कर चुकी थीं। मेरे शोध निर्देशक भी मेरे शोध कार्य से खुश थे। अब पीएच.डी करना रह गया था जो मेरे चाचा (पिता) का सपना था डॉ. आशा जी के यहाँ सीट खाली थी और उन्होंने आश्वासन दे दिया था कि वह अपने निर्देशन में मुझे पीएच.डी. करवाएंगी पर ऐसा हुआ नहीं। आशा अब निराशा में तब्दील हो गई शिक्षा व्यवस्था में शिक्षकों से मिले धोखे ने मुझे अंदर तक तोड़ दिया था– "थोड़ी चुप्पी के बाद मैडम ने मुझसे प्यार से बड़प्पन दिखाते हुए और समझाने के लिहाज से कहा, "देखो मैं तुम्हें अच्छी तरह जानती हूं कि तुम बहुत मेहनती हो और तुम्हारी घर की स्थिति भी अच्छी नहीं है... तुम... जहां से आती हो, वहां पर मोटा–मोटा रोजगार करना ज्यादा ठीक रहता है। तुम एम.फिल. तो कर ही चकी हो, आगे पढ़कर क्या कर लोगी? नौकरी तो तुम्हें पीएच.डी. करने के बाद भी नहीं मिलेगी। इसमें तुम्हारे पांच–छह साल और चले जाएंगे। नौकरी की उमर भी निकल जाएगी, इसलिए मैं तुम्हारी भलाई को देखते हुए ही ये कह रही हूं कि तुम नेट–वेट की तैयारी करो और जॉब के लिए कंपटीशन एग्जाम की तैयारी करो। तुमने बी.एड. तो पहले से ही किया हुआ है तो जब तक नेट नहीं हो जाता तब तक किसी प्राइवेट स्कूल में नौकरी कर लो ताकि घर का खर्च चला सको। वैसे भी आगे पढ़ने से क्या पाओगी? इसलिए मेरी यही सलाह है कि तुम पीएच.डी. –वीएच.डी. करने के चक्कर में मत पड़ो।"[8] 'बवंडरों के बीच' में शिक्षा को मुक्ति और आत्मनिर्भरता का साधन माना गया है पर उसके अवरोधक खुद कुछ शिक्षक होते हैं, किन्तु कई अपमान, तिरस्कार को सहकर वह जे.एन.यू जैसी उच्च संस्था से पीएच.डी. की डिग्री भी प्राप्त कर लेती हैं। संस्कृत जैसी परंपरागत 'सवर्ण भाषा' में उच्च शिक्षा प्राप्त कर कौशल पँवार ने सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती दी। यह छवि आधुनिक दलित स्त्री को नए आत्मविश्वास और बौद्धिक स्वतंत्रता से जोड़ती है। दलित स्त्री के जीवन में शिक्षा के महत्त्व को आत्मकथा विशेष रूप से रेखांकित करती है। कौशल पँवार स्वयं संस्कृत की प्राध्यापक बनीं जो परंपरागत रूप से 'सवर्णों' का क्षेत्र माना जाता था। यहाँ आधुनिक दलित स्त्री को शिक्षा के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने वाली और आत्मनिर्भर बनने वाली छवि मिलती है। एम.ए. के दौरान किया गया दृढ़–संकल्प– "बस एक जुनून था कि मुझे ऐसी जिंदगी नहीं जीनी जो मेरे समुदाय की लड़कियां जीती हैं।"[9]

दलित स्त्री को जातिगत और लैंगिक– दोनों स्तरों पर भेदभाव का सामना करना पड़ता है। आत्मकथा में यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि दलित स्त्री की पीड़ा दलित पुरुष से कहीं अधिक गहरी और जटिल है। चाचा (पिता) के बीमार पड़ने पर मैं उनकी जगह लेबर का काम करने जाने लगी थी। वहाँ पर भी ठेकेदार द्वारा वहशियत की दृष्टि देखने को मिलती थी। जिससे बोध होता की चाहे दलित स्त्री हो या स्वर्ण स्त्री कहीं भी कोई भी स्त्री आज भी पूर्ण रूप से सुरक्षित नहीं है– "मैंने पहले उसकी आंखों की वहशियत देखी फिर रॉड को देखा। रॉड जो तारकोल को उलटने–पलटने का काम करती थी इसलिए तारकोल से ज्यादा ही आग में तपती रहती थी। उस रॉड के ऊपरी हिस्से पर लकड़ी लगी होती थी और कपड़ा भी बंधा होता था, ताकि गरम न लगे, उसी से उस रॉड को पकड़ा जाता था। वही हिस्सा उसने पकड़ा हुआ था, उसने रॉड मेरी ओर की। मैं अच्छी तरह जान गई थी कि ठेकेदार का लड़का क्या चाहता था। वह मेरा हाथ पकड़ना चाहता था। उसने फिर मेरी तरफ की रॉड। पहले तो मुझे समझ नहीं आया क्या करूं? लेबर कुछ दूर भी थीं। बचने का कोई साधन नहीं था मेरे पास। वह इसी बहाने छूना चाहता था। लेकिन जो वह चाहता था उसे हरगिज पूरा नहीं

होने दूंगी, निर्णय कर चुकी थी। उसने गर्म–गर्म भाप निकालती हई रॉड को देखा। वह अपना हाथ मेरी तरफ किये खड़ा था कि मैंने झट से किनारे से ही रॉड को पकड़ लिया, दुर्द के मारे चीखी मैं। मेरी चीख हवा में गूंज उठी। तड़प उठी थी मैं जलन से। मेरा दायां हाथ बुरी तरह से जल उठा था। हाथ में बड़े–बड़े फफोले पड़ गए थे। दर्द व पीड़ा के मारे मैं विलख गई थी। मेरे लिए बहुत बड़ा सबक बन गया था। लड़की होने की सजा अब मैं भुगतने लगी थी। अब इन नजरों से मेरा सामना होने लगा था। मेरे समाज की बहुत सी औरतें जमींदार के घरों में काम करती थीं। बड़े लोग उन्हें भी अपनी जागीर समझते थे। जब जी चाहा छेड़ दिया। जो मन किया, कर दिया। सभी महिलाओं की हालत ऐसी ही थी।"[10] कौशल की आत्मकथा पढ़कर ही समझा जा सकता है कि कॉलेज की पढ़ाई के साथ–साथ आर्थिक तंगी के कारण मजदूरी करना कितना मुश्किल रहा होगा। साथ ही वह श्रमिक स्त्री के शोषण और पहलुओं की ओर भी पाठकों का ध्यान खींचती हैं। यह घटना केवल एक सवर्ण या दलित लड़की की व्यक्तिगत पीड़ा नहीं है, बल्कि पूरे समाज की स्त्रियों की स्थिति का प्रतीक है। ठेकेदार का लड़का पितृसत्ता और सत्ता–सम्पन्न वर्ग की हवस का प्रतिनिधि है, जबकि एक लड़कीध्स्त्री का प्रतिरोध यह दर्शाता है कि स्त्रियाँ अब चुपचाप अन्याय सहने के बजाय विरोध करने का साहस जुटा रही हैं। औरत को 'जागीर' समझकर उनका अपमान करना सत्ता और पितृसत्ता का दोहरा अत्याचार है। ऐसे में लड़की/स्त्री जलन और पीड़ा सहते हुए भी अपने शरीर और आत्मसम्मान की रक्षा करती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कौशल पँवार की आत्मकथा 'बवंडरों के बीच' केवल व्यक्तिगत अनुभवों की कथा नहीं है, बल्कि यह दलित स्त्री के सामूहिक जीवन को स्वर देती है। इसमें जाति और स्त्री प्रश्न आपस में गूँथे हुए हैं जो दलित विमर्श और स्त्री विमर्श दोनों को नया आयाम प्रदान करते हैं। आत्मकथा में आधुनिक दलित स्त्री की छवि एक संघर्षरत, शिक्षित, आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी और विद्रोही स्त्री के रूप में उभरती है। यह आत्मकथा आधुनिक दलित स्त्री की उस छवि को सामने लाती है जो केवल सहन करने वाली नहीं, बल्कि टकराने वाली, आवाज उठाने वाली और बदलाव लाने वाली स्त्री की है। कौशल पंवार ने इन भेदभावों के बीच शिक्षा को अपना हथियार बनाया और यह साबित किया कि अवसर भले ही सीमित हों, किन्तु अगर इच्छाशक्ति प्रबल हो तो कोई भी वर्जना हमें आगे बढ़ने से रोक नहीं सकती। उनकी जीवन यात्रा– एक सामान्य दलित बालिका से लेकर संस्कृत की प्राध्यापक बनने तक– उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति, स्वाभिमान और विद्रोही चेतना की मिसाल है। आत्मकथा यह भी दर्शाती है कि किस प्रकार सामाजिक संस्थाएं– जैसे कि विद्यालय, शिक्षक और विश्वविद्यालय– जो मूल रूप से मार्गदर्शक और सहायक होने चाहिए। वे ही दलित स्त्रियों के लिए अवरोधक बन जाते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्हें बार–बार यह जताया जाता है कि वे उनकी दुनिया का हिस्सा नहीं हैं। कई मार्मिक घटनाएँ– जैसे वर्दी का रंग, श्मशान से लाया गया कपड़ा या शारीरिक उत्पीड़न के प्रयास– इस बात को उजागर करते हैं कि दलित स्त्रियों का संघर्ष केवल बौद्धिक नहीं, अपितु शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तरों पर भी होता है। फिर भी इन पीड़ाओं से गुजरते हुए लेखिका टूटती नहीं। वह हर बार और अधिक मजबूती से उभरकर पुनः खड़ी होती हैं। एक महत्त्वपूर्ण आत्मकथा ये तब बन जाती जब यह सिर्फ अतीत का लेखा–जोखा नहीं देती, बल्कि वर्तमान समाज के ढांचे को भी सवालों के घेरे में लाती है। यह आत्मकथा हमें सोचने पर विवश करती है कि क्या वास्तव में हमारा समाज शिक्षा, सम्मान और समानता के अधिकार को सभी नागरिकों के लिए बराबरी से उपलब्ध कर पा रहा है? इस प्रकार कौशल पंवार की आत्मकथा दलित स्त्री

की छवि को 'पीड़िता' से 'संघर्षशील योद्धा' में बदलती हैं जो न केवल अपने लिए, अपितु आने वाली पीढ़ियों के लिए भी प्रेरणा बनती है। यह आत्मकथा दलित स्त्री विमर्श को नई दृष्टि, नई भाषा और नए आत्मविश्वास से समृद्ध करती है और पाठकों को सामाजिक न्याय, संवेदनशीलता और परिवर्तन की दिशा में सोचने के लिए प्रेरित करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. पंवार, कौशल. (2020), बवंडरों के बीच, दिल्ली –110092 The marginalised publication, पृष्ठ संख्या–59
2. बवंडरों के बीच, पृष्ठ संख्या–115
3. बवंडरों के बीच, पृष्ठ संख्या–87
4. बवंडरों के बीच, पृष्ठ संख्या–89
5. बवंडरों के बीच, पृष्ठ संख्या–93
6. बवंडरों के बीच, प्राक्कथन से।
7. बवंडरों के बीच, पृष्ठ संख्या– 195
8. बवंडरों के बीच, पृष्ठ संख्या– 161
9. बवंडरों के बीच, पृष्ठ संख्या–127

Akank199@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 317-322
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक हिन्दी कविताओं में प्रकृति चेतना

डॉ. सतीश कुमार श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पीएसजी कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड साइंस, कोयंबत्तूर, तमिलनाडु–641014

शोध सारांश :–

यह सर्वविदित है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और साहित्य समाज का दर्पण। इसके अलावा मनुष्य अपने जन्म से लेकर अपने अंतिम समय तक प्रकृति के साए में ही रहता है। वह प्रकृति की गोद में ही जन्म लेता है और उसी में विलीन हो जाता है। शुरुआत से लेकर आखिरी साँस तक प्रकृति के साथ रहने के कारण मानव, मानवीय सभ्यता और उसके समाज का प्रकृति के साथ काफी पुराना और घनिष्ठ संबंध है। ध्यान से देखा जाए तो प्रकृति के बिना मानव क्या किसी भी प्रकार के जीवन की ही कल्पना नहीं की जा सकती। जीवन तभी संभव है, जब किसी न किसी रूप में मौजूद हो, वरना सबकुछ निर्जीव है। मानव जीवन में प्रकृति का इतना महत्व होने के कारण प्रकृति के प्रति उसका चेतनशील स्वाभाविक है। प्रकृति के प्रति मनुष्य की यह चेतनता उसकी अभिव्यक्ति और रचनाशीलता में भी साफ नजर आती है। आदिकालीन साहित्य से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्य में प्रकृति के विविध रूपों का उल्लेख किया गया है। पिछले कुछ दशकों से जारी प्रकृति के अंधाधुंध दोहन के कारण आज विज्ञान से लेकर साहित्य तक सभी प्रकृति को लेकर न केवल चिंतित हैं, बल्कि उसे सजाने–संवारने के साथ–साथ उसे बचाने और बसाने के प्रयास में लगे हुए हैं। प्रकति के इस दोहन के चलते आधुनिक युग के कवियों की कविताओं में इसका साफ दिखाई देता है। वर्तमान दौर के कवि इस बात को लेकर सचेत करने में लगे हुए हैं कि प्रकृति के साथ जारी यह छेड़–छाड़ भयावहता की ओर बढ़ते कदम हैं। इस शोधालेख में आधुनिक कविताओं को केंद्र में रखकर प्रकृति के विविध रूपों के प्रति कवियों चेतनशीलता को दिखाने का प्रयास किया जा रहा है।

बीज शब्द– प्राकृतिक चेतना, प्रकृति के विविध स्वरूप, पर्यावरण, मानवीय जीवन, प्रकृति संरक्षण, संवेदनशीलता।

मूल शोध :–

हम सभी यह बात भलीभाँति जानते हैं कि प्रकृति में ही सम्पूर्ण जीवन लिप्त है। प्रकृति के विविध रूप इन्सान जगत को एक नई उर्जा प्रदान करता है। मानव की लगभग समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति इसी प्रकृति की गोद से ही संभव हुआ है। प्रकृति के अर्थ की चर्चा हिन्दी विकिपिडिया पर कुछ इस प्रकार से मिलती है "प्रकृति, व्यापकतम अर्थ में, प्राकृतिक, भौतिक या पदार्थिक जगत या ब्रह्माण्ड है। 'प्रकृति' का सन्दर्भ भौतिक जगत के दृग्विषय से हो सकता है, और सामान्यतः जीवन से भी हो सकता हैं। प्रकृति का अध्ययन, विज्ञान के अध्ययन का बड़ा हिस्सा है। यद्यपि मानव प्रकृति का हिस्सा है, मानवी क्रिया को प्रायः अन्य प्राकृतिक दृग्विषय

से अलग श्रेणी के रूप में समझा जाता है।"[1] इसी प्रकार प्रकृति और पर्यावरण का अर्थ समझाते हुए डॉ. कुलदीप सिंह तोमर लिखते हैं कि "वायुमण्डल, भूमि, नदियाँ, समुद्र, वनस्पति, जीव–जन्तु और यहाँ तक कि सूक्ष्म से सुक्ष्म वैक्टिरिया और वायरस भी पर्यावरण के विविध अवयव हैं, जो सभी एक दूसरे से जुड़े हैं। इसलिए इसमें छोटे से छोटा परिवर्तन भी पूरे पर्यावरण पर प्रभाव डाल सकता है।"[2]

प्रकृति मानव सभ्यता के विकासक्रम में सबसे बड़ी भूमिका अदा करते हुए चली आ रही है। न जाने कितनी सभ्यताएँ इसकी गोद में पली–बढ़ी और विनष्ट हुईं, और आगे भी यही क्रम चलता रहेगा। आधुनिक काल के पिछले कुछ दशकों की बात करें तो अपनी विकास–यात्रा में स्वार्थी बन चुका आज का मानव दिन पर दिन प्रकृति का नाश करते हुए खुद अपने विनाश की ओर तेजी से बढ़ रहा है। मानव द्वारा प्रकृति के साथ किए जा रहे कुकृत्यों का ही परिणाम है कि आज प्रकृति अपना मनोहारी रूप छोड़कर रौद्र रूप धारण कर रही है। कहीं बाढ़ आ रही है, तो कहीं सूखा। कहीं भू–स्खलन है, तो कहीं भूकंप। अपने तथाकथित विकास के लिए प्रकृति के विनाश पर तुले मनुष्य को चेताते हुए कवि डॉ. सतीश कुमार श्रीवास्तव 'नैतिक' लिखते हैं कि :

धरती से जीवन काट रहे,
तुम नाश–निमंत्रण बाँट रहे।
यमुना का पानी मैला है,
माँ सरयू का गंधैला है,
कावेरी गाद से पटी पड़ी
गंगाजल हुआ विषैला है।
पोखर–तालों का बुरा हाल
ना नीर बचा, ना घाट रहै....।[3]

कवि डॉ. सतीश कुमार श्रीवास्तव 'नैतिक' अपनी कविताओं में प्रकृति को लेकर मनुष्य को केवल चेतावनी भर नहीं देते, इस दिशा में सकारात्मक पहल करने की प्रतिज्ञा करते हुए भी दिखाई देते हैं। वे लिखते हैं कि–

कंक्रीटों के जंगल में
फिर से हरियाली लाएँगे
धरती स्वर्ग बनाएँगे
हम धरती स्वर्ग बनाएँगे... ।[4]

वर्तमान युग के प्रकृति के सहचर कवियों में से एक रमेश पोखरियाल 'निशंक' का जन्म प्रकृति के अनुपम वरदान उत्तरांचल के पौढ़ी गढ़वाल जिले में हुआ था। प्रकृति की गोद में पल–बढ़े और पढ़े–लिखे निशंक ने जब शहर की भागदौड़ और हताशा–निराशा को देखा, तो परेशान होकर उनका मन से पुनः प्रकृति की गोद में लौटने के लिए व्याकुल हो उठा। अपनी एक कविता में प्रकृति और गाँव की गोद में लौटने का आह्वान करते हुए वे कहते हैं कि–

'बाट तुम्हारी राह जोहती नदियाँ हैं अकुलाई
पवन के झोंके तो ठहरे हैं कलिया भी मुस्काई
ईर्ष्या की लपटों से बचकर तरू की झाँव चले

छोड़ सभी आडंबर जग के आ अब गाँव चलें।'[5]

प्रकृति के विनष्ट हो रहे स्वरूप से, मानवीय छरण से सबसे ज्यादा कोई आहत होता है तो वह है कवि मन। अपने स्वार्थ मनुष्य जब–जब प्रकृति के साथ खिलवाड़ करते हुए उसे उजाड़ने का प्रयास सरता है, तब–तब कवि की कलम चीत्कार उठती है। कवि सुधीर रंजन भावुक होकर लिखते हैं –

'दुनिया को नष्ट करने के लिए जो कुछ बनाया जाता है,
काश वह भी सिर्फ देखने के लिए बना होता।'[6]

प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके अपनी शक्ति में इजाफा करने के लिए दुनिया के लगभग सभी देश परमाणु बम और अनेक आधुनिक व अत्याधुनिक हथियार बनाने में लगे हुए हैं। अपनी झूठी शान और शक्ति दिखाने के लिए वे आए दिन प्रकृति के साथ–साथ मानवता को भी शर्मशार कर रहे हैं। जापान का हिरोशिमा शहर दशकों पहले हुए परमाणु हमले का दंश आज भी झेल रहा है, इसके बावजूद न तो युद्ध रुकने का नाम ले रहे हैं, न ही परमाणु और अन्य आधुनिक हथियारों का निर्माण–कार्य। दुख की बात तो यह है कि इसके निर्माण और प्रयोग के लिए भी प्रकृति के श्रृंगार नदियों, पहाड़ों और झरनों आदि का ही इस्तेमाल किया जा रहा है। अपनी कंक्रीटों की दीवार खड़ी करने के लिए जिस ढंग से हम जंगलों, पहाड़ों और नदियों को तेजी से उजाड़ने में लगे हुए हैं, वह निंदनीय होने के साथ–साथ चिंतनीय भी है। स्वार्थ में अंधा हो चुका मनुष्य जिस तेजी से अपना सुंदर घर बनाने के लिए प्रकृति की सुंदरता को तार–तार कर रहा है, वह काफी खेदजनक है। यह सोचने की बात है कि आखिर प्रकृति का घर उजाड़कर हम अपना घर कैसे बना सकते हैं? प्रकृति के स्वर्ग को उजाड़कर अपने घर को स्वर्ग बनाने की हमारी यह कामना बेमानी और खुदगर्जी तो है ही, साथ–साथ इसे स्वयं को स्वर्गवासी बनाने का मूर्खतापूर्ण प्रयास भी कहा जा सकता है। इन घटनाओं से दुखी कवि अश्वघोष लिखते हैं कि –

'इस वक्त कुल्हाड़ी और आग के शिकंजे में है जंगल
हरियाली भोग रही है तडीपार की सजा
किसी कोढ़ी की भाँति एकान्त में सिसक रहे हैं पहाड़
अजगर की तरह इठलाती सड़कें धीरे–धीरे
निगल रही हैं पहाड़ों का जिस्म।'[7]

देश विदेश में विकास का डंका बज रहा है। प्रत्येक देश इस होड़ में लगा हुआ है कि मेरा देश सबसे अधिक विकसित हो, लेकिन हकीकत यह है कि विकास के मोहजाल में फंसी यह दुनिया प्रकृति को उजाड़कर स्वयं अपने ही विनाश को आमंत्रित कर रही है। खुद को विकास के शिखर पर स्थापित करने के लिए जंगल, पहाड़ और नदियां आदि प्रकृति के अंगों के साथ छेड़छाड़ की जा रही है। पहाड़ों और जंगलों को काटकर सड़कें बनाई जा रही हैं, तो नदियों में कल कारखानों का गंदा पानी बहाया जा रहा है। इससे जंगल से लेकर जलीय जानवरों तक का जीवन खतरें में आ गया है। मनुष्य द्वारा अपना घर और दाना–पानी तबाह किए जाने से लाचार और परेशान ये जानवर मजबूर होकर रिहायशी इलाकों की ओर रुख करने लगे हैं। पिछले कुछ सालों में जंगली जानवरों के रिहायशी इलाकों में प्रवेश करने की घटनाएँ तेजी से बढ़ी हैं। आखिर बढें भी क्यों नहीं, क्योंकि ये जानवर जुबान होने के बावजूद न तो मनुष्य की तरह बोल सकते हैं, और न ही ताकर होने के बावजूद

विरोध–प्रदर्शन की कर सकते हैं। कंपनी से लेकर कॉलेजों तक के निर्माण के दौरान पेड़–पौधे तो कटते ही हैं, कई बेकसूर–बेजुबान जीवों की जान भी चली जाती है। इतना ही नहीं इन जीवों के अंड़ों को भी आधुनिक मशीनों तले मसल दिया जाता है। प्रकृति के साथ जारी इस खिलवाड़ से आहत कवयित्री ग्रेस कुजूर लिखती हैं कि :–

'आज तुम अपने स्वार्थ के लिए
पर्वतों के पत्थर तोड़ रहे हो
बारूदी गंध से जीवन को मरोड़ रहे हो
क्या कभी नदियाँ लौट कर पूछेगी अपने खंडहर होते पर्वतों से
कि कहाँ गया उनका उद्गम?
कहाँ गया उनका वैभव?
तब पर्वत रोएगा सूख जाएंगी उसकी धाराएँ।'[8]

इन पंक्तियों में कवयित्री का मनुष्य से यह सीधा–सा सवाल है कि जिस उत्तेजित गति से नदी, वह पहाड़ की दुर्गति कर रहा है, उसका परिणाम कौन भोगेगा। अगर बारूदी सुरंग बनाकर वह पर्वतों को ऐसे उड़ाता रहा और उसके अवशेषों का गिट्टी, बालू और सिमेंट बनाकर मकान बनवाता रहा, तो वर्षा कहाँ से होगी? गौरतलब है कि मानसून के दौरान अच्छी बारिश के लिए बादलों का पहाड़ों से टकराना जरूरी है। इसके अलावा घर बनाने के लिए अपनी गोद पहाड़ों के कटने से प्रकृति इस कदर दुखी और क्रोधित है कि आए दन बादलों के फटने और पहाड़ों के खिसकने की घटनाएँ सामने आ रही हैं। अभी हाल ही में उत्तराखण्ड में पहाड़ खिसकने और बादल फटने की घटना में हजारों घर तो तबाह हुए ही न जाने कितने लोगों की जान भी चली गई। इसी तरह नदियों का रास्ता मोड़कर या रोककर वहां अपना घर बनाने वालों को भी सोचना होगा कि, जिस दिन नदी ने अपना रास्ता खोज लिया, उस दिन वह आपके घर को मिट्टी में मिला देगी। उल्लेखनीय है कि अपनी गोद के उजड़ने से जब प्रकृति के मन को ठेस पहुँचती है, तब उसका रौद्र रूप सम्हाले नहीं सम्हलता। नदियों की यही पीड़ा प्रेमशंकर रघुवंशी की कविता में अभिव्यक्त हो रही है –

'सूखते जा रहे हैं झरने
और उजड़ते जा रहे हैं पहाड़
उजड़े पहाड़ों को देखती रात–दिन
विलाप में लीन है नदी
तिस पर चाहे जो चाहे जहाँ रोक लेता है उसे
तो ठीक से चल फिर भी नहीं पाती नदी।'[9]

कवि मन को बहुत तकलीफ है इस बात से कि मनुष्य कब चेतेगा? यदि चेतेगा नहीं तो चिता पर लेटने से कोई बचा नहीं पाएगा। जिस प्रकार से पेड़ों की अंधाधुंध कटाई जारी है उससे तो यही प्रतीत होता है कि चिता के लिए भी लकड़ियाँ नहीं मिलेगीं। इतना ही नहीं जिस नदी में तरनतार के लिए मनुष्य लाइन लगाकर खड़ा है, वह भी या सूख चुकी हैं, या सूखने के कगार पर पहुँच चुकी है। जो थोड़ी–बहुत बची हैं वह भी नदी से अधिक नाला ही प्रतीत हो रही हैं। सोचिए अगर नदियाँ भी सूख गईं, तो हमारा क्या होगा? हमारे सामने कुछ

इसी तरह के प्रश्नों को उठाते हुए कवि नरेश सक्सेना लिखते हैं कि –

'बढ़ते मनुष्य और घटते पेडों की चिंता
पेड़ कर ही नहीं सकते
और मनुष्य करना ही नहीं चाहते
किसी प्रकार की चिंता
जल्दी मरने को सारी प्रक्रिया पूरी करके भी
मनुष्य मरना नहीं चाहता बहुत जल्दी
हालांकि वह सब कुछ कर रह है
अपनी साँसों के विरुद्ध।'[10]

यहाँ कवि अपनी अंतिम पंक्ति 'अपनी साँसों के विरूद्ध' के माध्यम से प्रकृति के अंधाधुंत दोहने के कारण भविष्य में आने वाली बहुत बड़ी भयाहवता की चेतावनी दे रहे है, लेकिन अपने विकास के सपने को साकार करने के स्वार्थ में अंधे हो चुके मनुष्य पर इसका कोई असर नहीं पड़ रहा है। हम सभी यह अच्छी तरह जानते हैं कि जीने के लिए ऑक्सीजन जैसा अनमोल उपहार हमें पेड़–पौधों से ही मिलता है, इसके बावजूद अपने छोटे–मोटे स्वार्थ साधने के लिए हम इन्हें ही तबाह करने में लगे हुए हैं। अगर यही हाल रहा तो वह दिन दूर नहीं जब हमारी आने वाली पीढ़ियाँ शुद्ध हवा के लिए तरस जाएँगी। गौरतलब है कि पिछले कुछ दशकों से शोषण और दोहन का शिकार प्रकृति ने विगत कुछ वर्षों से अपना विकराल रूप दिखाना शुरू कर दिया है। ग्लेशियर पिघलने लगे हैं, समुद्र का स्वरूप भी बदलने लगा है। भूकंप, बाढ़, भूस्खलन और हिमस्खलन के कारण हर तरफ हाहाकार मचा हुआ है।

वैज्ञानिकों के साथ–साथ कवियों ने भी हमें चेताना शुरू कर दिया है कि जब तक प्रकृति सुरक्षित है, तभी तक मानव सभ्यता भी बची हुई है। हम इसके मालिक नहीं अनुचर हैं। जब–जब हमने इसे अपने अनुसार नचाने का प्रयास किया है, तब–तब हम औंधे मुँह ही गिरे हैं। गौरतलब है कि हमारे देश में प्रकृति के अंग सूर्य–चंद्र, नदी–तलाब, पेड़–पौधे यहाँ तक की पशु–पक्षियों तक को पूजने की परंपरा रही है। हिंदीभाषी क्षेत्रों की लोक–संस्कृति में आज भी बंदर और कौए को मामा तथा बिल्ली को मौसी बताया जाता है। दरअसल ये सभी मनुष्य के साथ प्रकृति के पुराने और करीबी संबंध के पुख्ता सबूत हैं। भले ही आज विकास की अंधी दौड़ में फँसकर हम इसे भूलते चले जा रहे हैं, लेकिन वर्तमान युग के कवियों के चेताने के बाद भी अगर हम नहीं जगे, तो वह दिन दूर नहीं जब हमारी सभ्यता ही विनष्ट हो जाएगी।

संदर्भ- ग्रंथ सूची :-

1. प्रकृति – विकिपीडिया।
2. डॉ. कुलदीप सिंह तोमर, वर्तमान समय के संदर्भ में पर्यावरण जागरूकता का अध्ययन, शोध समालोचना (रिफर्ड जर्नल पत्रिका) पृ. सं. 96
3. डॉ. सतीश कुमार श्रीवास्तव 'नैतिक', हर घर पे तिरंगा हो, नोसन प्रेस, वर्ष 2021, पृ. सं. 91
4. डॉ. सतीश कुमार श्रीवास्तव 'नैतिक', हर घर पे तिरंगा हो, नोसन प्रेस, वर्ष 2021, पृ. सं. 93

5. रमेश पोखरियाल निशंक कोई मुश्किल नहीं कविता संग्रह, आ अब गाँव चलें कविता।
6. रंजन, सुधीर, परिकथा (अंक–13), दिल्ली, मार्च–अप्रैल 2008, पृष्ठ संख्या–91.
7. अश्व घोष, सीढ़ियों पर बैठा पहाड़ (काव्य संग्रह), मेघा बुक्स, दिल्ली, वर्ष–2010, पृष्ठ संख्या 55
8. ग्रेस कुजूर, समकालीन आदिवासी कविता (सं. हरिराम मीणा), अलख प्रकाशन, जयपुर, वर्ष–2013, पृष्ठ संख्या–24.
9. रघुवंशी, प्रेमशंकर, पहल (अंक–89), जबलपुर, जुलाई 2018, पृष्ठ संख्या–210
10. नरेश सक्सेना, समुद्र पर हो रही है बारिश (काव्य संग्रह), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, वर्ष 2001, पृष्ठ संख्या–91

Email : drsatishkumarsrivastava@psgcas.ac.in
Mob. 7806938161

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 323-326
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी उपन्यासों में चित्रित किन्नर विमर्श

चिन्मयी राउत
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, रमादेवी महिला विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर, ओडिशा।
डॉ. वेदुला रामालक्ष्मी
शोध निर्देशिका, सहायक प्राध्यापिका, कमला नेहरू महिला महाविद्यालय, भुवनेश्वर, ओडिशा।

साहित्य और समाज एक–दूसरे की पूरक हैं। साहित्यकार अपने समय की परिस्थितियों और समाज के बदलते स्वरूप को अपने सृजन के माध्यम से पाठकों तक पँहुचाता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में सदियों से निचले पायदान पर खड़े अनेक उपेक्षित वर्गों को विमर्श के रूप में उभरने का मौका प्राप्त हुआ है। जिनमें स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, विकलांग विमर्श, दलित विमर्श आदि। इन विमर्शों के माध्यम से समाज में बदलाव आए। समाज में आज भी अगर कोई हाशिए पर है, तो वह किन्नर समाज है। लेकिन इक्कसवीं सदी में 'किन्नर विमर्श' पर साहित्यिक सृजन होने लगे हैं और किन्नर अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। समाज में स्त्री–पुरुष दो लिंगों का आधिपत्य सदियों से चला आ रहा है, इसलिए तृतीय लिंगी समुदाय मुख्यधारा से हटकर हाशिए पर अभिशप्त जीवन जीने को बाध्य हैं।

इतिहास से लेकर वर्तमान तक तृतीय लिंग की उपस्थिति समाज में हमेशा से है, परंतु मुख्यधारा के लोग इनकी अस्मिता को न्यूनाधिक रूप से स्वीकारते हैं। 15 अप्रैल 2014 को कानूनी तौर पर इनकी समुदाय को पहचान और अधिकार मिला। विडंबना तो यह है कि इसके पश्चात् भी इनके साथ अत्याचार होता रहा और इनके प्रति हो रहे अन्याय के खिलाफ कोई आवाज नहीं उठाता है। सांविधानिक तौर पर मिले अधिकारों के लिए भी इन्हें निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। लेकिन इक्कीसवीं सदी के साहित्यकारों ने तृतीय लिंग के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करते हुए, इनकी समस्याओं, जीवन–यापन शैली, संस्कृति–परम्परा आदि विषयों पर विस्तार से चर्चा किया है। जैसे – नीरजा माधव की 'यमदीप', प्रदीप सौरभ की 'तीसरी ताली', चित्रा मुद्गल की 'पोस्ट बॉक्स न. 203 नाला सोपारा', भगवंत अनमोल की 'जिन्दगी 50–50' आदि। हिन्दी साहित्य में 'किन्नर विमर्श' अपनी अस्मिता की पहचान के लिए प्रयत्नशील है।

बीज शब्द – संघर्ष, अस्तित्व, न्यूनाधिक, संस्कृति, परम्परा, अभिशप्त, विडंबना।

किन्नर समुदाय को मुख्यधारा में लाने का कार्य साहित्य के द्वारा ही संभव है। क्योंकि मानव विचारधाराओं में परिवर्तन लाने की शक्ति साहित्य में है। जब सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का पतन होता है, तब साहित्य ही समाज का दिग्दर्शन करता है। साहित्यकार जो देखता है, अनुभव करता है उसे ही वह लिख देता है। अर्थात् साहित्य सृजन के लिए विषयवस्तु समाज के विभिन्न पक्षों से ही लिया जाता है। इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में

अनेक विमर्शों ने जन्म लिया है, लेकिन पिछले दो दशकों में विशेषतः दो विमर्शों पर अधिक चर्चाएं हुई है, वह है विकलांग विमर्श और किन्नर विमर्श।

समाज स्त्री–पुरुष दो स्तम्भ पर आधारित है। इन दोनों के अभाव में समाज के विकास की कल्पना नहीं किया जा सकता है। इसलिए समाज में इन दोनों वर्गों को संसार चलाने का उत्तरदायित्व प्राप्त है। परंतु इन दो वर्गों के साथ–साथ एक और वर्ग है, जो इनके साथ ही चलता है किन्तु मुख्यधारा उनके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता है। उन्हें अपने लैंगिक विकलांगता के कारण हमेशा उपेक्षित एवं बहिष्कृत किया गया है। किन्नरों को न नर माना जाता है न मादा। अर्थात् इन्हें इन दो लिंगों से भिन्न तृतीय लिंग श्रेणी में रखा गया है और अंधकार पूर्ण जीवन जीने को बाध्य किया गया है। इन्हें कभी भी मुख्यधारा से जोड़ा नहीं गया है। इस समुदाय को समाज किन्नर, हिजड़ा, छक्का, थर्ड जेंडर, श्रीखंडी आदि नामों से पुकारता है।

किन्नरों की स्थिति वेदों से लेकर महाभारत काल, मुगलकाल एवं आधुनिक काल तक हमेशा से विद्यमान रही है। महाभारत काल में श्रीखंडी नामक किन्नर का उल्लेख है। अर्जुन अपने अज्ञातवास के समय वृहन्नला नामक किन्नर का वेश धारण किये थे। मुगल शासन काल में भी किन्नरों का विशेष महत्व रहा है। रानियों के हरम में किन्नर की नियुक्ति की जाती थी। अर्थात् राजा लोग युद्धों के कारण ज्यादातर राज्य से बाहर रहते थे, इसलिए रानियों की पहरेदारी के लिए हरम में किन्नरों की नियुक्ति होती थी। आधुनिक काल अस्मिता का युग है। इस युग में किन्नर अपने अस्तित्व की लढ़ाई निरंतर लड़ रहे हैं। वर्तमान समय के साहित्यकार इनकी जीवन एवं संघर्ष को अपने लेखनी के माध्यम से समाज के सम्मुख शक्तिशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं। नीरजा माधव द्वारा रचित 'यमदीप'(2002) उपन्यास किन्नर समुदाय को स्वतंत्र रूप से प्रतिनिधित्व करनेवाला प्रथम उपन्यास है। तब से लेकर आज तक अनेक उपन्यासों का सृजन हो चुका है, जिसमें प्रदीप सौरभ की 'तीसरी ताली', चित्रा मुद्गल की 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा', भगवंत अनमोल की 'जिन्दगी 50–50', महेन्द्र भीष्म की 'किन्नर कथा' और 'मैं पायल', निर्मला भूराडिया की 'गुलाम मंडी' आदि प्रमुख उपन्यास है।

लैंगिक विकलंगता के कारण केवल समाज ही नहीं स्वंय इनका परिवार भी इन्हें स्वीकार नहीं करता। वे समाज में अपने इज्जत बचाने के लिए अपने ही बच्चे का त्याग कर देते हैं। अर्थात् अपने बच्चों की किन्नर समुदाय को सौंप देते हैं। यमदीप उपन्यास में देखने को मिलता है कि किन्नर पात्र नंदरानी उर्फ नाजबीबी जब अपने घर पर फोन करती है तो, उसे प्यार के बदले पीड़ा मिलती है "देखो तुम्हारा बार–बार टेलीफोन करना या इस परिवार से संबंध रखना, हमारी इज्जत तो बढ़ाता नहीं, उलटे तुम्हें भी दुःख होता है और मम्मी–पापा को भी। तुम परिवार में रह नहीं सकती, हम रख भी नहीं सकते। इसलिए यह समझ लो तुम कि अनाथ हो। कोई नहीं तुम्हारा दुनिया में।"[1] केवल शारीरिक कमी के कारण किन्नर समुदाय को तिरस्कार का शिकार होना पड़ता है। इसलिए इस लिंगोपासक दुनिया में इन्हें अभिशप्त जीवन जीना पड़ता है।

सभ्य कहलाने वाला हमारा समाज किन्नरों की ऐसी दुर्दशा के लिए जिम्मेदार है। परिवार के द्वारा प्रताड़ित होने पर उन्हें मानसिक पीड़ा पहुँचती है। क्योंकि अपनों से हमेशा के लिए बिछड़ने का दुःख सबके लिए एक समान है। चित्रा मुद्गल कृत 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' में किन्नर पात्र विनोद अपने परिवार को छोड़कर किन्नरों के बीच रहने के लिए मजबूर होता है। माता–पिता से बिछुड़ने के पश्चात् विनोद अपने अंतर्मन की व्यथा की अभिव्यक्त करते हुए बा को पत्र लिखता है कि, "मेरी बा, तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाइयों

के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया। मेरी सुरक्षा के लिए कोई कानूनी कार्रवाई क्यों नहीं की? जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अंधा कुआं है जिसमें सिर्फ सांप–बिच्छू रहते हैं। सांप–बिच्छू बनकर वह पैदा नहीं हुए होंगे। बस, इस कुएं ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।"[2] इस समाज में एक किन्नर के रूप में जीवन–यापन करना कितना मुश्किल है इसका आभास उपोरोक्त कथन से हम जान सकते हैं। अगर कोई परिवार इन्हें प्रेम देता है और अपने पास रखना चाहता है, तो समाज उन्हें बाध्य कर देता है की वे अपने बच्चे का त्याग कर दें।

किन्नर समुदाय और मुख्यधारा समाज के मध्य एक बहुत बड़ी दीवार खड़ी है। दीवार के एक तरफ जहाँ आनंद, उल्लास एवं जीने की स्वतंत्रता है वहीं दूसरी तरफ केवल वेदना और पीड़ा। मुख्यधारा का समाज हमेशा इनपर चोट करता रहता है। इनके लिए अपशब्द एवं गंदी–गाली का प्रयोग करता है। समाज किन्नर समुदाय को न तो अपना मानकर स्वीकारता है, न ही इन्हें चौन से रहने देता है। सदैव इनके साथ असंवेदनशील व्यवहार करता है। इससे इन्हें कष्ट होता है और अपने किन्नर होने पर क्रोध। इसका सजीव चित्रण महेंद्र भीष्म द्वारा रचित 'किन्नर कथा' में देखने को मिलता है। उपन्यास की मुख्यपात्र तारा समाज द्वारा किये गये दुर्व्यवहार से व्यथित होकर कहती है की, "मतिन! भगवान ने मेरे साथ ऐसे अन्याय क्यों किया? मैं हिजड़ा हूँ तो इसमें मेरा क्या कसूर? मुझ निर्दोष को किस बात की सजा मिल रही है? मेरा अपना कौन है? घर–बार, माँ–बाप, भाई–बहन, बच्चे कोई नहीं है मेरा, जिसे में अपना कह संकु, सब कुछ होते हुए भी कोई मुझसे रिश्ता नहीं रखना चाहता, कोई मुझे अपनाने को तैयार नहीं है। बचपन से आज तक बस अपने आप में दर्द पीते रहते हैं। दूसरों को हँसाते आए हैं, उनकी खुशियों में शरीक होते आए हैं, आशीष के सिवा कभी किसी को कुछ नहीं दिया, ईश्वर से बस एक शिकायत है। आखिर क्यों उसने हमें ऐसा बनाया? क्यों हिजड़ा होने का दर्द दिया? काश! हम भी औरों की तरह स्त्री या पुरुष होते, हिजड़ा होना कितनी बड़ी सजा है, यह कोई हिजड़ा ही समझ सकता है, दूसरा कोई नहीं, कभी नहीं।"[3]

समाज केवल किन्नर समुदाय का तिरस्कार नहीं, बल्कि उनके जीवन के हर पहलुओं को अपने संवेदनहीन व्यवहार से प्रभावित भी करता है। जहाँ एक तरफ परिवार और समाज इनको नहीं स्वीकारता है, वहीं दूसरी तरफ इन्हें शिक्षा जैसे मौलिक अधिकार से भी वंचित होना पड़ता है। इस संदर्भ में निर्मला भूराडिया की उपन्यास 'गुलाम मंडी' में किन्नर पात्र अंगूरी के माध्यम से कहती है कि, "कोई भरती क्या पाठशाला में, पहले पूछते मेल की फीमेल। अपनी वो शर्मिला है न छोरा बनके भरती हुई थी, तो बहनजी ने एक दिन चड्डी उतरवा ली थी उसकी और जूते मारकर के स्कूल से निकलवा दिया था उसको। उमराव गुरु के कुनबे ने शरण दी उसको वरना भूखी मर जाति तो।"[4] लेखिका यहाँ किन्नरों के प्रति समाज का अमानवीय नजरिया का सजीव वर्णन किये हैं।

केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं जनानांग दोष के कारण इस समुदाय के साथ इतना भेदभाव होता है कि इन्हें कोई काम नहीं देना चाहता। काम न मिलने पर इन्हें भीख माँगनी पड़ती है। महेंद्र भीष्म ने अपने उपन्यास 'मैं पायल' में इस प्रसंग को उजागर किया है। "भूख और प्यास पायल को बेहाल किए हुए थी। भूख के मारे दम निकल रहा था। चाट के ठेले के पास पँहुचने से मेरी भूख ओर बढ़ गयी थी, मन हो रहा था कि जूठे दोने में बची–खुची चाट ही कहा लूँ।[5] इस प्रकार से आलोच्य उपन्यासों में किन्नरों से सम्बन्धित अनेक तथ्यों

के विषय में जानकारी प्राप्त होती है और उन्हें आधार बनाकर इनके संबंधित अनेक प्रश्न उठाया गया है। जैसे कि समाज का इनके प्रति नजरिया, प्रशासन का इनके प्रति व्यवहार, रोजगार, शिक्षा संबंधी समस्या, किन्नर समाज को लेकर फैली अंधविश्वास आदि।

समाज से किन्नर समुदाय को हमेशा तिरस्कार मिलने के बाद भी ये समुदाय अब अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये निरंतर संघर्ष कर रही है। हिन्दी साहित्य में अब इस विमर्श को अपनाते हुए इस पर लेखन कार्य भी हो रहे हैं। हिन्दी के साहित्यकार अपनी बेजोड़ लेखनी के माध्यम से किन्नर समुदाय की संघर्ष, सामाजिक जीवन, समस्याएं, रीति–रिवाज आदि समाज के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। अब सरकार भी इनकी सुविधाओं की ओर ध्यान देने लगी है। किन्नरों की अधिकार पर आधारित 'द राइटस ऑफ ट्रांसजेंडेर पर्सन्स बिल' (2014) को पास किया गया है। इसके बाद 2016 में ट्रांसजेंडेर पर्सन्स (प्रोटेक्शन ऑफ राइट) बिल पास किया गया। भारत सरकार के इन प्रयासों के माध्यम से किन्नरों को शिक्षा एवं आर्थिक क्षेत्र में आजादी से जीने का मौका प्राप्त हुआ है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि केवल लैंगिक विकलांगता के कारण किन्नर समुदाय को मुख्यधारा से उपेक्षित करना उचित नहीं है। यह भी मनुष्य है इन्हें भी कष्ट होता है। परिवार और समाज से बिछड़कर जिना कितना मुश्किल होता है, यह हम और आप कल्पना भी नहीं कर सकते। विवेचित सभी उपन्यासों से समाज की किन्नरों के प्रति सोच बदलने का अच्छा प्रयास है। निश्चय ही इन उपन्यासों को पढ़ने के बाद किन्नरों के प्रति लोगों के व्यवहार में परिवर्तन होगा। साहित्य के माध्यम से इनके आवाज जन–मानस तक पँहुच सकती है। वर्तमान समय में यह आवश्यक मुख्यधारा का समाज जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह, सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक एवं आर्थिक हो किन्नरों के प्रति मन–मस्तिष्क में स्थित हर पूर्वग्रहों को दूर करें। ताकि किन्नर समाज के मुख्यधारा से जुड़कर एक सामान्य जीवन जी सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. माधव नीरजा, यमदीप, सुनील साहित्य सदन, दिल्ली ,संस्करण–2018, पृष्ठ संख्या– 82
2. मुद्गल चित्रा, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन, छठा संस्करण–2020, पृष्ठ संख्या– 11
3. भीष्म महेंद्र, किन्नर कथा, सामयिक प्रकाशन, संस्करण–2024, पृष्ठ संख्या– 64
4. भूराडिया निर्मला, गुलाम मंडी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2022, पृष्ठ संख्या– 85
5. भीष्म महेंद्र, मैं पायल, अमन प्रकाशन, कानपुर, चतुर्थ संस्करण–2019, पृष्ठ संख्या– 139
6. पाठक, डॉ. विनय कुमार, किन्नर–विमर्श दशा और दिशा, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2019

संपर्क– 9348958872

r.chinmayee98@gmail.com

AT/PO - Tara, BLOCK-Ghatgaon, DIST-Keonjhar, STATE-Odisha, PIN-758027

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 327-333
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी काव्य में स्त्री–विमर्श : विविध आयाम

डॉ. मोदुमपल्ली संपत
सहायक आचार्य (अंशकालिक), निजाम कॉलेज, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना।

बीसवीं सदी के अंतिम दशकों एवं इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में स्त्रियों के प्रश्नों पर विश्वभर के साहित्यकारों एवं समाज–चिंतकों ने पुनः नए रूप से विचार–विमर्श प्रारंभ किया।

वैदिक युग की स्वायत्त स्त्री का देह में रूपांतर हो गया और तब से आज तक वह अपने अस्तित्व को तलाशती, भीड़ में अपना चेहरा खोजती तथा अपने मानवी रूप की प्रतिष्ठा के लिए छटपटाती है। आज स्त्री–विमर्श के साथ अनेक सन्दर्भ जुड़े हैं, जिनमें पारंपारिक सन्दर्भों के साथ नए सन्दर्भों ने भी स्त्री को अनेक प्रश्नों एवं समस्याओं के मुहाने पर लाकर छोड़ दिया है। वर्तमान समय में दो प्रकार का स्त्री–साहित्य लिखा जा रहा है–एक सामाजिक शोषण के विरोध में, और दूसरा देह–भोग के विरुद्ध। "आज का लेखन नारीवादी लेखन नहीं, नारी केंद्रित सवालों को बड़े आशयों में लाने वाला, नारी की मुक्ति को साधारण जन की सार्वदेशिक मुक्ति से जोड़नेवाला, पर बेहतर मानवीय और तर्कसंगत सामाजिक संरचना में नारी को उसकी सही हैसियत के साथ प्रतिष्ठा देने की कोशिश में लगा, नारी अस्मिता का प्रामाणिक लेखन है।"[1]

स्त्री–विमर्श : विविध आयाम :–

वर्तमान कवियों ने अत्यधिक प्रामाणिकता से नारी केंद्रित प्रश्नों को उठाया है, जिनमें कुछ समस्याएँ मध्य युग से लेकर आज तक नारी को दीमक की भाँति खोखला कर रही हैं तो कुछ समस्याएँ बिल्कुल अधुनातन हैं, जो उसे भीतर–बाह्य से तोड़ रही हैं। वर्तमान काव्य इन सभी को उसके पत्तों–रेशों सहित प्रस्तुत करता है। उसमें स्त्री का सीता अहिल्या वाला रूप भी है और द्रौपदी वाला भी।

स्त्री–भ्रूण हत्या आज का ज्वलंत प्रश्न है। समय पर उस पर उपचार नहीं होगा, तो भविष्य में अनेक समस्याओं का निर्माण होगा। स्त्री का दमन उनके भ्रुण से प्रारंभ होता है। यद्यपि कानूनी रूप से उस पर प्रतिबंध लगाए गए हैं, किन्तु फिर भी स्त्री–भ्रूण हत्या एक चिंताजनक विषय के रूप में उभरकर सामने आ रहा है। इसने युवा पीढ़ी के कवियों को गहन रूप से झकझोर दिया है। मृदुला जोशी की श्माँ मुझे आने दोश कविता इसी बात का वर्णन करती है –

'कर सकती हूँ माँ। मैं सब कुछ
जो रोशनी–सा चमकीला। रंगों से चटकीला हो।

पर आने तो दे। डर मत। माँ, मुझे आने दो।'[2]

स्त्री–भ्रूण को नष्ट करने के लिए विविध मार्गों का अवलंब लिया जाता है। आज पग–पग पर कच्चे भ्रूण की हत्या करने वाले कंस विद्यमान हैं। इसमें भ्रूण का और उसे कोख में धारण करने वाली स्त्री का भी कोई विचार नहीं करता। इसे कवि उद्भ्रांत ने निर्वस्त्र रूप में प्रस्तुत करके विचार मंथन के लिए प्रवृत्त किया है। कवि उद्भ्रांत लिखते हैं –

'बेटी की आशंका के चलते। पत्नी को
अल्ट्रासाऊंड क्लीनिक ले जाता। आशंका
सही सिद्ध होने पर। जन्म लेने के महीनों पूर्व ही
बेटी की हत्या कर दी जाती है।'[3]

दहेज–समस्या किसी–न–किसी रूप में विद्यमान है। इस समस्या ने सभी वर्ग के समाज को डंस लिया है। दहेज के लिए लड़की के परिवार का बड़ा शोषण और दोहन होता है। स्वयं लड़की तो इससे दयनीय रूप से आतंकित है। आज भी स्त्री की अग्नि–परीक्षा ली जाती है, उसे पग–पग पर निर्वस्त्र किया जाता है, दंडित किया जाता है। लेकिन 'इस देश में स्त्री–विमर्श की दो परंपराएँ हैं। एक परंपरा सीता की है... जो किसी भी प्रकार के प्रश्न नहीं उठाती" ।[4] बाल्यकाल से ही सुनी–सुनाई देखा–देखी घटनाओं के कारण उसे दहशत–सी हो गई है। परिणामतः शक्तिस्वरूपा नारी शक्तिहीन, दीन–हीन और पुरुष के आगे प्रार्थनारत रही है। विष्णुचंद्र शर्मा की 'मण्डी में लड़की' कविता इसी ओर संकेत करती है :–

'कितना दहेज देंगे पापा। कितने माल मते के माथ
होगी मेरी बिदाई। कितनी बातें छिपा लेंगी सीने में
फिर कब भाई। मेरी लाश की शनाख्त करेगा।'[5]

आज ऐसी कितनी ही लड़कियाँ हैं जो अपने आपको असुरक्षित अनुभव करती हैं। उसे इस बात का विश्वास नहीं है कि ससुराल उसके लिए सुरक्षा–कवच बनेगा। लेकिन इस पर एकमात्र उपाय योजना है–स्त्री को अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ स्वयं उभरना है।

स्त्री का जीवन संकट में है, इस ओर भी वर्तमान कवि संकेत करते हैं। कमाऊ लड़की तो दूभती गाय बनी है, जिसकी उम्र बढ़ जाती है, पर उसके अभिभावक उसका विवाह नहीं करते, परिणामतः ऐसी युवतियाँ एक तो दमित–कुंठित रहती हैं या काम–तुष्टि के लिए प्रयासरत रहती हैं। परंतु पुरुष ऐसी प्रौढ़ाओं को मात्र बगलगीर बनाते हैं, जीवन साथी नहीं। इस ओर भी युवा पीढ़ी के कवियों ने संवेदनशीलता से लिखा है।

स्त्री, परिवार की रीढ़ की हड्डी है। जिसके कारण दाल–सब्जी में स्वाद, रोटी में मिठास और मसालों में चटखार आती है। इतना खपने पर भी उसका जीवन संकट में है। अश्वघोष की 'रसोईघर में औरत' इसी को स्पष्ट करती है :–

'खतरे में है इस वक्त
रसोई घर में औरत।'[6]

आज ऐसे भी परिवार पाए जाते हैं, जहाँ आर्थिक संकट, युवा बेटियों को बाजार में खड़ा कर देता है। उमाशंकर चौधरी की 'जो प्यार नही करती थी' कविता में युवा बेटी को भाग जाने के लिए उसकी माँ ही सहायता

करती है। वह ऐसे लड़के के साथ भाग जाती है, जिससे वह प्यार नहीं करती, भाग जाना उसकी विवशता है, परंतु वही पुरुष उसके लिए संकट बन जाता है–

'...इससे पहले कि पता चल जाए कि
उस लड़के ने, उसे बेच दिया दूर किसी शहर में
वहाँ नहीं जाते। कोई पिता, कोई भाई, या कोई मनुष्य।'[7]

आज ऐसे अनेक उदाहरण सामने आ रहे हैं, कि लड़कियों की विवशता का लाभ उठाकर उन्हें पूर्णरूपेण झाड़–पोंछकर ऐसे बिंदु पर ला खड़ा किया जाता है, जिसके आगे केवल भटकन है।

सामन्ती युग से लेकर आज तक स्त्री देह महत्त्वपूर्ण बनी है, उसकी योग्यता नहीं। उसकी कोमल देह ही उसकी पहचान रही है। उसमें कितनी भी योग्यता रहे किन्तु प्रत्येक बार उसकी देह आड़े आती है। वह जहाँ भी जाए पुरुष की वासनालोलुप आँखें कसाई की भाँति उस पर फिसलती हैं, उसके गोशे–गोशे को तलाशती हैं। उस देह के सामने उसकी प्रतिभा और मेहनत गौण हो जाती है। आशा प्रभात की 'लड़की', 'देह और ख्याल' कविता संवेदनशील मन को आर–पार चीर देती है –

'सोचती है लड़की
किस अदृश्य नकाब के पीछे
छिपाए वह इस देह को,
ताकि बचा रहे सिर्फ इसका वजूद।'[8]

अपने अस्तित्व को तलाशती नारी के उत्पीड़न को कवयित्री ने बराबर पकड़ा है। आज तो उपभोक्ता संस्कृति और बाजारवाद की मिलीभगत ने स्त्री को वस्तु में परिणत कर दिया है।

भूमंडलीकरण, सूचना–विस्फोट और आर्थिक उदारीकरण की त्रिसूत्री अर्थात् कंपनी को लाभ और इसी लाभ के लिए स्त्री के देह का अनुपात विनिमय जैसा हो रहा है। मीडिया स्त्री की देह का 'मार्केट' के लिए उपयोग कर रहा है। उसकी विज्ञापनी देह उसकी पहचान बन रही है, इस ओर गोविंद माथुर ने गहराई में उतरकर सोचने के लिए विवश किया है–

'वे आती हैं, अपनी चाल को। आकर्षित करते हुए।
शरीर के उभारों को प्रदर्शित करती हुई। बहुत कम कपड़ों में।
कपड़ों के प्रदर्शन के लिए।'[9]

स्त्री अपनी कमनीय देह के कारण महलों–तहखानों में बंदिनी रही। राजा–महाराजों की वासना का ग्रास बनी और आज उसकी देह वस्तु में परिणत होकर 'मार्केट' का साधन बनी है। लेकिन रंजना श्रीवास्तव ने स्त्री की आँखें खोल देने का प्रयत्न किया है। स्वयं स्त्री को जादुई–फूलों से और मोह और देह से उबरना होगा–

"तुम्हें माया नहीं, मनुष्य होना है,
स्त्री देह से आजाद होना है।"[10]

पुरुष की तानाशाही से ग्रस्त नारी की पीड़ा को नए कवियों ने बराबर पकड़ा है। कहने के लिए तो नारी स्वतंत्र हो गई है, किन्तु यह कहाँ तक सत्य है? वास्तविकता यह है कि पुरुष आज भी उसे अपनी दासी, सेविका और पैरों की जूती मानता है, जो पार्श्व में चुपचाप पड़ी रहे। वह मात्र पुरुष की परिक्रमा करे, उसके जीवन में

किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करे। यदि वह ऐसा करने का प्रयत्न करे, तो पुरुष की तानाशाही उसे बुहारकर फेंक देने में भी नहीं हिचकचाती। मोहनकुमार डहेरिया की 'एक पुरुष की परिक्रमा करती वह स्त्री' इसी का यथार्थ प्रस्तुत करती है–

"वर्षों से कर रही है, स्त्री उस पुरुष की परिक्रमा
मिल नहीं रहा उसे–
उसकी दुनिया के अंदर घुसने के लिए,
कोई ठीक–ठाक दरवाजा"।[11]

रंजना श्रीवास्तव की 'जब मैं स्त्री हूँ' कविता पुरुष की तानाशाही से ग्रस्त नारी के प्रत्येक रूप को निर्वस्त्र करती है। सदियों से नारी को भोग–विलास का साधन माना गया। उस पर अनेक प्रकार के बंधन डाले गए ताकि वह पुरुष के वर्चस्व को स्वीकारे। वह परंपराओं, नियमों, व्रतों–उपवासों, का अंधानुकरण करे, कोई प्रश्न न करे। वह यह मानकर चले कि लक्ष्मण रेखा के बाहर होते सिर्फ रावण हैं, इसलिए वह घर के अंदर अपनों के द्वारा चुपचाप लुटती रहे। इतना होते हुए भी सदैव आशीर्वाद मुद्रा में रहे। लोग पूजें या जानवर गोबर करे, वह शिकायत न करे। वह डस्टबिन बनकर सारा कूड़ा अपनाए और 'यूज एण्ड थ्रो' बने। फिर भी वह चुप रहे। इसका कारण है, वे सब कुछ कर सकते हैं क्योंकि वे स्त्री नहीं है।

पुरुष की तानाशाही से मुक्त होने के लिए स्त्री को ही विद्रोही तेवर अपनाने चाहिए। इसी कारण वर्तमान कवि स्त्री में विद्रोह करने की शक्ति भर देने में प्रयासरत हैं।

नारी के विविध रूप हैं– वह एक ममतामयी माँ है, अभावों एवं संघर्षो से जूझती पत्नी है, तो विषमता और विपन्नता में संघर्ष करती नारी है। वर्तमानकालीन कविता में उसके सभी तेवर मौजूद हैं, माँ की ममता अपूर्व होती है। वह बच्चे की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता और उसकी प्रसन्नता में अपने जीने का सहारा ढूँढती है। विपरीत स्थिति में भी वह अपने बच्चे पर आँच आने नहीं देती। वह स्वयं भूखी रहती है पर अपने बच्चे को कभी भूखा सोने नहीं देती। उसका अपना कोई भविष्य नहीं होता बल्कि बच्चे का भविष्य ही उसके जीने का सहारा होता है। बच्चे ही उसके तीर्थ होते हैं। लेकिन यही माँ जब बूढ़ी होती है और उसकी क्षीण काया बिस्तर से चिपक जाती है. तब बच्चे अपना कर्तव्य–बोध भूल जाते हैं। पत्नी की मुट्ठी में बंद उसकी संतान मातृत्व–मूल्य को हाशिए पर टाँगती है। कवि ने बीमार–ग्रस्त विकलांग माँ की दीन–दशा का चित्र अंकित किया है, जो किसी भी संवेदनशील मन को द्रवित करता है। बड़ी बहू कहती है–

'हमारी उम्र हो चली। नहीं सँभाल सकते हम उनको
मल–मूत्र–खून मवाद रिसता है।'[12]

छोटी बहू 'कौन सँभाले माँ का झंझट' कहकर अलग हो जाती है। बेटी का मन भर आता है पर दामाद कहता है–

'इतनी दौलत लेंगे बेटे। जरूरत क्या पड़ी है हमें।'[13]

कहकर दूर हो जाता है। आज नगरों–महानगरों में ही नहीं, कस्बों में भी अनेक माताएँ संतान के होते हुए भी जीवित रहने की यातना भुगत रही हैं। इस पर, समय पर उपचार नहीं होगा तो आने वाली पीढ़ी इन्हें माफ नहीं करेगी।

मुनष्य यंत्रयुग में यंत्र बनता जा रहा है। जो माँ जीवन भर अपनी संतानों के लिए मरती खपती है, स्वयं दुःख झेलकर बच्चों की झोलियाँ आनंद से भर देती है, लेकिन वहीं, जब वह बूढ़ी हो जाती है तब उसे अनुपयोगी वस्तु की भाँति दुर्लक्षित किया जाता है। योगेश वर्मा ने बढ़ी माताओं की व्यथा की कथा को बराबर पकड़ा है–

'फर्ज निभाती रही उम्र भर/
बस पीड़ा भोगी
हाथ–पैर जब शिथिल हुए तो/
हुई अनुपयोगी। धूल चढ़ी सरकारी फाइल
जैसी माँ।'[14]

नारी चाहे 'बेटी' हो या 'पत्नी' हो या 'माँ' प्रत्येक रूप में उसका शोषण और दोहन, उसकी उपेक्षा एवं अवहेलना जारी है। इस सदी के कवियों ने इस पर गहराई में उतरकर सोचने के लिए विवश किया है। सामाजिक मानसिकता में आमूलचूल परिवर्तन की माँग की है। साथ ही नारी के विद्रोही रूप का स्वागत भी किया है।

इक्कीसवीं सदी में स्त्री का अवांगर, दबंग रूप सामने आ रहा है। अब वह मात्र गुडिया–सी, पुरुषों की अनुगामिनी बनकर नहीं रहेगी। अब वह पुरुषों के वर्चस्व, एकाधिकार और तानाशाही की जड़ों को ढीली करने पर तुली है। उसे देवी के रूप में नहीं अपितु मानवीश के रूप में प्रतिष्ठा की चाहत है। इसके लिए अब वह–

'दुर्गा के। काली के रूप धरे/
बने लक्ष्मीबाई भी। देती है, चुनौती
एकाधिकारवादी वर्चस्व को/पुरुष के।'[15]

शक्ति स्वरूपा नारी को अपनी शक्ति का अनुभव हो गया है। आज की नारी, पर–निर्भर नहीं, बल्कि आत्मनिर्भर बनी है। पुरुष ने अब तक उसे अपनी सुरक्षा कवच में रखकर उसकी अस्मिता को, उसकी स्वतंत्र पहचान को मिटा दिया था, ताकि वह उसकी दासी बनकर रहे। लेकिन वर्तमान नारी यह सुरक्षा कवच बुहारकर फेंक रही है और उससे टका–सा प्रश्न कर रही है। नीलेश रघुवंशी की 'सुरक्षा कवच' कविता नारी के विद्रोही तेवर को दर्ज करती है –

'नहीं–नहीं आपकी जरूरत। नहीं लाद देंगे आप
फिर वही कवच सुरक्षा का
हो सका तो मिलेंगे फिर.... फिलहाल तो नमस्ते।'[16]

वर्तमान कवियों ने नगरों–महानगरों में कमाऊ स्त्री का उभरता आंदोलित रूप भी अंकित किया है। आत्मनिर्भरता और साहस ने उसके पैरों में शक्ति भर दी है। अब वह किसी के पैरों की जूती बनकर नहीं रहेगी या अपने अस्तित्व के लिए भी नहीं छटपटाएगी। अब उसने साइबर कैफे के कम्प्यूटर डाटा में उतरकर अप–संस्कृति के पहियों को बदल दिया है। उसने अपने आपको तलाशा और तराशा है और उसे खंगालने वाले पुरुष को पहचान लिया है। अब वह सुनामी लहरों से आंदोलित है। मीठेश निर्मोही ने 'आंदोलित है स्त्री' कविता में नारी के इस विद्रोही तेवर को समानता से प्रस्तुत किया है–

'चुप्पियों का बहिष्कार किए

पहचान लिए हैं उसने
अपनी पहचान छीन लेने वालों के चेहरे।'[17]

अब वह सीता–अहिल्या जैसी चुपचाप अन्याय नहीं सहती, पर द्रौपदी जैसी अपनी अस्मिता का परिचय दे रही है। नारी के इस विद्रोही एवं दबंग रूप से पुरुष निश्चित ही आतंकित हो रहा है। यह शुभ संकेत भी है और चिंतनीय प्रश्न भी।

निष्कर्ष :-

इक्कीसवीं सदी का हिन्दी काव्य स्त्री–विमर्श के विविध आयामों को उनके पत्तों–रेशों सहित उद्‌घाटित कर रहा है। स्त्री–भ्रुण हत्या से लेकर नारी के दबंग एवं विद्रोही रूप को यथार्थ धरातल पर चित्रित कर विचार–मंथन के लिए प्रेरित कर रहा है। स्त्री–भ्रूण हत्या चिंताजनक समस्या है। अगर यह ऐसा ही होता रहेगा तो पुरुषों के अनुपात में स्त्रियों की संख्या दिनोंदिन घटती जाएगी जो संपूर्ण समाज को अनेक समस्याओं के मुहाने पर लाकर छोड़ देगी। इन कवियों ने भावी संकट के संकेत भी दिए हैं। आज भी स्त्री का जीवन संकट से बाहर नहीं है। नारी चाहे 'बेटी' हो, 'पत्नी' हो, या 'माँ', उसका शोषण और दोहन, उसकी उपेक्षा एवं अवहेलना प्रवाहित है। युवा बेटियों को दहेज के लिए जलाया जाता है तो उसकी कोमल देह को पूर्णरूपेण निचोड़ा जाता है तथा उसकी सुंदर देह को वस्तु में परिणत किया जाता है। उसकी देह के सामने उसका सम्पूर्ण परिश्रम और योग्यता लुप्त हो जाती है। स्त्री के देह का अनुपात विनिमय जैसा हो रहा है। उसकी विज्ञापनी देह मार्केटिंग की वस्तु बनी है। वर्तमान कवियों ने नारी मात्र 'देह' नहीं है, इसे स्पष्ट करते हुए, नारी को उसकी उचित योग्यता के साथ प्रतिष्ठा देने का प्रयास किया है। वर्तमान हिन्दी काव्य नारी के दबंग एवं विद्रोही रूप का स्वागत करता दिखाई देता है। अब आत्मनिर्भर नारी प्रार्थनारत बनकर पुरुष की परिक्रमा नहीं करेगी अपितु सुनामी लहरों से आंदोलन करेगी। नारी के आंदोलित रूप से पुरुषों के वर्चस्व, एकाधिकार और तानाशाही की जड़ें दिनोंदिन ढीली होती जा रही हैं, यह शुभ संकेत भी ये कवि दे रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अंतिम दो दशकों का हिन्दी साहित्य–सं. मीरा गौतम, पृ. सं. 22
2. समकालीन भारतीय साहित्य– सं. ब्रजेंद्र त्रिपाठी सितं–अक्टू, 2009, पृ. सं. 105
3. नवा ज्ञानोदय– सं. रविंद्र कालिया, नवंबर, 2007, पृ. सं. 70
4. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ. सूर्यनारायण सुभे, पृ. सं. 266
5. नया ज्ञानोदय– सं. रविंद्र कालिया, जनवरी, 2008, पृ. सं. 25
6. समकालीन भारतीय साहित्य–सं. अरुण प्रकाश, अक्टू, 2009, पृ. सं. 90
7. नया ज्ञानोदय– सं. रविंद्र कालिया, अक्टू, 2008, पृ. सं. 62
8. वागर्थ– सं. सभापति मिश्र, अप्रैल 2010, पृ. सं. 62
9. मधुमती–गोविंद माथुर, मई 2002, पृ. सं. 74
10. नया ज्ञानोदय– सं. रविंद्र कालिया, जुलाई, 2007, पृ. सं. 46
11. नया ज्ञानोदय–सं. रविंद्र कालिया, अगस्त, 2010, पृ. सं. 182

12. नया ज्ञानोदय–सं. रविंद्र कालिया, अप्रैल 2010, पृ. सं. 101
13. नया ज्ञानोदय–सं. रविंद्र कालिया, अप्रैल 2010 पृ. सं. 101
14. आजकल– योगेश वर्मा, अक्टू, 2010, पृ. सं. 71
15. नया ज्ञानोदय– सं. रविंद्र कालिया, नवंबर, 2007, पृ. सं. 71
16. वही, फरवरी, 2008, पृ. सं. 47
17. समकालीन भारतीय साहित्य–सं. अरुण प्रकाश, सितंबर–अक्टू, 2007, पृ. सं. 82

Email: modumpallisampath@gmail.com

Cell no: 996695163

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 334-340
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इतिहास और कल्पना का मिश्रित रूप 'हुल पहाड़िया'

डॉ. सतीश चन्द्र सी
अतिथि सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, राजेन्द्र विश्वविद्यालय, बलांगीर, उड़ीसा।

इतिहास और कल्पना दोनों ही साहित्य के महत्वपूर्ण तत्त्व माने जाते हैं। दोनों का स्वरूप और संकल्पना अलग–अलग है। एक तथ्य और प्रमाण पर आधारित है तो दूसरा भावना और रचना पर आधारित होता है। दोनों एक दूसरे के विपरीत होते हुए भी दोनों का प्रयोग एक साथ साहित्य में किया जाता है। 'हुल पहाड़िया' पहाड़िया विद्रोह पर आधारित एक ऐतिहासिक उपन्यास है। यह पहाड़िया आदिवासियों के प्रमुख नेता तिलका माँझी के जीवन संघर्ष पर आधारित है। जो इतिहासकारों की दृष्टि से उपेक्षित रहा है। जब भी हम स्वाधीनता संग्राम की बात करते हैं तो हम स्वाधीनता संग्राम का आरंभ 1857 की क्रन्ति से मानते हैं। लेकिन इससे 100 साल पहले झारखंड के पहाडिया लोगों ने अपने स्वंतत्रता के लिए कम्पनी सरकार की शोषण नीति का विरोध किया था। इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। राकेश कुमार सिंह ने उसी उपेक्षित घटना को आधार बना कर कल्पना का संयोजन करके 'हुल पहाड़िया' की रचना की है।

उपन्यास में निहित ऐतिहासिक घटनाओं को इन बिन्दुओं के माध्यम से देख सकते हैं–

कम्पनी सरकार का आगमन :

भारत के इतिहास को देखें तो पता चलता है कि भारत पर हमेशा बाहरी शत्रुओं का आक्रमण होते रहे हैं। उन आक्रमणकरिओं में कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने भारत को अपने अधीन कर लिया था। ऐसे शासकों में प्रमुख थे मुगल और अंग्रेज। 17वीं शती कंपनी सरकार ने भारत में वाणिज्य व्यवसाय करने के लिए आयी थी। लेकिन यहाँ आकर उन्हें पता चला कि यहाँ की राजनीतिक स्थिति ठीक नहीं है। तब मुगल साम्राज्य पतन की और जा रहा था, सिहांसन के लिए मुगलों ने आपस में लड़ रहे थे। इसी आपसी कलह का फायदा उठा कर कम्पनी सरकार ने रॉबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में बक्सर युद्ध में मीर कासिम तथा शाहाआलम को युद्ध में हराया तथा बंगाल, बिहार, उडीसा के दीवानी उनसे छीन ली। दीवानी मिलने के बाद कम्पनी सरकार ने आदिवासियों के ऊपर शोषण करना शुरू किया। "कम्पनी ने औपचारिक रूप से भारत में अपना व्यापार 1613 में आरंभ किया जबकि वह अपने से पहले रंग मंच पर आये पर्तुगलिओं के साथ हिसाब बराबर कर चुकी थी। ...कम्पनी ने धीरे–धीरे अपने व्यापारिक कार्य कलापों को भारत के दूसरी भागों में फेलाया मुम्बई, कलकाता और मद्रास। 17वीं सदी के अंत तक उसकी कार्य कलापों के प्रमुख तीन बन चुके थे। कम्पनी का भारत में राजनीतिक प्रसार 18वीं सदी के मध्य से आरम्भ हुआ और 100 साल के अन्दर लगभग पूरा भारत उसके नियंत्रण में था।"[1]

झारखण्ड के जंगलतराई कम्पनी सरकार के नजरों से अछूता न रहा। जंगलतराई में मुख्यतः आदिवासी

लोग रहते थे। जिसे पहाड़िया आदिवासी के नाम से जाना जाता है। वे जंगल में रहते थे तथा जंगली फल–फूल तथा पशु–पक्षिओं के मांस को खा कर अपना भरण पोषण करते थे। लेकिन कम्पनी सरकार के आने के बाद इन आदिवासियों को अपने अधीन करने की कोशिश कर जाने लगी। पाहाडिया लोगों ने इसका घोर विरोध कर किया। वे किसी की अधीनता स्वीकार करना नहीं चाहते थे अर्थात् वे स्वतंत्र रहने में ही आपना भलाई समझते हैं। इस सन्दर्भ में उपन्यासकार लिखते हैं ''जंगलतराई में पठान आए, गए। मुगल आए, गए। मराठे आए और वे भी गए। किसी बादशाह, राजा, पेशवा या सूबेदार ने कभी स्वतंत्र पहाड़िया लोगों से कर नहीं माँगा था।''[2]

कम्पनी सरकार की शोषण नीति :

कम्पनी सरकार ने बंगाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी ग्रहण करने के बाद सबसे पहले बिहार के जंगलतराई क्षेत्र में अपना अधिकार जताना शुरू किया। यह अंचल मुगल शासन तथा उससे पहले भी स्वाधीन था अर्थात् किसी प्रकार का कर या शासन नीति उस अंचल में लागु नहीं की गई थी। उस अंचल में मुखिया का शासन चलता था लेकिन जब से कंपनी सरकार ने दीवानी ग्रहण की तब से उनका नजर बिहार के जंगलतराई पर पड़ीं और वे तरह–तरह के शोषण करने लगे। जो इस प्रकार है।

जमींदारी प्रथा का प्रोत्साहन :

अंग्रेजों ने जब भारत आये तब अपना शासन की सुबिधा के लिए जमींदारी प्रथा लागू किया। जमींदार आम किसानों से खेती करवाते थे और उनसे कर वसूलते थे। पहाड़िया समाज भी अंग्रेजों की इस शासन नीति से अछूता नहीं रहा। पहाड़िया लोगों ने खेती को इतना महत्व नहीं देते थे लेकिन कम्पनी सरकार ने जब से आई तब से अपने स्वार्थ के लिए जंगल को कटवा कर कृषि योग्य खेती बनवायी। देखा जाये तो खेत का असली मालिक आदिवासी हुआ लेकिन कम्पनी सरकार आदिवासियों से खेती करवाती थी और कर वसूलती थी। ''अब कम्पनी जंगलतराई के क्षेत्रों को कर वसूली हेतु ठेके पर उठाने लगी थी। ठेकेदार, राजा, जमींदार कम्पनी की माँग से दूना–तिगुना कर वसूल कर अपने खजाने भरने लगे थे। धन की असीम लिप्सा की तृप्ति हेतु कम्पनी के ये राजस्व ठेकेदार पहाड़ों की ओर भी बढ़ने लगे थे।''[3]

कम्पनी सरकार की इस शोषण नीति के विरोध सबसे पहले पहाड़िया आदिवासियों ने इसका विरोध किया। लेकिन इनके विद्रोह का उल्लेख इतिहास में कहीं नहीं मिलता कम्पनी सरकार की शोषण नीति के बारे में उपन्यासकार लिखते हैं कि ''कम्पनी नामक महाकाय हाथी पर सवार देसी चौकीदार स्वंय को भी कम्पनी ही समझने लगे थे। राहगीरों से अवैध सलामी–नजराने तक वसूलने लगे थे। बैलगाड़ियाँ लादने वाले व्यापारी–बनिए तो स्वेच्छा से दस्तूरी–उत्कोच देने लगे थे, परन्तु मुहँ को खून लगे बाघ जैसे देसी चौकीदार माल–मवेशी या भरी बहँगी वाले आदिवासियों से भी चौकी पार कराई के नाम पर अनाधिकार और अवैध अधेला वसूल करने लगे थे।''[4]

साहूकार तथा व्यापारियों का लूट :

आदिवासी लोगों में संचय करने की प्रवृति नहीं थी लेकिन जब से खेती करने लगे तब से संचय करने की प्रवृति सिख गए। साहूकार तथा व्यापारिओं ने आदिवासियों को रुपये का प्रलोभन दिखा कर उनसे कम दाम में चावल खरीदना शुरू कर दिया। आदिवासियों द्वारा धान–चावल बेचते हुए देख कर गाँव के मुखिया उन को मना की लेकिन उन्होंने उनकी बात नहीं मानी। वे लोगों को समझाते थे कि ''रुपये के पीछे पागल मत बनो। रूपया चवाने से पेट नहीं भरता। अनाज सहेज कर रखो। थोडा सुरक्षित भंडार बचाकर रखो ...हमारे पास जंगल

है। कंद–मूल हैं खाने को। पशु–पक्षी का माँस है खाने को। चावल न भी रखें तो क्या? पानी बरसे न बरसे महुए के पेड़ तो कुछ–न–कुछ देंगे ही। चावल के बदले इतना रुपया नकद मिला है कभी? क्यूँ न बेचें चावल?"[5]

धन का प्रलोभन दे कर कम्पनी सरकार ने स्थानीय दलालों के माध्यम से पहाड़ियों का सारा धान चावल खरीद लिया अगली साल भयंकर अकाल आने के कारण आदिवासियों में खाने के लिए हा–हा कर मच गया। उनके पास इतना पैसा भी नहीं था कि वे चावल खरीदकर खा सकें और चावल को कम्पनी सरकार ने अधिक दाम में बेच रहा था। "जिन वनवासियों ने कभी सोचा तक न था कि चावल भी हाट से खरीद कर खाना होगा, वे लोग जब खरीदने गए तो, वही गोलादार, जो कभी रुपये में छे मन चावल खरीदता था अब चार रुपये में मात्र एक सेर चावल तौल रहा था। ठगे गए थे वनवासी, हतबुद्धि वनवासी।"[6] अंग्रेजों की इन शोषण नीतियों ने कारण आदिवासी विद्रोह करने के लिए मजबूर हो गए थे।

रानी सर्वेश्वरी को बंदी बनाना :

राजा गर्जन सिंह की मृत्यु के बाद रानी सर्वेश्वरी सुलतानाबाद के शासन भार को संभाला। पहाड़ियों का सम्बन्ध सुलतानाबाद के साथ हमेशा अच्छा रहा है, राजा के बाद रानी के साथ भी उनका सम्बन्ध अच्छा रहा। रानी हमेशा पहाड़िया लोगों का साथ देती आयी थी, विपत्ति आने पर वे आपस में एक दूसरे का सहायता करते थे। इस सम्बन्ध में उपन्यासकार लिखते हैं "तुमने अकाल में पहाड़िया लोगों का साथ दिया है। हमें अनाज दिया है। सो अनाज हमारी देह के हाड–माँस में जी रहा है आयो रानी।...तुम्हारा ही खून है आयो तुम्हारे लिए बहेगा ही। तुम्हारे राज में कंपनी गाड दे, सो नहीं सहेंगे पहाड़िया।"[7] रानी के लिए पहाड़िया लोग जान देने के लिए भी तैयार थे।

कंपनी सरकार को जब पता चला कि पहाड़िया लोगों को अपने अधीन करना मुश्किल है तो उन्होंने स्थानीय जमींदार तथा राजाओं को अपने अधीन लाने की कौशिश की। उस समय रानी सर्वेश्वरी सुलतानाबाद को सँभाल रही थीं। पहाड़िया लोग उनको बहुत मानते थे। जब कंपनी सरकार ने उनकी जमींदारी पर अपना हक जताने की कोशिश की तो उन्होंने उसका विरोध किया। उपन्यास का नायक जबरा रानी से कहता है कि "कैसे मानता आयो? हम ठहरे पहाड के लोग। कंपनी हमसे रार ठानती तो हम पहाड़ पर लड़ते, लेकिन कम्पनी पहाड़िया लोग का एका तोड़े, जंगल से कंपनी अपना थाना खोले, तुम्हारी जमीन पर कंपनी का घोडा दौड़े, कंपनी तुमसे रार ठाने तो हमारा खून तो खौलेगा न आयो।"[8] पहाड़िया रानी को सुरक्षा प्रदान करने के लिए तत्पर थे।

कंपनी सरकार समझ गयी थी की पहाड़िया लोगों को अपनी बस में करना मुश्किल है। इसलिए सबसे पहले उनके विश्वास को जीतना होगा। इसलिए क्लैबलैण्ड ने "अकेले ही बिना किसी हतियार के उन लोगों के बीच चला जाता, जंगलों में अक्सर घूमता, उनके बीच उपहार बाँटता और उन्हें सामूहिक भोज देता। उसने पहाड़ की तलहटी में बसे गाँव में नियमित बाजारों की व्यवस्था की और पहाड़िया लोगों को अपना सामान जैसे शिकार, मोम, खाल, शहद आदि बेचने के लिए प्रस्ताहित किया। उन्हें आश्वासन दिया कि उन पर कर नहीं लगेगा तथा उन पर सिर्फ उनके मुखियाओं का ही अधिकार रहेगा।"[9] पहाड़िया क्लिबलैण्ड की बातों में आकर विश्वास करने लगे, अर्थात् वह अपनी योजना में सफल हुआ। पहाड़ियाओं को इस योजना के बारे में पता तब चला जब पहाड़िया उन्हें हिलरेंज्स नामक सैन्य दल के प्रशिक्षण के बहाने भागलपुर गए। इस मौके का फायदा उठाकर

कंपनी सरकार ने रानी सर्वेश्वरी को बंदी बनाकर उनकी जमींदारी को छीन ली। इस घटना की खबर सुनते ही जबरा तथा उनके साथी वहाँ से भाग आये और कंपनी सरकार के विरुद्ध रानी को उनकी जमींदारी वापस दिलाने के लिए विद्रोह किया।

'हुल पहाड़िया' में काल्पनिक कथाओं का मिश्रण :

'हुल पहाड़िया' राकेश कुमार सिंह द्वारा रचित एक ऐतिहासिक उपन्यास है। ऐतिहासिक उपन्यास होने के कारण इसमें ऐतिहासिक घटनाएँ तो है साथ ही उपन्यासकार ने अपनी कल्पना शक्ति के माध्यम से कुछ काल्पनिक घटनाओं तथा पात्रों का सृजन किया है। कोई भी रचनाकार अगर इतिहास की किसी भी घटना को हुबहू चित्रित करता है तो वह साहित्यिक कृति नहीं होगी, इतिहास ही रहेगी। इसलिए ऐतिहासिक घटना के साथ कुछ काल्पनिक कथाओं को मिला कर किसी भी कृति को रोचक बनाया जाता है। इस उपन्यास में चित्रित काल्पनिक कथाएँ इस प्रकार हैं :–

जबरा का परिवार :

जबरा उपन्यास का प्रमुख पात्र है, जिसे तिलका माँझी के नाम से जाना जाता है। उपन्यासकार ने जबरा तथा तिलका माँझी को एक ही व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। जबरा के परिवार का जो चित्रण उपन्यासकार ने किया है वह पूरी तरह से काल्पनिक है। जबरा के पिता गाँव के माँझी (मुखिया) थे, जो पुरे गाँव का देख भाल करते थे। परंपरा के अनुसार माँझी का बेटा ही अगला माँझी बनेगा, लेकिन माँझी बनने के लिए परीक्षा देनी पड़ती है। अगर उस परीक्षा में माँझी का बेटा उत्तीर्ण होता तो उसे माँझी का दायित्व सौंपा जाता है, अगर उत्तीर्ण नहीं होता तो ओर किसी का नाम प्रस्तावित किया जाता है। इस सन्दर्भ में उपन्यासकार लिखते हैं "माँझी के बेटों के परीक्षा में विफल होने पर गाँव का माँझी गाँव के किसी अन्य पुरुष का नाम भी प्रस्तावित कर सकता था। प्रस्तावित व्यक्ति अपनी पात्रता सिद्ध कर माँझी का बेटा न होने के बावजूद गाँव का माँझी बन सकता था।"[9] परीक्षा में जबरा उत्तीर्ण हुआ और अपने पिता के बाद गाँव का माँझी बना। जबरा के पिता गाँव का माँझी था या नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। अतः यह एक काल्पनिक घटना है।

जबरा की माता सोमरी और बहन चैती है। वे दोनों जबरा को बहुत प्यार करते हैं। भाई बहन में बहुत अच्छा संबंध था। इस संबंध को इस रूप में देख सकते हैं "मैं माँझी बन गया तो तुझे कई फर्क नहीं? आयो की छाती जुडाएगी। मुझे क्या? आयो–बाबा दोनों को सुख मिलेगा, बाकी तुझे दुःख होगा, यही बात न? जबरा ने गुस्से में टाँगी चलाई तो धार छिटक गई थी। ...चैती ने जबरा की घायल उंगली को अपने मुंह में डाल लिया था।"[10]

उपन्यास में दिखाया गया कि जबरा का विवाह रुपनी के साथ हुआ है। रुपनी बाघबुरु के सोनारी गाँव के जंगी पहाड़िया की बेटी थी। दोनों का मिलन बाघबुरु के मेले में हुआ था। पहली बार मिलन में ही दोनों में प्यार हो गया था क्योंकि रूपनी देखने में बहुत सुन्दर थी। उसकी सुन्दरता के बारे में उपन्यासकार लिखते हैं "घुंगघराले केशों का जूडा। जूड़े में लिपटी थी फूलों की माला। हाथ में रंगीन काँच की चूडीयाँ। ढेर सारी, फूलदार कपडे में अरहर की डंटल–सी ठोस काया। कानों में चाँदी के झुमके...जबरा ने रुपनी को देखा तो लगा था, देह गोली लकड़ी भाँति सुलग उठी है। फगुनहट हावा के झक्कड़ में झनझनाते पके चने के खेत सा लहराने लगा था जबरा का युवा मन।"[11] जबरा का विवाह रुपनी से हुई और दोनों बच्चे भी हुए।

माँझी बनने से पहले तीन शर्तें–माँझी बनने के लिए जबरा को दिया गया तीन काम इस प्रकार था :–

1. बुलबुलिय दोहर में खुंटकट्टी करना।
2. अकाल में सारे पहाड़ियों को अनाज देना।
3. गाँव का इज्जत बचाना।

पहला काम खुंटकट्टी करना अर्थात् जंगल को साफ कर खेती करने लायक जमीन तैयार करना। जहाँ खुंटकट्टी करना था वहाँ एक लंघडा बाघ रहता है, जब तक लंघडा बाघ जिंदा है तब तक दोहर में जंगल साफ करना असंभव था। लेकिन जबरा बाघ को शिकार करने के लिए पूरी तैयारी के साथ गया। "कमर में बंधे एक गमछे के छोर में दो मुठ्टी कपास की रुई के साथ चकमक पत्थर बंधे थे। दाहिने कंधे से मोटे रस्से का झोंपा लटका था। बाएँ कंधे पर टंगा था धनुष और पीठ पर तीरों से भरा तरकश। जबरा ने एक छोटी बोरी में बकरी का बच्चा बंधा था। छौने की गर्दन और सिर बोरी से बाहर थे, घड बोरी के भीतर बंधा था।"[12] बकरी के माध्यम से जबरा ने बाघ को अपने योजना के अनुसार बाहर निकाल कर मारा और जंगल में आग लगाया। जंगल के झाड़ पेड़ जलने के बाद जमीन बना। इस प्रकार जबरा अपना पहला काम पूरा किया।

दूसरा काम था अकाल में पुरे गाँव के लिए अनाज जुटाना, यह बहुत मुश्किल था फिर भी जबरा ने अपने कुछ साथियों के साथ यह काम करने के लिए तैयार हुए। इसको पूरा करने के लिए जबरा एक योजना बनाया था जो इस प्रकार है "हम कंपनी का खजाना लूटेंगे। यही एक उपाय है, जिससे अपना गाँव तो क्या, हर पहाड़िया पेट के लिए अनाज जुट सकता है।"[13] जब कंपनी सरकार की खजाना तेलियागढ़ी से होते हुए कलकता जा रही तब रास्ते में जबरा तथा उसके साथियों ने कंपनी सरकार के खजाना को लूट लिये थे। जिसके माध्यम से अकाल में सारे पहाड़ियाओं को अनाज दे सका।

तीसरा काम था गाँव का इज्जत बचाना। करमा का बेटा फागुन सोनारी गाँव की माँझी सुगना पहाड़िया की बेटी गेंदी जो फागुन के साथ बात करते हुए कुछ लड़कों ने देख लिए थे। यह बात गाँव के मुखिया तक पहुँच गई थी। सोनारी गाँव के माँझी ने सन्देश भेजा था कि बात को आपस में सुलझा जाए, इसलिए जबरा को गाँव के पक्ष से सोनारी गाँव को भेजने के लिए तय हुआ। जिसमें जबरा ने गेंदी का मान भी बचा सके और फागुन भी बच जाए। यह गाँव की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। जबरा सोनारी गाँव जाकर मुखिया के साथ बातचीत कर मामलों को सुलझाया। जिसमें फागुन की शादी गेंदी से हुई।

जबरा को माँझी बनने के लिए ये तीनों शर्त पूरी काल्पनिक थी।

रानी सर्वेश्वरी का जबरा तथा उसके साथियों को बचाना :

सुलतानाबाद के रजा दुर्जन सिंह की मृत्यु के बाद रानी सर्वेश्वरी वहाँ का शासन भार संभाले थे। रानी के साथ पहाड़िया लोगों का अच्छा सम्बन्ध था, वे लोग उन्हें माता का सम्मान देते थे। एक दिन जबरा तथा उसकी साथियों को पकड़ने के लिए कैप्टन मैकेंजी सैन्य के साथ उनका पीछा किया था। लेकिन वे छुपने के लिए रानी के किल्ले में घुस गए थे, रात हो चुकी थी। रानी ने मैकेंजी को किल्ले के अन्दर ढूंढने के लिए अनुमति नहीं दी। मैकेंजी को तब पूर्ण विश्वास था कि वे चारों अन्दर ही हैं।

रात में जबरा तथा उसके साथियों के साथ रानी ने बातचीत की "दुःखी मत हो तिलका जंगल हर साल नया होता जाता है, बेटा। आदमी पुराना होता जाता है। तू मन छोटा करने लगा इसलिए बता देती हूँ। कंपनी

चालबाज है। पहाड़िया पर भी लगान थोपना चाहती है। कंपनी और लगान वसूलने की जिम्मा हम राजा जमींदारों पर डालना चाहती है।"[14] बातचीत करने के बाद रानी ने उन्हें भोजन कराई। भोजन के बाद जबरा तथा उनके साथियों को किल्ले से निकलने के लिए एक गुप्त मार्ग बताई। किल्ले के पीछे एक पुराना कुआँ था, जिसके अन्दर से एक सुरंग थी जो किल्ले के बाहर सुन्दर पहाड़ी पर खुलती थी। रानी के निर्देश के अनुसार चारों कुएँ के अन्दर गए "कुएँ में एक मोटा रस्सी लटक रहा था, जिसमें हाथ–हाथ भर की दूरी पर गाँठे लगी हुई थीं। कुएँ की जगत पर एक बोरी रखी हुई थी, जिसमें चिपकने वाली गीली दोमट मिट्टी भरी थी ... एक ओर दीवार में पतली सुरंग थी। बिल्ली की तरह चलकर सुरंग में जाना होगा। कुएं की तली में एक ढक्कन है काठ का ...सुरंग में घुसकर ढक्कन को भीतर से मुंह पर लगा देना। ढक्कन की दरारो को इस बोर की मिट्टी से लेवार–लीपकर अच्छी तरह बंद कर देना सारी मिट्टी थोप देना।"[15] इस तरह रानी ने जबरा तथा उनके साथियों को कैप्टेन मैकेंजी से बचाया था जो एक काल्पनिक घटना है।

गुमना पहाड़िया की मृत्यु की घटना :

सोनारी गाँव की माँझी था गुमना पहाड़िया। आदिवासी समाज में पशु पक्षियों का एक विशेष महत्व होता है। उनको सुरक्षित रखना वे अपना कर्त्तव्य समझते हैं। पशु पालन ही उनकी आर्थिक स्थिति का आधार होता है। एक दिन माँझी अपनी गायों की सुरक्षा हेतु गोहाल की मरम्मत कर रहा था। तभी एक साँप ने उसको काट लिया। उसे झाड़ फूंक की गई फिर भी उसे बचा नहीं पाए। माँझी की मौत की खबर सुनते ही सारे गाँव में शोक की छाया फैल गई। "हत्या,आत्महत्या, सर्पदंश या किसी दुर्घटना में अस्वाभाविक मृत्यु होने पर मृतक के लिए विशेष कर्मकांड का विधान तो था नहीं। न शव को जलाना था, न ही जमीन में गाड़ना था। बस मृतक के शव को दृष्टि क्षेत्र से परे, गाँव से दूर किसी दुर्गम स्थान पर छोड़ आना था।" माँझी के शव को परंपरा के अनुसार खटिया पर रख कर पहाड़ की ओर ले गए और एक अगम्य गहरी खाई की तली में डाल दिया। उसके बाद पूरा गाँव शुद्ध हुए क्योंकि वह गाँव का माँझी था। शुद्ध होकर श्राद्ध भोज के लिए सारे लोग एकत्रित हुए। उस समय चारों तरफ कंपनी सरकार का भय था। क्लिबलैण्ड घूमते–घूमते सोनारी गाँव में लोगों का जमा हुआ देख उनके पास गया। जमा होने के कारण को जानकर वह भी दुःखी हुआ था। यह भी एक काल्पनिक घटना है।

पहाड़ियों के साथ क्लिबलैण्ड का शिकार में जाना :–

पहाड़िया समाज में 'बेझा–तुन' तीन दिवसीय शिकार पर्व है। इन तीन दिनों में पहाड़िया जंगल को शिकार के लिए जाते हैं। लेकिन कंपनी के भय से शिकार पर्व स्थगित हुआ था। जब क्लिबलैण्ड पहाड़िया लोगों के साथ मिलने लगा तब से पहाड़ियों को कंपनी सरकार का भय नहीं रहा। "जंगल में अब शांति थी। कंपनी पलटन की गश्त न्यूनतम हो चुकी थी। पहाड़िया लोगों का मित्र बन बैठा था क्लिबलैण्ड ! शिकार पर चलने का आग्रह कर बैठा था चिलमिली साहब।" कंपनी सरकार का भय न होने के कारण गाँव के माँझी जबरा पहाड़िया ने अन्य गाँव के माँझीओं को सन्देश भेजा, सब एकत्रित हुए जिसमें शिकार जाने के लिए दिन तय हुआ। लोग तीर–धनुष तथा पारंपरिक अस्त्र–शस्त्रों को लेकर शिकार में चले। शिकार में आये हुए सारे लोगों को छोटे–छोटे दल में बाँट दिया गया। क्लिबलैण्ड भी पहाड़ियों के साथ गया था। उन्हें जबरा ने एक गुलेल दी थी। अर्थात् शिकार पर्व में वह एक आम आदमी की तरह आया था। पहाड़िया उसे सुरक्षा दे रहे थे। जंगल में जाते समय क्लिब्लैंड को भालु आक्रमण किया। भालु से बचने के लिए वे चिलाये, उसकी आवाज सुनकर जबरा जब पीछे

मुड़कर देखा तो चिलमिली साहब को भालु ने अपने कब्जे में कर लिया था। जबरा भालु के साथ लड़ कर चिलमिली साहब को बचाया यह घटना भी काल्पनिक है।

यह उपन्यास ऐतिहासिकता और साहित्यकता अद्‌भुत मिश्रण है। इसमें उपन्यासकार ने इतिहास पर भी प्रश्न उठाए हैं। भारतीय इतिहास में स्वतंत्रता आंदोलन एक ऐसा अध्याय है जिसका आरंभ 1857 की क्रांति से माना जाता है, जबकि उनसे सौ साल पहले झारखंड के आदिवासी समुदायों ने अंग्रेजों की शोषण नीति का घोर विरोध किया था। अंग्रेजों के इस विद्रोह में अनेक आदिवासी जननायक शहीद हुये थे लेकिन उनका नाम इतिहास में कहीं नहीं मिलता। आदिवासियों की इस गुमनामी इतिहास को उजागर करना तथा आदिवासी स्वतंत्रता सेनानियों को ऐतिहासिक महत्व प्रदान करना उपन्यास का मूल उद्देश्य है।

संदर्भ :–

1. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष : बिपिन चन्द्र, पृ. सं. 46
2. हुल पहाड़िया : राकेश कुमार सिंह, पृ. सं 101
3. वही, पृ. सं–101
4. वही, पृ. सं. 158
5. वही, पृ. सं – 43
6. वही, पृ. सं. 47
7. वही, पृ. सं. 164
8. वही, पृ. सं 164
9. झारखण्ड इन्साइक्लोपीडिया (खंड–1) दृ रणेंद्र, सुधीर, पाल, पृ. सं 101
10. हुल पहाड़िया, राकेश कुमार सिंह, पृ. सं 12
11. वही – पृ. सं. 34
12. वही – पृ. सं. 78
13. वही – पृ. सं 37
14. वही – पृ. सं. 50
15. वही – पृ. सं. 167
16. वही – पृ. सं. 169
17. वही –पृ, सं 181
18. वही– पृ. सं. 189

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 341-346

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मैथिलीशरण गुप्त की काव्य कृतियों में किसान विमर्श

प्रा. डॉ. शर्मिलाबहन सुमंतराय पटेल
सहयोगी अध्यापक, श्रीरंग नवचेतन महिला आर्ट्स कॉलेज, वालीया, जि. भरुच, गुजरात।

सारांश :-

मैथिलीशरण गुप्त हिंदी काव्य के राष्ट्रीय युग के प्रमुख कवि हैं, जिनके काव्य में न केवल राष्ट्रभक्ति और सांस्कृतिक गौरव की भावना है, बल्कि सामाजिक यथार्थ और ग्रामीण जीवन की सच्चाई भी मुखर रूप में उभरती है। गुप्तजी ने भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों की पीड़ा और संघर्ष को स्वर दिया, जिसमें किसानों की दयनीय स्थिति, उनकी श्रमशीलता, शोषण, और अधिकारहीनता प्रमुख हैं। उनका काव्य किसानों की दशा पर संवेदनशील दृष्टि प्रस्तुत करता है। इस शोधपत्र में उनके काव्य में निहित किसान विमर्श का विश्लेषण किया गया है।

परिचय :-

किसान भारत की रीढ़ हैं। लेकिन भारतीय समाज में किसान सबसे अधिक उपेक्षित वर्ग रहा है। मैथिलीशरण गुप्त जैसे राष्ट्रकवि ने जब अपने काव्य में किसान की जीवन–स्थितियों को स्वर दिया, तो उन्होंने केवल साहित्यिक संवेदना ही नहीं दिखाई, अपितु सामाजिक चेतना का परिचय भी दिया। उनके काव्य में किसान वर्ग की दुर्दशा, परिश्रम, दैन्यता और उनके प्रति समाज की उदासीनता पर गहरी संवेदना प्रकट होती है। गुप्तजी की प्रमुख काव्य–रचनाएं जिनमें किसान विमर्श मिलता है।

- भारत–भारती
- किसान
- साकेत
- जयद्रथ वध
- पंचवटी
- यशोधरा

किसान जीवन :-

किसान जीवन के यथार्थ को अपवाद स्वरुप गुप्तजी ने बिना, अतीत का सहारा लिए ठोस सामाजिक भूमिका पर रखकर निर्मित किया है। 'किसान खंडकाव्य के द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन में किसान और किसान के जीवन को वे एक मुख्य प्रश्न बनाकर चिंताओं के केन्द्र में लाये। इसकी प्रेरणा भी उन्हें 19वीं सदी में ही देश में किसानों की बदतर जीवन स्थिति से ही मिली होंगी। जमीनदारी प्रथा के चलते किसानों के जीवन की स्थिति इतनी अधिक बिगड़ गई थी कि वे खेत मजदूर बनकर भी रोजी–रोटी पूरी नहीं कर पाते थे। इसलिए रोजी रोटी

की तलाश में उन्हें घर छोड़कर बाहर निकलना पड़ा और अनेको किसान शर्तबंद कुली बनाकर भारत से बाहर फीजी, मारिशस, ट्रिनीडाड़ आदि द्वीपों पर भेजे जाने लगे। इस पर देश में राजनीतिक स्तर पर भी प्रतिक्रिया हुई। दक्षिण अफ्रिका में भारतीय मजदूरों पर होनेवाले अत्याचारों का गांधीजी ने विरोध किया। 1914 में तातेराम सनाढ्य के फीजी संस्मरणों को श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने फीजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष शीर्षक से लिखा। यह पुस्तक बहुत चर्चित हुई और अंग्रेजी सरकार से यह माँग की जाने लगी की वह भारतीय किसान मजदूरों को विदेश भेजना बंद करे और जो भेजे गये मजदूरों को वापिस बुलाया जाए। इसी अवसर पर गुप्तजी ने 'किसान' खंडकाव्य लिखा। इसकी प्रेरणा गुप्तजी को द्विवेदी जी के किसानों की हालत का बयान करने वाले निबंधों से मिली लेकिन देश की वस्तुस्थिति किसी से भी छिपी नहीं थी। भारतीय जीवन की आधारभूत आर्थिक नींव खेती ही रही है। अंग्रेजी सत्ता के शोषण के चक्र तले सबसे अधिक नुकसान सामान्य किसानों का ही हुआ। अंग्रेज मनसबदार, बड़े बड़े जमीनदार, नवाब, रैयतदार इन सब के शोषण का शिकार वह किसान ही बना जो अपनी मेहनत से जमीन जोतकर दो जून की रोटी का इंतजाम करता था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी ने 'संपतिशास्त्र नामक एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी थी। इसी पुस्तक में किसानी जीवन का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा 'खेतिहरों का व्यवसाय या पेशा खेती करना है और खेती खेतो में होती है। प्रांतो में जितनी जमीन खेती करने लायक है. कुछ को छोड़कर बाकी सभी के मालिक जमीनदार, ताल्लुकेदार, नंबरदार और राजा रईश बन बैठे है। वह काश्तकारों से खूब लगान लेते है, उसे समय समय पर बढ़ाते भी है और कारण उपस्थित हो जाने पर उन्हें खेतों से बेदखल भी कर देते थे। इस संबंध में जो कानून बने है वे काश्तकारों के सुमीते के कम और जमीनदारों के सुभीते के अधिक–जब पैदावर बहुत कम हो जाती है और लगान बेबाक नहीं होता तब कर्ज लेना पड़ता है। कम से कम कर्ज की मात्रा बढ़ती जाती है और एक दिन घर, द्वार, बैल, बछिया सब नीलाम हो जाते है। खेती ही प्रधान व्यवसाय ठहरा। इसी प्रकार उन्हीं दिनों 'सरस्वती' में किसान जीवन पर अन्य लेखकों के भी सारगर्भित लेख, निबंध छपते रहते थे। गुप्तजी की नजरों से भी किसान जीवन अछूता नहीं था। वे भी यह जानते थे कि किसानों की ऐसी हालत का कारण अंग्रेजी सरकार की यहाँ से अन्न विदेशो में ले जाने की नीति ही थी।

'भारत भारती में इसका वर्णन वे यूँ करते है,
अब पूर्व की सी अन्न की होती नहीं उत्पति है,
पर क्या इसी से अब हमारी घट रही संपति है?
यदि अन्य देशों को यहाँ से अन्न जाना बंद हो।
तो देश फिर से संपन्न हो, क्रंदन रुके, आनंद हो।'[1]

अंग्रेजो के साथ साथ गुप्त जी प्रकृति और मौसम को भी किसानों की ऐसी बदहाली के लिए जिम्मेवार ठहराते है :–

'हेमंत में बहुधा धनों से पूर्ण रहता व्योम है,
पावस निशाओं में तथा हँसता शरद का सोम है
हो जाय अच्छी सी फसल पर लाभ कृषकों को कहाँ
खाते सवाई, बीज ऋण से है रंगे रक्खे कहाँ?
आता महाजन के यहाँ वह अन्न सारा अंत में

अधपटे खाकर फिर उन्हें है काँपना हेमन्त में।''[2]

लेकिन भारतीय किसान विपरीत परिस्थितियों में भी कभी हार नहीं मानता और पुरी कर्मठता से श्रम में लीन रहता है। इसका चित्रण करना भी गुप्तजी नहीं भूलते :—

'बरसा रहा है रवि अनल भूतल तवा सा जल रहा
है चल रहा सन् सन पवन, तन से पसीना बह रहा.
देखो कृषक शोषित सुखाकर हल तथापि चला रहे,
किस लोभ से इस अर्चि में वे निजशरीर जला रहे.
मध्यातन है उनकी स्त्रियाँ ले रोटियाँ पहुँची वहीं.
है रोटियाँ रुखी, खबर है शाक की उनको नहीं।
संतोष से खाकर उन्हें वे काम में फिर लग गयी,
भरपेट भोजन पा गये तो भाग्य मानो जग गये।[3]

'भारत भारती' राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत काव्य है, जिसमें तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति को उजागर किया गया है। किसान वर्ग के प्रति गुप्त जी की करुणा और आक्रोश इन पंक्तियों में व्यक्त होती है :—

"कृषक क्रुद्ध है आज देश में,
विप्र व्याकुल, जन पीड़ित।
नाश मानो निकट आ गया,
प्रलय लगा अब दीखत।।"[4]

यहाँ कृषकों की क्रांति की संभावना और उनके द्वारा झेले जा रहे शोषण की तीव्र आलोचना है। कृषक का असंतोष सामाजिक विघटन का संकेत देता है।

गुप्त जी किसानों को भूख, गरीबी और बेबसी के चक्र में जकड़ा हुआ पाते हैं। वे 'भारत—भारती' में किसानों की दशा का वर्णन इस प्रकार करते हैं :—

'जिसे देख यह देश जिया, वह अब संकट में पड़ा हुआ।'[5]

कविता में वर्णित है कि जो देश की रीढ़ हैं, वही सर्वाधिक संकटग्रस्त हैं।

गुप्त जी के अनुसार किसान परिश्रमी हैं। वे धरती से जीवन की संभावनाएं खोजते हैं। 'जयद्रथ वध' और 'भारत—भारती' में किसानों के श्रम को गौरवपूर्ण बताया गया है।

'जो हल चलाता खेतों में, वह वीर कहाँ कम होता है?'[6]

'भारत—भारती' के अलावा किसानों के जीवन पर केंद्रित 'किसान' खंडकाव्य गुप्तजी की ऐसी रचना है जो इतिहास, पुराण का सहारा नहीं लेती बल्कि सीधे—सीधे किसानों के सामाजिक यथार्थ को हुबहु हमारे सामने प्रस्तुत करती है। इसमें विस्तार से गुप्तजी ने किसान जीवन की दुर्दशा को संवेदनात्मक रुप से अभिव्यक्त किया है। इस खंड़काव्य को कवि ने आठ सर्गो में बाँटा है. जिसमें आत्मचरितात्मक रुप में किसान जीवन की कथा प्रार्थना से शुरु होकर 'बाल्य और विवाह, गार्हस्थ, सर्वस्वान्त, देश त्याग, फिजी, प्रत्यावर्तन और अंत शीर्षको में पूरी होती है। 'प्रार्थना सर्ग में प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठ भूमि में भारतीय किसान की दुर्दशा का चित्रण है :

'कृषि ही थी तो विभो। बैल ही हम को करते,
करके दिनभर काम शाम को चारा चरते।
कुत्ते भी है किसी भाँति दुगधोदर भरते
करके अन्नोत्पन्न हुमीं हे मुखों मरते।'[7]

प्रभूवर। हम क्या कहें कि कैसे दिन भरते है?
अपराधी की भाँति सदा सबसे डरते है।
याद यहाँ पर हमें नहीं यम भी करते है ,
फिजी आदि में अंत समय जाकर मरते है।[8]

यह रचना पूरी तरह किसान के जीवन पर केन्द्रित है। यह उस कृषक की कहानी कहती है जो देश की रीढ़ है, फिर भी भूखा है :

"हाय! अन्नदाता ही भूखा,
श्रमिक बना परदूषित रूखा।"[9]

"हल चला कर भूमि सींचता,
नहीं स्वयं भर पेट खाता।"[10]

यहाँ गुप्त जी ने किसान की सामाजिक, आर्थिक और आत्मिक स्थिति का मार्मिक चित्र खींचा है–अन्नदाता स्वयं ही भूखा रह जाता है।

1850 के लगभग फिजी, ट्रिनीडाड़, और मारिशस आदि द्वीपों पर खेतों में काम करने के लिए अंग्रेज भारतीय मजदूर किसानों को ले जाने लगे थे। कुछ रास्ते में ही मर जाते थे। वहाँ पर भी उन्हें दयनीय जीवन बिताना पड़ता था। वापिस आना संभव नहीं था। इन्हीं मजदूर किसानों की मेहनत के बल पर द्वीप आज फल फूल रहे है और इन्हीं की संताने आज वहाँ रह भी रही है। फिजी द्वीप में गोरों का व्यवहार जानवरों जैसा होता है। फिजी से यह कृषक किसी तरह वापस आ जाता है और सेना में भर्ती होकर टिगरिस तट पर ब्रिटिश सेना की सहायता के लिए लड़ता है क्योंकि इन्हीं की सहायता से कुली प्रथा समाप्त हुई थी। लड़ते हुए युद्ध में मारा जाता है।

कविवर गुप्तजी ने इस खंडकाव्य में कृषक के आत्मतचरित को दर्शाने के साथ साथ तत्कालीन संपूर्ण भारतीय की पीड़ा को दर्शाया है साथ ही यही भी दिखाया है उसके भीतर अपनी इन परिस्थितियों के लिए कितना क्रोध है, वह गोरों को अपनी शक्ति दिखा देना चाहता है।

इसी प्रकार 'बाल्य और विवाह में किसान के शौर्य जीवन का चित्रण है।' सर्वस्वान्त में हृदय की चीत्कार सुनाई पड़ती है। फिजी में किसानों द्वारा देश छोड़ अनजाने द्वीपों पर पापी पेट की खातिर जाने की व्यथा का मार्मिक वर्णन है। कुल मिलाकर किसान कृति भारतीय किसान के वास्तविक जीवन की पीड़ा को एक महत्वपूर्ण प्रश्न बनाकर सामने रखती है।

पंचवटी रामकथा पर आधारित है लेकिन इसमें आदिवासी और कृषक संस्कृति का छायात्मक उल्लेख है :–

"कंदमूल फल ही जीवन था,
कृषक न था, प्रकृति स्वयं अन्नदाता।"[11]

यहाँ कृषक की अनुपस्थिति में भी कृषि–संस्कृति और प्रकृति की उदारता का चित्रण है, जो कृषक की अप्रत्यक्ष उपस्थिति को दर्शाता है।

युद्ध विषयक इस रचना में किसान की पीड़ा अप्रत्यक्ष रूप से सामने आती है। युद्ध के कारण भूमि और कृषक का विनाश हुआ :

"भूमि रक्तरंजित है अब,
कृषक देखे यह दृश्य विकल।"[12]

कृषक यहाँ एक मूक दर्शक है, जो युद्ध की विभीषिका से अपनी आजीविका को मिटते हुए देख रहा है।

साकेत में रामकथा के माध्यम से गुप्त जी ने समाज की विविध परतों का चित्रण किया है, जिनमें कृषक वर्ग भी सम्मिलित है :–

"वन चले राम, कृषक उदास
खेत रहे, मन जैसे प्यास।"[13]

राम के वनगमन से कृषक समाज की मानसिक स्थिति का चित्रण किया गया है। वह राज्य और शासन में स्थायित्व चाहता है।

यद्यपि यशोधरा मुख्यतः स्त्री दृष्टिकोण से बुद्ध के वैराग्य को उद्‌घाटित करती है, किन्तु ग्रामीण और कृषक जीवन की छवि उसमें भी परोक्ष रूप से उभरती है :

"जिन खेतों में लहलहाते थे हरियाले सपने,
अब उगते हैं वहाँ शूल और झुलसते क्षोभ।"[14]

कविता में शूल और क्षोभ का उल्लेख कृषक की टूटी हुई आशाओं और जीवन के संताप का प्रतीक है।

निष्कर्ष :–

मैथिलीशरण गुप्त की रचनाएँ केवल सांस्कृतिक या धार्मिक चेतना तक सीमित नहीं हैं, बल्कि उनमें सामाजिक यथार्थ का बिंब भी गहराई से अंकित है। कृषक वर्ग उनके काव्य का अनिवार्य अंग है। उन्होंने 'किसान' जैसे काव्य में सीधे–सीधे किसानों की आवाज को स्वर दिया, वहीं भारत भारती और साकेत जैसी रचनाओं में किसान की उपेक्षा और संघर्ष को उजागर किया। उनके काव्य में कृषक न केवल भूख, बेबसी और अन्याय का शिकार है, बल्कि वह सामाजिक चेतना का वाहक भी है।

संक्षेप में कह सकते है कि राष्ट्रीय आंदोलन में नवजागरण के जो भी प्रश्न उतते रहे, देश भक्ति का प्रश्न, सभी भाषा भाषी, संप्रदाय, जाति, संस्कृतियों में एकता का प्रश्न, स्त्री शिक्षा, पुरुषों के साथ स्त्री समानता का प्रश्न आदि सभी प्रश्नों को गुप्तजी ने अपनी रचना का विषय बनाया और काफी उग्र एवं आक्रमक ढंग से सामाजिक बुराइयों को उजागर करते हुए उनमें सुधार की इच्छा व्यक्त की है। सरल, सहज, गद्यमयी, एक अर्थीय भाषा में लिखने के कारण उनकी रचनाएँ लोकप्रिय भी खूब हुई। राष्ट्रीय महत्व के प्रश्नों को अपनी रचना में उठाने के कारण गांधी जी ने उन्हें राष्ट्रकवि की उपाधि भी दी।

संदर्भ सूची (Reference List) :

1. गुप्त, मैथिलीशरण। भारत भारती, पृष्ठ –101, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. गुप्त, मैथिलीशरण। भारत भारती, पृष्ठ –103, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

3. गुप्त, मैथिलीशरण। भारत भारती, पृष्ठ –104, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. गुप्त, मैथिलीशरण। भारत भारती, पृष्ठ – 56, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. गुप्त, मैथिलीशरण। भारत भारती, पृष्ठ –101, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
6. गुप्त, मैथिलीशरण। भारत भारती, पृष्ठ –101, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
7. गुप्त, मैथिलीशरण। किसान, पृष्ठ –10 लोकभारती प्रकाशन।
8. गुप्त, मैथिलीशरण। किसान, पृष्ठ –13 लोकभारती प्रकाशन।
9. गुप्त, मैथिलीशरण। किसान, पृष्ठ –18 लोकभारती प्रकाशन।
10. गुप्त, मैथिलीशरण। किसान, पृष्ठ –17 लोकभारती प्रकाशन।
11. गुप्त, मैथिलीशरण। पंचवटी, पृष्ठ –73 लोकभारती प्रकाशन।
12. गुप्त, मैथिलीशरण। जयद्रथ वध, पृष्ठ –42, लोकभारती प्रकाशन।
13. गुप्त, मैथिलीशरण। साकेत, पृष्ठ–21 लोकभारती प्रकाशन।
14. गुप्त, मैथिलीशरण। यशोधरा, पृष्ठ–112, लोकभारती प्रकाशन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 347-353

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कृष्णा सोबती और महाश्वेता देवी : 21वीं सदी के परिप्रेक्ष्य में स्त्री अस्मिता का तुलनात्मक अध्ययन

अच्छरू कुमार
शोधार्थी, देश भगत विश्वविद्यालय, मंडी गोबिंदगढ़।

स्त्री—विमर्श भारतीय साहित्य में केवल स्त्री—पुरुष समानता या स्त्री—मुक्ति का सवाल नहीं, बल्कि एक जटिल, बहुआयामी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक प्रक्रिया है, जिसमें स्त्री का अनुभव, उसकी आवाज, उसका संघर्ष और उसकी आकांक्षाएँकृये सभी शामिल हैं। प्रभा खेतान के शब्दों में, स्त्री—विमर्श का अर्थ हैकृएक ऐसी दृष्टि का विकास जो स्त्री को केंद्र में रखकर इतिहास, समाज, संस्कृति और राजनीति का पुनर्पाठ करे। यह विमर्श पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का साहित्यिक प्रतिफल है, जिसने साहित्य को नए मानक, नई भाषा एवं नई विश्वदृष्टि दी है। इस यात्रा में हिंदी और भारतीय भाषाओं की अनेक लेखिकाएँ अग्रणी रही हैं, लेकिन कृष्णा सोबती और महाश्वेता देवी का योगदान अद्वितीय है। सोबती ने हिंदी साहित्य को स्त्री—अनुभवों की सहज, निर्भीक एवं प्रामाणिक भाषा दी, तो देवी ने बांग्ला साहित्य में आदिवासी, दलित एवं शोषित स्त्रियों की राजनीतिक चेतना एवं संघर्ष को केंद्र में रखा। दोनों का लेखन स्त्री को 'मूक' नहीं, बल्कि 'वक्ता' और 'विद्रोही' बनाता है। दोनों ने स्त्री—केंद्रित विमर्श को भावुकता, करुणा या शोक—गाथा से ऊपर उठाकर सशक्तिकरण, संघर्ष एवं परिवर्तन की दिशा दी।

इस शोध—पत्र का उद्देश्य यह देखना है कि किस प्रकार सोबती और देवी ने अपनी—अपनी भाषा, सामाजिक पृष्ठभूमि एवं साहित्यिक परंपरा में स्त्री—विमर्श की कथा को नया आयाम दिया। इसमें रचना—विश्लेषण, आलोचनात्मक प्रतिसाद, भाषा—शिल्प, लिंग—वर्ग—जाति के अंतर्संबंध, साहित्येतिहासिक संदर्भ एवं तुलनात्मक अध्ययन समाहित हैं। यह शोध—पत्र न केवल साहित्यिक, बल्कि सामाजिक—राजनीतिक दृष्टि से भी प्रासंगिक है, क्योंकि स्त्री—विमर्श केवल साहित्य का विषय नहीं, बल्कि समाज—परिवर्तन का साधन भी है।

इक्कीसवीं सदी का साहित्य वैश्वीकरण, संचार—क्रांति, सांस्कृतिक आदान—प्रदान, लैंगिक समानता की वैश्विक मुहिमों एवं विविधता के संवाद का युग है। इस दौर में साहित्य ने अब तक 'अनदेखी', 'अनसुनी' और 'हाशिए' की आवाजों को मुख्यधारा में स्थान दिया है। स्त्री—विमर्श अब केवल 'महिला—लेखन' या 'स्त्री—केंद्रित विषय' तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें लिंग, जाति, वर्ग, भाषा, पहचान और अधिकारों का बहुआयामी अध्ययन समाहित है। इस युग के साहित्य में स्त्री ने मातृत्व, गृहणी, 'परंपरागत मर्यादा' आदि की सीमाएँ लाँघी हैं। वह यौनिकता, निजी आकांक्षाएँ, सामाजिक स्वायत्तता, राजनीतिक चेतना, आर्थिक स्वतंत्रता, शिक्षा, रोजगार, कानूनी

अधिकार, सार्वजनिक जीवन, विज्ञान, कला, तकनीक हर क्षेत्र में स्वयं को सिद्ध कर रही है। घरेलू से सार्वजनिक, व्यक्तिगत से सामूहिक, स्थानीय से वैश्विक स्त्री का कथन अब बहुस्तरीय, बहुआयामी और बहुवाची हो गया है। हिंदी और बांग्ला साहित्य में इस परिवर्तन के प्रमुख प्रवर्तकों में कृष्णा सोबती और महाश्वेता देवी का स्थान अग्रणी है। सोबती ने मध्यवर्गीय स्त्री के निजी, घरेलू, यौनिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक अनुभवों को रेखांकित किया, तो देवी ने आदिवासी, दलित, वंचित एवं शोषित स्त्रियों की सामूहिक, राजनीतिक, वर्गीय एवं जातिगत पीड़ा, संघर्ष एवं विद्रोह की कथा लिखी। दोनों के लेखन में स्त्री–कथन की गाथा न केवल स्वतंत्रता, बल्कि न्याय, समानता, अधिकार और सशक्तिकरण की मांग करती है। यह शोध–पत्र इन दोनों लेखिकाओं के साहित्य में स्त्री–विमर्श के विभिन्न आयामों का गहन, आलोचनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

कृष्णा सोबती (1925–2019) हिंदी साहित्य की वे विशिष्ट लेखिका हैं, जिन्होंने साहित्य में स्त्री की निजता, देह, इच्छा, स्वाधीनता और आत्मसम्मान को नए ढंग से उभारा। उनका जन्म पंजाब के गुजरावाला में हुआ, जो अब पाकिस्तान में है। विभाजन की त्रासदी, प्रवास, सांस्कृतिक विस्थापन, पारंपरिक समाज की जटिलताएँकृये सब उनके लेखन की संवेदनशील पृष्ठभूमि रहे। उन्होंने राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली के समाज, परिवार, संबंध, इतिहास, राजनीति, युद्ध, प्रवास, पहचान एवं अस्मिता के विविध पक्षों को अपनी कृतियों में स्थान दिया। 'मित्रो मरजानी' (1966) सोबती के लेखन का एक क्रांतिकारी मोड़ है, जिसमें मित्रो नामक स्त्री–पात्र एक पारंपरिक परिवार में बहू होने के बावजूद अपनी इच्छाओं, प्रेम, यौनिकता एवं स्वतंत्रता की स्पष्ट मांग करती है। यह उपन्यास हिंदी साहित्य में स्त्री–यौनिक अधिकार की पहली साहसी घोषणा मानी जाती है, जिसने समाजवादी–सांस्कृतिक मर्यादाओं को तार–तार किया। 'जिंदगीनामा' (1979) एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है, जो उन्नीसवीं सदी के पंजाब के ग्रामीण जीवन, किसानों, मजदूरों, स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों, परंपरा, आधुनिकता, इतिहास, संस्कृति, राजनीति, धर्म, अंधविश्वास, प्रेम, विवाह, परिवार, संबंध, विवाहेतर प्रेम, विधवापन, सामाजिक परिवर्तन, कृषि, श्रम, त्योहार, उत्सव, मृत्युकृसभी को समेटता है। इसमें स्त्रियाँ केवल घर–परिवार की चौखट तक सीमित नहीं, बल्कि खेत, श्रम, कृषि, समाज, राजनीति, संस्कृति सब में सक्रिय हैं। 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'ऐ लड़की', 'डार से बिछुड़ी', 'सोहन लाल' जैसी रचनाओं में भी सोबती ने स्त्री–जीवन की विविध परतें खोली हैं।

सोबती के साहित्य का सबसे बड़ा योगदान है– उन्होंने स्त्री को पीड़िता, कमजोर, दीन, सहायता–याचक, दया–पात्र या मात्र भावुक प्रतिमूर्ति के रूप में नहीं, बल्कि साहसी, स्वतंत्र, आत्मनिर्भर, प्रतिरोधी, आत्मसम्मान से भरपूर, इच्छाओं और आकांक्षाओं की स्वामिनी के रूप में चित्रित किया। उनकी स्त्री–पात्र अपने जीवन, देह, मन, संबंध, समाज, इतिहास सब पर प्रश्न करती हैं, सवाल उठाती हैं, संघर्ष करती हैं, और अपने अधिकारों के लिए लड़ती हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री–यौनिकता, निजता, स्वाधीनता, आत्मसम्मान, संबंध, प्रेम, विवाह, परिवार, समाज, संस्कृति, इतिहास, राजनीति सभी आयाम समाहित हैं। सोबती की भाषा संवादात्मक, मुहावरेदार, लयबद्ध, स्वाभाविक, सहज, प्रभावी एवं भावपूर्ण है। उनकी शैली में आंतरिक एकालाप, विचार–प्रवाह, संवाद, वर्णन, चित्रण, विश्लेषण, आत्मीयता एवं यथार्थपरकता का समन्वय है। उन्होंने हिंदी कथा–भाषा को नई ऊर्जा, नया आयाम, नई गहराई एवं नई विविधता दी। नामवर सिंह ने उन्हें 'स्त्री–अनुभव की स्वाभाविक भाषा' का श्रेय दिया।

मैत्रेयी पुष्पा ने उनके साहसिक, यौनिक एवं निजता–केंद्रित लेखन की सराहना की है।

महाश्वेता देवी (1926–2016) बांग्ला साहित्य की वे अग्रणी लेखिका हैं, जिन्होंने आदिवासी, दलित, वंचित, शोषित एवं हाशिए के समाज की स्त्रियों के संघर्ष, प्रतिरोध, राजनीतिक चेतना एवं सशक्तिकरण की कथा को केंद्र में रखा। उनका जन्म बांग्लादेश के ढाका में हुआ था। उनके पिता शेखरदेव एक साहित्यकार एवं माता सोयादेवी नर्तकी थीं। उनकी पारिवारिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि ने उन्हें सामाजिक न्याय, जनसंघर्ष, स्वतंत्रता, समानता एवं सशक्तिकरण की प्रेरणा दी। 'द्रौपदी' (1975) उनकी प्रसिद्ध कहानी है, जिसमें दोप्दी मजहेंन एक आदिवासी स्त्री है, जो नक्सल आंदोलन के संदर्भ में राज्य–सत्ता, सेना, पुलिस, प्रशासन, सामंतवाद, पूंजीवाद एवं सामाजिक अन्याय के शिकार होती है। कहानी का अंत स्त्री–प्रतिरोध के प्रतीक के रूप में घटित होता है, जब दोप्दी सेना के जवानों के समक्ष नग्न खड़ी होकर 'कपड़ा दो' की मांग करती है। यह कहानी लिंग, वर्ग, जाति तीनों स्तरों पर उत्पीड़न और प्रतिरोध की बहुस्तरीय व्याख्या करती है। 'हजार चौरासी की माँ' (1974) में सुजाता अपने बेटे की राजनीतिक हत्या के बाद केवल माँ नहीं, बल्कि समाज की चेतना, न्याय एवं प्रतिरोध की प्रतिनिधि बन जाती है। 'शुद्धि', 'माँ', 'अरनीयर अधिकार', 'झाँसीर रानी', 'बशई तुंडे', 'सिद्धू कान्हू', 'पद्मावती', 'रुदाली', 'घोघा', 'बिजली' ऐसी अनेक रचनाओं में देवी ने स्त्री–प्रतिरोध, जाति–वर्ग–लिंग के उत्पीड़न, सामाजिक पाखंड, राजनीतिक भ्रष्टाचार, पूंजीवादी शोषण, आदिवासी–दलित–वंचित समाज के प्रति संवेदना, सामाजिक न्याय, कानून, अधिकार, आजादी, संघर्ष, आत्मसम्मान, स्त्री–शक्ति, सामूहिक प्रतिरोध सभी को स्थान दिया। देवी के लेखन का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने स्त्री को केवल पीड़िता या दुर्बल नहीं, बल्कि संघर्षशील, साहसी, प्रतिरोधी, आत्मनिर्भर, स्वतंत्र, न्याय–प्रेरित, राजनीतिक–चेतन, सामाजिक–बदलाव की प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित किया। उनकी स्त्री–पात्र घर, परिवार, समाज, राज्य, प्रशासन, पुलिस, सेना, पूंजीवाद, सामंतवाद, जाति–प्रथाकृसभी से टकराती हैं, संघर्ष करती हैं, और अपने अधिकारों के लिए लड़ती हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री–पीड़ा, स्त्री–संघर्ष, स्त्री–प्रतिरोध, स्त्री–सशक्तिकरण, सामाजिक न्याय, राजनीतिक चेतना, वर्ग–संघर्ष, जाति–विरोध, सामूहिक आंदोलन, आत्मसम्मान, आजादी, समानता सभी आयाम समाहित हैं। देवी की भाषा सीधी, सरल, प्रभावी, झकझोर देने वाली, संवेदनशील, आत्मीय, यथार्थपरक, व्यंग्यात्मक, व्यापक एवं गंभीर है। उनकी शैली में आंतरिक एकालाप, वर्णन, संवाद, चित्रण, विवरण, विश्लेषण, आक्रोश, प्रतिरोध, संघर्ष, सामूहिकता, राजनीतिक चेतना, सामाजिक न्याय, आदिवासी–दलित–वंचित समाज की पहचान, जनचेतना, लोक–साहित्य सबका समन्वय है। उन्होंने बांग्ला कथा–भाषा को नई ऊर्जा, नया आयाम, नई गहराई एवं नई विविधता दी। रमणिका गुप्ता, गायत्री चक्रवर्ती स्पिवक, सुधा आर्य, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान सभी ने उनके साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं मानवीय योगदान की सराहना की है।

'मित्रो मरजानी' हिंदी साहित्य में स्त्री–यौनिक अधिकार, निजता, स्वाधीनता एवं आत्मसम्मान की पहली साहसिक घोषणा है। इसकी नायिका मित्रो पारंपरिक हरियाणवी परिवार की बहू है, जो अपनी संपूर्ण जिन्दगी की इच्छा, माँग, सपने, स्वप्न, सुख, दुख, संबंध, प्रेम, यौनिकता, जीवन सबको परिभाषित करती है। वह अपने पति गिन्नी से सवाल करती है– "क्यों तुम मुझसे प्रेम नहीं करते? क्यों तुम मुझे अपना नहीं मानते? क्यों तुम मुझे छोटा समझते हो? क्यों तुम मुझे गुलाम बनाना चाहते हो?" यह संवाद हिंदी साहित्य में पहली बार स्त्री–यौनिक अधिकार की गहरी पैठ थी, जिसने उस समय के सामाजिक व्यवहार, पारंपरिक नैतिकता, मर्यादा, सीमाएँ सभी

को चुनौती दी। मित्रो केवल शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति की बात नहीं करती, बल्कि प्रेम, स्नेह, सम्मान, समानता, स्वतंत्रता, आत्मसम्मान, व्यक्तित्व, इच्छा, आकांक्षा, विकल्प, अधिकार सबकी मांग करती है। वह इस समाज, परिवार, संस्कृति, इतिहास, मर्यादा, रिवाज, नैतिकता, दंभ, मिथ्या, मिथक, आडंबर, अहंकार, जकड़न सबको तोड़ती है। वह पति, सास, ननद, देवर, पड़ोसी, समाज सबका विरोध करती है। वह कहती है— "मैं भी एक स्त्री हूँ, जो जीना चाहती है और चाहती है कि उसकी इच्छा का सम्मान हो।" मित्रो का यह विद्रोही वक्तव्य, उसकी अभिव्यक्ति, उसका आत्मविश्वास, उसका साहस, उसकी निडरता हिंदी साहित्य में स्त्री—मुक्ति का नया आयाम है।

सोबती ने मित्रो के माध्यम से स्त्री—देह, स्त्री—मन, स्त्री—इच्छा, स्त्री—आकांक्षा, स्त्री—अधिकार, स्त्री—स्वतंत्रता, स्त्री—आत्मसम्मान, स्त्री—व्यक्तित्व, स्त्री—संबंध, स्त्री—जीवन सबको नए सिरे से परिभाषित किया। साहित्यिक समाज में इस उपन्यास को प्रारंभ में आत्मकथा, अनैतिक, अश्लील, असामाजिक, पारंपरिक संस्कृति के विरुद्ध माना गया, लेकिन बाद में यह स्त्री—सम्मान, स्त्री—अधिकार, स्त्री—स्वतंत्रता, स्त्री—आत्मसम्मान, स्त्री—व्यक्तित्व, स्त्री—संबंधों की नई परिभाषा के रूप में स्वीकारा गया। चिरकालिक मान्यता 'स्त्री मौन, मर्यादित, परंपरानिष्ठ, घर की लक्ष्मी' इसी का विखंडन 'मित्रो मरजानी' में है।

कृष्णा सोबती की इस कृति में अविभाजित पंजाब के ग्रामीण जीवन का विस्तृत, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक खाका उकेरा गया है। यह उपन्यास नायक—नायिका के पारंपरिक स्वरूप से परे है, इसमें समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों का जीवन्त चित्रण, उनके रिश्तों, संघर्षों, श्रम, प्रेम, युद्ध, विभाजन, आजादी और उपासकता की असंख्य ताने—बाने हैं। यहाँ स्त्री पात्र भी केवल घर तक सीमित नहीं, बल्कि कृषि, श्रम, परंपरा, संस्कृति, किसान आंदोलनों में सक्रिय है। स्त्री—विमर्श यहाँ निजी और सामाजिक दोनों स्तरों पर गूढ़ता से उभरता है। स्त्री केवल पारंपरिक नारी की भूमिका में नहीं, बल्कि सामाजिक कार्य, श्रम, प्रेम, यौनिकता, परिवार, संबंध, मातृत्व, स्वाधीनता, विद्रोह की जटिल गठरी के रूप में उभरती है। सोबती की भाषा में पंजाबी लहजे, लोक—संस्कृति, मुहावरे, संवाद, संक्षिप्त उक्तियों की झलक है, जो कथानक को जमीनी और वास्तविक बनाती है। 'जिंदगीनामा' सोबती की समग्र दृष्टि, इतिहास—बोध, सामाजिक संवेदना और मानवीय स्वातंर्त्य के प्रति प्रतिबद्धता का परिचायक है। उनके पात्रों में जीवन की बारीकियाँ, इच्छाएँ, दुख, उम्मीद, संघर्ष, प्रतिरोध सबका समावेश है। यह रचना सोबती की साहित्यिक विरासत का परिपूर्ण सार है, जिसमें वह स्त्री—स्वातंर्त्य, परिवार समाज के संघर्षों, ऐतिहासिक बेचौनी, सांस्कृतिक विविधता और रचनात्मक दृष्टि को मूर्त रूप देती हैं। आलोचकों ने इसे हिंदी उपन्यास में अभिनव सामाजिक यथार्थवाद माना है, जिसने परंपरागत कथा—शैली और आख्यान संरचना को विस्मृत कर नए भाषाई प्रयोगों, संवादात्मक गहराई और संवेदनशील पात्रों को जन्म दिया।

महाश्वेता देवी की साहित्यिक महत्ता का जो आधार 'द्रौपदी' तथा 'हजार चौरासी की माँ' में विद्यमान है, वह स्त्री—विमर्श के सामाजिक—राजनीतिक आयामों को अभूतपूर्व विस्तार एवं तीक्ष्णता से उद्घाटित करता है। जहाँ कृष्णा सोबती ने निजी—घरेलू संदर्भ में स्त्री—अधिकारों की गहन विधि व्याख्या की, वहीं देवी ने आदिवासी—दलित—वंचित स्त्रियों के सामूहिक प्रतिरोध और सामाजिक न्याय की लड़ाई को साहित्य का सार बनाया। 'द्रौपदी' में दोप्दी मजहेंन का चरित्र युगांतरकारी प्रतिरोध—चिन्ह है। नक्सल आन्दोलन के सन्दर्भ में

पकड़ी गई, पुलिस और सेना के हत्थे चढ़ी दोप्दी को जब निर्जन मैदान में खड़ा करके अपमानित किया जाता है, तब वह नग्नता में भी दीन नहीं, बल्कि विक्षुब्ध स्वतंत्रता का प्रतिरूप बनकर उभरती है। "कपड़ा दो" कहलवाने वाले उसके शब्द न केवल मांग हैं, वे लिंग–वर्चस्व, जातिवाद और आर्थिक–सामंती संरचनाओं के विरुद्ध तीव्र ऐलान हैं। देवी ने दोप्दी के नग्न शरीर को वस्तुकरण से निकालकर प्रतिरोध की विजय–ध्वजा बना दिया। इस प्रकार, स्त्री–शरीर पर चलाए गए हिंसात्मक प्रयोगों का जवाब सिर्फ आत्म–सम्मान से नहीं, सामाजिक चेतना की पुकार से भी मिला। दोप्दी ने निजी दर्द को सामूहिक प्रतिरोध में तब्दील कर दिया और यह बतलाया कि हाशिए पर जीने वाली स्त्री का प्रतिरोध केवल व्यक्तिगत अहिता का प्रतिकार नहीं, बल्कि वंचित समुदायों के सम्मिलित उत्पीड़न के विरुद्ध संगठित विद्रोह का स्वर है। 'हजार चौरासी की माँ' में सुजाता का चरित्र मातृत्व की पारंपरिक सीमा से बाहर निकलकर इतिहास–रचना में शामिल होता है। उसका पुत्र अर्थात् "हजार चौरासी" आंदोलन के साथियों के बीच शहीद हो गया, पर उसकी माँ केवल शोकाकुल नहीं रह गई वह न्याय की राह पर खड़ी हुई।

सुजाता ने नौकरशाही, पुलिस और राजनीतिक सत्ता की जद्दोजहद में अपने व्यक्तिगत घावों को सार्वजनिक क्रांति के सूत्र में पिरो दिया। देवी ने मातृत्व को भावुक कोमलता से अधिक, सशक्त चेतना का माध्यम बनाया। सुजाता की आंतरिक संवाद शैली में दर्द और प्रतिरोध का संतुलन इस बात को रेखांकित करता है कि वंचित–स्त्री–प्रतिरोध का केंद्र कभी सिर्फ परिवार नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और राजनीतिक बदलाव होती है। देवी की भाषा मानवीय क्रंदन का आक्रोश और सामूहिक जागृति का घोष दोनों समेटे रहती है। ग्रामीण बांग्ला और आदिवासी बोलियों के मिश्रित शब्द–चयन में द्रौपदी तथा सुजाता के जीते–जागते स्वर सुनाई देते हैं। वे केवल कथानायिकाएँ नहीं, सामाजिक इतिहास की गवाही हैं। देवी ने लोक–कथाओं, गीतों, बोलियों के भाव को शहर की कठोर राजनीतिक भाषा से जोड़ा, जिससे उनकी रचनाएँ भावात्मकता की कोमलता और क्रांतिकारी चेतना की कटुता के बीच पुल बनाती हैं। इस शिल्प–कौशल से देवी ने साबित किया कि भाषा–शिल्प में संवेदनशीलता और आक्रोश का संगम सामाजिक विमर्श को तीव्र गतिमान बना देता है। समकालीन समाज में 'द्रौपदी' और 'हजार चौरासी की माँ' का प्रभाव आज भी प्रासंगिक है क्योंकि वे वंचित–समुदायों, आदिवासी–दलित स्त्रियों की आवाज को मुख्यधारा में लाने का कार्य करते हैं। जातिगत–आर्थिक असमानताओं, पुलिस–राज, सामंती शक्तियों के निरंकुश व्यवहार, राजनीतिक अपराधों की अनदेखी इन पर सवाल उठाने की शक्ति यही कहानियाँ देती हैं। देवी की रचनाएँ पाठकों को केवल साहित्यिक आनंद नहीं, सामाजिक उत्तरदायित्व का भाव भी प्रदान करती हैं और स्त्री–विमर्श को व्यापक सामाजिक क्रांति के संदर्भ में स्थापित करती हैं।

कृष्णा सोबती का लेखन हिंदी साहित्य की एक नई भाषा और अपना अनुभव रचता है। उनकी रचनाओं में मध्यमवर्गीय, नगरीय, अर्धनगरीय, पारिवारिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, स्त्री–केन्द्रित अनुभवों की अभिव्यक्ति है। 'मित्रो मरजानी' में मित्रो जैसा पात्र एक पारंपरिक घर की बहू होते हुए भी अपनी इच्छा, प्रेम, यौनिकता, स्वतंत्रता, आत्मसम्मान, समानता, स्नेह, सुरक्षा, संबंध, पहचान, अधिकार, विकल्प सबकी मांग करती है। सोबती ने स्त्री को पीड़िता, मात्र भावुक प्रतिमूर्ति, दया–पात्र या सहायता–याचक के रूप में नहीं, बल्कि साहसी, स्वतंत्र, आत्मनिर्भर, प्रतिरोधी, आत्मसम्मानी, इच्छाओं और आकांक्षाओं की स्वामिनी के रूप में चित्रित किया। उनके पात्र घर, समाज, इतिहास, संस्कृति, राजनीति, यौनिकता, निजता, स्वाधीनता, संबंध, मन, देह, संघर्ष, अधिकार सबका प्रश्न करते हैं, सवाल उठाते हैं, विद्रोह करते हैं, लड़ते हैं। सोबती की भाषा संवादात्मक,

मुहावरेदार, लयबद्ध, सहज, स्वाभाविक, भावपूर्ण, आत्मीय, यथार्थपरक है। उन्होंने हिंदी कथा–भाषा को नई ऊर्जा, नई गहराई, नई विविधता दी। उनकी शैली में आंतरिक एकालाप, संवाद, वर्णन, चित्रण, विश्लेषण, भाव, यथार्थ, अनुभव, स्वाभाविकता सबका समन्वय है।

वहीं, महाश्वेता देवी बांग्ला साहित्य की वह अग्रणी लेखिका हैं जिन्होंने आदिवासी, दलित, वंचित, शोषित, हाशिए के समाज की स्त्रियों के सामूहिक संघर्ष, प्रतिरोध, राजनीतिक चेतना, सामाजिक न्याय, वर्ग–संघर्ष, जाति–उत्पीड़न, सत्ता–विरोध, पूंजीवादी–सामंती शोषण, आत्मसम्मान, स्वतंत्रता, परिवर्तन, आजादी यह सब कथा–सूत्र में पिरोया। उनके पात्र अक्सर गाँव, जंगल, हाशिए के दुनिया से आते हैं जो घर, समाज, राज्य, प्रशासन, पुलिस, सेना, जाति–वर्ग–तंत्र, पूंजीवाद, सामंतवाद सबसे टकराते हैं, संघर्ष करते हैं, अपने अधिकारों के लिए लड़ते हैं। 'द्रौपदी' में दोपदो की कहानी नक्सल आंदोलन के बीच एक आदिवासी स्त्री की पीड़ा, संघर्ष, प्रतिरोध, सत्ता–विरोध, न्याय, आत्मसम्मान, आजादी की मांग का प्रतीक है। 'हजार चौरासी की माँ' में सुजाता सिर्फ माँ नहीं, बल्कि समाज की चेतना, न्याय, प्रतिरोध की प्रतिनिधि बन जाती है। देवी ने स्त्री को पीड़िता या दुर्बल के रूप में नहीं, बल्कि साहसी, प्रतिरोधी, आत्मनिर्भर, स्वतंत्र, न्याय–प्रेरक, राजनीतिक–चेतन, सामाजिक–बदलाव की प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित किया। उनके लेखन में स्त्री–पीड़ा, स्त्री–संघर्ष, स्त्री–प्रतिरोध, स्त्री–सशक्तिकरण, सामाजिक न्याय, राजनीतिक चेतना, वर्ग–संघर्ष, जाति–विरोध, सामूहिक आंदोलन, आत्मसम्मान, आजादी, समानता यह सब दिखाई देता है। देवी की भाषा सीधी, सरल, व्यंग्यात्मक, कटु यथार्थ, झकझोर देने वाली, संवेदनशील, आत्मीय, व्यापक, गंभीर है। उन्होंने बांग्ला कथा–भाषा को नई ऊर्जा, नया आयाम, नई गहराई, नई विविधता दी। उनकी शैली में आंतरिक एकालाप, वर्णन, संवाद, चित्रण, विवरण, विश्लेषण, आक्रोश, प्रतिरोध, संघर्ष, सामूहिकता, राजनीतिक चेतना, सामाजिक न्याय, आदिवासी–दलित–वंचित समाज की पहचान, जनता की भाषा सबका समन्वय है।

सोबती का लेखन मुख्यतः मध्यमवर्गीय स्त्री की निजता, स्त्री–यौनिकता, स्त्री–स्वाधीनता, परिवार, समाज, संबंध, संघर्ष, आकांक्षा, पहचान, उपलब्धि पर केंद्रित है, जबकि देवी का लेखन आदिवासी, दलित, वंचित, शोषित, ग्रामीण, हाशिए के समाज की स्त्रियों के सामूहिक संघर्ष, प्रतिरोध, राजनीतिक चेतना, सामाजिक न्याय, वर्ग–संघर्ष, जाति–उत्पीड़न, सत्ता–विरोध, आत्मसम्मान, स्वतंत्रता, परिवर्तन, आजादी को रेखांकित करता है। सोबती की भाषा संवादात्मक, मुहावरेदार, लयबद्ध, सहज, स्वाभाविक, भावपूर्ण, आत्मीय, यथार्थपरक है, तो देवी की भाषा सीधी, सरल, व्यंग्यात्मक, कटु यथार्थ, झकझोर देने वाली, संवेदनशील, आत्मीय, व्यापक, गंभीर है। सोबती के पात्र प्रायः व्यक्तिगत स्वतंत्रता, निजता, संबंध, परिवार, समाज, संस्कृति, इतिहास, राजनीति में अपनी जगह और पहचान की मांग करते हैं, तो देवी के पात्र सामूहिक स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, वर्ग–जाति–उत्पीड़न विरोध, राजनीतिक चेतना, संघर्ष, प्रतिरोध, आत्मसम्मान, आजादी, परिवर्तन की मांग करते हैं। दोनों ने पुरानी, रूढ़, पितृसत्तात्मक, मिथकीय, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व्यवस्था को चुनौती दी, स्त्री को 'मौन', 'मर्यादित', 'परंपरानिष्ठ', 'घर की लक्ष्मी' की छवि से परे, 'वक्ता' और 'विद्रोही' बनाया, स्त्री–कथा को नया आयाम दिया।

सारांशतः, सोबती और देवी ने अपने–अपने तरीके से, अपनी–अपनी भाषा, शैली, विषय, पात्र, समाज, राजनीति, संस्कृति में स्त्री–विमर्श को नया आयाम दिया। सोबती ने स्त्री की आत्मकथा, निजता, स्वाधीनता,

आकांक्षा, प्रेम, संबंध, संघर्ष, अधिकार, पहचान को साहित्य में नई अभिव्यक्ति, नई गरिमा, नई स्वतंत्रता दी। देवी ने स्त्री के सामूहिक संघर्ष, प्रतिरोध, राजनीतिक चेतना, सामाजिक न्याय, वर्ग–संघर्ष, जाति–विरोध, सत्ता–विरोध, आत्मसम्मान, आजादी, परिवर्तन, सशक्तिकरण को रेखांकित किया। दोनों ने पुरानी, रूढ़, पितृसत्तात्मक, मिथकीय, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व्यवस्था को चुनौती दी, स्त्री को 'वक्ता' और 'विद्रोही' बनाया, साहित्य को नए मानक, नई भाषा, नई विश्वदृष्टि दी, और आज भी यही विमर्श न सिर्फ साहित्य, बल्कि समाज, राजनीति, संस्कृति, इतिहास, मानवाधिकार, सशक्तिकरण, परिवर्तन का हिस्सा है।

संदर्भ सूची :–

1. देवी, महाश्वेता। द्रौपदी। कोलकाता : सिग्नेट प्रेस, 1975।
2. ——A हजार चौरासी की माँ। कोलकाता : दास गुप्ता, 1974।
3. खेतान, प्रभा। स्त्री–विमर्श की भूमिका। नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1995।
4. सिंह, नामवर। कहानी, आलोचना और समाज। नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1983
5. सोबती, कृष्णा। मित्रो मरजानी। दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1966
6. ——A जिंदगीनामा। दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1979
7. स्पिवक, गायत्री चक्रवर्ती। क्या सबाल्टर्न बोल सकती है? (अनुवादित संस्करण)। मूल प्रकाशन : Marxism and the Interpretation of Culture। संपादक : कैरी नेल्सन एवं लॉरेंस ग्रॉस्बर्ग। अर्बाना : यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनॉइस प्रेस, 1988, पृ. 271–313।
8. पुष्पा, मैत्रेयी। चाक। दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1992।
9. गुप्ता, रमणिका। स्त्री–चेतना और साहित्य। दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2001

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 354-358
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गोविंद मिश्र कृत उपन्यास 'लाल पीली जमीन' में नारी चेतना

अविनाश भागवत सानप,
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, विवेकानंद कला,
सरदार दलिप सिंह वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, छत्रपती संभाजीनगर।
प्रो० डॉ० शिवाजी सांगोळे
शोध निर्देशक, हिन्दी विभागाध्यक्ष, मोरेश्वर महाविद्यालय, भोकरदन, जि० जालना।

संक्षेप :-

गोविंद मिश्र समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य में एक ऐसी उपस्थिती है, जिनकी वरीयताओं में लेखन सर्वोपरि है। उन्होने हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध करके वास्तविकता के धरातल प्रदान करने का कार्य किया। उनकी चिंताएँ सामाजिक जनजीवन से जोड़कर मानव जीवन को समग्रता से प्रस्तुत करती है। अमीर–गरीब, मालिक–मजदूर, शोषक–शोषित, किसान–जमीदार, जातीय उच–नीच आदि सभी वर्गों की समस्याओं के संदर्भों तक का चित्रण गोविंद मिश्र के उपन्यासों में मिलता है। गोविंद मिश्र ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी जीवन की अच्छाइयों, बुराइयों एवं नारी के विविध समस्याओं, विफलताओं एवं नीरसता को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया है और उसका लेखन–फलक 'लाल पीली जमीन' इस उपन्यास के खुरदरे यथार्थ, भारत के इतिहास और अतीत के संदर्भ में आज के प्रश्नों की पड़ताल–इन्हें एक साथ समेटे हुए है।

संकेत शब्द :- मनोवैज्ञानिक, अंतर्दृष्टियों, अभिशप्त, दुर्व्यवहार, दुस्साहस।

गोविंद मिश्र का 'लाल पीली जमीन' यह उपन्यास 1976 ई में प्रकाशित हुआ। गोविंद मिश्र की सरजनात्मक प्रतिभा लगभग सभी विधाओं को समृद्ध करते हुए आगे बढ़ रही है। इस प्रखर प्रतिभा को अनेक बार सम्मानित भी किया गया। उन्हें 'आर्थस गिल्ड ऑफ इंडिया पुरस्कार' 'लाल पीली जमीन' उपन्यास इस श्रेष्ठ साहित्य निर्माण के हेतु 1988 में प्रदान किया गया।

'लाल पीली जमीन' उपन्यास कस्बाई सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में व्याप्त नारी के अपमान, शोषण और नारी के प्रति काम वासना के विविध संदर्भों को चित्रित करता है। उपन्यास के केंद्र में नायक केशव का परिवार है, जिसके माध्यम से स्त्री के अपमान, उससे हो रहे नीचता का व्यवहार, भोग की वृत्ति, बच्चों के भविष्य और नारी की छटपटाहट और उसकी असहायता को दर्शाया गया है। इस उपन्यास में सैकड़ों पात्र हैं, जिनके कार्यकलापों के माध्यम से लेखक ने परिवेश के हिंसात्मक चरित्र का उद्घाटन किया है। इस उपन्यास

के कुछ ऐसे प्रमुख नारी पात्र हैं जिनकी मनोवैज्ञानिक उथल–पुथल साफ दिखाई देती है, जिन्हें विस्तृत विश्लेषण के लिए उठाया जा सकता है।

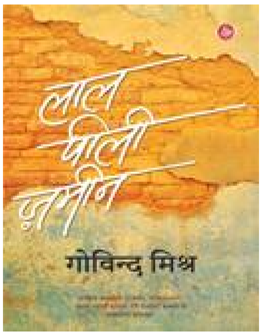

इस उपन्यास का मुख्य कार्य परिवार के मुखिया पुरुष का स्त्रियों के महत्व को ना मान्य करना है। चंद्रकांत बांदिवडेकर लिखते हैं "भारतीय जीवन की सड़ांध में सड़कर बदबू देने के लिए जन्मी फूल जैसी छवि, मालती, शांति, शैलजा.... छोटे और बड़े चरित्रों की यह लंबी मालिका राजनीतिक, सामाजिक संदर्भ में ठोस होकर भी मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टियों से दीप्त होकर जगमगाती है।"[1] भारतीय परिवार में स्त्री की विषम स्थिति और असहायता का चित्र उपन्यास में हिंसा और परिवार परिवेश के रूप में अधिक स्पष्टता के साथ चित्रांकित किया गया है।

'लाल पीली जमीन' में नारी के कई रूप :–

1. **शिक्षित व कामकाजी लड़की के रूप :–** लाल पीली जमीन की 'शांति' के पिता बहुत पहले ही मर चुके थे और वह अपनी माँ के साथ रहती है। माँ का उसके अलावा और कोई सहारा नहीं है। शांति ने मिडिल पास किया है। अपना घर खर्च चलाने के लिए वह घर से बाहर निकल प्राइमरी स्कूल में पढ़ाने का काम करती है।

शैलजा मास्टर कौशल की लड़की है और लड़कियों के स्कूल में दसवीं कक्षा में पढ़ती है। अपने इम्तहान की तैयारी में जुटी रहती है।

2. **आत्मविश्वास एवं सहनशीलता कि मूरत :–** मिडिल के लिए स्कूल जाते–आते समय शांति कोई 'आक थू' करके उसका ध्यान खींचता तो कोई 'देखा सती सावित्री जा रही है' का ताना कसता। जहाँ एक तरफ शांति खुद को असहाय महसूस करती है, वहीं शांति वहाँ की और लड़कियों से भिन्न है, क्योंकि उसमें आत्मविश्वास है। "न बाप, न भाई... और माँ को कमाकर खिलने वाली एक वही...अजीब लगता था पहले–पहले–वहाँ लड़कियाँ पढ़ती थीं तो तब तक ही जब तक साड़ी न पहनने लगें... और नौकरी तो कोई गई–गुजरी ही करती। इसको लेकर भी शांति को ताने सुनने पड़ते–'दुकान करके लौट रही है' इस सबसे निकलने का कोई उपाय नहीं।"[2] शांति को वहाँ के खौफनाक परिवेश का इतना भय है कि यह कुछ भी दिल खोलकर नहीं कर पाती है, दबी हुई इच्छाएँ जरुर हैं, लेकिन किस्मत का खेल कि उसे गंदे वयस्क लंगोट धारी पंडित की वासना का शिकार होना पड़ता है। जो शांति कहती थी कि यहाँ की हर औरत बड़ी सख्त होती है, उसकी छाती मर्द की छाती से भी मजबूत होती है। वही शांति पंडित द्वारा बलात्कार के परिणामस्वरूप मानसिक यातना से मर जाती है।

3. **सपने और उमंगों से भरी हुई :–** उपन्यास में चित्रीत मालती बहुत जिंदादिल व दिलखुश मिजाज की

लड़की है। मोहल्ले में कसरती लड़कों का झुंड जब गली से निकलता तो मालती इधर–उधर से झाँककर उन्हें एक नजर देखे बिना न रहती, क्योंकि वीर रस उसका इष्ट था। अपने विवाह के बारे में वह हमेशा सोचती थी कि कोई बाहर से आएगा और उसे इस जगह से दूर ले जायेगा। इस मोहल्ले में तो वह कुछ ही दिनों की मेहमान है। वह अक्सर सोचती कि जितने दिन वह यहाँ है, यहाँ का सबकुछ देख ले क्योंकि शादी के बाद तो उसे यह जगह छोड़कर दूसरी जगह जाना ही है।

4. **प्रेम के प्रति आकृष्ट :–** छवि जादव जी की पुत्री है। छवि, नारायण को मन ही मन पसंद करने लगती है। यह नारायण के प्रति आकर्षित होती है। छवि उम्र से बड़ी अर्थात शादी कर देने लायक हो गई थी। नारायण के प्रति आकर्षण के कारण उसका मंदिर में जाने का सिलसिला बढ़ जाता है। छवि और नारायण एक–दूसरे को मन ही मन प्यार करने लगते हैं। छवि में दबे रूप में प्रेम के प्रति आकृष्ट दिखायी देती है, किन्तु वह खुलकर इजहार नहीं कर पाती है।

5. **विशिष्टता की चाह :–** मंदिर जादव जी का है और उनके अहाते में है। दिनभर की कैद के बाद छवि को शाम के समय मंदिर जाने को मिल जाता है। नारायण की आँखों में अपने प्रति प्रेम देखकर छवि को मंदिर की तरफ खींचता है। समाज के भयवश वह अपने आप को मंदिर जाने से रोकती है पर कुछ क्षणों की वह अनुभूति उसे उकसाती है। नारायण को अपनी तरफ आकर्षित देख छवि कुछ समय के लिए अपने आप को विशिष्ट–सा महसूस करने लगती है।

6. **निराशा और घुटनभरा जीवन :–** उपन्यास में उन परिवारों की कहानी भी है, जहां जवान लड़की का विवाह उससे अधिक उम्र वाले व्यक्ति से कर दिया जाता है। मालती के सारे सपने तब चकनाचूर हो जाते हैं जब बड़े जादव जी उसके ब्याह के लिए मालती के दद्दा को सर्वेश का नाम सुझाते हैं। दान–दहेज भी नहीं देना होगा तो दद्दा शादी के लिए तैयार हो जाते हैं।

मालती के सभी सुंदर, कोमल, रंगीन सपने जल कर राख हो जाते हैं। वहाँ के परिवेश में लड़कियाँ शर्म के कारण कुछ नहीं कह पाती थी, जिससे उनकी शादी बिना उनकी इच्छा के कर दी जाती थी। जिस कारण वो सर्वेश के साथ घुट–घुटकर जीवन व्यतीत करने के लिए अभिशप्त थी। लड़कियों का थोड़ा–बहुत मुँह खुलता भी है तो शादी के बाद ही पर तब तक सब कुछ खत्म हो चुका होता है।

वहाँ औरतों को अपनी इच्छानुसार कुछ भी करने का कोई हक नहीं था। पुरुषों के लिए औरत तो एक गाय थी, चाहे उसे जिधर हाँक दो, चाहे जिस खूंटे से बाँध दो। मालती जैसी उमँगो से भरी लड़कियों के साथ ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार किया जाता है कि वे निराशा–अवसाद से भर जाती है। घुट–घुटकर जीवन गुजारने के लिए लाचार हो जाती है।

7. **अंधविश्वास के नीचे दबी हुई :–** सर्वेश की तीन पत्नियां मर चुकी थी। लोगों का कहना था कि उस घर का नक्षत्र ही कुछ ऐसा था या फिर सर्वेश के ग्रह ही कुछ ऐसे थे कि उसकी कोई भी पत्नी एक साल से ज्यादा नहीं टिकती थी। पहली पत्नी पहला लड़का जन्मते समय ही मर गयी, उसमें जच्चा और बच्चा दोनों मर गए। दूसरी चार महीने में खत्म हो गई थी और तीसरी दो महीने भी नहीं चली। सर्वेश की उम्र भी कुछ ज्यादा थी। उस घर में लड़की देना माने लड़की को मौत के मुँह में ढकेलना था। शुरु में तो लछमन के दद्दा विचलित होते हैं परंतु जादव जी यह समझाते हैं कि अब तक सर्वेश के पीछे शनि की साढ़े साती लगी हुई थी जो अब खत्म

हो गई है,

मालती की माँ के विरोध करने पर भी दद्दा मालती का ब्याह सर्वेश से पक्का कर देते हैं।

8. **जिंदगी के प्रति उदासीनता :-** उमंगों से भरी मालती जो पूरे घर में चहकती रहती थी वह अधेड़ उम्र के सर्वेश की चौथी पत्नी बनने के बाद एक ही दिन में बूढ़ी हो जाती है। मालती सिर्फ सर्वेश के प्रति अपना कर्तव्य निभाती है। उसे जिंदगी से कोई चाहत व लगाव नहीं रह जाता है। 'लाल पीली जमीन' की लड़कियां अपने यौवन को महसूस ही नहीं कर पाती है, यह दर्दनाक तथ्य लगभग इस उपन्यास की हर नारी प्रमाणित करती है। पुरुषों द्वारा चलित उस समाज में स्त्री एक वस्तु के अतिरिक्त कुछ नहीं—यह मालती के चरित्र से साफ झलकता है।

9. **परिवेश एवं परिवार से भयग्रस्त जीवन :-** 'लाल पीली जमीन' का परिवेश ही ऐसा है कि जहाँ लड़कियाँ जवान होने लगती हैं, वहीं परिवेश के डर से उनका खेलना—कूदना बंद कर उन्हें घर की चारदीवारी में कैद कर दिया जाता है। माँ—बाप लड़कियों को उनके शारीरिक विकास के पहले ही विवाह की बेड़ियों में बाँध देते हैं क्योंकि इसी तरह से वे लड़कियों की सुरक्षा कर सकते हैं। शांति के पिता नहीं थे, शांति अपने लिए यह डर स्वयं ही वहन करने को अभिशप्त थी।

छवि जब नारायण से प्रेम करने लगती है तो रोज—रोज उससे मिलने के लिए मंदिर जाने लगती है पर उसके मन में समाज के प्रति डर रहता है। उसे ऐसा लगता है जैसे वह कोई पाप कर रही है क्योंकि वहाँ के परिवेश में लड़घकियों को अपनी जिंदगी अपने अनुसार जीने की स्वतंत्रता नहीं थी।

शैलजा जो अभी ठीक से सोच भी नहीं सकती थी। शिवमंगल द्वारा घूरने और फब्तियां कसने पर भी वह उसके डर से किसी से उसके बारे में कुछ नहीं कहती। उसे यह भी अच्छा नहीं लगता था कि कोई उसके लिए लड़े। कैलाश जब शैलजा की खातिर शिवमंगल से भिड़ जाता है तो शैलजा डर जाती है, क्योंकि वह जानती है कि शिवमंगल बहुत ही खूंखार है और अपना बदला लेना कभी नहीं भूलता। एक तरफ उसे कैलाश पर गुस्सा आता है तो दूसरी तरफ उसे यह भी अच्छा लगता है कि कैलाश ने उसके लिए जोखिम उठाया।

10. **आत्मकुंठा में दमन :-** "तुम्हारे खानदान में यह हमेशा से होता आया है, तुम्हारे चाचा ने अपनी बहू को जलते हुए चैलों से मारा और मार—मारकर भगा दिया।"[3] यहा स्पष्ट होता है कि नारी पर अत्याचार यह समस्या कब से चली आ रही है।

मोहल्ले के कई लड़कों की तरह सुरेश भी छवि पर आकृष्ट है। वह उसे फँसाने की कोशिश करता है। छवि जैसी लड़कियों के साथ इस तरह का दुर्व्यवहार होना, वहाँ के क्रूर समाज में उनका अस्तित्व खत्म करने जैसा ही है। शेष जीवन लड़कियाँ आत्मदमन का ही शिकार रहती हैं।

11. **शोषित और असहाय :-** जहां परिवार में स्त्री का मतलब ही उसका शोषण करना, उसे मारना—पीटना हो वहाँ स्त्री—पुरुष समानता की कल्पना करना बेमानी है। उपन्यास में पंडित का अपनी बीवी के बारे में कहना "कुछ नहीं........ औरत जात है, ससुरी छिनार।"[4] परिवार परिवेश में स्त्री—पुरुष के संबंध को दर्शाता है।

शांति स्वयं को आवारा लोगों से सुरक्षित रखने के लिए मन से बूढ़ा महसूस करना शुरु कर देती है। वह घर में पिता व भाई का कोई साया न होने के कारण बहुत ही असहाय महसूस करती है।

कल्लू शैलजा पर मोहित है। वह शैलजा के लायक न होते हुए भी उसके साथ घर बसाने के सपने

देखता है। कल्लू शिवहरे के साथ मिलकर शैलजा को अगवा कर व उसके साथ बलात्कार कर जबरन शादी कर लेता है। शैलजा किसी तरह से वहाँ से भागकर अपने घर आ जाती है तो पिता भी उसे अपनाने के बदले उसे कहते हैं– 'मर तो सकती थी।' यह सुनकर वह असहाय हो जाती है। जिस पिता से बहुत सारा अपनत्व मिला था, उन्हीं के मुँह से ऐसा सुनकर उसे बहुत सदमा लगता है। शैलजा के निर्दोष होने के बावजूद उसे अपने बलात्कारी कल्लू के साथ रहकर जीवन निर्वाह करने के लिए कहा जाता है तो उसकी असहायता की पराकाष्ठा आ जाती है। स्त्रियों के शोषण का यह एक उदाहरण है।

सुप्रसिद्ध कवि श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने इस उपन्यास के बारे में लिखा था– 'यह उपन्यास खोखले, जर्जर होते, टूटते पारिवारिक संबंधों, निम्न मध्य वर्ग की लड़कियों की उदास, अन्याय से जकड़ी निराशा और आत्महत्या की ओर बढ़ती जिंदगियों और शरीर की ताकत तथा दुस्साहस न बटोर पाने वाले लड़कों की अक्सर हताशा और जड़ता का भी गहन एवं प्रभावशाली चित्रण करता है। उपन्यास का नायक एक ऐसा ही व्यक्ति है, जो बचपन से ये सारी विसंगतियाँ देखता और झेलता चला आ रहा है, जहाँ हर रिश्ता अपना अर्थ खो चुका है। नैतिक मूल्य ढह गये हैं और रही–सही सुरक्षा बेमानी हो गयी है, जहाँ धर्म की आड़ में लंपटता और गुंडई पल रही है, जाति के नाम पर गरीबों का इस्तेमाल किया जा रहा है, जहाँ वीरान लाल (हिंसा) और पीली (पीड़ा की) धरती ही पैरों के नीचे रह गयी है। उपन्यास में कामकुंठा की तरह लेखक ने रस नहीं लिया है, उसकी तलखी को उभारा है। सारा उपन्यास बड़ी कलात्मक दक्षता से लिखा गया है और एक बहुत बड़े पैमाने पर विचारों को झकझोरता और ललकारता है।'[5]

निष्कर्ष :–

'लाल पीली जमीन' इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार गोविंद मिश्र ने दर्शाया है कि, निम्न–मध्य वर्ग कि लड़कियों पर इतने अन्याय किये जाते है कि उनकी जिंदगी उदासी और निराशा से भर जाती है। वे आत्महत्या तक कर बैठती है। वहाँ के परिवेश के खौफ से हर लड़की सहमी हुई है। उपन्यास में सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि समाज के प्रमुख पात्र दमित यौन इच्छाओं के शिकार हैं, ये दमित इच्छाएँ पुरुषों की हिंसात्मक सोच और व्यवहार में प्रकट होती है तो स्त्रियों को और भी दमित होने की तरफ ले जाती हैं। इस उपन्यास में शांति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पात्र है। 'लाल पीली जमीन' की लड़कियाँ अपने यौवन को भोग ही नहीं सकती थीं, यह दर्दनाक तथ्य लगभग हर नारी प्रमाणित कर देती है। यह उपन्यास युवा वर्ग की भटकन तथा अत्याचारों से भरी दुनिया का यथार्थ चित्र है, जो बाहरी वातावरण के साथ आंतरिक मनोभावों की झलक देने में सक्षम हो पाया है।

संदर्भ सूची :–

1. संपादक डॉ .चंद्रकांत बांदिवडेकर, गोविंद मिश्र सृजन के आयाम, पृष्ठ 93
2. गोविंद मिश्र, लाल पीली जमीन, पृ. 63
3. गोविंद मिश्र, लाल पीली जमीन, पृ 11
4. वही, पृ 50
5. संपादक डॉ. चंद्रकांत बाँदिवडेकर, गोविंद मिश्र रू सृजन के आयाम, पृ. 81

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 359-363
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गोविंद शर्मा के बाल कथा साहित्य में उभरते नए स्वर और संवेदनाएँ

सोनाली युवराज चित्ते
शोधार्थी, जे०इ०एस० कॉलेज, जालना।
डॉ० शिल्पा दादाराव जिवरग,
शोध–निर्देशक (हिन्दी विभाग), पंडित जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, शिवाजीनगर, छत्रपती संभाजीनगर।

शोध सार :–

किसी भी राष्ट्र के निर्माण में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राष्ट्र की नीव अगर मजबूत हो तो वह राष्ट्र विकास की बुलंदियों पर अपना पलचम लहरा सकता है। बालक प्रत्येक राष्ट्र के निर्माण की नीव होता है, इसलिए बालक के हाथों में सही साहित्य होना अत्यंत आवश्यक है। बाल साहित्य ऐसा हो जो बच्चों की जिज्ञासा शांत करें, रुचियों में परिष्कार कर सके और बच्चों में अच्छे संस्कार भरे। बाल साहित्य में विविधता अनिवार्य है, क्योंकि बाल रुचियां भी विभिन्न नीतियों से परिपूर्ण है। नीति परक ज्ञान देने वाला आदर्श उपदेशों से परिपूर्ण साहित्य बाल रुचियों के प्रतिकूल होता है। बच्चों के स्वस्थ मनोरंजन के साथ उनके भावी जीवन के लिए उन्हें स्वयं तैयार कर देने की परोक्ष उत्प्रेक्षा उत्प्रेरणाएँ देने वाला साहित्य ही सच्चा बाल साहित्य है। वर्तमान बाल साहित्य जगत के रचनाकर 'श्री गोविंद शर्मा' अपने उदार और सकारात्मक प्रयासों से बाल साहित्य की परंपरा को प्रवाहशील बना रहे है। बाल साहित्य पर जिस दृष्टि रूप से उन्होंने लिखा है, वह उनके सौम्य, चंचल, गंभीर, विवेकपूर्ण, संवेदनशील महत्वपूर्ण आदि व्यक्तित्व का प्रतिबिंब है। गोविंद शर्मा चुंबकीय ओजस्वी और प्रखर व्यक्तित्व के धनी है उनका लेखन ही उनके जीवन का परिचय देता है।

संकेत शब्द :– मनोविज्ञान, प्रस्फुटित, आत्मसमर्पण, संवेदनात्मक, भावनात्मक।

प्रस्तावना :–

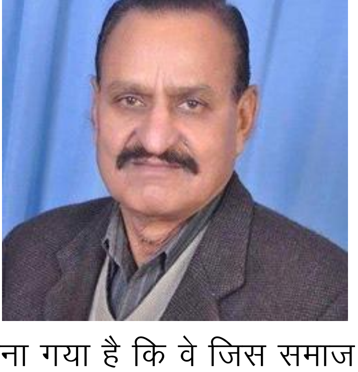

आज के बालक कल के नागरिक है। अब्राहम लिंकन का कथन है– "बालक ऐसा व्यक्ति है जो आपके कार्यों को आगे बढ़ाएंगा। आज जहाँ आप बैठे है, वहीं कल बैठेगा और जब आप चले जाएंगे तो आपके महत्वपूर्ण कार्यों को वह पूरा करेगा। आप अपनी इच्छा से कोई भी नीति अपना सकते है, किन्तु उन्हें किस तरह पूरा करना है, यह बालक पर ही निर्भर करता है। आपकी सभी पुस्तकों का मूल्यांकन, प्रशंसा या निंदा उसके द्वारा होगी। वास्तव में मानवता का भविष्य बालक के हाथों में है।"[1] इसलिए बच्चों के विकास के लिए यह आवश्यक माना गया है कि वे जिस समाज

में पले–बढ़ें, वह समाज उन्हें नई रचनात्मक दिशा देने वाला हो तथा उन्हें एक सुखद भविष्य कि ओर अग्रसर करे जिससे सारा राष्ट्र सुखी एवं समृद्ध हो अतः बाल–साहित्य ही सर्वोत्तम साधन है।

बालकों के मनोविज्ञान के ज्ञाता लेखकों ने बालकों के मनोवैज्ञानिक विकास को ध्यान में रखकर महत्वपूर्ण बाल कहानियाँ लिखी। बाल कहानी लेखन के गोविंद शर्मा सिध्द हस्त है। गोविंद शर्मा के जीवन का मूल्य ध्येय 'सादा जीवन, उच्च्य विचार' के सिद्धांत पर चलते हुए संघर्ष को आत्मसात करते हुए रचनात्मकता के ऐसे वटवृक्ष के रूप में परिणत होना है जिसकी जड़ें साहित्यिक क्षितिज में चौतरफा फैली है। उनकी कहानियाँ हलकी–फुलकी पर पाठकों को सम्मोहित करने वाली है, साथ में आदर्श एवं मूल्यों को वास्तविक धरातल पर उतारने की जिजीविषा स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। "गोविंद जी की एक और खूबी है की वे ऐसे विषयों का चयन करते है जिनमें बच्चों के मन में सदैव उत्सुकता बनी रहती है। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से उसका उत्तर भी बाल सुलभ अंदाज में देते है। इनकी रचनाओं के शीर्षक भी बच्चों को प्रिय लगते है और पढ़ने की उत्सुकता को बढ़ाते है। लेखक गोविंद शर्मा अपनी रचनाओं में कथात्मक और संवाद शैली दोनों का समान रूप से प्रयोग करते है" ।[2] डॉ. तारादत्त 'निर्विरोध' का मानना है– "मेहनत का मंत्र' बाल कथा संग्रह में गोविंद शर्मा की 32 बाल कथाएँ संग्रहीत है। जिनमें कहीं नैतिकता का संदेश है तो कहीं देश भक्ति का, कहीं सम्मान भावना का तो कहीं परिश्रम का। नया संदेश देने वाली ये बाल कथाएँ उन्हें भी पसंद आएँगी जो बाल मनोविज्ञान को समझते हैं या बाल साक्षी को महत्व देते हैं। गोविंद शर्मा के बाल कहानियों में अनेक संवेदनाओं के स्वर प्रस्फुटित होते है।

राष्ट्रियता की चेतना :–

बाल साहित्य ऐसा हो जो मनोरंजन के साथ–साथ नैतिकता, सत्यता, देशभक्ति, चरित्र निर्माण एवं भारतीय चिंतन पैदा कर सके। बचपन से ही धर्म, जाति एवं वर्ग के भेद भूलाकर समाज को भावात्मक एकता एवं राष्ट्रीयता के सूत्र में बाँध सके। गोविंद शर्मा के कहानी संग्रह– 'सबसे बड़ा तिरंगा', 'सबकी धरती सबका देश' में देश के प्रति सम्मान है, आत्मसमर्पण की भावना का बीज बालमन में अंकुरित करने का प्रयास किया गया है। 'सबसे बड़ा तिरंगा' इस शीर्षक कहानी में योगी को स्वतंत्र दिवस पर प्रकृति इंद्रधनुष के रूप में तिरंगा दिखती है, जिसकी लंबाई नापी नहीं जा सकती। इस कहानी से देश–भक्ति की सीख तो मिलती ही है, राष्ट्रीय प्रतिकों के प्रति सम्मान की भावना भी पैदा करती है। 'आजादी के दीवाने', 'तिरंगे के रंग', 'पेंसिल और इरेजर' तथा 'शपथः नहीं छोड़ेंगे' इन कहानियों में भी राष्ट्रियता की संवेदना का सृजन किया गया है।

पर्यावरण संरक्षण के प्रति प्रेरणा :–

आज पूरे विश्व कि सबसे बड़ी समस्या है– 'प्रदूषण'। कैसे पर्यावरण कि रक्षा हो, हम कैसे पानी बचा सकते है– यह संदेश 'पर्यावरण रक्षा' खंड कि तीनों कहानियों– 'पत्ते नहीं : कान', 'बच गए पेड़ और कुआँ' और 'जल कंजूस' में है। 'पेड़ बचा ऐसे' इस कहानी ने हमें नए पेड़ तो लगाने ही चाहिए, जो पहले से लगे है, उनकी रक्षा भी हमारा धर्म है, कर्तव्य है और सबसे बढ़कर पर्यावरण की रक्षा के लिए आवश्यकता भी है यही सीख देती है। 'देखिए और सीखिए' यह कहानी गोविंद शर्मा द्वारा रची गई है, जिसमें कुछ पर्यटक एक छोटे, साफ–सुथरे और हरे–भरे राज्य में जाते है और उसके छोटे आकार का मजाक उड़ाते है, लेकिन वहाँ के राजा की बुद्धिमत्ता और विनम्रता उन्हें एक महत्वपूर्ण सीख देती है– असली महानता दूसरों की अच्छाइयों को पहचानने, लालच से दूर रहने और पर्यावरण व स्वच्छता के लिए समर्पित रहने में है। यह कहानी हमें आत्मविश्लेषण और सुधार की

प्रेरणा देती है। 'सबकी धरती सबका देश' गोविंद शर्मा का बाल कहानी संग्रह की शीर्ष कहानी में कई संदेश है। जंगल सिर्फ हमारे नहीं है, जंगल में रहने वाले जीवों के भी है। उन्हें नष्ट करने से पहले सोचे कि यदि हमने जंगल नष्ट किए तो ये जीव कहाँ जाएंगे। "यह धरती सबकी है, यह देश इसमें रहने वाले हम सबका है।"[3]

यथार्थवादी :–

साहित्यकार विश्व में विद्यमान बुराइयों और कुरीतियों पर पर्दा डालने की अपेक्षा इसका प्रत्यक्ष चित्रण करता है। उसका यथार्थवादी चिंतन धरती की सांसों में पनपता है और धरती से ही प्रेरणा ग्रहण करता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण बाल साहित्य में देखने को मिलते हैं। गोविंद शर्मा की एक खूबी यह है की सत्य घटनाओं पर किया गया सृजन। वे अपनी कथाओं का आधार ऐतिहासिक घटनाओं और वर्तमान के घटनाक्रम को भी बनाते है। उनकी कहानियों में शर्मसार होती मानवता, स्वार्थ के रिश्तों, रिश्वतखोरी को परत दर परत उधेड़कर मन को झकझोरने वाली है जिन्हें पढ़कर पाठक को धराशायी होते मानवीय मूल्यों का गहरे तक अहसास होता है, छटपटाहट सी होती है और वह समाधान की तलाश में विचलित सा हो उठता है।"[4] 'बासी रोटी', 'बुआ', 'छाता', 'खुशबू', 'पिता', 'बोझ' जैसी संवेदनात्मक कहानियाँ तथा 'उनकी तड़प', 'दयालु', 'उत्तराधिकारी', 'ज्ञापन' आदि राजनीतिक कहानियाँ बाल पाठकों पर गहरी छाप छोड़ती है।

नैतिकता :–

बच्चों के लिए नैतिकता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। बाल साहित्य के सभी तत्त्वों में से महत्वपूर्ण तत्त्व नैतिकता है। नैतिकता बालक को चरित्रवान और श्रेष्ठ बनती है। नैतिकता की शुरुआत घर से होती है। गोविंद शर्मा की कहानियाँ गिरते मानवीय मूल्यों पर आधारित है। 'बंधा' में भिखारी और कुत्ते को पात्र बनाकर लेखक ने गैरों के प्रभाव में आकार अपनों पर ही गुर्राने की तस्वीर उकेरी है। इसी तरह 'इज्जत यात्रा में भी अपनों के अहसानों को भूलकर कुछ लोग उन्हीं की जड़ काटने से भी नहीं हिचकते। 'बोझ' कहानी भी लेखक की पैनी दृष्टि का अहसास करा देती है, जिसमें संपन्नता मजबूत रिश्तों को भी अछूत बना देती है।

वैज्ञानिकता :–

आज के बच्चों में वैज्ञानिक अभिरुचियों के विकास के लिए बाल साहित्य लिखने से पूर्व यह जानना अनिवार्य है कि किस परिवेश और वातावरण में बच्चे रह रहे हैं। उनका उन पर कितना प्रभाव है और वह वास्तव में किन प्रश्नों का समाधान चाहते हैं। आधुनिक बाल साहित्य में वैज्ञानिकता का समावेश कर रची जाने वाली अनेक रचनाएँ प्रायः होने लगी है। विज्ञान का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि बच्चों को अपने चारों ओर अनेक प्रश्न चिन्ह दिखाई देते हैं और वह उनके उत्तर अपने स्तर के अनुकूल खोजने का प्रयत्न करते हैं। बच्चों के लिए सही बाल साहित्य निर्माण की यह एक आवश्यकता भी है। विज्ञान की अनेक ऐसी बातें हैं जो अपने आप में स्वयं बड़ी रोचक होती है, इसीलिए प्रयास यह किया जाता है कि विज्ञान संबंधी बातों को इतनी रोचक शैली में बताया जाए कि बच्चों को उसे पढ़कर किसी तरह का बोझ महसूस ना हो। यह शैली कथा की हो सकती है, किसी वैज्ञानिक तीर्थ के यात्रा संस्मरण के रूप में भी हो सकती है। गोविंद शर्मा की कहानी 'दादाजी की अंतरिक्ष–यात्रा' में सौरमंडल की जानकारी बेहद अनूठे ढंग से दी गई है। यह जानकारी दादा और उनके पोते–पोतियों के बीच के बातचीत के रूप में है। इसमें चंद्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, यूरेनस, नेपच्यून, बौने ग्रह, सूरज, सौर वायु, चंद्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण, सूर्य जीवन का आधार, धरती और वेधशालाओं के बारे में बताया

गया है और अंत में पुस्तकों के महत्व को दर्शाया गया है। गोविंद शर्मा 'कई अजूबे इस दुनिया में' सामान्य ज्ञान में वृद्धि करके, विश्व के सात आश्चर्यों के बारें में बताते है। बीच–बीच में पाठकों का जनरल नॉलेज भी बढ़ातें है, फिर नये अजूबों को बताते है। उनका उद्देश्य बाल पाठकों की रुचि में वृद्धि करना और सामान्य ज्ञान को बढ़ाना जिससे पाठक नए साहित्य पढ़ने के लिए उत्सुक रहे।

मूक पशु–पक्षियों के प्रति अटूट संवेदना :–

मानव का सच्चा सुख विस्तृत समाज से जुड़ने में है। जो अपने हृदय में दूसरों को जितना स्थान देगा वह उतना ही सुखी होगा 'पंचतंत्र' ने भी बाल मनोविज्ञान को समझा था कि बालक जितना पशु और पक्षी जगत से जुड़ते हैं उतना बड़ों के मानव समाज से नहीं। गति में मनोरंजन खोजने वाले बालकों के लिए पशु और पक्षी जगत के सहज दशा तथा निश्चल जीवन में सबसे अधिक गति है फिर पशु और पक्षी जगत का सही और व्यवहारगत सौंदर्य भी बच्चों को आकर्षित करता है। 'मुझे भी सीखना' कहानी संग्रह का खंड 'कौआ बुरा नहीं' कि कहानियाँ– 'दादी के कौएँ', 'पंछी एक डाल के' ऐसे बने दोस्त' इन कहानियों में कव्वे की सजगता, वफादारी, भलमानसहत, सहयोगी आदि होने की रोचकता है। इंसान और जानवर सभी इस धरती पर रहते है। यदि हम मूक पशु–पक्षियों को स्नेह और संरक्षण देंगे तो वे दोगुना होकर हमारे पास लौटेगा इसी संवेदना पर आधारित कहानी है– 'बिसु की करामात।' 'बेटा' कहानी व्यंग की पिचकरी है। बेटे–बहू, बुजुर्ग को वृद्धाश्रम छोड़ आते है लेकिन यह बात उसके कुत्ते को हजम नहीं होती। समस्त प्रताड़ना को सहते हुए वह मौका मिलते ही बुजुर्ग के पास पहुँच जाता है। कहानी की खास बात यह है कि यहाँ बुजुर्ग की नजर में बेटा, कुत्ता बन गया और कुत्ता बेटा। गोविंद शर्मा के अधिकांश कहानियों के पात्र स्वयं बच्चे है, या जंगली जानवर। किसी भी कहानी में कोई अतिरंजित घटना नहीं है।

मनोरंजन :–

गोविंद शर्मा की सभी कहानियाँ रोचक, मनोरंजक, ज्ञानवर्धक और शिक्षाप्रद का गुण लिए हुए है। उनकी हास्य–कथाएँ भी है। कई बार अनायास ही ऐसी स्थितियाँ पैदा हो जाती है कि हम हसें बिना नहीं रहते। बंदर की करतूत, हा......सी...सी... आदि ऐसी ही सुधीर सक्सेना 'सुधि' कहते हैं– "बच्चों की दुनिया में ऐसी सामग्री परोसी जा रही है जो उनके किसी काम की नहीं उल्टे उन्हें मानसिक व बौद्धिक स्तर पर हानि ही पहुंचा रही है। बच्चों को समुचित ऐसा साहित्य ही चाहिए जो उनमें बौद्धिक विकास तो करें ही, साथ ही उनमें नैतिकता के बीजों का प्रस्फुटन भी कर सके और भावनात्मक स्तर भी समृद्ध करें वर्तमान में तो ऐसी साहित्य की नितांत आवश्यकता है क्योंकि बच्चे बाहरी चमक–दमक से बुरी तरह प्रभावित हो रहे हैं। यथार्थ से जुड़ी बातें भूलते जा रहे हैं। नैतिक मूल्यों, राष्ट्र प्रेम का संदेश, प्रकृति प्रेम, जीव–जंतुओं के प्रति स्नेहभाव के साथ ही श्रम का महत्व जैसे विषयों पर अच्छी, स्तरीय रचनाओं का सृजन देश के कतिपय लेखक कर रहे है, उसी शृंखला में गोविंद शर्मा ने भी अपनी लेखकीय जिम्मेदारी का एहसास, अपनी पूरी ऊर्जा के साथ संकलन करने की कोशिश की है।"[5]

गोविंद शर्मा की भाषाशैली में भावपक्ष, अधिक प्रभावशाली है जो प्रेम, दया, सौजन्य आदि कोमल भावों को विशेष स्थान रखता है। उनके गंभीर विचारसूत्रों को रोचकता के साथ 'समाज के सच' को दर्शाया है। उसकी गहराई में जुड़ा व्यक्तित्व सटीक अभिव्यक्ति की गुणवत्ता है।

निष्कर्ष :–

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते है कि श्री गोविंद शर्मा बाल साहित्य जगत के ख्यातनाम हस्ताक्षर है। बच्चों के लिए उनकी चालीस से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई है। राज्य व केंद्रीय साहित्य अकादमी द्वारा हिन्दी बाल साहित्य के सर्वोच्च सम्मान से सम्मानित किया गया है। बच्चों के बाल मनोविज्ञान को समझे बिना उनकी जरूरतों को समझा नहीं जा सकता, बाल साहित्य के लिए बालकों के संवेदना के धरातल को समझना जरूरी है, गोविंद शर्मा इसमें सिद्धहस्त है। अपने सभ्य, शिष्ट, सौम्य, विनम्र व्यक्तित्व की झलक उनकी भाषा शैली एवं लेखनी में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। सहज, सरल, बोधगम्य भाषा में लिखी इनकी कहानियों में वो सब होता है जो एक बालक पसंद करता है। उनकी कहानियों में कुछ रोचकता है तो कुछ ज्ञान का भंडार।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ रंजु उनिवाल, पंचशील शोध समीक्षा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, वर्ष 2000, पृ 126
2. गोविंद शर्मा, पेड़ और बादल– भूमिका से, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर– 302003
3. गोविंद शर्मा, सबकी धरती–सबका देश, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर, 2022, पृ 40
4. गोविंद शर्मा, खेल नंबरों का– भूमिका से, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर– 302003, पृ xi
5. गोविंद शर्मा, मेहनत का मंत्र– भूमिका से, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर– 302003

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 364-367
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जयशंकर प्रसाद के साहित्य में पर्यावरण विमर्श

S. Rajalakshmi
Assistant professor in Hindi, Agurchand Manmull Jain College, Chennai-61

परिचय :-

भारतीय साहित्य परंपरा में प्रकृति का महत्त्व अत्यंत प्राचीन है। ऋग्वेद में प्रकृति को देवत्व का रूप माना गया, उपनिषदों में उसे ब्रह्म की अभिव्यक्ति समझा गया, और पुराणों में उसे सृष्टि और पालन की शक्ति के रूप में चित्रित किया गया। संस्कृत साहित्य में कालिदास जैसे महाकवि ने प्रकृति को मानवीय भावनाओं के साथ समरस कर प्रस्तुत किया। हिंदी साहित्य की परंपरा में भी यह धारा लगातार बनी रही।

भक्ति काल में सूर, तुलसी और मीरा की वाणी में प्रकृति ईश्वर भक्ति का सहचर बनी, रीति काल में वह शृंगारिक सौंदर्य का उपकरण रही। किंतु छायावाद युग (1918–1936) में प्रकृति केवल बाह्य सौंदर्य नहीं, बल्कि आत्मा की गहराइयों और जीवन–दर्शन की संवाहक बनकर उभरती है।

छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद (1889–1937) का विशेष स्थान है। वे कवि, नाटककार और कथाकार–तीनों रूपों में प्रकृति को केवल सौंदर्य के लिए नहीं, बल्कि मानवीय अस्तित्व और सांस्कृतिक चेतना के केंद्र के रूप में देखते हैं। उनके काव्य कामायनी, आँसू और झरनाय नाटक चंद्रगुप्त और स्कंदगुप्तय तथा कथाएँ सभी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है –

"प्रसाद ने प्रकृति को केवल चित्रात्मक नहीं, बल्कि जीवन की गति और आत्मा की साधना से जोड़ा। यही कारण है कि उनका साहित्य समय की सीमा से परे आज भी प्रासंगिक है।"[1]

जयशंकर प्रसाद के साहित्य में निहित पर्यावरण विमर्श :-

(क) प्रकृति मानव का अद्वैत संबंध

प्रसाद का मानना है कि प्रकृति और मानव दो पृथक सत्ता नहीं, बल्कि एक–दूसरे में विलीन होने वाली सत्ता हैं।

'देखा हृदय से हृदय मिल गया,
वह नील गगन सिर पर खिल गया।'[2]

'नील गगन' केवल दृश्य–चित्रण नहीं है, बल्कि यह मानव और प्रकृति की आत्मिक एकता का प्रतीक है। जब मनुष्य का हृदय प्रकृति के साथ जुड़ता है, तो उसका आत्मिक क्षितिज विस्तार पाता है। यह केवल रोमांटिक सौंदर्य नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और भावनात्मक समरसता का संकेत है। प्रसाद यह बताना चाहते हैं

कि मनुष्य और प्रकृति के बीच की दूरी मिटते ही जीवन में सौंदर्य और शांति खिल उठती है।
इसी प्रकार आँसू में –

'मन्द पवन में लहराते हुए,
ये किसके आँसू झर रहे हैं?'[3]

यहाँ वर्षा की बूँदों को आँसुओं के रूप में देखा गया है। प्रकृति और मानव भावनाओं का यह अद्वैत संबंध यह दिखाता है कि प्रकृति मानव के भीतर की संवेदनाओं की दर्पण है। जब बादल रोते हैं, तो मनुष्य के हृदय के दुःख का आभास होता है। इस प्रकार प्रसाद ने मानव और प्रकृति के बीच किसी कठोर भेद–रेखा को स्वीकार नहीं किया, दोनों एक–दूसरे के भावों में समाहित हैं।

विद्यानिवास त्रिपाठी लिखते हैं-

"प्रसाद की दृष्टि में प्रकृति और मनुष्य के बीच कोई दीवार नहीं हैय दोनों एक–दूसरे में विलीन होते हैं।"'[4]

इस प्रकार प्रकृति और मानव का अद्वैत संबंध प्रसाद की काव्य–दृष्टि का आधार है।

(ख) पर्यावरण संरक्षण की अंतर्धारा :-

प्रसाद प्रकृति को जीवन–संरक्षण का आधार मानते हैं। आँसू में वे लिखते हैं –

'जल की बूँदों में जीवन का नर्तन है,
यह नर्तन ही सृष्टि की लय है।'[5]

यहाँ जल को जीवन की ऊर्जा और सृष्टि के आधार के रूप में चित्रित किया गया है। बूँदें केवल जल नहीं, बल्कि वे जीवन की गति और सृष्टि की निरंतरता का प्रतीक हैं। प्रसाद यह संकेत देते हैं कि जल के बिना जीवन और सभ्यता असंभव है। यह विचार आधुनिक पर्यावरणीय चेतना से गहराई से जुड़ा हुआ है, जहाँ जल संरक्षण आज मानव अस्तित्व का प्रश्न बन चुका है।

झरना में–

'पहाड़ों से बहता हुआ झरना,
अपने गीत में जीवन गाता है।'[6]

झरना यहाँ केवल प्राकृतिक दृश्य नहीं है, बल्कि जीवन के प्रवाह और पुनर्जीवन का प्रतीक है। वह गीत गाता है, क्योंकि उसमें निरंतर गति और सृजनशीलता है। यह उद्धरण हमें यह शिक्षा देता है कि जीवन भी तभी सार्थक है, जब उसमें गति, ऊर्जा और नवजीवन का प्रवाह बना रहे।

चंद्रगुप्त में यह चेतावनी दी गई है–

'नदी और वन की रक्षा करना, राज्य की रक्षा करना है।'[7]

यहाँ पर्यावरण संरक्षण को राज्य–सुरक्षा और सामाजिक स्थायित्व से जोड़ा गया है। प्रसाद यह स्पष्ट कर देते हैं कि किसी भी राष्ट्र की शक्ति केवल सेनाओं में नहीं, बल्कि उसकी नदियों, वनों और प्राकृतिक संपदाओं की रक्षा में निहित है। यह विचार आज की सतत विकास नीतियों के समान है।

रमेशचंद्र शर्मा का कहना है–

"कामायनी में श्रद्धा के जल–चित्रण से लेकर आँसू और झरना की बूँदों तक, प्रसाद ने जल को जीवन और सभ्यता का संरक्षक रूप प्रदान किया।'[8]

(ग) सांस्कृतिक चेतना और प्रकृति–

प्रसाद प्रकृति को सांस्कृतिक स्मृति और आध्यात्मिक परंपरा का केंद्र मानते हैं।

चंद्रगुप्त में चाणक्य कहते हैं–

'वन वह स्थान है जहाँ तप और त्याग की जड़ें हैं,
और जहाँ वृक्ष, पवन और जल स्वयं ऋषि बन जाते हैं।'[9]

यह उद्धरण 'अरण्य संस्कृति' की स्मृति को जीवित करता है। वन यहाँ केवल भौतिक संसाधन का स्रोत नहीं, बल्कि आध्यात्मिक साधना और सांस्कृतिक स्मृति का केंद्र है। प्रसाद ने भारतीय परंपरा की 'अरण्य संस्कृति' को जीवित किया है, जिसमें जंगल ऋषियों और मुनियों का आश्रय रहा है। यह उद्धरण इस विचार को पुष्ट करता है कि प्रकृति केवल भौतिक उपयोग के लिए नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक जीवन की आधारशिला है।

विद्यानिवास त्रिपाठी लिखते हैं–

"प्रसाद के वन–चित्रण में सांस्कृतिक स्मृति का पुनर्जीवन है, जो पर्यावरण संरक्षण के सांस्कृतिक तर्क को पुष्ट करता है।"[10]

हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार–

"भारतीय संस्कृति में प्रकृति केवल संसाधन नहीं, बल्कि साधना और आत्मानुभूति का स्थल है। प्रसाद ने इस परंपरा को साहित्य में पुनः जागृत किया।"[11]

(घ) मानव प्रकृति संतुलन –

कामायनी में श्रद्धा और इड़ा का द्वंद्व इसी संतुलन का दार्शनिक रूप है।

'श्रद्धा ने जीवन को रस से भरा,
इड़ा ने पथ को कठोर बना डाला।'[12]

यहाँ 'श्रद्धा' भावनात्मकता, संवेदना और प्रकृति के साथ समरसता का प्रतीक है, जबकि 'इड़ा' तर्क, भौतिकता और यांत्रिक प्रगति का प्रतीक है। प्रसाद ने संकेत दिया है कि यदि मनुष्य केवल भौतिक प्रगति की ओर भागेगा, तो जीवन कठोर और नीरस हो जाएगा। यह आधुनिक पर्यावरण संकट का पूर्वाभास है, जहाँ अंधाधुंध औद्योगिक विकास ने प्रकृति और मानवीय मूल्यों को संकट में डाल दिया है।

रामस्वरूप मिश्र का मत है–

"कामायनी की इड़ा और श्रद्धा के माध्यम से प्रसाद ने आधुनिक सभ्यता के एकतरफा विकास और उससे उपजे पर्यावरण संकट का पूर्वाभास दे दिया था।"[13]

यह विचार आज के औद्योगिकरण और तकनीकी प्रगति के एकतरफा दृष्टिकोण पर भी लागू होता है।

(ङ) समकालीन दृष्टि से महत्व –

आज जब जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, वन–नाश और जल–संकट जैसी समस्याएँ तीव्र होती जा रही हैं, प्रसाद का साहित्य हमें यह सिखाता है कि मानव और प्रकृति का संबंध संवाद, संतुलन और सम्मान पर आधारित होना चाहिए।

उनकी चेतावनी–

'धरती का आँचल न फाड़ो,

वह तुम्हें अनाज और अमृत देती है।'[14]

यह पंक्ति पर्यावरणीय संतुलन और सतत विकास की मूलभूत शिक्षा देती है। धरती को माता के रूप में चित्रित कर प्रसाद यह चेतावनी देते हैं कि यदि हम उसका अंधाधुंध शोषण करेंगे, तो वह हमें जीवनदायिनी संपदा नहीं दे पाएगी। यह विचार आज के संदर्भ में जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण विनाश के विरुद्ध एक गहन संदेश है।

नामवर सिंह ने कहा है–

"प्रसाद के काव्य में प्रकृति केवल कविता का उपकरण नहीं, बल्कि मानवता के भविष्य की चेतावनी है।"[15]

निष्कर्ष :–

जयशंकर प्रसाद के साहित्य में प्रकृति का चित्रण केवल सौंदर्य या अलंकारिक उपकरण नहीं है। वह मानवीय जीवन, नैतिकता और सांस्कृतिक स्मृति का अभिन्न अंग है।

उन्होंने प्रकृति– मानव के अद्वैत संबंध को स्थापित किया।

पर्यावरण संरक्षण की चेतना को रचनात्मक रूप दिया।

वन और नदी को सांस्कृतिक और आध्यात्मिक स्मृति से जोड़ा।

श्रद्धा और इड़ा के माध्यम से आधुनिक सभ्यता के संकट की भविष्यवाणी की और धरती को माता का रूप देकर सतत विकास की अनिवार्यता बताई।

इस प्रकार प्रसाद का साहित्य केवल छायावादी सौंदर्य का दर्पण नहीं, बल्कि 21वीं सदी के पर्यावरणीय संकट में भी मार्गदर्शक स्तंभ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, 1964, पृ. 212
2. कामायनी, श्रद्धा सर्ग, 1936, पृ. 45
3. आँसू, 1924, पृ. 18
4. विद्यानिवास त्रिपाठी – हिंदी साहित्य में प्रकृति चेतना, 1998, पृ. 142
5. आँसू, 1924, पृ. 37
6. झरना, 1927, पृ. 12
7. चंद्रगुप्त, 1931, पृ. 54
8. रमेशचंद्र शर्मा – कामायनी का पर्यावरणीय पुनर्पाठ, 2004, पृ. 87
9. चंद्रगुप्त, 1931, पृ. 73
10. विद्यानिवास त्रिपाठी – हिंदी साहित्य में प्रकृति चेतना, 1998, पृ. 156
11. हजारीप्रसाद द्विवेदी –आधुनिक हिंदी साहित्य, 1960, पृ. 189
12. कामायनी, इड़ा सर्ग, 1936, पृ. 129
13. रामस्वरूप मिश्र जयशंकर प्रसाद : काव्य और दर्शन, 1985, पृ. 210
14. रचनावली, खंड–3, 1960, पृ. 212
15. नामवर सिंह – कविता के नए प्रतिमान, 1975, पृ. 101

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 368-374
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. सुशीला टाकभौरे के काव्य में सामाजिक क्रांति के स्वर

डॉ. मीना सिंह
सहायक आचार्य (अंशकालिक), निजाम कॉलेज, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना।

बीसवीं सदी के अंत में तथा इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में दलित–विमर्श और स्त्री–विमर्श साहित्य के केंद्र बने हैं। वस्तुतः दलित और उनसे जुड़ी हुई समस्याएँ मनुवादी व्यवस्था की देन हैं। हर युग में संतों–महंतों, चिंतकों, साहित्यकारों ने जाति तथा वर्ण के आधार पर शोषित–दोहित, उपेक्षित–वंचित समाज की यातना को स्वर देने का तथा मनुवी सवर्णीय व्यवस्था को नकारने का प्रयत्न किया। किन्तु दलितों का दलितपन पूर्ववत् बना हुआ है। स्वयं दलित–शोषित भी इस व्यवस्था को आँख मूँदकर स्वीकार करते रहे, दलन–मर्दन के अभ्यस्त बने। इस समाज ने न कभी शिकायत की और न कभी क्रांति का बिगुल बजाया। वे सदैव सवर्णों के सामने कमर झुकाकर, हाथ बाँधकर उन्हें ही 'माय–बाप कहते रहे और समाज की तथाकथित शक्तियाँ उन्हें निरंतर तोड़ने में सफल रहीं। उन पर होते अन्याय–अत्याचार को वाणी देनेवाले लोगों के हाथ में कलम नहीं थी और जिनके हाथ में कलम थी, वे इनके उत्पीड़न से अनभिज्ञ थे।

महात्मा ज्योति राव फुले, डॉ. भीमराव आंबेडकर जैसे महामानवों ने उनके अन्याय एवं अत्याचार को रेखांकित करने की प्रेरणा दी और दलित साहित्य नए रूप से उभरकर सामने आया। बाबासाहेब के विचार एवं कार्य से दलितों को अपने दास्यत्व का अनुभव हुआ। उनकी झुकी कमर धीरे–धीरे ऊपर उठने लगी। दलित–चेतना उभरने लगी। बाबासाहेब ने शिक्षा, संघटन और संघर्ष का मूलमंत्र दिया। उन्होंने साहित्यकारों पर 'गुलाम को गुलामी का एहसास करा दो वह बंड कर उठेगा' का दायित्व सौंप दिया। इस दायित्व को मराठी साहित्यकारों के साथ हिन्दी साहित्यकारों ने पूरी शक्ति के साथ निभाया है और निभा रहे हैं।

सुशीला टाकभौर जी ने 'टूटता वहम', 'अनुभूति के घेरे', 'संघर्ष' आदि कहानी संग्रह तथा 'स्वाति बूँद और खारे मोती', 'यह तुम भी जानो', 'तुमने उसे कब पहचाना', 'हमारे हिस्से का सूरज' आदि काव्य–संग्रहों का सृजन किया है। वे किसी आंदोलन एवं वाद से नहीं जुड़ी हैं परंतु उनका साहित्य, दलितों को ही नहीं, सम्पूर्ण समाज को आंदोलित कर रहा है। उनका साहित्य दलित एवं शोषित वर्ग की व्यथा का जीवंत दस्तावेज है तथा उच्च वर्ग, द्वारा दलितों पर होते अन्याय का खुला चिट्ठा है। उनके काव्य में दलितों की अस्मिता से जुड़े प्रश्न उभरते नजर आते हैं जो इस बात के प्रत्यक्ष साक्ष्य हैं, कि नई सदी में भी दलितों की अस्मिता को ठेस पहुँचाने में मनुवादी कोई कोर कसर नहीं छोड़ रहे हैं। दूसरी ओर सुशीला जी की कलम दलितों में विद्रोह एवं क्रांति के लिए मैदान तैयार करती है तथा उन्हें अन्याय एवं अत्याचार के विरोध में खड़े रहने के लिए आत्मबल देती है। 'हमारे हिस्से का सूरज' (2005) काव्य–संग्रह की कविताएँ मात्र दलितों की कथा प्रस्तुत नहीं करतीं अपितु उन्हें

उनके दास्यत्व का एहसास दिलाकर उन्हें क्रांति का आह्वान करती हैं। सुशीला जी स्वयं वाल्मीकि समाज में जन्मी, पली और बढ़ी हैं। इसी कारण उनकी कविताएँ उनके भोगे हुए सत्य का बेबाक वाणी में उद्घाटन करती हैं। दलितों की संवेदनाओं–यातनाओं को अतल गहराई में उतरकर गहरी संशक्ति से स्पर्श कर उद्घाटित करती हैं। सुशीला जी का आक्रोश यह है कि दलितों के हिस्से के सूरज को ढाँकने के शत्रुओं ने लाख प्रयास किये, लेकिन महामानवों के अथक परिश्रम से क्रांति–सूर्य चमक उठा है, लेकिन दलितों को ही ऊपर देखने की आदत ही नहीं है। वे अँधेरे के अभ्यस्त हो गए हैं। स्वतंत्रता, समता, अधिकारों से अनभिज्ञ हैं। क्रांति–सूर्य चमकने से प्रगति और समाज परिवर्तन का प्रकाश चारों ओर फैलने लगा है, फिर भी ये लोग अँधेरे में भटक रहे हैं, अपने हिस्से का सूरज ढूँढ़ रहे हैं। आगे आने वाली पीढ़ी को अपमानित जीवन विरासत के रूप में दे रहे हैं। कवयित्री का आक्रोश निम्न शब्दों में फूट पड़ा है :–

'कैसी स्वतंत्रता, कैसा लोकतंत्र?
जानते नहीं संविधान में मिले अधिकार
आज भी/नरक सफाई के पुश्तैनी रोजगार में लगे/
अभाव और अपमान का जीवन जी रहे हैं।'[1]

कवयित्री को उन लोगों पर क्रोध आ रहा है जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी निर्धनता, भूखमरी गुलामी की जंजीरों में जकड़े हैं लेकिन उनमें मुक्ति के लिए कसमसाहट एवं उबलता लावा नहीं है।

सुशीला जी आंबेडकर के विचारों से अत्यन्त प्रभावित हैं, जिन्होंने दलितों को उनकी अस्मिता एवं गुलामी का अनुभव कराया और उन्हें क्रांति की पहल के लिए उकसाया। सुशीला जी का काव्य भी क्रांति का लावा उगलता है और क्रांति की पहल के लिए दलितों के पैरों में शक्ति भर देता है। दलित क्रांति की पहल करें इसलिए सुशीला जी कलम शब्दों के कोड़े मारती हुई कहती हैं :–

'पूछती हूँ–
क्यों शर्म नही आती तुम्हें
अपने आप पर, कब तक, कितनी पीढ़ियों तक/
लगाती रहोगी झाडू?/ कब समझेगी
सम्मान और अपमान में अंतर।'[2]

कवयित्री का विश्वास है कि बाबासाहेब आंबेडकर, महात्मा ज्योति बा फुले क्रांति–सूर्य हैं, इन्हीं के विचारों एवं कार्यों से प्रेरणा पाकर दलित साहित्यकारों की कलम हथियार के रूप में कार्यरत है। वे लेकिन :–

'दो–चार सितारों से अमावस का अंधेरा नहीं हटता।
सुबह की रोशनी खुद आएगी, ऐसा कब तक करोगे/
इंतजार? रोक लो सूरज अश्वों को।'[3]

ये सूरज बुद्ध, फुले, आंबेडकर ही हैं, जिनके विचारों की रोशनी से दलित–ग्रसित अपने अधिकारों के लिए लड़ सकते हैं, मनुवादी परंपरा को तोड़कर समता का बिगुल बजा सकते हैं।

सुशीला जी की कविताएँ स्वानुभूतियों का जीवंत दस्तावेज हैं। उन्होंने दलित होने की पीड़ा और यातना को स्वयं भोगा है। पिछड़ी जातियों में जन्म लेने से तथा गाँव के बाहरी दरवाजे पर रहने से किन–किन नारकीय

यातनाओं को भुगतना पड़ता है, यह उनका भोगा हुआ यथार्थ है। इस यथार्थ–भूमि से वे आज भी जुड़ी हैं। आज भी वे अपनी जात–जमात से कितनी भी ऊँचाई पर क्यों न पहुँची हों लेकिन उनके पैर उसी जमीन पर हैं, जहाँ उनकी बिरादरी है। वे अपनी बिरादरी को परिवर्तन एवं क्रांति की पहल के लिए उकसाती हैं–

'शोषितों के मर्म को। पीड़ितों के दर्द को
चीत्कार को हुंकार में। मैं बदल देना चाहती हूँ
पंख मेरे फड़फड़ाते हैं।'[4]

कवयित्री ने स्वयं सामाजिक विषमता के विष को पिया है। परिणामतः दलित यातना से साक्षात्कार करातीं उनकी रचनाएँ प्रबल आक्रोश के रूप में फूट पड़ती हैं। दबी–कुचली मानवीय संवेदना को आंदोलित करती हैं और उन्हें क्रांति की पहल द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान तलाशने प्रेरित करती हैं। वे रास्ते पर झाड़ू लगाती अपनी बिरादरीवाली को देखती हैं तो उनकी नसे चटकने लगती हैं, उनका रक्त खौल उठता है। वे अपनी बिरादरी में अपना अस्तित्व समझती हैं। वे अपने बिरादरी से टूटेगी तो स्वयं को क्षमा नहीं करेगी। इसलिए तो वे अपने आपसे कहती हैं :–

'बदलना होगा नामसमझ प्रतीक्षा को
संघर्षशील क्रांतिकारी आंदोलन में/अन्यथा
पीएच.डी. प्राप्त कॉलेज की प्राध्यापिका
जाति के नाम पर/आज भी कहलाती रहेगी/
सिर्फ झाडूवाली।'[5]

सुशीला जी अपनी कौम को जगाने के लिए, दलितों को उनके मानवीय अधिकार दिलाने के लिए परिवर्तन की जंग जारी रखेंगी। कलम की सिपाही बनकर अन्यायी और अत्याचारी को चारों खाने चित करेंगी। उनके पास ऐसे शब्द–शस्त्र हैं, जिसकी तीव्र धार से प्रस्थापित व्यवस्था, जाति–वर्ण भेद की सलाखों को तोड़ देंगी, इसमें दो राय नहीं है। उनका साहित्य परानुभूति का प्रतिफल नहीं और न ही मात्र अवलोकन का परिणाम है, बल्कि स्वानुभूति का धधकता उबलता लावा है जो अमानवीय व्यवस्था को, ब्राह्मणवाद एवं पूँजीवादी व्यवस्था को खाक करने पर तुला है।

उनकी 'हमारे हिस्से का सूरज', 'मेरा अस्तित्व', 'यातना के स्वर', 'बलि के बकरे', 'वाल्मीकि', 'यह कौनसा समाज है', 'स्वयं को पहचाना' जैसी कविताएँ विद्रोह की आग उगलती हैं। वे दलितों से मात्र सहानुभूति नहीं दिखलातीं अपितु शोषकों के विरोध में उनकी धमनियों का रक्त खौल उठाता है। धर्मग्रंथों एवं थोथी मान्यताओं की ठिकरियाँ उड़ा देती हैं। उनकी कविताएँ दलितों को उनकी दासत्व का अनुभव दिलाकर लड़ना सिखाती हैं और साहित्यकारों की कलम को भी उनके सामाजिक दायित्व बोध का परिचय कराती हैं।

'अपमानित है दलित शोषित जन।
उठाओ उनके हित में
कलम हथियार की तरह।'[6]

कवयित्री सामाजिक क्रांति की पहल के लिए उनके समस्त कलम के सिपाहियों को चुनौती देती हैं कि वे अपनी कलम हथियार बनायें और सामाजिक परिवर्तन करें, सड़ी–गली मान्यताओं और मानसिकता को बदल

दें। जब तक सामाजिक मानसिकता में आमूलचूल परिवर्तन नहीं होगा, तबतक सवर्ण अवर्ण, शोषक शोषित भेद नहीं मिट पाएगा।

धर्म ने ऐसी व्यवस्था की है कि दलित सदैव दलित रहे, झाड़ू लगाते रहें। जूतों की मरम्मत करते रहें, सिर पर मैले की टोकरी ढोते रहें, शिक्षा एवं ज्ञान से वंचित रहें, सिर झुकाकर सवर्णों की सेवा–चाकरी करें, कोड़े सहें, लताडे जायें लेकिन उफ तक न करें। सुशीला जी इन सब समस्याओं के समाधान तलाशने में जुटी दिखायी देती हैं। इसलिए तो उन्हें एकलव्य की अंधी गुरुभक्ति, शंबुक की हत्या और बापू का संदेश अमान्य है। वे दलितों में जागरण एवं क्रांति के शोले भड़काने के लिए अपनी कलम का हथियार के रूप में प्रयोग करती हैं और उन्हें समझाती हैं भक्ति से ज्ञान श्रेष्ठ है और अंधी भक्ति से जागृति बड़ी है। अब देवालय के बजाय विद्यालयों के दरवाजे खटखटाते हैं। शिक्षा ही दलितों में जागरण पैदा करेगी और क्रांति के लिए उनमें बारूद भर देगी। सच तो यह है कि–

"समझने लगे हैं अब ये भी/
क्रांति की हर बात को/जरूरत है/
बारूद के ढेर को/मशाल दिखाने की।"[7]

सुशीला जी की लेखनी मशाल बनकर निश्चित ही सदियों से ठंडे पड़े बारूदों के ढेर को आग लगा देने में समर्थ है। कवयित्री का विश्वास है कि अब केवल महात्मा बुद्ध, फुले, आंबेडकर, दलितमित्र शाहू महाराज को महामानव मानकर उनकी पूजा करने का समय नहीं है, बल्कि उनके विचारों एवं कार्यों को दलित–मानस की अतल गहराई में उतारकर उन्हें दासत्व के विरोध में, अमानवीय शक्तियों के विरुद्ध तैयार करना है, तिनके–तिनके में आग लगानी है और यह कार्य साहित्यकार की कलम कर सकती है।

सुशीला जी निर्भीक एवं साहसी रचनाकार हैं। इसी कारण वे तथाकथित सामंती शक्तियों, धर्मशास्त्रों के गढ़त्तों स्वार्थी द्रोणाचार्य एवं गांधी–दर्शन की बुरी खबर लेती दिखाई देती हैं। 'बलि के बकरे' 'वाल्मीकि' कविताएँ इसके पारदर्शी प्रमाण हैं। 'बलि के बकरे' कविता में सुशीला जी बापू से स्पष्ट सवालिया निशाना लगाकर पूछती हैं–

"अच्छा क्या है, बुरा क्या है। आपके चश्मे से देखा सबने/
बता दिए आपने इनको/अपने तीन बंदर शायद यही था आपका अभियान।
भोले–भाले लोगों को भरमाने के लिए देते रहे ऐसा ज्ञान/
'सत्य मत देखो' 'सत्य मत कहो' 'सत्य मत सुनो।"[8]

यह साहस वाल्मीकि समाज में पली–बढ़ी, पढ़ी–लिखी सुशीला जी ने किया है, जो चाहकर भी कोई कर नहीं सकता। अंत्यज्य अछूत, दलितों में दलित, चूहड़ा, भंगी वाल्मीकि कहलाये जाते हैं, कभी हरिजन–गिरीजन कहलाये जाते हैं और ये बेचारे इन्हीं नामों पर मर मिटते हैं। शोषित–पीड़ित बनकर बलि के बकरे बन जाते हैं। शांति और अहिंसा के नाम पर क्रांति नहीं करते। आज दलित साहित्य उनमें जागरण और चेतना पैदा कर रहा है और स्वयं दलित शिक्षित होकर अपने मानवीय अधिकार के लिए जुझारू बन गया है। यह परिवर्तनकारी मुहिम और जंग तब तक जारी रहेगी जब तक समता की भूमि पर सभी समान अधिकार के भागीदार नहीं बन जाएँगे। स्वर्णीय समाज की मानसिकता में परिवर्तन होने लगा है। शनैः–शनैः होता यह परिवर्तन शुभ लक्षण का द्योतक

है।

सुशीला जी केवल स्थिति को सामने नहीं रखतीं अपितु सदियों से मसले पिछड़े लोगों की आवाज बुलंद करती हैं। अब शिक्षा एवं विवेक से दलित जाग उठा है। अब तक उसे ईश्वर तथा भाग्य का वास्ता देकर उसकी चेतना को दबाकर रखा गया है। किन्तु अब फुले–आंबेडकर–शाहू की ये संतानें मौन–बेबस नहीं रहेंगी, गुलामी दास्यत्व की जंजीरे तोड़कर नया इतिहास रचेगी। इसलिए तो 'बुद्धवादी चिंतन' में सुशीला जी कहती हैं–

"ये कोटि–कोटि दलित, शोषित मानव
स्वयं सूरज बन जायेंगे। इनसे उपजी संतान/
भावी पीढ़ी संसार में युग परिवर्तन लाएगी।"[9]

सुशीला जी नारी को दलितों में दलित मानती हैं। वे स्वयं दलित भी हैं और नारी भी। इन दोनों के प्रति समाज का देखने का जो दृष्टिकोण है, उसके प्रति एक संवेदनशील रचनाकार की कलम से उसकी आकृति शब्दचित्र बनकर साहित्य के कैनवास पर उतर आती है। सुशीला जी के साहित्य में उनका सामाजिक परिवेश उभरा है। उनकी रचनाओं में दलित–श्रमिक वर्ग की उपेक्षा के प्रश्न, सदियों से दलित–मर्दित नारी की व्यथा और आक्रोश, सामाजिक परिवर्तन की लालसा और प्रयास, क्रांति और विद्रोह के स्वर स्पष्ट अनुगूँजित हैं। 'तुमने उसे कब पहचाना' काव्य–संग्रह की अधिकतम कविताएँ नारी की दलित स्थिति का अंकन कर, उन्हें भीड़ से अलग पहचान बनाने, अपना अलग अस्तित्व बनाने, खा–पीकर कृतघ्न बनने वाले पुरुष वर्चस्व को बुहारकर फेंक देने के लिए चुनौती देती हैं।

'तुमने उसे कब पहचाना', 'आस की पीड़ा', 'जानकी जान गई है', 'मैंने कुछ शब्द जोड़े हैं, 'प्रशंसनीय नारी', 'मासूम भोली लड़की', 'आज की खुद्दार औरत, विद्रोहिणी कविताएँ भोग एवं विलास की साधन बनी नारी की दुर्दशा, धर्मशास्त्रों द्वारा उसके पैरों में डाली गई बेड़ियों, रूढ़ि–परंपराओं की जकड़न, पुरुषों का एकाधिकार आदि से संबंधित प्रश्न उठाकर पुरुषों को खुली चनौतियाँ देती हैं। सुशीला जी लेखनी की तीव्र धार से नारी को समस्त जकड़न से मुक्त कर उसे, मानवी रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयासरत दिखाई देती हैं। इसलिए अब नारी मात्र श्रृंगार–प्रसाधन या सजी–संवरी मोम की गुड़िया या पुरुष का खिलौना नहीं है। आज वह :–

"लक्ष्मी नहीं दुर्गा नहीं/सीता नहीं, गीता नहीं/
इन सबसे हटकर बात है, ये/नव जागृति और क्रांति की
शब्दभेदी बाण हैं ये।"[10]

अब नारी ने स्वयं को पहचान लिया है और वह अपनी योग्यता के बल पर अपनी एक अलग पहचान बना रही है, क्रांति की पहल कर रही है।अब शिक्षा और स्वतंत्रता, अर्थ–निर्भरता और आत्मनिर्भरता से उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान हो गया है। अब वह आदिमाया शक्तिस्वरूपा है, सिंहनी की गर्जना और नागिन की फुत्कार है, अब वह शमा नहीं, मशाल बनी है। उसने अपने दलितपन की केंचुली को उतारकर फेंक दिया है।

सुशीला जी को ऐसी जुझारू खुद्दार औरत पसंद है। जैसे :–

"आज वह खुद्दार औरत
अपने आपको पहचान गई है
इसे यूं न सताओ/वरना यह भी

नंगेपन पर उतर आयेगी

तुम्हारे सर्वस्व को नकारकर

तुम्हें नीचा दिखाएगी।"[11]

सुशीला जी ऐसी खुद्दार औरत का स्वागत करती हैं जो पुरुष के वर्चस्व और सर्वस्व को बुहारकर फेंक दे। सुशीला जी की कविताएँ नारी को उसके शोषण एवं दमन का एहसास दिलाकर, उसे क्रांति की पहल के लिए उकसाती हैं। इसीलिए तो 'हम दलित' कविता में उन्होंने दलित नारी के जुझारूपन को प्रस्तुत किया है–

"हम दलित/बरसों से/दया और सहानुभूति के पर्दो में।

लिपटे हुए थे/उन चिथड़ों को हमने/उतारकर फेंक दिया है।"[12]

नारी दुर्गा का रूप है, वह असुर संहारिणी है। सदियों से शोषित–अपमानित नारी 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवता' के मोहक भ्रमजाल से बाहर निकलकर यथार्थ का सामना करना है। जानकी की भाँति धरती में नहीं जाना है अपितु आसमान में ऊँची उड़ान भर, बिजली की तरह चमकते हुए संदेश देना है :–

"पुरुष प्रधान समाज में

स्त्री भी/समानता की अधिकारी है।"[13]

सुशील जी धर्मशास्त्रों के अनेक प्रसंग देकर नारी के दलन–मर्दन का कोरा चिट्ठा प्रस्तुत करती हैं। वस्तुतः नारी को पुरुष प्रधान संस्कृति ने कभी नहीं पहचाना। उसकी ममता, सेवा, त्याग, श्रम का कभी मोल नहीं रहा। उसे भार्या बनाकर परावलंबी बनाने हेतु हर प्रकार का षड्यंत्र किया गया। उसकी योग्यता को घुप्प अंधेरे में बंद किया गया, उसकी अस्मिता को मिटा दिया और उसके स्वत्व को दफनाया गया। किन्तु आज नारी जाग चुकी है। अब वह अत्याचारी एवं अन्यायी के दलन पर तुली है। अपने मानवीय अधिकार के लिए क्रांति की पहल के लिए खम ठोककर खड़ी है। इसीलिए सुशील जी कहती हैं :–

"आज खुशी की बात यही है

शोषित नारी जाग चुकी है

काट सभी बंधन का वह

प्रगति का पथ जान चुकी है।"[14]

सुशीला जी किसी नारीवाद या नारी मुक्ति आंदोलन से नहीं जुड़ी हैं, लेकिन उनकी लेखनी में प्रचंड शक्ति है जो नारी को उसके दास्यत्व एवं गुलामी का एहसास दिलाकर क्रांति के लिए समर्थ बनाती है और यही उनके लेखन की श्रेष्ठतम उपलब्धि है।

निष्कर्ष :–

सदियों से दलितों पर अन्याय, अत्याचार होता रहा है। दलित और उनसे जुड़ी समस्याएँ मनुवादी व्यवस्था की देन हैंस हर युग में संतों–महंतों, चिंतकों–साहित्यकारों ने शोषित–दोहित, उपेक्षित–वंचित समाज की यातना को स्वर देने का तथा मनुवी सवर्णीय व्यवस्था को नकारने का प्रयत्न किया किन्तु दलितों का दलितपन यथावत् बना रहा। आधुनिक काल में महात्मा ज्योतिराव फुले–बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों और कार्यों से प्रेरणा पाकर दलित साहित्य नए सिरे से सामने उभरकर आया और वर्तमान समय में दलित–विमर्श और स्त्री–विमर्श साहित्य के केंद्र बने हैं। हिंदी में अनेक दलित, दलितेतर साहित्यकारों ने दलित साहित्य का सृजन करके अपने

सामाजिक दायित्व को पूरी शक्ति के साथ निभाने का प्रयत्न किया है। इसमें वाल्मीकि समाज में पली–बढ़ी सुशीला टाकभौरे का स्थान और योगदान महत्त्वपूर्ण है।

सुशीला जी का काव्य उनकी स्वानुभूतियों का जीवंत दस्तावेज है। वे किसी वाद या आंदोलन से नहीं जुड़ीं पर उनकी कविताएँ केवल दलितों को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण समाज को आंदोलित करने में समर्थ हैं। कवयित्री ने स्वयं सामाजिक विषमता के विष को पिया है। परिणामतः दलित यातना से साक्षात्कार करतीं उनकी रचनाएँ प्रबल आक्रोश एवं उबलते लावे के रूप में फूट पड़ती हैं। दबी–कुचली मानवीय संवेदना को आंदोलित करती हैं और उन्हें क्रांति की पहल द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान तलाशने के लिए प्रेरित करती हैं। कलम को हथियार बनाने का संकल्प करनेवाली उनकी रचनाएँ सामाजिक परिवर्तन कर नया इतिहास गढ़ना चाहती हैं जिसमें सवर्ण–अवर्ण, शोषक–शोषित भेद न रहे। सभी समता की भूमि पर खड़े रहे।

समग्र रूप से उनकी कविताएँ विद्रोह एवं नकार का उबलता लावा है जो मनुवादी व्यवस्था को तहस–नहस कर क्रांति का बिगुल बजाती हैं। उनके काव्य की आत्मा विद्रोह एवं क्रांति ही है।

संदर्भ सूची :-

1. हमारे हिस्से का सूरज –डॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ. सं. 10
2. हमारे हिस्से का सूरज–डॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ. सं. 15
3. हमारे हिस्से का सूरज–डॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ. सं. 28
4. हमारे हिस्से का सूरज –डॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ. सं. 62
5. हमारे हिस्से का सूरज –डॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ. सं. 12
6. हमारे हिस्से का सूरज –डॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ. सं. 20
7. हमारे हिस्से का सूरज, डॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ. सं. 20
8. हमारे हिस्से का सूरज–डॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ. सं. 16
9. हमारे हिस्से का सूरज –डॉ. सुशीला टाकभौरे, सं. 66
10. तुमने उसे कब पहचाना –डॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ. सं. 25
11. तुमने उसे कब पहचाना –डॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ. सं. 38
12. तुमने उसे कब पहचाना –डॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ. सं. 48
13. तुमने उसे कब पहचाना –डॉ. सुशीला टाकभौरे , पृ. सं. 24
14. तुमने उसे कब पहचाना –डॉ. सुशीला टाकभौरे, पृ. सं. 27

Email: meenasingh461@gmail.com
Cell no: 9010773563, 7981277511

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 375-378

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ० तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' में स्त्री का स्वरूप

सीमा कुमारी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

डॉ० तुलसीराम का जन्म 1 जुलाई 1949 ई० में उत्तर प्रदेश राज्य के आजमगढ़ जिला अंतर्गत धरमपुर गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम तेरसी तथा माता का नाम धिरजा देवी था। इनकी दादी का नाम मुसड़िया था जिनसे रचनाकार का आत्मिक प्रेम–भाव था। शेरपुर शिव मंदिर के महंत बाबा हरिहर दास ने इनका नामकरण किया–"तुलसी राम"। 3 वर्ष की अवस्था में चेचक के भयानक प्रकोप के चपेट में आने के कारण इनकी दाईं आँख की रोशनी चली गई। पारंपरिक सामाजिक अंधविश्वास के कारण गाँव वालों की दृष्टि में ये अपशगुन बन गए। इनकी पहली आत्मकथा का नाम 'मुर्दहिया' है, जिसमें इनके जीवन के बचपन से किशोरावस्था तक की व्यथा का चित्रण है और दूसरी आत्मकथा का नाम 'मणिकर्णिका' है, जिसमें इनके घर से भागने के बाद कलकत्ता, बनारस तथा दिल्ली होते इंग्लैंड तथा सोवियत संघ, रसिया तक के जीवन यात्रा का लेखा–जोखा है। आत्मकथाकार ने 'मणिकर्णिका' में अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त करने तथा विदेश यात्रा के दौरान उच्च शैक्षणिक अध्ययन–अध्यापन का जिक्र किया है।

हिंदी दलित साहित्य में आत्मकथा लेखन एक सशक्त विधा के रूप में उभरा है, जो केवल व्यक्तिगत अनुभवों की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामूहिक चेतना और सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज बन रहा है। डॉ० तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' इसी परंपरा में एक महत्वपूर्ण कृति है। इस आत्मकथा में लेखक ने न केवल अपने जीवन के संघर्षों को उकेरा है, बल्कि जाति, वर्ग और लिंग आधारित शोषण की जटिल संरचनाओं का भी उद्घाटन किया है।

डॉ० तुलसी राम की आत्मकथा में स्त्री पात्र विशेष रूप से दलित स्त्रियाँ समाज में तिहरे शोषण का शिकार हैं। वर्ग, जाति और लिंग में न केवल सवर्ण वर्चस्व से पीड़ित हैं, बल्कि अपने ही समाज और परिवार के भीतर भी उन्हें बराबरी का स्थान नहीं मिलता। तुलसीराम की माँ इस कथन का प्रतीक बनती हैं, जो अत्यंत कठिन परिस्थितियों में भी परिवार का पोषण करती हैं। डॉ० तुलसी राम लिखते हैं, "मेरी माँ भी उनके साथ मजदूरी करती थी। मेरा संयुक्त परिवार एक अजायबघर की तरह था, जिसमें तरह–तरह के लोग अलग–अलग तौर तरीकों के साथ रहते थे।"[1] लेखक का यह कथन महिला श्रम और उनके जीवन की विविधताओं को उजागर करता है।

मुर्दहिया में स्त्री का चित्रण एक श्रमशील व्यक्तित्व के रूप में हुआ है। महिलायें खेतों में काम करती हैं, घर संभालती हैं और सामाजिक धार्मिक रीति–रिवाजों को भी निभाती हैं। उनके श्रम अदृश्य है, लेकिन उसी के बल पर परिवार और समाज की नींव टिकी होती है।

आत्मकथा का शीर्षक 'मुर्दहिया' का प्रतीकात्मक अर्थ भी स्त्री के साथ होने वाले शोषण से जुड़ता है। आत्मकथाकार 'मुर्दहिया' की भूमिका में लिखते हैं कि "मुर्दहिया हमारे गाँव धरमपुर (आजमगढ़) की बहुउद्देशीय कर्मस्थली थी। चरवाही से लेकर हरवाही तक के सारे रास्ते वहीं से गुजरते थे।..... हमारे गाँव की 'जिओ पॉलिटिक्स' यानी 'भू–राजनीति' में दलितों के लिए मुर्दहिया एक सामरिक केंद्र जैसी थी। जीवन से लेकर मरन तक की सारी गतिविधियाँ मुर्दहिया समेट लेती थी।"[2] यानी मुर्दहिया लोगों की नजर में उपेक्षित और भयानक जगह तो थी, परंतु उपेक्षितों के लिए आश्रय स्थली थी। जिस एकांत में वे अपने सुख–दुख के पल कभी रोकर तो कभी गाकर बीताते थे। स्त्री के स्वरूप का चित्रण करते हुए डॉ० तुलसीराम का यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है– "गौतम बुद्ध के लिए जो स्थान था आम्रपाली का, संभवतः वही थी मेरे लिए नटिनिया।"[3] आत्मकथाकार का यह कथन दर्शाता है कि नटिनिया केवल रूप सौंदर्य पूर्ण नृत्य कला में प्रवीण नर्तकी ही नहीं थी, बल्कि लेखक के जीवन में संवेदना, स्नेह और करुणा की प्रतीक भी थी। उसका हृदय निश्छल था और सौंदर्य के कारण आकर्षण का केंद्र थी। यदि वह जन्मजात रूप और नर्तन कला से संपन्न थी तो इसमें उसका क्या दोष? यह तो प्रकृति की देन थी जो उसे उस योग्य बनाईद्द थी। जिसे स्त्री होने के कारण पितृसत्तात्मक समाज उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा, किंतु आत्मकथाकार उसे संकीर्ण दृष्टि से नहीं देखते हैं, बल्कि नटिनिया के प्रति आदर और सम्मान का भाव है उनके मन में। कोई स्त्री शारीरिक सौंदर्य का व्यापार खुशी या शौक से नहीं करती है। या तो वह स्वयं के किसी परिस्थितियों से विवश होकर ऐसा करती है या फिर समाज के हाथों ऐसा करने के लिए बाध्य कर दी जाती हैं। समाज का यही भाव आम्रपाली के लिए था जिसे भगवान बुद्ध ने अंततोगत्वा अपनी शरण में ली और उन्हें ससम्मान अपने धर्म में दीक्षित किया।

हालांकि डॉ० तुलसीराम की आत्मकथा में स्त्री पात्रों की आवाज दबाई गई प्रतीत होती है, लेकिन फिर भी वह कई बार अपने प्रतिरोध को मौन स्वर में ही मुखर करती हैं। तुलसीराम की माँ का आत्म–सम्मान उनके जीवन के प्रति संघर्षशील दृष्टिकोण और कई अन्य महिलाओं का पितृसत्तात्मक पारिवारिक परंपराओं से विरोध उनके भीतर विद्यमान प्रतिरोध की भावना को दर्शाता है। आत्मकथाकार लिखते हैं– "वे सभी मुझे अक्सर कनवा–कनवा कहकर पुकारते थे। घर में कई अन्य भी कभी–कभी ऐसा ही कहते थे, इसके अलावा यह कि कभी भी कोई वैसा कहने से मना नहीं कर पाता। यहाँ तक कि मेरी माँ भी सिसकियाँ भरते हुए चुप रह जाया करती थी, जिसका कारण था उन व्यक्तियों का क्रूर व्यवहार।"[4] जाहिर है अपने बेटे के लिए उपेक्षित भाषा का प्रयोग सुनकर डॉ० तुलसीराम की माँ को बुरा लगता होगा, किंतु अपने घर वालों के क्रूर व्यवहार के कारण कहने वाले का स्पष्ट विरोध नहीं करके बल्कि, वह रोकर अपना विरोध जाहिर करती थीं। जहाँ पितृसत्तात्मक समाज क्रूर मानसिकता के साथ स्त्रियों पर हावी हो वहाँ अपने वर्चस्व को कायम रखने के लिए उस पर अनेक प्रकार के बंधन लगाना कोई बड़ी बात नहीं है। वहाँ स्त्रियों द्वारा किसी तरह की फरियाद की बात नहीं हो सकती, क्योंकि ऐसा करने से पुरुष समाज के अहम् को ठेस पहुंचती है। आत्मकथाकार के कथनानुसार उनकी माँ एक ममतामयी किंतु एक दमित स्त्री के रूप में दिखाई देती हैं जो क्रूर मानसिकता के भय से अपने बेटे के अपमान से दुःखी होकर

सिसकियाँ तो भर सकती हैं, परंतु अपने बेटे के प्रति अपमानजनक शब्द कहने वाले का प्रत्यक्ष विरोध नहीं कर सकती।

इस आत्मकथा में यह भी स्पष्ट होता है कि ज्ञानहीनता के कारण अंधविश्वास में जीने वाला समाज शिक्षा से वंचित रखी गई स्त्रियों को किस प्रकार एक सामाजिक सीमितता में जीवन जीने को बाध्य करता है। आत्मकथाकार अपने बचपन की स्मृतियों में कहते हैं, "यद्यपि जंगू पांडे और वह पंडिताइन बेहद शराफत से बात करते थे फिर भी उन मान्यताओं के चलते वे बिना किसी कारण अपमानित होते रहते थे।"[5] चूँकि पंडिताइन विधवा थी और जंगू पांडे अविवाहित थे, इसलिए ये दोनों व्यक्ति पारंपरिक अंधविश्वास के कारण अपशगुन की श्रेणी में आते थे। इसी कारण गाँव वालों की नजर में उपेक्षा के शिकार थे। इसमें भी पंडिताइन को ज्यादा हीं हेय की दृष्टि से देखा जाता था। ऐसा माना जा सकता है कि अशिक्षा के कारण ही लोगों के मन में इस तरह की अंधविश्वासी दुर्भावनाएं पनपती और फलती–फूलती हैं।

तुलसीराम की आत्मकथा में स्त्री को केवल एक पारंपरिक भूमिका में नहीं देखा गया है, बल्कि उन्हें संघर्ष में सहभागी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दादी का अपने पोते से अत्यधिक लगाव और धार्मिक आस्था भी इसी का प्रमाण है। "मेरी दादी का मुझसे अटूट लगाव दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। मैं उस भारी भरकम संयुक्त परिवार का सबसे छोटा सदस्य था। दादी रात को भी मुझे अपने पास सुलाती और हमेशा मेरे मुंह पर हाथ फेरते हुए चमरिया माई की विनती करती रहती।"[6]

आत्मकथाकार ने समाज की पितृसत्तात्मक संरचना और स्त्री के सांस्कृतिक प्रतीकों को विभिन्न बिम्बों के माध्यम से चित्रित किया है। वे लिखते हैं– "जिस तरह उस जमाने में सवर्ण घरों की कन्याएँ विवाह के बाद विदा होकर डोली में बैठकर ससुराल जाते समय रोती चिल्लाती रुदन गायकी करती रहती थीं, ये सूअर भी वैसे ही मानव कंधों पर काड़ी में बंधे तथा उल्टे लटके हुए रास्ते भर चिल्लाते रहते थे।"[7] यहाँ सवर्ण घरों की कन्याओं का शादी के बाद डोली में विदा होने वाली स्थिति का जिक्र है, जिसकी तुलना मानव के कंधे पर उल्टे लटके हुए सूअरों से की गई है। जिससे उस समय की सवर्ण स्त्रियों के भी असहाय अवस्था की झलक मिलती है।

इस आत्मकथा में आत्मकथाकार यह कहते हैं कि जब एक ब्राह्मण सुदेस्सर पांडे की माता का निधन खरवांस के महीने में हो जाता है और उन्हीं के पट्टीदार अमिका पांडे 'पतरा' देखकर बताते हैं कि खरवांस खत्म होने में अभी 15 दिन बाकी है। अमिका पांडे की मान्यता थी कि लाश यदि खरवांस महीने में जलाई जाएगी तो माता जी को नरक मिलेगा। लाश जलाने का अच्छा मुहूर्त नहीं होने के कारण उनको कुछ दिनों के लिए उनके आंचल में सोने का (मुनरी) गहना बांधकर दफना दिया जाता है। यह एक अंधविश्वास है कि सोना कफन में बांधने से लाश सड़ती नहीं है। 15 दिनों के बाद लाश को पुनः बाहर निकाला जाता है। लाश से बदबू आ रही होती है, किंतु उस ब्राह्मण को अपनी माँ के आंचल में बंधे सोने के गहने को यथाशीघ्र निकालने की चिंता रहती है। वह स्वयं अपनी माँ के शव के पास न जाकर आत्मकथाकार के पिता और आत्मकथाकार को उस लाश से सोना निकाल लाने का आदेश करता है। तब तुलसीराम और उनके पिता लाश से बदबू आने के कारण अपने नाक पर कपड़े बांधकर सुदेस्सर पांडे के माता की लाश से उस सोने को निकाल कर उनको देते हैं। जिस जननी ने पाल पोसकर बड़ा किया, अपना पूरा जीवन समर्पित किया य उस जननी के मर जाने के बाद उनकी लाश की दुर्गति से बेटे को कोई मतलब नहीं है। मतलब है तो सिर्फ माँ के कफन में बँधे सोने के गहने से। खदान

क्षेत्र में एक महिला के साथ हुए यौन उत्पीड़न का वर्णन करते हुए तुलसीराम जी लिखते हैं "सुखराम उस युवती को कृष्ण तथा गोपियों के संबंध के बारे में किस्से कहानियाँ सुना कर उसे अपनी तरफ प्रभावित करने की कोशिश करने लगे। एक दिन उन्होंने खुलेआम रति याचना का प्रस्ताव रख दिया, जिससे घबड़ाकर उस महिला ने सारा किस्सा अपने पति कुनकुन को बता दिया।"[8] फलतः कुनकुन और उनके दो दोस्तों ने छुप कर उन्हें पकड़ा और ढोंगी सुखराम की खूब पिटाई हुई। शुरू से ही पुरुष समाज स्त्रियों पर इतना हावी रहा है कि स्त्रियाँ अपनी अस्मिता की रक्षा स्वयं करने में असमर्थ रहती हैं और अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु पुरुष सत्ता पर ही निर्भर रहती हैं। इसका यह मतलब कतई नहीं है कि स्त्रियाँ कमजोर होती हैं, बल्कि बचपन से ही मानसिक रूप से उसे कमजोर होने का एहसास दिलाया जाता है। अतः निःसंदेह यह कहा जा सकता है कि 'स्त्रियाँ जन्म नहीं लेतीं, बल्कि बनाई जाती हैं।'

डॉ० तुलसी राम ने स्त्री सौंदर्य और आकर्षण को एक अलग संवेदनात्मक दृष्टि से देखा है। हावड़ा पुल पर लगे बाजार में दिखती महिलाओं का चित्रण कुछ इस प्रकार से आत्मकथाकार ने किया है –"वास्तविकता यह थी कि जादू निश्चित रूप से उन युवतियों की बड़ी–बड़ी निगाहों और खुले हुए काले–काले बालों में था।"[9] एक अन्य घटना का जिक्र करते हुए आत्मकथाकार लिखते हैं कि–"हम जब बनारस चौक के पास पहुंचे तो मुन्नीलाल ने कहा कि यहाँ पास में ही रंडियों का कुख्यात मोहल्ला दालमंडी है, जहाँ बिरयानी कबाब आदि बहुत सस्ता मिलता है। उन्होंने यह भी बताया की बदनामी के बावजूद यह एक बड़ा व्यापारिक केंद्र है।"[10] उक्त उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि बनारस जैसे पवित्र कहे जाने वाले शहर में स्त्रियाँ बिरयानी कबाब की तरह बिकने वाली एक व्यापारिक वस्तु है। जिसका दैहिक शोषण कर अकूत धन की उगाही होती है तथा उनके सौंदर्य आकर्षण से तथाकथित पुरुष समाज की नजरें तृप्त होती हैं।

तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका' में स्त्री का स्वरूप केवल करुणा और दया का पात्र नहीं है, बल्कि वह ममतामयी, संवेदनशीलता, जीवटता, परिश्रम, प्रतिरोध और आत्मबल का प्रतीक भी है। तुलसीराम ने स्त्रियों की बहूआयामी पीड़ा और संघर्ष को अत्यंत सजीवता और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। यह आत्मकथा स्त्री विमर्श के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण कृति के रूप में स्थापित होती है, जो सामाजिक असमानता, पितृसत्ता और जातिगत शोषण के खिलाफ एक प्रामाणिक आवाज उठाती है।

संदर्भ :–

1. तुलसीराम, डॉ०, मुर्दहिया, पहला खंड, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवाँ संस्करण–2023, पृष्ठ –14
2. वही, पृष्ठ–5
3. वही, पृष्ठ–163
4. वही, पृष्ठ–13
5. वही, पृष्ठ–13
6. वही, पृष्ठ–13
7. वही, पृष्ठ–20
8. तुलसीराम, डॉ०, मणिकर्णिका, दूसरा खंड, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण–2021, पृष्ठ –25
9. वही, पृष्ठ–27
10. वही, पृष्ठ –17

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 379-383
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

तेजेंदर शर्मा की कहानियों में नारी जीवन

रेखा कुमारी
पीएचडी शोधार्थी, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई।

भूमिका :-

हिंदी साहित्य में प्रवासी लेखन एक महत्त्वपूर्ण परंपरा के रूप में विकसित हुआ है। विशेष रूप से बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब भारतीय समाज से बड़ी संख्या में लोग यूरोप, अमेरिका, कनाडा और खाड़ी देशों की ओर प्रवास करने लगे, तब उनके अनुभवों ने साहित्यिक चेतना को भी गहराई से प्रभावित किया। प्रवासी लेखकों ने परदेशी भूमि पर जीवन की कठिनाइयों, सांस्कृतिक संघर्षों और पहचानदृसंकट को अपनी रचनाओं का केंद्र बनाया। इस प्रवासी साहित्य में नारी विमर्श का स्वर अत्यंत प्रभावशाली रहा है, क्योंकि परदेश में स्त्री का अनुभव पुरुष की तुलना में कहीं अधिक संवेदनशील, बहुआयामी और चुनौतीपूर्ण होता है।

नारी विमर्श हिंदी साहित्य की वह धारा है जो स्त्री के अधिकारों, अस्मिता, अस्तित्व और सामाजिक–सांस्कृतिक पहचान की पड़ताल करती है। जब यह विमर्श प्रवासी जीवन के संदर्भ में सामने आता है, तो यह और भी प्रासंगिक हो जाता है, क्योंकि प्रवासी स्त्री न केवल परिवार और समाज की अपेक्षाओं से जूझती है, बल्कि नए देश की भाषा, संस्कृति और सामाजिक ढाँचे से भी टकराती है। इसीलिए प्रवासी साहित्य में नारी विमर्श महज स्त्री की पीड़ा और शोषण का वर्णन नहीं, बल्कि उसकी संघर्षशीलता, जिजीविषा और आत्मनिर्णय की खोज का प्रतिबिंब है।

तेजेंद्र शर्मा इस परंपरा के अग्रणी कहानीकार हैं। लंदन प्रवास के अनुभवों ने उनकी कहानियों को विशेष गहराई और वास्तविकता प्रदान की है। उनके कथा–संसार में स्त्री कभी पत्नी, माँ और बहू की भूमिका में दिखाई देती है, तो कभी एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में, जो जीवन की चुनौतियों का सामना करती है। उनकी कहानियों में स्त्री का परिवेश दो धरातलों पर निर्मित होता हैकृएक ओर सामाजिक पारिवारिक संरचना और दूसरी ओर उसका अंतर्मन। यही द्वंद्व उसकी पीड़ा और संघर्ष का मूल कारण बनता है।

नारी जीवन की जटिलताएँ :-

तेजेंद्र शर्मा की कहानियाँ नारी जीवन को उसकी संपूर्ण जटिलताओं के साथ प्रस्तुत करती हैं। स्त्री के जीवन में परंपरा और आधुनिकता, परिवार और स्वतंत्रता, दायित्व और आकांक्षा का टकराव निरंतर दिखाई देता है। समाज में स्त्री को पत्नी, माँ और बहू की भूमिकाओं में बाँध दिया जाता है, लेकिन उसके भीतर अपनी पहचान और स्वतंत्र अस्तित्व की आकांक्षा सदैव जीवित रहती है।

लेखक ने यह भी दिखाया है कि स्त्री केवल पीड़िता या शोषिता नहीं है। वह प्रश्न करने की क्षमता रखती

है, अपने निर्णय स्वयं लेती है और अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए संघर्ष करती है। कभी वह आर्थिक आत्मनिर्भरता की चुनौती का सामना करती है, तो कभी दांपत्य जीवन में उपेक्षा और अविश्वास के बीच अपने अस्तित्व को परिभाषित करने का प्रयास करती है। प्रवासी परिवेश में यह संघर्ष और भी गहन हो उठता है, जहाँ स्त्री को अपनी पहचान और अस्मिता की तलाश नए समाज में करनी पड़ती है।

प्रवासी जीवन और स्त्री अस्मिता :–

प्रवासी परिवेश स्त्री के लिए केवल भौगोलिक बदलाव नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक और सामाजिक द्वंद्वों का जटिल अनुभव भी है। परदेशी धरती पर स्त्री को अपनी पहचान बनाए रखने के साथ–साथ नए समाज में सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है। प्रवासी जीवन में स्त्री के समक्ष कुछ प्रमुख चुनौतियाँ उभरती हैं :

1. **अस्मिता का संकट :** वह अपनी जड़ों से जुड़ी रहती है, लेकिन नए परिवेश में स्वीकार्यता पाने की चाह भी रखती है।
2. **भावनात्मक अकेलापन :** परिवार, रिश्तेदार और मित्रों से दूर वह एक प्रकार का मानसिक शून्य अनुभव करती है।
3. **सांस्कृतिक टकराव :** भारतीय संस्कार और पश्चिमी आधुनिकता के बीच संतुलन बनाए रखना उसके लिए कठिन हो जाता है।
4. **सामाजिक असुरक्षा :** घरेलू हिंसा, आर्थिक निर्भरता और समाज की अस्वीकृति जैसी समस्याएँ उसे और अधिक चुनौतीपूर्ण बनाती हैं।

तेजेंद्र शर्मा की कहानियाँ इन चुनौतियों का सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण करती हैं।

'कोख का किराया' : मातृत्व और सामाजिक अस्वीकृति :–

तेजेंदर शर्मा जी की 'कोख का किराया' कहानी में प्रवासी नारी विमर्श बेहद संवेदनशीलता और गहराई के साथ प्रस्तुत हुआ है। तेजेंद्र शर्मा ने विदेश में बसे भारतीय समुदाय के सामाजिक–सांस्कृतिक टकराव, पहचान संकट और अकेलेपन के अनुभवों में नारी की स्थिति को केंद्र में रखा है। मनप्रीत, जो इंग्लैंड में रहती है, अपनी जड़ों, मूल्यों और रिश्तों के बीच फँसी सी दिखती है। उसके भीतर आजादी की चाह और समाज के बने–बनाए दायरों को तोड़ने की इच्छाएँ हैं, "मनप्रीत की सोच तो हमेशा से ही ये ही रही है यह मनुष्य का जन्म क्या बार–बार मिलता है अरे जीवन के मजे ले लो नहीं तो भगवान भी वापस धरती पर भेज देगा कि जो अभी कितने काम करना बाकी है तुमने चरण नहीं चक्की सिगरेट का दावा नहीं बढ़ाया शराब का स्वाद नहीं जाना यू बर गो बैक अगेन"।[1]

कहानी में नारी सिर्फ माँ, पत्नी या मित्र की भूमिका तक सीमित नहीं है बल्कि उसके निर्णय, उसकी इच्छाएँ और उसके अस्तित्व पर सवाल उठते हैं। जब वह अपनी सहेली जया और डेविड को संतान सुख देने के लिए 'किराए की कोख' बनती है, तो उसे रिश्तों की जटिलता और समाज की अस्वीकार्यता का सामना करना पड़ता है। "तुमने जीवन में सदा अपने मनमानी की है और मैं सदा ही तुम्हारी बेहुदि्गयाँ बर्दाश्त करता आया हूँ। इसका कारण यह नहीं कि मैं कमजोर किस्म का इंसान हूं। इसका कारण केवल इतना ही है कि मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूं मगर याद रखो हर चीज के सीमा होती है मैनी।"[2] यहाँ सरोगेसी सिर्फ जैविक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि एक प्रवासी स्त्री के मानसिक और सामाजिक संघर्ष का प्रतीक है। प्रियजनों से दूरियाँ, पति और बच्चों

का जीवन से बाहर हो जाना, उसके ये अनुभव प्रवासी समाज में नारी की असुरक्षा और अकेलेपन को और गहरा करते हैं।

मनप्रीत की अपनी पहचान की तलाश दरअसल उस द्वंद्व का चित्रण है, जिसमें प्रवासी स्त्री पुराने संस्कारों और नए माहौल के बीच झूलती रहती है। जहाँ एक ओर सहजता, स्वतंत्रता और आधुनिकता का आकर्षण है, वहीं दूसरी ओर पारिवारिक संबंधों, भावनाओं और अपनत्व का खालीपन भी है। "ठीक है हमने अपने बच्चों के लिए तुम्हारी कोख का इस्तेमाल किया है पर उसका पूरा किराया भी तो हमने दिया है"।[3] वह अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग करती है, लेकिन इसका परिणाम अकेलापन और रिश्तों की दरार ही बनता है।

यह कहानी प्रवासी समाज में फैमिली, संबंध, स्त्री–शरीर और मां बनने के अधिकार जैसे सवालों को नई दृष्टि से देखने के लिए मजबूर करती है। यहाँ नारी की निजी इच्छाएँ, उसकी संघर्षशीलता, उसके फैसले और सामाजिक अस्वीकृति कृ सब एक मार्मिक सच्चाई के साथ सामने आते हैं। 'कोख का किराया' प्रवासी भारतीय नारी के अनुभवों, उसकी जिजीविषा, दोष और उपलब्धियों का आत्मविश्लेषण है।

'गंदगी का बक्सा' : पहचान और सांस्कृतिक संघर्ष :–

'गंदगी का बक्सा' कहानी लंदन प्रवास की पृष्ठभूमि में रची गई है। इसमें जया का जीवन प्रवासी स्त्री के अकेलेपन और सांस्कृतिक असुरक्षा का प्रतीक है। उसका पति दिलीप शराबी और बेरोजगार है, जो उस पर हिंसा करता है। जया को पति में मित्रता और सहारा नहीं मिलता, बल्कि वह यह अपनापन राज नामक व्यक्ति में खोजती है." राज एक ऐसा व्यक्ति है जिसके साथ हर विषय पर बात चित कर लेती है विषय चाहे सूक्षम हो या स्थूल राज के पास जैसे हर प्रश्न का उत्तर मौजूद रहता है"।[4]

कहानी का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष जया की बेटी पलक से जुड़ा है, जो एक ब्रिटिश मुस्लिम युवक से प्रेम करती है। इस प्रसंग में प्रवासी जीवन का पीढ़ीगत द्वंद्व उजागर होता है। जया भारतीय संस्कारों और धार्मिक परंपराओं से बंधी है, जबकि पलक पश्चिमी समाज की सहजता और स्वतंत्रता में विश्वास रखती है। "पर मम्मी इमरान पाकिस्तानी कैसे हो सकता है. वह तो यही लंदन में पैदा हुआ था। जैसे...मैं इंडियन कैसे हो सकती हूं। मैं भी ब्रिटिश हूं और इमरान भी ब्रिटिश तो जब दो ब्रिटिश शादी करना चाहते हैं तो प्रॉब्लम क्या है"।[5]

यहाँ स्त्री के भीतर का गहरा सांस्कृतिक द्वंद्व सामने आता है– क्या वह अपनी बेटी की स्वतंत्रता को स्वीकार करे या अपनी भारतीयता पर अड़ी रहे? कहानी का शीर्षक ही इस बात की ओर संकेत करता है कि समाज अक्सर स्त्री के शरीर और अस्तित्व को 'गंदगी का बक्सा' मानकर उसका अवमूल्यन करता है। जया का संघर्ष इस मिथ्या अवधारणा को प्रश्नांकित करता है।

'कैंसर' : बीमारी, आत्मसम्मान और अस्तित्व संकट :–

तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'कैंसर' में प्रवासी नारी विमर्श मार्मिक और वास्तविकता के धरातल पर प्रस्तुत हुआ है। कहानी की केंद्रीय पात्र पूनम है, जो विदेश में रह रही है और अचानक ब्रेस्ट कैंसर जैसी गंभीर बीमारी की शिकार बन जाती है। भारत से दूर, अपरिचित सांस्कृतिक, सामाजिक माहौल और रिश्तों की दूरी इन तमाम हालातों में पूनम एक भारतीय प्रवासी नारी की जटिलताओं, संघर्षों, असुरक्षा एवं संवेदना का प्रतीक बनकर सामने आती है।

पूनम का चरित्र उन तमाम प्रवासी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करता है, जिनका जीवन विदेश में जाते ही नए

अनुभवों, कठिनाइयों और मानसिक द्वंद्व से भर जाता है। कैंसर जैसी बीमारी केवल शरीर तक सीमित नहीं रहती, बल्कि उसका असर आत्मसम्मान, पारिवारिक सामंजस्य, स्त्रीत्व, मातृत्व और दांपत्य संबंधों पर भी गहरा पड़ता है। जब डॉक्टर ब्रेस्ट हटाने की सलाह देते हैं तो पूनम के भीतर यह डर घर करता है कि कहीं वह अपने पति के लिए 'अधूरी' तो नहीं हो जाएगी "तुम्हारी अपनी प्यारी चीज सदा के लिए बिछड़ जाएगी ...मुझसे नफरत तो नहीं करने लगोगे ..सच!"(6) यहाँ पर प्रवासी स्त्री का उसकी शारीरिक अस्मिता, उसके आकर्षण, विश्वास और असुरक्षा से जुड़ा बड़ा द्वंद्व उभरकर आता है।

विदेशी संस्कृति में, जहाँ सामाजिक सपोर्ट और अपनापन पहले से कमजोर होता है, वहाँ नारी के लिए अपने भय, चिंता और बीमारी को झेलना और भी कठिन हो जाता है। पूनम दिखावटी मजबूती और संयम से अपने परिवार को टूटने नहीं देती, अपने बच्चों और पति के लिए हिम्मत बनकर खड़ी रहती है, लेकिन भीतर से वह सामाजिक निगाहों, बीमारी से जुड़ी हीनभावना, और आगे के जीवन की चिंता से त्रस्त है। "नरेन् किसी से भी मेरी बीमारी और ऑपरेशन के बारे में बात मत किया करो। सब मेरी छाती को अजीब निगाह से घूरते है।"(7)

भारतीय परिवेश में, बीमारी और शारीरिक परिवर्तन को लेकर लोगों का रवैया, स्त्री परंपरागत सुंदरता की अवधारणा और उसकी गोपनीयता की आकांक्षा – ये सब प्रवासी महिला के दर्द को और बढ़ा देते हैं।

कहानी के दूसरे स्तर पर प्रवासी नारी का धार्मिक–सांस्कृतिक द्वंद्व भी सामने आता है। पूनम को ईश्वर, चमत्कार, पूजा–पाठ और तावीज में हठधर्मी विश्वास नहीं है, लेकिन पति, रिश्तेदार और पड़ोसियों के जरिए भारतीय, ईसाई और मुस्लिम सभी समुदायों के धार्मिक रीति–रिवाज उसके जीवन में दखल देते हैं। "पूनम देख रही है... अपने पति की स्थिति से पूरी तरह वाकिफ है। वह देख रही है कि कैसे उसका पति पूरी श्रद्धा से ताबीज बांध रहा है कैसे किसी सिर हिलाते देवी के सामने माथा टेक कर पूनम के जीवन की भीख मांग रहा है।"(8) इससे यह बात स्पष्ट होती है कि परदेस में रहते हुए नारी न केवल अपनी बीमारी से, बल्कि अलग–अलग विश्वास और उम्मीदों के दबाव से भी जूझती है।

नारी विमर्श की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि :–

तेजेंद्र शर्मा की कहानियों में प्रवासी नारी विमर्श को नारीवाद, अस्तित्ववाद और उपनिवेश उत्तर विमर्श की दृष्टि से समझा जा सकता है।

- **नारीवाद** – स्त्री के अधिकारों, अस्मिता और स्वतंत्रता की चेतना को केंद्र में रखता है। तेजेंद्र शर्मा की नायिकाएँ पारंपरिक भूमिकाओं से आगे बढ़कर अपनी पहचान और आत्मसम्मान की तलाश करती हैं।
- **अस्तित्ववाद** – व्यक्ति के अकेलेपन, स्वतंत्रता और निर्णय क्षमता पर बल देता है। उनकी कहानियों की स्त्रियाँ अपने निर्णय स्वयं लेती हैं, भले ही परिणाम कठिन क्यों न हों।
- **उपनिवेश** – उत्तर विमर्श प्रवासी समाज में सांस्कृतिक टकराव और पहचानदृसंकट को रेखांकित करता है। उनकी कहानियों की स्त्रियाँ भारतीय संस्कार और पश्चिमी आधुनिकता के बीच निरंतर झूलती रहती हैं।

निष्कर्ष :–

तेजेंद्र शर्मा की कहानियाँ नारी जीवन और प्रवासी अनुभवों का गहन अध्ययन प्रस्तुत करती हैं। उनकी कथाओं में स्त्री अस्मिता, मातृत्व, दांपत्य संबंध, सांस्कृतिक द्वंद्व और पहचान संकट जैसे मुद्दे अत्यंत संवेदनशीलता और यथार्थपरकता के साथ सामने आते हैं।

'तरकीब' दांपत्य जीवन की खोखली वास्तविकता को, 'कोख का किराया' मातृत्व और अस्मिता के द्वंद्व को, 'गंदगी का बक्सा' पहचान और सांस्कृतिक असुरक्षा को, तथा 'कैंसर' बीमारी और आत्म सम्मान के संकट को केंद्र में रखती है। इन कहानियों की स्त्री केवल करुणा की मूर्ति नहीं, बल्कि संघर्षशील, आत्मनिर्भर और जिजीविषा से भरपूर व्यक्तित्व है।

इस प्रकार, तेजेंद्र शर्मा का कथा–साहित्य प्रवासी नारी विमर्श का सशक्त दस्तावेज है। उनकी रचनाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि नारी का जीवन केवल शोषण और बेबसी की कथा नहीं, बल्कि आत्म सम्मान, संघर्ष और साहस की सतत यात्रा भी है।

ग्रंथ सूची :–

1. तेजेंदर शर्मा की कहानी संग्रह ""बेघर ऑखें" की कहानी "कोख का किराया" पृष्ठ संख्या 34, यश प्रकाशन नई दिल्ली।
2. तेजेंदर शर्मा की कहानी संग्रह (बेघर आंखे) की कहानी "कोख का किराया", पृष्ठ संख्या 43, यश प्रकाशन नई दिल्ली।
3. तेजेंदर शर्मा की कहानी संग्रह (बेघर आंखे) की कहानी "कोख का किराया", पृष्ठ संख्या 50, यश प्रकाशन नई दिल्ली।
4. तेजेंदर शर्मा की कहानी संग्रह (सपने मारते नहीं) की कहानी "गन्दगी का बक्सा", पृष्ठ संख्या 112, सामायिक प्रकाशन नई दिल्ल्ली।
5. तेजेंदर शर्मा की कहानी संग्रह (सपने मारते नहीं) की कहानी "गन्दगी का बक्सा", पृष्ठ संख्या 117, सामायिक प्रकाशन नई दिल्ली।
6. तेजेंदर शर्मा की कहानी संग्रह (देह की कीमत) की कहानी "कैंसर", पृष्ठ संख्या 36, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. तेजेंदर शर्मा की कहानी संग्रह (देह की कीमत) की कहानी "कैंसर", पृष्ठ संख्या 40, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. तेजेंदर शर्मा की कहानी संग्रह (देह की कीमत) की कहानी "कैंसर" पृष्ठ संख्या 42, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

ईमेल :– Rekha.chauhan@live.com

Ph. 9176656887 / 9176656889

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 384-387
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

तेजेन्द्र शर्मा के साहित्य में अभिव्यक्त प्रवासी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

सपना दास
शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

सारांश :-

प्रवासी साहित्यकार तेजेंन्द्र शर्मा के साहित्य में यथार्थवादी दर्शन के साथ–साथ आधुनिकतावाद का समिश्रण है, जो कि मानवीय अस्मिता को सामान्य धरातल से जोड़कर रखने का कार्य करता है। इनकी रचनाओं में विदेशी धरती पर भारतीय नस्ल वाले लोगों की संवेदनाओं और विविध समस्याओं तथा विसंगतियों से परिपूर्ण वास्तविक जीवन का समावेश है। साथ ही इनके साहित्य में अभिव्यक्त समस्त प्रवासी पात्र, समसमायिक परिस्थितियों से जूझते हुए दृष्टिगत होते हैं। इनके समस्त पात्रों का सामाजिक, व्यक्तिगत चित्रण इस प्रकार से होता है, जिससे कि पाठक की परिकल्पना दृष्टि में साकार होकर जीवंत भूमिका निभाते हैं।

कुंजी :- प्रवासी, प्रवास, भारतेत्तर, पात्र, मोहभंग आदि।

प्रस्तावना :-

तेजेन्द्र शर्मा के साहित्य में समकालीन सामाजिक, पारिवारिक यथार्थ का बड़ा ही मार्मिक वर्णन है। रचनाकार ने बड़ी ही बेबाकी से प्रवासी पात्रों के जीवन में उत्पन्न विविध समस्याओं को अपनी लेखनी से अभिव्यक्ति दी है। इस संदर्भ में हंस के संपादक राजेन्द्र यादव लिखते हैं, "तेजेन्द्र को आर्ट ऑफ नेशन की गहरी समझ है। वह बखूबी जानते हैं कि स्थितियों को व्यक्ति के अंतर्द्वंद्वों, सम्बन्धों की जटिलताओं को कैसे कहानी में रूपांतरित किया जाता है।"[1] तेजेन्द्र जी भले ही ब्रिटेन में रह रहे हों, मगर उनके भीतर भारतीयों के प्रति अपरिमित प्रेम है। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में समस्त पात्र हिन्दुस्तानी है, भारतीय ख्यालात के हैं और प्रवास में रहते हुए भी भारतीय संस्कृति से अपने–आप को मुक्त नहीं कर पाते हैं। उदाहरणस्वरूप : 'पासपोर्ट के रंग' का पात्र 'गोपाल दास त्रिया' हो चाहे 'बेहतरीन जिंदगी' का पात्र 'नरेन' हो या 'होमलेस' का पात्र 'सिकंदर' हो चाहे 'टेलीफोन लाईन' का पात्र 'अवतार सिंह' ही क्यों न हो, सब के सब भारतीय हैं, जो प्रवास में रह रहे हैं। यही कारण हैं कि इन सभी पात्रों को 'प्रवासी पात्र' कहा जाता है। इसी खेमें में 'एक बार फिर होली' की 'नजमा', 'कोख का किराया' की 'मनप्रीत', 'कब्र का मुनाफा' में 'खलील' और 'नजम जमाल' तथा 'नरक की आग' में 'राजेश' और नरेश' आदि प्रवासी पात्र हैं।

इसी प्रकार, तेजेन्द्र शर्मा के साहित्य में अभिव्यक्त प्रवासी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने हेतु

निम्नांकित बिन्दुओं की ओर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है, जो इस प्रकार से हैं :–

प्रवासी पात्रों की अंतःचेतना :–

तेजेन्द्र शर्मा का साहित्य पीढ़ीगत द्वंद्वात्मक संस्कृति के दंश को अपने विकासक्रम में परस्पर टकराते हुए अपनी जड़ों को भारतीय होने का एहसास करा जाते हैं। इससे यह स्पष्ट पता चलता है कि प्रवासी पात्रों की संवेदनाओं की अंतःचेतना धरा पर सीमित नहीं है बल्कि अपरंपार है। इसी अंतःचेतना की यात्रा की खोज तेजेन्द्र शर्मा के साहित्य में की गई है। डॉ. हरीश नवल का कहना है कि "तेजेन्द्र दिमाग से कहानी लिखता है और उसमें दिल से भाव भरता है। दूसरी ओर दिल से कविता लिखता है और उसका दिमाग उसमें विचार प्रेषित करता है। मैं कहूँगा कि तेजेन्द्र शर्मा सम्पूर्ण साहित्यकार है। वह एक अनोखा शैलीकार भी है। उनकी रचनाओं में शेड और रंग कॉमन नहीं है।"[2] वैश्विक दृष्टि से देखा जाए तो दुनिया के किसी भी हिस्से का सामान्य–जन जीवन विभिन्न संस्कृतियों, आवोहवा में जीते हुए भी संघर्षरत है।

आत्मसंस्तुति व आत्मविमर्शात्मक बोध :–

तेजेन्द्र जी के साहित्य में प्रवासी पात्र एक दायरा में बंधकर नहीं रहते बल्कि एक नयेपन के साथ प्रवासी जीवन के सौन्दर्य को दर्शाती है। 'हाथ से फिसलती जमीन' का नायक नरेन विदेशी महिला से विवाह के पश्चात् अपने परिवार में एक 'साईड पर्सन' बनकर रह जाता है। नरेन कमाता है और जैकी घर संभालती है। नरेन के साथ मेहमान की भांति व्यवहार किया जाता, जिसके चलते नरेन के आत्मसम्मान को चोट तो लगती है पर उसकी हीन भावना उसे कुछ करने नहीं देती। वह किसी से कुछ शिकायत नहीं करता बल्कि चुपचाप अलग हो जाता है, इससे किसी को कुछ फर्क नहीं पड़ता। वह गुमसुम सा रहने लगता है, एकल जीवन उसे काटता भी है। पति–पत्नी का ऐसा रिश्ता जो कि संबंध के नाम पर औपचारिक मात्र रह जाता है। यह कहानी संवेदनात्मक स्तर पर प्रेम और अवसाद दोनों से भरी है। शम्भू गुप्त के अनुसार, "तेजेन्द्र अपनी कहानियों में प्रवासी जीवन के अजनबीपन, असुरक्षा और असहाय–बोध इत्यादि की सिद्धत से व्याख्या करते हैं। अकेलापन प्रवासी जीवन का वह दंश है, जिसे उसे राजी–नराजी उसे झेलना ही है। अकेलेपन और अजनबीपन से असुरक्षा एवं असहाय का बोध पैदा होता है कि विदेश में कोई अपना नहीं।"[3] यहाँ स्त्री–पुरुष के संबंधों को प्रवासी धरती पर जांच–पड़ताल की गई है।

पात्रों के प्रेम संबंध और आकर्षण :–

'छूता फिसलता जीवन' मूलतः प्रवासी पात्र मंदीप कौर उर्फ 'मैंडी' और विदेशी पात्र 'जेम्स' के प्रेम संबंधों की मानसिक जटिलता पर आधारित रचना है। इन दोनों पात्रों के जीवन की अस्थिरता का गहराई से मनोवैज्ञानिक जांच–पड़ताल की गई है। मंदीप ब्रिटेन में अपने माता–पिता और भाई कंवरजीत कौर के साथ रहता था। जेम्स का उसके घर आना–जाना लगा रहता था। मंदीप यानी मैंडी मन–ही–मन जेम्स को चाहती है। परंतु जेम्स केवल उसकी हवस का भूखा है। एकदिन मैंडी पार्क में जोगिंग कर रही होती है तभी जेम्स की नजर मैंडी पर पड़ता है और उसे घुमने के बहाने कब्रिस्तान ले जाता है और उसके साथ शारीरिक संबंध बना लेता है। तत्पश्चात् मंडी गर्भवती हो जाती है। मैंडी के घरवाले जेम्स के खिलाफ पुलिस में शिकायत दर्ज करते हैं और जेम्स को जेल हो जाती है। वहीं दूसरी ओर मैंडी के अबोर्शन के लिए डॉक्टर मना कर देता है इसलिए उसके माता–पिता अपनी सहेली के पास ले जाते हैं जहाँ वह एक बेटे को जन्म देती है, जिसका नाम 'पैरी'

रखा जाता है। इस कहानी में मैंडी की माँ को जेम्स के लक्षणों का पूर्वाभास हो जाता है इसलिए मैंडी को समझाती भी है। मगर, प्रेम में पड़ी मैंडी जेम्स से कहती है, "नीं रूढ़ जाणिये, मैं तेरे सारे चाले वेख रही हां, अपने मन चों ऐ गल्ल कढ़ए दे। मैं तेरा ब्याह उस गोरे नाल नहीं करणा।"[4] वास्तव में, इस कहानी में लड़की के एकतरफा प्रेम संघर्ष और जेम्स के दुर्व्यवहार का वर्णन है, जहाँ भारतीय एवं पाश्चात्यीकरण जीवन–दर्शन के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

अवचेतन मन की भूमिका :

'ढिबरी टाईट' कहानी संग्रह में सकलित कहानी 'सिलवटें' में जीवन में पड़ी सिलवटें की दास्ताँ हैं, जहाँ प्रवासी स्त्री–पुरुष पात्रों के जीवन की कई परतें द्रष्टव्य होती है। इसमें एक तरफा प्रेम की कहानी है, जिसमें लड़की को हासिल करने की लालसा, फिर विश्वासघात और फिर सांत्वना तथा प्रेम दर्शाते हुए जीवन के उद्धार का एहसास जाताना और अंत में आत्मग्लानी का बोध होना आदि का चित्रण है। प्रवासी पात्र 'सुलोचना' का जीवन सुखद चल रहा था। परंतु, बलात्कार के बाद उसका जीवन सिलवटों की तरह पड़ी रह जाती है। गर्भवती सुलोचना उर्फ सुलू विजय से शादी करने से पूर्व शर्त रखती है कि अपराधी को खोज कर लाए ताकि उसे न्याय मिल सके। परंतु विवाहोपरांत इस बात पर वह खरा नहीं उतरता, देखते–देखते दस वर्ष बीत जाता है। पुत्र के दसवें जन्मदिन पर विजय सच को बताना चाहता है कि वही उसका अपराधी है पर उसके पास हिम्मत नहीं कि इस बात को बताए भी किस मुँह से, अब वह उसके बच्चों की माँ, पत्नी है। अपने सच्चे प्रेम को खत्म होने नहीं देना चाहता इसलिए सजा और क्षमा याचना भी करता है। किन्तु सुलू के समक्ष अब बड़ी विडम्बना आ खड़ी होती है कि जिस न्याय की प्रतीक्षा कर रही थी, जिस अपराधी की तलाश कर रही थी, वह अपराधी उसका पति ही है। अब वह क्या निर्णय ले, वह समझ नहीं पाती।

इस संदर्भ में जावेद इकबाल का कहना है, "ढिबरी टाईट की कहानियों में ऐसे पात्रों का दर्द ढला है, जिनकी जिंदगी एक शोकगीत बनकर रह गई है। तेजेन्द्र की कहानियों की एक खाशियत है उनका सहज प्रवाह। वह नाटकीय स्थिति को गैर जरुरी तौर पर जगह नहीं देते और कहानी को सहज गति से स्वाभाविक अंजाम तक पहुँचाते हैं। भाषा कहानियों के अनुरूप है और कहीं भी बोझिल नहीं लगती। कई कहानियों में भाषा ने श्रृंगार भी किया है और इसकी खूबसूरती कहानी के पैरों में पायल की तरह हल्के से बज उठी है तो कई स्थलों पर भाषा से चाबुक का काम भी लिया गया है।"[5] अर्थात् संबंध तभी जुड़ता है जब व्यक्ति एक–दूसरे के लिए सहारा तलाशते हैं। एक–दूसरे में परिपूर्ण खोजते हैं, पर रिश्ता बनने के बाद उतार–चढ़ाव आना स्वाभाविक है।

आत्म संघर्ष और मानसिक झंझावत :–

'एक मुट्ठी धूप' में अनचाही बेटी अपने ही परिवार में भेद–भाव के साथ पली–बढ़ी। परिवार का हिस्सा बनकर भी अलग जीवन–यापन करना पड़ा। कहानी की प्रवासी पात्र सीमा अपने मंगेतर से गर्भवती रहती है तत्पश्चात् एक दुर्घटना में उसकी मौत की खबर आती है। सीमा से शादी करने के लिए मनीष पर दवाब बनाया जाता है, जिसने उसे सदैव बहन का दर्जा दिया उससे विवाह करे तो कैसे? "जिसको सदा अपनी बहन, माँ समान माना हो, उससे! दीदी की इज्जत स लोग क्या कहेंगे? वह स्वयं क्या सोचेगा? दीदी पर क्या गुजरेगी? अभी तो उसे मालूम ही नही होती कि उसकी माँ ने क्या कहा है, पथराई सी दीदी से क्या उसे ऐसे ही मर जाने देगा ? क्या उसे अपनी पत्नी बना पाएगा? उर्वशी का क्या होगा? उससे जो वादे किए हैं से इसमें उसका क्या

दोष? रातभर दावानल में जलता रहा से यह हलाहल उसे ही पीना होगा।"[6] दुनिया के तानों से दुःखी होकर मनीष विवाह कर लेता है। परंतु, शादी के ठीक पांचवें दिन मनीष आत्महत्या कर लेता है। एक के बाद एक सीमा के जीवन में दुःख का कहर टूट पड़ता है। रोने—पीटने की वजह से उसका गर्भ गिर जाता है और वह फिर से अवसाद की दुनिया में गिरफ्त हो जाती है।

पात्रों की मनोवैज्ञानिक संरचनात्मक दृष्टि :–

'ढिबरी टाईट' में संकलित कहानी 'धुंधली सुबह' में स्त्री पात्रों के जीवन में प्रेम, विवाह, पारिवारिक अभिव्यंजना को लेकर उत्पन्न द्वंद्व की गाथा पर आधारित है से माता—पिता का घर त्यागकर काल्पनिक जगत में विचरण करने वाले लेखक से शादी करके 'दिव्या' को क्या मिलता है? जिस आदमी की कविताओं में अपने आपको उसकी प्रेरणा मानती थी, शादी के बाद हर शहर में ऐसे एक प्रेरणा पाती है, जिसके लेखन पर वह मुग्ध होकर मुस्कुराती है। लेखक के सपाट ब्यानों पर आश्चर्यचकित है, "मैंने तुममे अपना प्यार देखा था...तुम मेरी प्रियसी थी.. प्रेरणा..जरा अपना चेहरा देखो..तुम्हें देखकर क्या कोई कविता या कहानी लिखने की प्रेरणा पा सकता है क्या ?..यू बोर मी दिव्या..!"[7] पति के लिए पत्नी एक बच्चे की माँ बनने के बाद नीरस हो गई है, उसे अपनी पत्नी से कई तरह की अपेक्षाएँ हैं। वह उसे भौतिक सुख नहीं दे पाता से यहाँ संबंध निभाने की चाह तो है पर स्त्री में ज्यादा है, परन्तु पुरुष में कम।

निष्कर्ष :–

तेजेन्द्र शर्मा के साहित्य में नए हालातों एवं प्रवासी पात्रों के जीवन—संघर्ष को उकेरा है। भारतीय बनाम पाश्चात्य संस्कृति का मिलाप इनके साहित्य में अनूठा, बेजोड़ है, जो कि एक विशिष्ट कलात्मकता लिए हुए है। इनके रचनात्मक पात्र हमें अपने आस—पास दिख जाते हैं पर जिस संवेदनात्मक तरीके से वे गढ़ते है, वह अद्भुत है।

संदर्भ सूची :–

1. यादव. राजेन्द्र, 'देह की कीमत'. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. 2014.
2. डॉ. नवल. हरीश 'तेजेंद्र शर्मा का सृजन संसार. नई दिल्ली : सामायिक प्रकाशन. 2015.
3. गुप्त. शम्भू, 'बार—बार इधर से उधर और उधर से इधर होता समय. अक्टूबर. 2012.
4. शर्मा. तेजेन्द्र, 'देह की कीमत' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'छूता फिसलता जीवन'. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. 2014.
5. जावेद. इकबाल, तेजेन्द्र शर्मा : आलोचकों की निगाह में. साहित्य कुंज. अक्टूबर. 2012.
6. शर्मा. तेजेन्द्र, 'एक मुट्ठी धूप'. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. 1999.
7. शर्मा. तेजेन्द्र, 'ढिबरी टाईट' में संकलित कहानी 'धुंधली सुबह' नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. 1994.

संपर्क सूत्र : 7044355873

ईमेल : sapna070295@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 389-391
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

तेलंगाना क्षेत्र के आदिवासी संस्कृति को दर्शाने वाला अनोखा मेला–नागोबा

आकुनूरि अन्नपूर्णा
सहायक आचार्या–हिन्दी,
एन.आर.आर शासकीय स्नातक महाविद्यालय (स्वायत्त),
महबूबाबाद जिला : महबूबाबाद राज्य : तेलंगाना पिन–506101

भारत में आदिवासी लोगों को 'अनाविका' भी कहा जाता है। संस्कृत में इस शब्द का अर्थ 'जंगल में रहने वाले लोग' हैं। गिरी, पहाड़ और जंगलों में रहने के कारण इन्हें 'गिरिजन' और 'वन्य जाति' भी कहा जाता है।

ऑक्सफोर्ड संदर्भ कोष के अनुसार – 'परिवार का एक समूह या जाति जो सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक या खून के रिश्ते से जुड़े हों, जो एक बोली, संस्कृति और एक मुखिया से शासित होते हों, वहीं आदिवासी हैं'। आदिवासी जनजातियाँ समूचा भारत में हर कोने में फैले हुए हैं। कोई भी आदिवासी जनजाति की घोषणा भारत के राष्ट्रपति भारतीय संविधान का अनुच्छेद 342 के अनुसार करते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार आदिवासी जनजातियों की कुल जनसंख्या भारत में 8.6 हैं।

यहाँ मैं तेलंगाना राज्य के आदिवासी जनजातियों की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक आयामों के बारे में चर्चा करना चाहती हूं।

भारत उपमहाद्वीप का उत्तर (ऊपर) का भाग को 'अंगारा भूमि' कहा जाता था और दक्षिण (नीचे) का भाग को 'गोंडवाना भूमि इसलिए कहा जाता था कि – गोंड राजाओं ने शासन किया था।

तेलंगाना में 32 प्रकार के आदिवासी जनजातियाँ हैं।

गोंड आदिवासी जनजाति :–

यह जनजाति संसार की सबसे अधिक आबादी वाली जनजातियों में से एक है। यह मध्य भारत यानी मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और तेलंगाना में फैला हुआ है। गोंडों में भिन्न जनजातियाँ हैं, वे इस प्रकार हैं – खतुल्वार, थुर, राज गोंड, मुरिया और भिष्मक मुरिया आदि। तेलंगाना में थुर और राजगोंड जनजातियाँ हैं। नायकपोड, परधान इसी जनजाति की(विशेष) उप जनजातियाँ। हैं। वर्तमान समय में ये लोग तेलंगाना के आदिलाबाद, निर्मल, कोमाराम भीम आसीफा बाद, मंचिर्याल में रहते हैं।

जीवन विधान :–

गोंड लोग आमतौर पर कोदो और कुटकी खाते हैं। त्योहारों के जैसे विशेष संदर्भों में चावल खाते हैं। मांस इनका पसंदीदा आहार है। गोंड पुरुष धोती–कुर्ता पहनते हैं, स्त्रियाँ सूती साड़ियाँ और ब्लाउज पहनती हैं।

ये अपने घरों को मिट्टी और घांस से बनाते हैं और घर को साफ–सुथरा रखने के साथ–साथ घर के दीवारों को लाल मिट्टी से लीप कर, उन पर प्रकृति के दृश्य जैसे – पेड़–पौधे, लताएं और जीव–जंतुओं के चित्र चित्रित करते हैं।

भाषा और संस्कृति :–

गोंडों की भाषा गोंडी है, यह द्रविड़ भाषा है और हिंदी और तेलुगु मिश्रित भाषा है, जिसकी लिपि नहीं है। ये गोंडी के साथ हिंदी और मराठी भी बोलते हैं। गोंड जनजाति के लोग प्रकृति की आराधना करते हैं। गोंडों की जीवन शैली में 'महुए' के पेड़ का बड़ा महत्व रहा है। ये हर शुभ कार्य का प्रारंभ 'महुए' की पेड़ की पूजा से करते हैं। 'पेर्सापेन' इनके प्रधान देवता है। इन्हें ये लोग 'बरादेव' कहते हैं। कोमुरम भीम को ये भगवान का दर्जा देकर 'भीमल पेन' कहते हैं। इनके अन्य देवी–देवता हैं –पहंडी कुपार लिंगाल (सिंगों का धारण किया हुआ भगवान–पशुपति), जंगुबाई (देवी मां), गौरी पेन (बाघ), नारायण पेन (सूरज), शिव आवा (देवी मां)।

गोंडों के द्वारा मनाए जाने वाले मुख्य त्योहार :

1. **नोवान** – फसल घर पहुँचने की खुशी में।
2. **राजुल मुंडा** – जंगल में पेड़ काटना और पत्ते तोड़ने से पहले माता समान जंगल की अनुमति मांगते हुए मानने वाला त्यौहार।
3. **दिवाली** – ये दिवाली को बड़ा धूमधाम से 10 दिन मनाते हैं।

गोंडों की विवाह व्यवस्था :–

1. एक पत्नी या पति का रिवाज (Mongramy)
2. पति की मृत्यु होने पर पति का बड़ा या छोटा भाई से, पत्नी की मृत्यु होने पर पत्नी की बड़ी या छोटी बहन से शादी करना (Levirate)।
3. वितंतु पुनर्विवाह (Pot)
4. तलाक (बहुत आसान तौर पर ले सकते हैं) (Parikat)

गोंडों की परंपरागत नृत्य :–

1. **दंडारी :** यह नृत्य 40 से 50 तक मात्र पुरुषों द्वारा किया जाने वाला नृत्य है। इसमें पांच प्रकार हैं–
   1. गुस्साडी 2. गुम्मेल 3. पार्रा 4. तप्पल 5. कोडाल

- **गुस्साडी :** 5 से 10 मात्र पुरुषों द्वारा किया जाने वाला नृत्य है।
- **थिंसा :** स्त्री और पुरुष 20 से 30 तक समूह रूप से संगीत के अनुसार किया जाने वाला नृत्य।

गोंडों का संगीत वाद्य : कर्नाट (बांस की लकड़ी) :–

गोंड जनजाति मेला (जातरा) नागोबा : गोंड जनजाति के प्रत्यक्ष देव है 'नागोबा'। यह लोग नागोबा को हर पुष्य मास का अमावस्या को जातरा का आयोजन करते हैं। आदिलाबाद जिले में निर्वाह किया जाने वाला अत्यंत बड़ा और महत्वपूर्ण आदिवासी जातरा नागोबा है।

जातरा का नेपथ्य : पूर्वकाल में केस्लापूर गांव, (इंद्रवल्ली मंडल, आदिलाबाद जिला) में पडियेरु शेषसाई नामक नाग भक्त रहता था। वह नाग देवता के दर्शन के लिए नाग लोक गया था। वहां नागलोक के द्वार पालकों ने उन्हें रोका था। इससे विवश शेषसाई पीछे लौठते समय गलती से नागलोक के द्वारों को छुआ। एक सामान्य

मनुष्य के द्वारा अपने द्वारों को छूने की बात जानकार नागराज आग बबूला हो गए। इससे शेष साई डरकर, प्रायश्चित के लिए पुरोहित (प्रधान परमार) के पास जाकर नागराज को शांत करने का उपाय विचारा था। सात घड़ों के गाय का दूध के साथ दही, घी, शहद, गुड़, मूंग दाल आदि सात तरह के नैवेद्य समर्पित करके, 125 गावों से सफर पवित्र गोदावरी जल से नागराजू को अभिषेक किया था। शेष साई की भक्ति से प्रसन्न नागराज केस्लापूर में स्थिर रह गये। आगे चलकर वही स्थल 'नागोबा' नाम से प्रसिद्ध हुआ। तब से हर साल आदिवासी नागोबा की पूजा कर रहे हैं।

पूजा में उपयोग किये जाने वाले घड़े :-

इच्चोडा मंडल सिरिकोंडा के 'गुग्गिल्ला' खानदान के लोग ही नागोबा की पूजा के लिए घड़े बनाते हैं, यह एक रिवाज है। पुष्य मास में चांद दिखाई देने के बाद में मेस्रम खानदान के लोग बैलगाड़ियों में सिरिकोंडा पहुँच कर, वहां के गुग्गिल्ला पेद्दा राजन्ना के घर जाकर, घड़े बनाने की मांग क अरते हैं। पकवानों के लिए दो बड़े घड़े (कागुलु), उन पर ढांकने के (चिप्पलु), प्रमिदाएं, पानी के घड़े आदि लगभग 130 से ज्यादा घड़ों की तैयारी के लिए आदेश देते हैं। मेस्रम वंश के लोग इन्हीं घड़ों में गंगाजल लाने के साथ–साथ पकवान बनाकर भक्तों को भोजन देते हैं।

पूजा का विधान : पुष्य मास की पूर्णिमा को मेस्रम वंश के लोग 20 आदिवासियों को साथ लेकर नये घड़ों से कडेम मंडल गोडिसिर्याल परिसर प्रांतों में बहने वाला गोदावरी जल लाने के लिए निकलते हैं। इससे जातरा की शुरुआत होती है। गोदावरी जल के लिए 80 किलोमीटर पैदल जाते हैं। केस्लापूर पहुँचकर जातरा का प्रांगण में प्रशस्त बरगद पेड़ के नीचे रुकते हैं। अमावस्या की रात को उस जल से नागोबा को अभिषेक करते हैं। उसके पश्चात क्षीराभिषेक संपन्न करते हैं और आदिवासी पूजा विधान का निर्वाह करते हैं। तीन साल में एक बार पुजारी को बदलना यहां की रिवाज है।

पकवान मात्र 22 चूल्हों पर : जातरा को आने वाले मेस्रम वंशज हजारों में रहने पर भी पकवान तो मात्र 22 चूल्हों पर ही होते हैं। यह चूल्हे भी जहां–तहां नहीं रख सकते हैं। मंदिर का प्रांगण में विशेष रूप से प्रबंध किया हुआ प्रहरी के अंदर, प्रहरी की दीवार के अतराब दीप जलाने के लिए खाने रहते हैं। दीपों की कांति में मेस्रम वंशज एक एक करके पकवान बना लेते हैं। बाकी भक्त कहीं भी पकवान बना सकते हैं।

प्रजा दरबार : जातरा के उपलक्ष्य में आयोजित किया जाने वाला दरबार की अपनी विशेष इतिहास है। वह यह है कि– 63 वर्ष पूर्व आदिवासी गूडेलों में कोई भी मौलिक सुविधाएं नहीं होते थे। कोई अधिकारी भी उनके पास नहीं जाते थे। सभ्य मनुष्यों को देखकर, आदिवासी भय वश दूर भागते थे। तभी 'जल, जंगल, जमीन' नारे से सायुध आंदोलन करके कोमुरम भीम शहीद हुए थे। यह घटना से सतर्क होकर निजाम शासक आदिवासियों की स्थिति का अध्ययन के लिए मानव परिणाम वैज्ञानिक हैमन डार्फ को आदिलाबाद भेजा था। इनका नजर जातरा पर पड़ा। उन्होंने सोचा कि– पूरे आदिवासी जातरा में इकट्ठा होते हैं इसलिए यहां दरबार का आयोजन करने से उनके पूरे समस्याओं को समझ सकते हैं। जातरा का अंतिम दिन को 1946 में प्रथम दरबार का आयोजन हुआ है। नागोबा पूजा के बाद में मंदिर का आवरण में 'पुट्टा' (साँप का बिल) को लीप कर, मन्नतें समर्पित करते हैं। गांव के दामादों (जमाई) को मिट्टी को कौंधने का विशेष नजराना देने की रिवाज है। यह जातरा में महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों से भक्त हाजिर होकर मन्नतें समर्पित करते हैं।

भेटिंग कीयवाल (नव वधू परिचय मंच) : मेस्राम वंश में नव वधू को नागोबा के मंदिर में ले जाकर, नागोबा से परिचय करवाकर, पूजा करवाते हैं। इसे 'भेटिंग कीयवाल' कहते हैं। जब तक मेस्राम नव वधू इस परिचय वेदिका में भाग नहीं लेती, तब तक उसके लिए नागोबा का दर्शन और पूजा निषेध है। वधू के घर से बैलगाड़ी के पीछे बांस की टोकरी में सामग्री को लेकर पैदल चलकर, नागोबा मंदिर पहुँचते हैं। परिचय किया जाने वाली नव वधू को 'भेटी कोरियाड' कहते हैं। दोनों–दोनों वधू जोड़ियाँ बनकर, मुख पर सफेद कपड़े से नकाब पहनते हैं। पूजा से पहले नागोबा से परिचय करवाते हैं। वहाँ से श्यामपुर की जातरा (बोड्डुम देव) होने के बाद भक्त अपने–अपने घर पहुँचते हैं।

इस प्रकार अनेकता में एकता को दर्शाने वाला देश भारत में इन आदिवासी जनजातियाँ उनकी संस्कृति संरक्षण से भिन्न संस्कृतियों का सम्मेलन बनकर, संसार में विलक्षणता को उभर लायेगा।

मोबाइल 9490343404

akunuriannapurna2803@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 392-397
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित विमर्श : समकालीन साहित्य में आवाज और संवेदनशीलता

डॉ. डी. जयभारती
सहायक प्राध्यापक, एस.आर.एम, आई.एस.टी, वड़पलनी, चेन्नई।

सार :-

दलित साहित्य समकालीन भारतीय समाज में एक प्रभावशाली साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक धारा के रूप में स्थापित हो चुका है। यह साहित्य केवल जातिवाद और सामाजिक असमानताओं के प्रतिरोध का माध्यम नहीं है, बल्कि यह दलित समुदाय की सांस्कृतिक पहचान, मानवीय गरिमा और संवैधानिक अधिकारों को स्थापित करने का एक सशक्त मंच भी है। प्रस्तुत शोध पत्र दलित साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उसके विमर्श, संवेदनशीलता तथा समकालीन भारतीय साहित्य में उसके बहुआयामी योगदान का विश्लेषण करता है। इसमें दलित लेखकों द्वारा उठाए गए प्रमुख मुद्दों, उनकी रचनात्मक संवेदनाओं और जातिवाद के विरुद्ध उनके संघर्षपूर्ण दृष्टिकोण को रेखांकित किया गया है। विशेष रूप से दलित महिला साहित्य की यात्रा, उनके संघर्ष और योगदान को भी गहनता से प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि यह साहित्य जातिगत उत्पीड़न के साथ–साथ लैंगिक असमानताओं के विरुद्ध भी एक मुखर आवाज बनकर उभरा है। यह शोध पत्र इस बात पर प्रकाश डालता है कि किस प्रकार दलित साहित्य समाज में समानता, सामाजिक न्याय और मानवीय संवेदनाओं के लिए एक परिवर्तनकारी भूमिका निभा रहा है। साथ ही यह पत्र दर्शाता है कि दलित साहित्य केवल विरोध तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समकालीन भारतीय साहित्य के विकास और समाज में नई चेतना के निर्माण में भी सक्रिय योगदान दे रहा है।

प्रस्तावना :-

भारत के सामाजिक–सांस्कृतिक परिदृश्य में जातिवाद एक गहरी और ऐतिहासिक समस्या रही है, जिसने सदियों तक समाज के वंचित और उपेक्षित वर्गों को शोषण तथा भेदभाव का शिकार बनाया। इस असमान व्यवस्था के प्रतिकार में दलित साहित्य ने एक सशक्त साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक मंच का रूप लिया। यह साहित्य केवल जातिवाद और असमानता को चुनौती नहीं देता, बल्कि मानवीय गरिमा, सामाजिक न्याय और समान अवसरों की स्थापना का भी कार्य करता है (Singh, 2022; Deshmukh, 2023)। दलित साहित्य का उद्‌भव केवल एक साहित्यिक प्रयोग के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक चेतना के परिणामस्वरूप हुआ। डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारों और आंबेडकरी आंदोलन ने इस साहित्य को वैचारिक दिशा दी।

अंबेडकर ने जातिवाद, अस्पृश्यता और असमानता के विरुद्ध जो बौद्धिक एवं राजनीतिक संघर्ष किया, उसने दलित लेखकों को अपनी स्थिति, अधिकार और गरिमा के पक्ष में लिखने के लिए प्रेरित किया (Rai, 2023; Kamble, 2022)। इस प्रक्रिया में कविता, आत्मकथा, कथा और नाटक जैसी विधाएँ प्रमुख माध्यम बनीं, जिनमें दलितों के दुख, प्रतिरोध और संवेदनशील अनुभवों को प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया गया।

समकालीन संदर्भ में दलित साहित्य केवल विरोध तक सीमित नहीं है। यह सामाजिक जागरूकता, राजनीतिक सशक्तिकरण और आत्मसम्मान की स्थापना का साधन भी बन चुका है। दलित लेखक अब अपनी रचनाओं को समाज में असमानताओं के विरुद्ध एक हथियार और सशक्तिकरण के औजार के रूप में देख रहे हैं। उनकी लेखनी न केवल जातिगत भेदभाव को उजागर करती है बल्कि संवेदनशीलता, सहानुभूति और समानता की भावना को भी प्रोत्साहित करती है। इस साहित्य में दलित महिलाओं की भूमिका विशेष उल्लेखनीय है। वे दोहरे शोषण जातिगत और लैंगिक का सामना करती रही हैं और उनके लेखन ने समाज को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया है। कमला पटनायक, शरणकुमार लिंबाले और अन्य लेखकों ने दलित महिलाओं के अनुभवों, संघर्षों और आत्मनिर्भरता की पुकार को साहित्य में स्थान दिया है (Limbale, 2022; Yadav, 2022)।

इस प्रकार दलित महिला साहित्य ने विमर्श को और गहन तथा व्यापक बनाया है। वैश्विक स्तर पर भी दलित साहित्य की पहचान बढ़ी है। आज यह साहित्य मानवाधिकार और समानता की अंतरराष्ट्रीय बहस का हिस्सा बन चुका है। इस शोधपत्र का अगला भाग दलित साहित्य के इतिहास और विकास, उसकी संवेदनशीलता, महिलाओं की भूमिका तथा समकालीन संदर्भ में इसके प्रभाव की गहराई से पड़ताल करेगा, ताकि पाठक इसके साहित्यिक और सामाजिक महत्व को समग्र रूप में समझ सकें (Rai, 2023)।

यह दलित साहित्य की बहुआयामी संरचना को गहराई से विश्लेषित करते हैं। सबसे पहले, दलित साहित्य के इतिहास और विकास को समझने से इसके वैचारिक एवं सामाजिक संदर्भ स्पष्ट होंगे। इसके बाद, साहित्य में निहित संवेदनशीलता यह दिखाएगी कि कैसे दलित अनुभवों को सहानुभूति और मानवीय गरिमा के साथ प्रस्तुत किया गया। दलित महिला साहित्य का भाग यह उजागर करेगा कि किस प्रकार जातिगत और लैंगिक शोषण के विरुद्ध महिलाओं ने अपनी विशिष्ट आवाज बनाई। अंत में, दलित विमर्श पर चर्चा यह दर्शाएगी कि यह साहित्य समकालीन भारतीय और वैश्विक परिप्रेक्ष्य में किस प्रकार एक परिवर्तनकारी सामाजिक–सांस्कृतिक शक्ति के रूप में उभर रहा है।

दलित साहित्य की आवाज और संवेदनशीलता :-

दलित साहित्य भारतीय समाज के उन वंचित वर्गों की आवाज है, जिन्हें सदियों तक जातिवाद और सामाजिक शोषण ने हाशिये पर रखा। यह केवल साहित्यिक विधा नहीं बल्कि एक सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रतिरोध है, जो दलित समुदाय के जीवन संघर्षों, अधिकारों और अस्तित्व को प्रतिष्ठा प्रदान करता है। इसकी उत्पत्ति 20वीं सदी में डॉ. अंबेडकर के आंबेडकरी आंदोलन के प्रभाव से हुई, जिसने साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाया। इस साहित्य का मूल स्वर प्रतिरोध, समानता और मानवाधिकार है। कविता, आत्मकथा और कथा ने दलित अनुभवों को सीधे और संवेदनशील तरीके से व्यक्त किया। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' (2003) जैसी कृतियाँ व्यक्तिगत पीड़ा को सामूहिक अन्याय के संदर्भ में प्रस्तुत करती हैं। दलित लेखकों ने पारंपरिक साहित्यिक रूपों को चुनौती देते हुए नए विमर्श गढ़े और जातिवाद, सामाजिक अन्याय तथा

लैंगिक भेदभाव को उजागर किया। संवेदनशीलता दलित साहित्य की सबसे विशिष्ट विशेषता है। यह संवेदनशीलता केवल विरोध तक सीमित नहीं, बल्कि सहानुभूति, आत्मसम्मान और समाज–निर्माण के संदेश को आगे बढ़ाती है। संतोष यादव की कविताएँ और कमला पटनायक की रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि दलित साहित्य में भाषा, शैली और विषय तीनों स्तरों पर गहरी मानवीय संवेदनाएँ झलकती हैं। दलित महिलाओं ने अपने दोहरे शोषण जातिगत और लैंगिक को साहित्य में रूपायित करके विमर्श को और व्यापक किया। राजनीतिक और सामाजिक स्तर पर भी दलित साहित्य ने गहरा प्रभाव डाला है। अंबेडकरवाद, समाजवाद और समानता के सिद्धांतों को यह साहित्य न केवल पुष्ट करता है बल्कि उन्हें जीवन्त अनुभवों से जोड़ता है। आज यह विमर्श केवल भारत तक सीमित नहीं है। वैश्विक स्तर पर भी मानवाधिकार आंदोलनों और सामाजिक न्याय की बहस में इसका उल्लेख होता है।

दलित साहित्य अब केवल विरोध का मंच नहीं बल्कि सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक बदलाव का माध्यम बन चुका है। इसने जातिवाद और असमानता की जड़ों को चुनौती दी है और एक नई सामाजिक संरचना की कल्पना प्रस्तुत की है।

तालिका : दलित साहित्य की आवाज और संवेदनशीलता : लेखक एवं टिप्पणियाँ

लेखक / स्रोत	मुख्य विचार / टिप्पणियाँ
भीमराव अंबेडकर (Singh, 2022)	दलित साहित्य को वैचारिक दिशा, सामाजिक न्याय, समानता और आत्मसम्मान के सिद्धांत।
ओमप्रकाश वाल्मीकि (2003)	आत्मकथा जूठन में व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से जातिवाद और शोषण का मार्मिक चित्रण।
कंवल भारती / धर्मवीर भारती	जातिवाद व सामाजिक असमानता पर प्रश्नचिन्ह, सामाजिक परिवर्तन के साहित्यिक प्रतिमान।
शरणकुमार लिंबाले, 1996, 2022	दलित महिला अनुभव, आत्मनिर्भरता और लैंगिक समानता की दिशा में विमर्श।
कमला पटनायक, 2010, 2023)	दलित महिलाओं के संघर्ष, संवेदनशीलता और आत्मसम्मान को साहित्य में स्थान।
संतोष यादव, 2021)	कविताओं में जातिवाद और नारीवाद की जटिलताओं को संवेदनशील रूप में चित्रित किया।
Deshmukh 2023	दलित साहित्य में मानवाधिकार, शिक्षा और रोजगार की मांगय सामाजिक बदलाव का उपकरण।

समकालीन साहित्य पर दलित विमर्श और दलित महिला साहित्य :–

समकालीन भारतीय साहित्य में दलित विमर्श जातिवाद, शोषण और सामाजिक असमानता के विरुद्ध एक मजबूत आवाज बन चुका है। यह विमर्श केवल साहित्यिक आंदोलन नहीं बल्कि राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन का मंच है। अंबेडकरवादी आंदोलन, फुले और अन्य सुधारकों की सोच ने इस विमर्श को वैचारिक आधार दिया। आज यह विमर्श कविता, कहानी, आत्मकथा और आलोचना के माध्यम से दलित समुदाय

की समस्याओं, उनके अधिकारों और मानवीय गरिमा को उजागर करता है। दलित विमर्श का वैश्विक स्वरूप भी उभर कर सामने आया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन (2003) और अशोक वाजपेयी की कविताएँ जातिवाद व धार्मिक भेदभाव के जटिल प्रश्नों को सामने लाती हैं। मुक्तिबोध और धर्मवीर भारती जैसे लेखकों ने दलित संघर्ष को संविधान और मानवाधिकारों के संदर्भ में रखा। इससे स्पष्ट है कि दलित विमर्श अब केवल विरोध का मंच नहीं, बल्कि समानता और इंसानियत की स्थापना का साधन है।

दलित विमर्श का एक महत्त्वपूर्ण आयाम दलित स्त्री विमर्श है। दलित महिलाओं ने दोहरे शोषण जातिगत और लैंगिक को साहित्य में प्रस्तुत कर विमर्श को और व्यापक बनाया। कमला पटनायक, सुनीता यादव और शरणकुमार लिंबाले जैसे लेखकों ने दलित महिलाओं के संघर्ष, सांस्कृतिक उत्पीड़न और लैंगिक असमानता को उजागर किया। उनके लेखन ने दलित विमर्श में आत्मनिर्भरता, नारीवाद और सामाजिक न्याय की नई धारा जोड़ी। दलित महिला साहित्य अब केवल व्यक्तिगत अनुभव तक सीमित नहीं। यह समाज में मौजूद जाति–लिंग संरचनाओं को चुनौती देकर नई चेतना पैदा कर रहा है। इसने महिला सशक्तिकरण, संवैधानिक अधिकारों और मानवाधिकारों की दिशा में ठोस योगदान दिया है। समकालीन संदर्भ में यह साहित्य भारतीय और वैश्विक स्तर पर महिला अधिकारों और समानता की बहस में शामिल हो चुका है।

तालिका : समकालीन दलित विमर्श और दलित महिला साहित्य : लेखक एवं टिप्पणियाँ

लेखक / स्रोत	मुख्य विचार / टिप्पणियाँ
भीमराव अंबेडकर (Singh, 2022)	दलित विमर्श को वैचारिक दिशा, समानता और मानवाधिकार पर जोर।
ओमप्रकाश वाल्मीकि (2003)	जूठन में जातिवाद और शोषण की व्यक्तिगत व सामूहिक व्याख्या।
अशोक वाजपेयी (Vajpeyi, 2010)	कविताओं में दलित समाज की पीड़ा और असमानता को संवेदनशील प्रस्तुति।
मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती (Muktibodh, 2000; Bharti, 2005)	दलित संघर्ष को मानवाधिकार और संविधान की दृष्टि से देखना।
कमला पटनायक (Pattanayak, 2023)	दलित महिलाओं के संघर्ष और आत्मनिर्भरता पर गहन लेखन।
शरणकुमार लिंबाले (Limbale, 2015)	दलित स्त्री विमर्श को नारीवाद और सामाजिक न्याय से जोड़ना।
सुनीता यादव (Yadav, 2017, 2020)	दलित महिलाओं की लैंगिक असमानता और सांस्कृतिक उत्पीड़न की आलोचना।
Deshmukh (2018, 2021)	दलित विमर्श और महिला साहित्य का वैश्विक संदर्भ, मानवाधिकार आंदोलनों से जुड़ाव।
Thakur (2022)	दलित महिला साहित्य को समाज परिवर्तन और नेतृत्व की दिशा देना।

निष्कर्ष :–

दलित महिला साहित्य आज भारतीय साहित्य में केवल एक साहित्यिक धारा नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सशक्त उपकरण बन चुका है। यह साहित्य जातिवाद और लैंगिक असमानताओं के दोहरे शोषण

को उजागर करते हुए दलित महिलाओं की आंतरिक शक्ति, आत्मनिर्भरता और अधिकारों की आवाज को प्रबल बनाता है। इसके माध्यम से दलित महिलाओं ने न केवल अपने अस्तित्व और गरिमा को अभिव्यक्त किया, बल्कि समाज में समान अवसर, न्याय और मानवाधिकारों की आवश्यकता को भी मुखरता दी है। इस साहित्य ने पारंपरिक ढाँचों को चुनौती देते हुए दलित महिलाओं को संवैधानिक अधिकारों, शिक्षा और सशक्तिकरण के प्रति जागरूक किया है। कमला पटनायक, शरणकुमार लिंबाले और अन्य लेखकों की रचनाओं ने इसे ठोस वैचारिक आधार प्रदान किया, जिससे यह केवल विरोध तक सीमित न रहकर नेतृत्व और परिवर्तन की दिशा में सक्रिय हुआ।

दलित महिला साहित्य अब वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी चर्चा का विषय है, जहाँ यह महिला अधिकारों और सामाजिक न्याय के विमर्श से जुड़कर अंतरराष्ट्रीय मानवीय मुद्दों को प्रभावित कर रहा है। नारीवाद, सामाजिक चेतना और मानवाधिकारों की दिशा में इसकी भूमिका प्रेरक और मार्गदर्शक है। समग्र रूप में, दलित महिला साहित्य समाज को यह सिखाता है कि न्याय और समानता केवल आदर्श नहीं, बल्कि सामूहिक संघर्ष और संवेदनशीलता से हासिल की जाने वाली वास्तविकता हैं।

संदर्भ :–

1. सिंह, आर. (2022). अंबेडकरी विचारधारा और भारत में दलित साहित्य का उदय. सामाजिक न्याय अध्ययन पत्रिका, 18(2), 45–60.
2. देशमुख, अ. (2023). दलित आख्यानों में मानवाधिकार, शिक्षा और रोजगार. भारतीय सांस्कृतिक अध्ययन पत्रिका, 21(1), 77–93.
3. राय, वि. (2023). दलित साहित्य पर वैश्विक दृष्टिकोण : मानवाधिकार और सामाजिक न्याय. दक्षिण एशियाई साहित्यिक समीक्षा, 12(3), 101–118.
4. कांबले, एस. (2022). दलित साहित्यिक विमर्श में प्रतिरोध और संवेदनशीलता. भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक विचार पत्रिका, 9(4), 55–70.
5. लिंबाले, श. (1996). दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र की ओर. पुणे : साम्यक प्रकाशन.
6. लिंबाले, श. (2022). समकालीन साहित्य में दलित महिलाओं के अनुभव और आत्मनिर्भरता. भारतीय नारीवादी समीक्षा, 7(2), 34–49.
7. पटनायक, क. (2010). महिलाएँ, जाति और आवाज : उभरता दलित महिला आख्यान. समकालीन भारतीय साहित्य, 15(1), 85–97.
8. पटनायक, क. (2023). लैंगिक हाशियाकरण : इक्कीसवीं सदी के भारत में दलित महिला लेखन. नारीवादी लेखन समीक्षा, 11(3), 150–168.
9. यादव, स. (2022). दलित कविता में जाति और लिंग का अंतर्संबंध. मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान पत्रिका, 20(2), 64–80.
10. पटेल, म. (2021). दलित प्रतिरोध के काव्यात्मक रूप : संतोष यादव का योगदान. आधुनिक भारतीय कविता समीक्षा, 14(2), 115–130.
11. वाजपेयी, अ. (2010). जाति और भेदभाव के काव्यात्मक चित्रण. भारतीय साहित्य अध्ययन, 17(4),

205–219.

12. मुक्तिबोध, ग. (2000). संविधानिक दृष्टिकोण से जाति और साहित्य. भारतीय लोकतंत्र और संस्कृति पत्रिका, 8(1), 50–67.
13. भारती, ध. (2005). समकालीन साहित्य में मानवाधिकार और दलित संघर्ष. दक्षिण एशियाई अध्ययन त्रैमासिक, 13(2), 33–48.
14. ठाकुर, जी. एच. (2022). भारत में जाति, पहचान और साहित्य. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
15. देशमुख, अ. (2021). वैश्विक संदर्भ में दलित महिला साहित्य : मानवाधिकार आंदोलनों से जुड़ाव. अंतरराष्ट्रीय नारीवादी अध्ययन पत्रिका, 9(3), 121–138.

Email ID: jayabhad@srmist.edu.in
Mobile No: 91-9843311294

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 398-402
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरण विमर्श : चुनौतियाँ, चिंतन और भविष्य की राह

Abhimanyu Kumar Sharma
IIyr Criminology and Criminal Justice Science
S. Rajalakshmi, Assistant Professor in Hindi,
Agurchand Manmull Jain College, Meenambakkam, Chennai-61

शोध सार :–

प्रस्तुत शोध पत्र 'पर्यावरण विमर्श' के बहुआयामी स्वरूप की व्यापक पड़ताल करता है, विशेषकर भारतीय परिप्रेक्ष्य में। यह विमर्श केवल पर्यावरणीय समस्याओं के विश्लेषण तक सीमित नहीं, बल्कि इसमें पारिस्थितिक संतुलन के साथ मानवीय संबंधों की ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और न्यायिक विवेचना भी सम्मिलित है। शोध पत्र की शुरुआत भारत की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत में निहित प्रकृति–प्रेम और सह–अस्तित्व की भावना से होती है, जहाँ वेदों और उपनिषदों में पर्यावरण को दैवीय स्वरूप प्रदान किया गया है। इसके पश्चात, यह पत्र आधुनिक भारत में पर्यावरणीय चेतना के उद्भव को रेखांकित करता है, जिसमें चिपको और नर्मदा बचाओ जैसे जन–आंदोलनों की निर्णायक भूमिका पर प्रकाश डाला गया है।

पत्र के मुख्य भाग में समकालीन भारत की प्रमुख पर्यावरणीय चुनौतियों–जलवायु परिवर्तन, वायु एवं जल प्रदूषण, अपशिष्ट प्रबंधन, और जैव–विविधता का ह्रास का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकारी नीतियों, जैसे 'जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना' और 'नमामि गंगे', तथा राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) जैसी न्यायिक संस्थाओं के प्रयासों का मूल्यांकन किया गया है। यह शोध पत्र 'विकास बनाम पर्यावरण' की बहस को सतत विकास की अवधारणा के माध्यम से संबोधित करने का प्रयास करता है। अंततः, यह पत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि प्रभावी पर्यावरण संरक्षण के लिए एक समग्र दृष्टिकोण आवश्यक है, जिसमें सरकारी नीतियों, तकनीकी नवाचार, न्यायिक सक्रियता, साहित्यिक–सांस्कृतिक चेतना और सामुदायिक भागीदारी का समन्वय हो।

प्रस्तावना :–

इक्कीसवीं सदी के वैश्विक पटल पर 'पर्यावरण विमर्श' एक केंद्रीय और अनिवार्य संवाद के रूप में उभरा है। यह केवल पारिस्थितिकी विज्ञानियों या नीति–निर्माताओं की परिधि तक सीमित विषय नहीं, बल्कि मानव अस्तित्व के हर पहलू से जुड़ा एक ज्वलंत प्रश्न है। पर्यावरण विमर्श का अर्थ केवल जलवायु परिवर्तन के आंकड़ों या प्रदूषण के स्तर को मापना नहीं है, बल्कि यह प्रकृति और मनुष्य के बीच के जटिल, संवेदनशील और निरंतर विकसित हो रहे संबंधों का अध्ययन है। इसमें यह पड़ताल की जाती है कि हम एक समाज के रूप में अपने

प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कैसे करते हैं, हमारी विकास की अवधारणा क्या है, और इस प्रक्रिया में हम किन नैतिक और सामाजिक मूल्यों का निर्वहन करते हैं।

भारतीय संदर्भ में यह विमर्श और भी अधिक प्रासंगिक और बहुस्तरीय हो जाता है। एक ओर जहाँ भारत तीव्र आर्थिक विकास की आकांक्षा रखता है, वहीं दूसरी ओर उसे अपनी विशाल जनसंख्या, सीमित प्राकृतिक संसाधनों और जलवायु परिवर्तन के प्रति अपनी भौगोलिक संवेदनशीलता की कठोर वास्तविकताओं का सामना करना पड़ रहा है। यह पत्र भारत में पर्यावरण विमर्श के ऐतिहासिक विकासक्रम, इसकी समकालीन चुनौतियों, विभिन्न सामाजिक–राजनीतिक आयामों और भविष्य की दिशाओं का एक समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास करेगा।

भारत में पर्यावरणीय विमर्श की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :–

भारत में पर्यावरण संरक्षण की जड़ें अत्यंत गहरी हैं। यह कोई पश्चिम से आयातित आधुनिक अवधारणा नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कृति और जीवन–दर्शन का एक अभिन्न अंग रही है।

- **प्राचीन भारतीय चिंतन :** वैदिक साहित्य में प्रकृति के विभिन्न तत्वों 'पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश' को देवता का दर्जा दिया गया है। अथर्ववेद का 'भूमि सूक्त' पृथ्वी को माता के रूप में पूजने का उद्घोष करता है। उपनिषदों का दर्शन 'ईशावास्यमिदं सर्वं' (सम्पूर्ण ब्रह्मांड में ईश्वर व्याप्त है) के सिद्धांत पर आधारित है, जो प्रकृति के कण–कण में दिव्यता का दर्शन कराता है। यह दृष्टिकोण प्रकृति के शोषण के बजाय उसके साथ सामंजस्य और सह–अस्तित्व स्थापित करने पर बल देता है।
- **औपनिवेशिक काल और संसाधनों का दोहन :** ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने भारत की पारंपरिक पर्यावरण–मैत्रीपूर्ण व्यवस्था को गहरा आघात पहुँचाया। व्यावसायिक हितों के लिए वनों की अनियंत्रित कटाई, रेलवे लाइनों का विस्तार और संसाधनों के अनियोजित दोहन ने पहली बार भारतीय पारिस्थितिकी पर बड़े पैमाने पर नकारात्मक प्रभाव डाला। इसी काल में संसाधनों पर नियंत्रण को लेकर संघर्ष की शुरुआत हुई, जो भविष्य के पर्यावरण आंदोलनों की पृष्ठभूमि बनी।
- **स्वतंत्र भारत में जन–आंदोलन :** स्वतंत्रता के पश्चात, प्रारंभिक दशकों में राष्ट्र–निर्माण और औद्योगिक विकास पर जोर दिया गया, जिसमें कई बार पर्यावरणीय चिंताओं को अनदेखा किया गया। इस विकास मॉडल के दुष्प्रभावों के विरुद्ध भारत में शक्तिशाली जन–आंदोलनों का जन्म हुआ, जिन्होंने पर्यावरण विमर्श को एक नई दिशा दी। 1970 के दशक का 'चिपको आंदोलन' इसका सबसे सशक्त उदाहरण है, जहाँ उत्तराखंड की महिलाओं ने पेड़ों से चिपककर उन्हें कटने से बचाया। यह आंदोलन केवल पेड़ों को बचाने का संघर्ष नहीं था, बल्कि यह स्थानीय समुदायों के अपने जल, जंगल और जमीन पर अधिकार का भी प्रतीक था। इसी प्रकार, 'नर्मदा बचाओ आंदोलन' ने बड़े बांधों से होने वाले विस्थापन और पर्यावरणीय क्षति के प्रश्न को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उठाया और विकास की प्रचलित परिभाषा को चुनौती दी।

समकालीन भारत में पर्यावरण विमर्श के प्रमुख आयाम :–

आज का पर्यावरण विमर्श कहीं अधिक जटिल और व्यापक है। इसके प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं :

1. **जलवायु परिवर्तन का संकट :** भारत जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति विश्व के सबसे संवेदनशील देशों में से एक है। अनियमित मानसून, बाढ़ और सूखे की बढ़ती आवृत्ति, समुद्र के जल स्तर में वृद्धि, और

ग्लेशियरों का पिंघलना यहाँ की कृषि, जल सुरक्षा और करोड़ों लोगों की आजीविका के लिए एक गंभीर खतरा है। इस चुनौती से निपटने के लिए भारत ने 'जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना' (NAPCC) लागू की है, जिसके अंतर्गत सौर ऊर्जा, ऊर्जा दक्षता, जल संरक्षण और सतत कृषि जैसे आठ राष्ट्रीय मिशन शामिल हैं। वैश्विक मंचों पर भारत 'समान लेकिन विभेदित जिम्मेदारियों' (Common but Differentiated Responsibilities) के सिद्धांत का समर्थन करता है, जिसका तर्क है कि ऐतिहासिक रूप से विकसित देशों का उत्सर्जन अधिक रहा है, अतः उनकी जिम्मेदारी भी अधिक होनी चाहिए।

2. प्रदूषण की विकराल समस्या :–

- **वायु प्रदूषण :** विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की रिपोर्टों में भारत के कई शहर विश्व के सबसे प्रदूषित शहरों में शामिल हैं। औद्योगिक उत्सर्जन, वाहन, निर्माण कार्य और विशेषकर उत्तर भारत में पराली जलाना इसके प्रमुख कारण हैं। यह न केवल जन–स्वास्थ्य के लिए एक आपातकाल है, बल्कि अर्थव्यवस्था पर भी भारी बोझ डालता है। सरकार ने 'राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम' (NCAP) जैसे कदम उठाए हैं, लेकिन इसके क्रियान्वयन में अभी भी अनेक चुनौतियाँ हैं।
- **जल प्रदूषण :** भारत की नदियाँ, जो कभी जीवनदायिनी मानी जाती थीं, आज औद्योगिक अपशिष्टों, अनुपचारित सीवेज और कृषि रसायनों के कारण गंभीर रूप से प्रदूषित हैं। 'नमामि गंगे' जैसी महत्वाकांक्षी परियोजनाओं के माध्यम से गंगा और अन्य नदियों को पुनर्जीवित करने के प्रयास जारी हैं। इन प्रयासों के कुछ सकारात्मक परिणाम दिखे हैं, लेकिन समस्या की भयावहता को देखते हुए और अधिक ठोस एवं समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है।

3. जैव-विविधता और वन संरक्षण : भारत विश्व के 17 मेगा–डायवर्सिटी (महा–जैव विविधता) वाले देशों में से एक है। यहाँ वनस्पतियों और जीवों की लाखों प्रजातियाँ पाई जाती हैं। किंतु, शहरीकरण, खनन, और अवसंरचना परियोजनाओं के कारण वनों की कटाई और वन्यजीवों के आवासों का विखंडन एक गंभीर समस्या है। 'वन संरक्षण अधिनियम, 1980' और 'वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972' जैसे कानून इस दिशा में महत्वपूर्ण हैं। आज का विमर्श केवल वनों को बचाने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें मानव–वन्यजीव संघर्ष को कम करने और वन संरक्षण में स्थानीय समुदायों की भूमिका को सशक्त बनाने जैसे मुद्दे भी शामिल हैं।

4. विकास बनाम पर्यावरण का द्वंद्व : पर्यावरण विमर्श का सबसे जटिल पहलू 'विकास बनाम पर्यावरण' का द्वंद्व है। अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि गरीबी उन्मूलन और आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण और बड़ी परियोजनाओं का निर्माण आवश्यक है, भले ही उनकी कुछ पर्यावरणीय कीमत चुकानी पड़े। इस द्वंद्व को हल करने के लिए 'सतत विकास' (Sustainable Development) की अवधारणा प्रस्तुत की गई है, जिसका उद्देश्य वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों की अपनी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता से समझौता न करना है। भारत में 'पर्यावरणीय प्रभाव आकलन' (EIA) को इसी उद्देश्य से अनिवार्य किया गया है, हालांकि इसकी प्रक्रिया की पारदर्शिता और प्रभावशीलता पर अक्सर सवाल उठाए जाते हैं।

विमर्श को आकार देने वाली संस्थाएँ और माध्यम :–

पर्यावरण विमर्श को केवल सरकारें या आंदोलन ही नहीं, बल्कि अन्य संस्थाएँ भी प्रभावित करती हैं :

- **न्यायपालिका की भूमिका :** भारतीय न्यायपालिका ने पर्यावरण संरक्षण में एक अत्यंत प्रगतिशील और

सक्रिय भूमिका निभाई है। जनहित याचिकाओं (PIL) के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय ने 'स्वच्छ पर्यावरण के अधिकार' को 'जीवन के अधिकार' (अनुच्छेद 21) का एक अभिन्न अंग घोषित किया है। 2010 में 'राष्ट्रीय हरित अधिकरण' (National Green Tribunal - NGT) की स्थापना एक मील का पत्थर थी। NGT ने पर्यावरणीय मामलों के शीघ्र निपटारे और प्रदूषण फैलाने वालों पर भारी जुर्माना लगाकर एक प्रभावी न्यायिक प्रहरी की भूमिका निभाई है।

- **नागरिक समाज और मीडिया :** गैर–सरकारी संगठन (NGOs), अकादमिक संस्थान और नागरिक समूह जागरूकता फैलाने, सरकारी नीतियों की निगरानी करने और जमीनी स्तर पर संरक्षण के कार्य करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मीडिया, विशेषकर डिजिटल मीडिया, ने पर्यावरणीय मुद्दों को व्यापक जन–सरोकार का विषय बनाने में मदद की है, जिससे नीति–निर्माताओं पर दबाव बढ़ा है।
- **साहित्य और कला में पर्यावरण चेतना :** हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी पर्यावरण की चिंताएँ मुखर हुई हैं। कई लेखकों और कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रकृति के विनाश, नदियों की दुर्दशा और विस्थापन के दर्द को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। यह 'इको–क्रिटिसिज्म' (पारिस्थितिक आलोचना) का क्षेत्र पर्यावरण विमर्श को एक संवेदनशील और सांस्कृतिक गहराई प्रदान करता है।

भविष्य की राह और निष्कर्ष :–

पर्यावरण विमर्श आज एक ऐसे मोड़ पर है जहाँ समस्याओं की पहचान और विश्लेषण से आगे बढ़कर ठोस, एकीकृत और तत्काल समाधानों की आवश्यकता है। भविष्य की राह कुछ प्रमुख सिद्धांतों पर आधारित होनी चाहिए :–

1. **समग्र दृष्टिकोण :** पर्यावरणीय समस्याओं को अलग–अलग करके नहीं देखा जा सकता। जल, वायु, वन और भूमि सभी एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। अतः, एक एकीकृत नीतिगत ढाँचे की आवश्यकता है जो इन सभी पहलुओं को एक साथ संबोधित करे।
2. **प्रौद्योगिकी और परंपरा का संगम :** जहाँ एक ओर नवीकरणीय ऊर्जा, अपशिष्ट प्रबंधन और प्रदूषण नियंत्रण के लिए आधुनिक तकनीक को अपनाना आवश्यक है, वहीं दूसरी ओर हमें जल संरक्षण और सतत कृषि की अपनी पारंपरिक और स्थानीय ज्ञान प्रणालियों को भी पुनर्जीवित करना होगा।
3. **विकेंद्रीकृत शासन और सामुदायिक भागीदारी :** पर्यावरण संरक्षण केवल सरकारों की जिम्मेदारी नहीं है। जब तक स्थानीय समुदायों, विशेषकर महिलाओं और आदिवासियों, को निर्णय–प्रक्रिया में शामिल नहीं किया जाएगा और उन्हें अपने संसाधनों के प्रबंधन का अधिकार नहीं दिया जाएगा, तब तक कोई भी नीति पूर्णतः सफल नहीं हो सकती।
4. **जीवन–शैली में परिवर्तन :** अंततः, पर्यावरण संकट का समाधान केवल नीतियों और कानूनों से नहीं हो सकता। यह हमारी उपभोग–आधारित जीवन–शैली और 'उपयोग करो और फेंको' (use and throw) की संस्कृति से भी जुड़ा है। हमें प्रकृति के प्रति अपने दृष्टिकोण में एक बुनियादी बदलाव लाना होगा शोषण से पोषण की ओर, अधिकार से कर्तव्य की ओर।

निष्कर्षतः, भारत में पर्यावरण विमर्श एक जीवंत, गतिशील और चुनौतीपूर्ण संवाद है। यह हमें याद दिलाता है कि अर्थव्यवस्था और पारिस्थितिकी दो अलग–अलग नहीं, बल्कि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक स्वस्थ

पर्यावरण के बिना एक स्वस्थ समाज और एक स्थायी अर्थव्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती। हमारा भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि हम इस विमर्श से कितने सार्थक सबक सीखते हैं और उन्हें कितनी ईमानदारी से अपनी नीतियों और अपने जीवन में उतारते हैं।

संदर्भ सूची (Reference List) :-

1. गाडगिल, माधव, और गुहा, रामचंद्र (1995). Ecology and Equity: The Use and Abuse of Nature in Contemporary India. पेंगुइन बुक्स इंडिया।
2. गुहा, रामचंद्र (2000). The Unquiet Woods: Ecological Change and Peasant Resistance in the Himalaya. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
3. शिव, वंदना (1988). Staying Alive : Women, Ecology and Development. जेड बुक्स।
4. मेहता, श्याम सुंदर (सं.) (2012). हिन्दी साहित्य में पर्यावरणीय चेतना. प्रकाशन संस्थान।
5. पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार. (द.क.). जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना (NAPCC). Retrieved from http://www.moef.nic.in/
6. राष्ट्रीय हरित अधिकरण (National Green Tribunal). (n.d.). About NGT. Retrieved from https://greentribunal.gov.in/
7. सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट (CSE). (विभिन्न वर्ष). State of India's Environment Reports. नई दिल्ली।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 403-409

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरणीय संवेदना एवं सचेतना का प्रतिरूप भक्तिकालीन काव्य

रूद्र प्रताप सिंह
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
अरिग्नार अन्ना गवर्नमेन्ट, आर्ट्स एंड साइंस कालेज, कराईकल, पुदुचेरी ६०६६०५

सार संक्षेप :–

२१ सदीं के वैश्विक युग में पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय चेतना एक ज्वलंत मुद्दा बन चुका है। पर्यावरण के तेजी से बदलते स्वरुप तथा उसके असंतुलन को लेकर संसार के लगभग सभी देश चिंतित नजर आ रहे हैं। पर्यावरण के असन्तुलन एवं ग्लोबल वार्मिंग के चलते पूरे संसार में अकाल, सूखा, बाढ़, भूकम्प, पहाड़ों का दरकना, ग्लेशियरों का तेजी से पिंघलना तथा असमय भारी बारिश से पूरा संसार पीड़ित है। पर्यावरण को किस प्रकार सन्तुलित किया जा सके इसको लेकर आज पूरे विश्व में गंभीर चर्चाएं तथा अनेक योजनाएं चल रही है। शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा बाजारीकरण के अंधाधुंध प्रक्रियाओं से मनुष्य का प्रकृति से सम्पर्क टूटता चला जा रहा है तथा उसका प्रकृति के प्रति सहानुभूति भी समाप्त होता चला जा रहा है। मनुष्य अपनी असीमित अति महात्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए प्रकघति का विनाश करने में तनिक भी संकोच नही कर रहा है। हिन्दी के भक्तिकालीन काव्यों में पर्यावरण के इसी संतुलन को बनाये रखने के लिए काफी चर्चा की गई है। भक्तिकालीन काव्यों में प्रकृति एवं पर्यावरण की रक्षा हेतु मनुष्य को सोचने के लिए निरंतर जागरुक किया जाता रहा है। हिन्दी साहित्य–चिंतन–परंपरा में पर्यावरणीय संवेदना की भावना काफी गहरे रुपों में निहित है।

मूल शब्द :– पारिस्थितिकीय, पर्यावरणीय, सचेतना, पूजनीय, ग्लोबल वार्मिंग, औद्योगीकरण, संवाहक, औपनिवेशिक, वर्चस्ववादी, सुसंस्कृत, संवेदना, आध्यात्मिक, उत्प्रेरणा, आत्मीयता, अभिव्यक्ति, मिथकीय, पौराणिक।

परिचय :–

हिन्दी साहित्य में पर्यावरणीय चेतना के प्रतिबिम्ब आदिकाल से ही मौजूद रहे हैं। हिन्दी साहित्य के विभिन्न युगों मे पर्यावरणीय चेतना तथा उसकी संवेदना के प्रति संरक्षण के भाव सदैव से निहित रहे हैं। प्राचीन काव्यों में प्रकृति को देवी–देवताओं के रुप में पूजने की प्रक्रिया रही हैं। भारतीय संस्कृति में प्रकृति हमेशा से पूजनीय और शक्तिशाली भी रही है। भारतीय प्राचीन काव्यों में प्रत्येक जीव–जंतुओं, वृक्षों एवं वनस्पतियों में किसी न किसी देवी–देवताओं का वास मान उसके संरक्षण के भाव सदैव विद्‌ममान रहे हैं। हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रकृति के संरक्षण भावना प्रबल रुपों में देखने को मिलता है। प्रकृति और मनुष्य

की संवेदनशीलता का व्यापक रुप प्राचीन काव्यों में सर्वदा से विद्‌ममान रहा है। हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक हमेशा ही प्रकृति को विशेष स्थान दिया है। आधुनिक युग के प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद ने अपनी प्रसिद्ध महाकाव्य 'कामायनी' में प्रकृति के शक्तिशाली रूप को चित्रित करते हुए लिखते हैं–

"प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित हम सब थे भूले मद में,
भोले थे, हाँ तिरते केवल सब विलासिता के नद में।
वे सब डूबे, डूबा उनका विभव, बन गया परिवार?
उमड़ रहा था देव सुखों पर दुख जलधि का नाद अपार।"[1]

यह कहना अनुचित नहीं होगा कि पर्यावरण चेतना की यह समृद्ध परंपरा हमेशा से मानवीय जीवन के लिए प्रासंगिक रही है। पर्यावरण से ही मनुष्य एवं अन्य जीवों को जीवन संभव है पर्यावरण और मनुष्य यह दोनों परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। प्रकृति के प्रति समर्पण का भाव भक्तिकालीन काव्यों में आरम्भ से ही विद्‌ममान रहा है। भक्त कवि अपने गीतों और काव्यों के माध्यम से प्रकृति से एक सहज संबंध स्थापित करते हैं। प्राचीन धर्म ग्रंथों वेद, पुराण, उपनिषद संस्कृत के काव्यों रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्यों से लेकर हिन्दी के भक्तिकालीन काव्यों में मनुष्य का प्रकृति के प्रति समर्पण और प्रेम का अद्‌भुत भाव दिखाई देता है। हिन्दी के आदिकालीन रचनाओं में भी प्रकृति का व्यापक वर्णन उसके पृष्टभूमि के अनुरूप ही हुआ है। आदिकाल में विद्यापति ने अपने 'पदावली' में प्रकृति वर्णन का अद्वितीय दृश्य प्रस्तुत करते हुए कहते हैं :–

"आएल रितुपति राज वसंत। धाओल अलिकुल माधबि–पंथ।।
दिनकर–किरन भेल पौगंड। केसर कुसुम धएल हेमदंड।।
नृप–आसन नव पीठल पात। कांचन कुसुम छत्र धरु माथ।।
मौलिक रसाल–मुकुल भेल ताप। समुखहि कोकिल पञ्चम गाय।।"[2]

हिन्दी के भक्तिकालीन ही नहीं अपितु प्रत्येक कालों में पर्यावरणीय चेतना के सिद्धांत स्पष्ट रुपों में दिखाई देते है। भक्त कवि कबीर, रैदास, सूर, तुलसी, जायसी, रहीम, रसखान, मीराबाई आदि सभी के पदों में पर्यावरण के प्रति गंभीरता बड़े रुपों में दिखाई देती है। संत कवि कबीर ने मनुष्य के जीवन का संबंध जल से करते हुए धरती, पहाड़, आकाश, तारामंडल आदि सभी गतिविधियों का उल्लेख किया है तो वही जायसी, सूर, रसखान जैसे कवियों ने प्रेम और भक्ति के द्वारा प्राकघतिक महत्ता को उजागर करते हुए मनुष्य को प्राकृतिक संवेदनाओं से जुड़ने का संदेश भी देते हैं।

२१ शदीं के वैश्विक युग में पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकीय चेतना एक ज्वलंत मुद्दा बन चुका है। पर्यावरण के तेजी से बदलते स्वरुप तथा उसके असंतुलन को लेकर संसार के लगभग सभी देश चिंतित नजर आ रहे हैं। पर्यावरण के असन्तुलन एवं ग्लोबल वार्मिंग के चलते पूरे संसार में अकाल, सूखा, बाढ़, भूकम्प, पहाड़ों का दरकना, ग्लेशियरों का तेजी से पिघलना तथा असमय भारी बारिश से पूरा संसार पीड़ित है। पर्यावरण को किस प्रकार सन्तुलित किया जा सके इसको लेकर आज पूरे विश्व में गंभीर चर्चाएं तथा अनेक योजनाएं चल रही है। शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा बाजारीकरण के अंधाधुंध प्रक्रियाओं से मनुष्य का प्रकृति से सम्पर्क टूटता चला जा रहा है तथा उसका प्रकृति के प्रति सहानुभूति भी समाप्त होता चला जा रहा है। मनुष्य अपनी असीमित अतिमहात्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए प्रकघति का विनाश करने में तनिक भी संकोच नही कर रहा है। "जब मनुष्य

ने प्रकृति और पर्यावरण को जीवन का स्वामी माना अर्थात् उसने निश्चितवाद के सिद्धान्त का पालन किया, तब तक प्रकृति के संरक्षण का भाव उसकी प्राथमिकता रहा, क्योंकि तब मनुष्य की नियति ही प्रकृति थी, वह अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए पूर्णतः प्रकृति पर ही निर्भर था, लेकिन विकास के क्रम में विज्ञान और तकनीक के संयोजन से प्राप्त शक्तियों के कारण मनुष्य ने स्वयं को पर्यावरण का स्वामी मानना प्रारम्भ कर दिया और पर्यावरण 'सम्भववाद' की परिधि में आ गया। अब मनुष्य ने प्रकृति के साथ मनमाना व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। पहले औपनिवेशिक व्यवस्था ने प्राकृतिक संसाधनों और मानवीय श्रम का प्रबन्धन निर्ममता से किया और अब बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भी प्रकारान्तर से वही कर रही है। कुल मिलाकर मनुष्य की वर्चस्ववादी मानसिकता और लालच ही पर्यावरण के शत्रु हैं।"[३]

इस प्रकार मनुष्य का पर्यावरण के प्रति संवेदनहीन रवैया विकट समस्या को द्मोतक बन चुका है। इसलिए हमें विकास की अनिवार्यता को नियंत्रित करते हुए अपने प्राचीन परंपराओं को याद करने की आवश्यकता है। मोहनजोदाड़ों से लेकर हड़प्पा कालीन तक हमारे पूर्वज सुसंस्कृत, सभ्य और प्राकृतिक प्रेमी थे यह हमें सिंधु घाटी सभ्यता को देखने से समझ में आ जाता है। भारतीय परंपराओं में नदियाँ बहुत महत्वपूर्ण रही हैं जो उनके लिए सदैव प्राणदायी के रुप में निरंतर प्रवाहित होती रही हैं। भारतीय ही नहीं अपितु समस्त मानव समाज का विकास एवं तमाम मंदिर, मठों आदि का निर्माण नदियों के किनारे ही हुआ है। भारत कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सोच कि संवाहक ये नदियाँ निरंतर ज्ञान और अध्यात्म का पाठ प्रहावित करती रही हैं, लेकिन दुर्भाग्य यह है कि इंसान विकास के अंधाधुंध दौड़ एवं अपनी सुख सुविधाओं की खोज में प्रकृति का लगातार दोहन किए जा रहा है। जिससे कारण न जाने कितनी नदियाँ विलुप्त हो चुकी हैं अथवा केवल मात्र कचरा या नाले के रुप में परिवर्तित हो चुकी हैं। समस्त भारत को जीवन देने वाली पवित्र जीवन दायिनी गंगा तथा यमुना जैसी नदियाँ भी प्रदुषित हो चुकी है और उनके अस्तित्व पर संकट का घनघोर बादल मंडरा रहा है। आज पर्यावरण के संरक्षण की यह चिन्ता वैश्विक बन चुकी है। हिन्दी साहित्य ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में इसको लेकर आज कल गम्भीर चर्चाएं चल रही है।

हिन्दी के भक्तिकालीन काव्यों में पर्यावरण के इसी संतुलन को बनाये रखने के लिए काफी चर्चा की गई है। भक्तिकालीन काव्यों में प्रकृति एवं पर्यावरण की रक्षा हेतु मनुष्य को सोचने के लिए निरंतर जागरुक किया जाता रहा है। हिन्दी साहित्य–चिंतन–परंपरा में पर्यावरणीय संवेदना की भावना काफी गहरे रुपों में निहित है। भारतीय विद्वानों ने इस संसार एवं मनुष्य का निर्माण मिट्टी, अग्नि, जल, वायु और आकाश इन्हीं पर्यावरण के पाँच तत्वों से माना है। भक्तिकालीन प्रसिद्ध कवि तुलसीदास ने अपने विश्वप्रसिद्ध महत्वपूर्ण ग्रंथ 'श्रीरामचरितमानस' में मनुष्य का निर्माण इन्हीं पाँच तत्वों से मानते हुए कहते हैं :–

"छिती जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा।।"[४]

हिन्दी के भक्तिकालीन साहित्यों एवं उसके केन्द्र में पर्यावरण संरक्षण की भावना पूर्णतया व्याप्त है। हिन्दी रचनाकारों ने पर्यावरण को संरक्षित रखने के लिए अपने काव्यों में विशेष महत्व दिया है। वे अपने रचनाओं द्वारा मनुष्य को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील रहने की प्रेरणा देते हैं। वह जीव और जगत दोनों में समन्वय भाव स्थापित करने का प्रयास करते हैं। वह समूचे संसार को 'वसुधैव कुटुम्बकम' की दृष्टि से देखते हैं। भक्त कवि

तुलसीदास समस्त प्राणियों में राम के प्रतिबिम्ब को आत्मसात करते हुए लिखते हैं :–

"जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि।।"[५]

हिन्दी रचनाकारों ने अपने रचनाओं में प्रकृति का व्यापक वर्णन किया है। उन्होंने प्रकृति के प्रति आत्मीयता का गहरा भाव अपनी रचनाओं में रखते हुए बादल, बारिश, ऋतुओं, पर्वत, पहाड़ों, नदियों, झरनों, वृक्षों, जंगलो एवं वन्य जीवों को विशेष स्थान दिया है। हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिककाल तक पर्यावरण एवं प्रकृति की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। हिन्दी साहित्य मनुष्य को पर्यावरणीय संवेदना के महत्व को समझने तथा उसे संरक्षित करने के लिए कटिबद्ध करता है। हिन्दी साहित्य समूचे संसार को पर्यावरणीय संवेदना के प्रति सदैव नयी चेतना तथा नई दृष्टि देने का प्रयास करता है। हिन्दी रचनाओं में पर्यावरणीय चेतना का रचनात्मक आयाम हजारों वर्षों के बाद आज भी जन सामान्य को प्रभावित और आकर्षित करती है।

भक्तिकालीन काव्य पर्यावरणीय संवेदना और सचेतना का वह व्यापक रुप है जिसमें प्राकृतिक सद्भाव, प्रेम, समन्वय आदि तत्वों का गहरा समावेश हुआ है। भक्तिकालीन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा प्राणियों के अतिरिक्त वनस्पतियों के संरक्षण हेतु मनुष्य को निरंतर प्रेरित करते रहते हैं। हिंदी रचनाओं में प्रकृति और पर्यावरण को एकसमान समझ उसमें अंतर नहीं किया गया है। भक्त कवियों ने प्रकृति और मनुष्य का साथ इस धरती पर अस्तित्व के साथ स्वीकार करते हैं तथा वह मनुष्य को अपने अस्तित्व की रक्षा एवं विकास के लिए प्रकृति को देवतुल्य स्वीकर कर उसे अपने माता–पिता के समान ही मानते हैं–

"पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी।"[६]

प्रकृति हमारा पालन–पोषण ही नहीं करती अपितु माता–पिता की तरह हमारी सारी आकांक्षाओं को भी पूर्ण तथा रक्षा करती है। पृथ्वी के सभी जीव–जंतुओं की तरह मनुष्य का भी प्रकृति से नाभि–नाल का रिश्ता है। मनुष्य और प्रकृति का एक ऐसा अटूट रिश्ता है जिसका एक दूसरे के बिना अस्तित्व नहीं है। अगर मनुष्य प्रकघति से खुद को अलग करता भी है तो वह अपना विनाश ही करता है। भक्त कवि इस बात को पूर्णतया अवगत थे इसलिए उन्होंने प्रकृति की रक्षा हेतु अपने काव्यों में यथास्थान विवेचन किया है। भक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास ने प्राकघतिक सुन्दरता का अद्भुत वर्णन किया है :–

"बासव–बरुन–बिधि–बनतें सुहावनो,
दसाननको काननु बसंतको सिंगारु सो।
समय पुराने पात परत, डरत बातु,
पालत लालत रति–मारको बिहारु सो।
देखें बर बापिका तड़ाग बागको बनाउ,
रागबस भो बिरागी पवनकुमारु सो।"[७]

रावण राक्षस, विधर्मी, अंहकारी होते हुए भी ज्ञानी और प्रकृति का अत्यंत प्रेमी भी है। जिसने सोने की लंका होने के बाबजूद मनमोहक हरे–भरे फलदार वघ्क्षों, पुष्पों से सुसज्जित अशोकवाटिका का स्थापना किया है। प्रकृति के बिना मानव जीवन की कल्पना करना व्यर्थ है। प्रकृति से ही मनुष्य अपने जीवन की समस्त

आंकाक्षांओं की पूर्ति करता है। भक्तिकालीन काव्यों में कृषक जीवनशैली और प्रकृति के साथ तालमेल आसानी से देखा जा सकता है। सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने महाकाव्य 'पद्मावत' में बारहों महीने एवं सभी छः ऋतुओं का सुन्दर रुप प्रस्तुत किया है–

"बरसे मघा झकोरि झकोरि, मोरे दुइ नैन चुवै जस ओरि।
धनि सूखै भरे भादौं माहा। अबहुँ न आएन्हि सींचेन्हि नाहा।।
पुरबा लाग भूमि जल पूरि। आग जवास भई तस झूरी।।"[८]

जायसी ने 'पद्मावत' के माध्यम से किसानों के घरों एवं ग्रामीण जीवन की सम्पूर्ण संरचना को उकेर कर रख दिया है। जायसी बरसात का वर्णन करते समय ऐश्वर्य और सुविधा से युक्त राजशाही जीवन–शैली एवं महल की भव्य–संरचना की बात नहीं करते हैं अपितु खपरैल और घास–फूस से बने ग्रामीण घरों की अभिव्यंजना करते हैं। घनघोर बारिश में उस घास–फूस से बनी घर के ओरि चूने का दुख व्यक्त करते हुए वह आम जनजीवन और प्रकृति के बीच सुंदर सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं। जायसी ही नहीं अपितु पर्यावरणीय चेतना का संवेदनात्मक स्वरुप सूरदास के काव्यों में भी निहित है। सूर ने ग्रामीण संस्कृति एवं कृषक जीवन को चित्रित करते हुए ऋतुओं का वर्णन सजीवता के साथ किया है :–

"निसि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस रितु हम पै जब ते स्याम सिधारे।।"[६]

भक्तकालीन कवियों ने अपने काव्यों में प्रकृति के आदर्श रुप को रखा है। उन्होंने अपने साहित्य द्वारा प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण के लिए मनुष्य को प्रकृति के प्रति नरम रवैया अपनाने पर जोर देते हैं। संत कवि कबीरदास ने प्रकृति के प्रति संरक्षण के भाव को स्पष्ट करते हुए कहते हैं :–

"माली आवत देखि करि, कलियाँ करीं पुकार।
फूले फूले चुन लिए, काल्हि हमारी बार।"[१०]

भक्त कवियों ने प्रकृति को संरक्षित करने के लिए वहीं प्रकृति की चेतना को समझने का भरपूर प्रयास किया है। उन्होंने अपनी दूरदृष्टि से पर्यावरण के विमर्श और मनुष्य का प्रकृति के प्रति विलुप्त होती चेतना को पहले ही भांप लिया था जिसका आज के युग में विशेष ध्यान देने पर बल दिया जा रहा है। कबीर पुनः प्रकृति के रहस्यात्मकता के साथ वर्णन करते हुए कहते हैं :–

"हाड़ जलै ज्यूँ लाकड़ी, केस जलै ज्यूँ घास।
सब तन जलता देख करि, भया कबीर उदास।।"[११]

प्रकृति के तालमेल और उत्प्रेरणा का शानदार उदाहरण भक्तिकालीन हिंदी काव्यों में अधिकतर देखने को मिल जाता है। इनके यहाँ प्रकृति सिर्फ सौन्दर्य की वस्तु नहीं जो केवल लुभाती है अपितु वह मनुष्य के सुख–दुख की सहभागिनी है जो निरंतर उसके साथ कदम से कदम मिलाकर चलती है।

साहित्य पर्यावरण की छोटी से छोटी गतिविधियों को भी स्वंय में समाहित करते हुए उसे जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करती है। गोस्वामी तुलसीदास का महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस' प्रकृति के इन्हीं गतिविधियों को स्वंय में समाहित करते हुए गहरी सहानुभूति रखती है। तुलसी के मानस में वृक्षारोपण का व्यापक चित्रण देखा जा सकता है–

"तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए।।
बट छायाँ बेदिका बनाई। सियँ निज पानि सरोज सुहाई।।"[१२]

भक्तिकालीन काव्य पर्यावरणीय चेतना की सहजता का काव्य है जिसमें प्रकृति के औदात्य स्वरुप को चित्रित किया गया है। इन काव्यों में मनुष्य को प्रकघति के प्रति संवेदनात्मक रवैया अपनाने पर बल दिया गया है और भविष्य में होने वाले भयंकर परिणामों से लोगों को अवगत कराने का प्रयास किया है। वर्तमान में जहाँ हर तरफ प्रकृति के प्रति संवेदनहीनता और असंतुलन की भावना बढ़ रही है इससे आने वाले समय में खतरा और भी बढ़ने वाला है। क्षमता से अधिक असीमित जनसंख्या का बढ़ने तथा आधुनिकीकरण एवं बढ़ते शहरीकरण से जंगलो का सफाया हो रहा है जिसका सीधा असर पर्यावरण का असंतुलन पर पड़ रहा है। विकास के आड़ में मानव स्वयं खतरा मोल ले रहा है। प्राकृतिक दोहन से कही भयंकर बाढ़, सुनामी, सूखा तो कहीं जंगलों में आग एवं पहाड़ों का दरकना आम बात हो चुका है जिसमें लाखों लोग अपना जीवन गवाँ रहे हैं, लेकिन फिर भी मानव विसंगतियाँ कम होने के बजाय बढ़ती जा रही है।

निष्कर्षतः भक्तिकालीन काव्यों में प्राकृतिक संवेदनशीलता एवं आत्मीयता व्यापक अभिव्यक्ति हुई है। भक्त कवि अपने काव्यों द्वारा तत्कालीन समाज तथा आने वाली पीढ़ी दोनों को प्रकघति से जोड़ने का काम करते हैं। पर्यावरण की समस्या जो आज अंतरराष्ट्रीय समस्या बन चुकी है भक्त कवि उसे बहुत पहले ही महसूस कर चुके थे। उन्होंने अपने काव्यों में प्रकृति के दैवीय रुप की अभिव्यंजना करते हुए मनुष्य और प्रकृति के बीच पुल का काम करते हैं। आज का मनुष्य अत्याधुनिक बनने की चेष्टा में प्रकृति के साथ अन्याय कर रहा है। जिसके परिणाम स्वरुप मानव के साथ–साथ पृथ्वी पर जीवन–यापन करने वाले सभी जीव–जंतुओं के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। भक्तिकालीन कवि मिथकीय एवं पौराणिक चरित्रों के माध्यम मनुष्य को प्राकघतिक संवेदनशीलता और महत्ता की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भक्तिकालीन काव्यों में प्राकृतिक संवेदनशीलता एवं पर्यावरण संरक्षण की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति हुई है। भक्तिकालीन काव्य–साहित्य मानवीय भावनाओं और मूल्यों का पोषक के साथ–साथ प्राकृतिक संवाहक भी है। जिसमें प्राकृतिक चेतना की भावना सर्वोपरि है। भक्त कवियों ने मनुष्यता के साथ ही साथ की पर्यावरणीय एवं प्राकृतिक चेतना के प्रतिरुप नदी, झरने, तालाब, पर्वत, पहाड़, पेड़–पौधे, जल, जंगल, आकाश, धरती, पशु पक्षि आदि सभी अन्य जीवों को भी मूल्यवान समझ अभिव्यक्ति प्रकट की है। उनकी दृष्टि में मनुष्य और प्रकृति में कोई अंतर नहीं बल्कि सभी एक समान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

१. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, चिंता सर्ग, साहित्य सेवा प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ १४

२. प्राचीन एवं मध्यकालीन हिन्दी काव्य, विद्यापति पदावली, संपादक पूरनचन्द टण्डन, प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ ३१

३. हिन्दी साहित्य में पर्यावर्णीय संवेदना, संपादक दत्ता कोल्हारे, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ ११३

४. श्रीरामचरितमानस, तुलसीदास, किष्किंधाकाण्ड–१०/२, हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ ६३७

५.	वही, बालकाण्ड–७ख, हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ १०
६.	वही, अयोध्याकांड, ५५/२, पृष्ठ ३५१
७.	कवितावली, तुलसीदास, सुन्दरकाण्ड, पद १, अनुवादक इन्द्रदेव नारायण, गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ ३०
८.	जायसी ग्रंथावली, नागमति वियोग खण्ड, संपादक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृष्ठ ३०५
९.	सूरसागर सटीक, संपादक धीरेन्द्र वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, पृष्ठ २४३,
१०.	कबीर ग्रंथावली, संपादक श्यामसुन्दरदास, अद्वैत प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ ५१
११.	वही, पृष्ठ ७८
१२.	श्रीरामचरितमानस, तुलसीदास, अयोध्याकाण्ड, २३६/४, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ ४६४

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 410-413
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

फिल्म लापता लेडीज : स्त्री जीवन के परिप्रेक्ष्य में

नन्दा पी. नायर
शोधकर्ता, हिन्दी विभाग, केरल विश्वविद्यालय, करियावट्टम, तिरुवनंतपुरम।

सिनेमा एक ऐसा कला माध्यम है जिसकी अभिव्यक्ति में स्वप्न है, सौंदर्य है तो जीवन जीने की जिजीविषा और घर्षण भी है। वस्तुतः दृश्य–श्रव्य माध्यम का नवीन और अनूठा प्रयोग है सिनेमा, जिसमे कल्पना और सृजनात्मकता का विस्तृत फलक मौजूद है। विज्ञान और तकनीकी प्रयोग से लैस होने के कारण सिनेमा द्वारा एक फिल्मकार अपनी सूक्ष्म से सूक्ष्म कल्पनाओं को व्यापकता के साथ व्याख्यायित कर सकता है। सिनेमा का कैनवास इतना बडा है कि एक फिल्मकार उसमें जितना ही रंग भरना चाहेगा, वह उतना ही खूबसूरत बनता जाएगा, फिर चाहे उसका आधार यथार्थ हो, कल्पना हो या भ्रम हो, अपने सृजनत्व के बल पर वह उसे पूर्ण सोद्देश्यता के साथ रच ले जाता है। अतः साहित्य की भांति ही जीवन को निर्मल और सोद्देश्य बनाने का सुलभ माध्यम है सिनेमा।

सिनेमा बीसवीं सदी के सर्वाधिक चमत्कारिक आविष्कारों में से एक है। साहित्य और सिनेमा के बीच भी परस्पर आदान–प्रदान की प्रकिया को महसूस किया जा सकता है। जिस प्रकार साहित्य समाज को प्रभावित करता है, उसी प्रकार सिनेमा भी समाज को प्रभावित करता है। सिनेमा के अनेक विषयों में से एक है स्त्री जीवन।

किसी भी सभ्य समाज की स्थिति उस समाज में स्त्रियों की दशा देखकर ज्ञात की जा सकती है। समय के साथ भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन हुऐ जिससे महिलाओं की स्थिति में दिन–प्रतिदिन गिरावट आती गई। समाज के निर्माण में महिलाओं की भूमिका उतनी ही प्रमुख है जितनी कि शरीर को जीवित रखने के लिए जल, वायु और भोजन है। फिर भी प्राचीन समाज से लेकर आधुनिक कहे जाने वाले समाज तक स्त्रियां उपेक्षित ही रही है। भारतीय समाज की परम्परागत व्यवस्था में महिलायें आजीवन पिता, पति और पुत्र के संरक्षण में जीवन–यापन करती रही है। भारतीय संविधान मे पुरुषों एवं महिलाओं को समान दर्जा और अधिकार दिए जाने के बावजूद इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि विकास और सामाजिक स्तर की दृष्टि से महिलायें अभी पुरुषों से काफी पीछे है। भारतीय समाज में महिला आज भी कमजोर वर्गों में शामिल है। महिला परिवार की आधारशिला है और सामाजिक विकास बहुत कुछ उसी के सद्प्रयासों से सम्भव है।

महिलाओं के ऊपर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षणिक, व्यावसायिक एवं अन्य अनेक ऐसी निर्योग्यतायें लाद दी गई है जिसके कारण उन्हें जीवन में आगे बढ़ने एवं व्यक्तित्व का समुचित विकास करने का अवसर नहीं मिलता। इस सोच में बदलाव लाना महिला विकास की सबसे बड़ी चुनौती है। स्त्री एक अच्छे समाज और अच्छे राष्ट्र का स्त्रोत होती है। आज के युग में भी स्त्री को बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जिसमें

शिक्षा, कन्या भ्रूण हत्या, बाल विवाह, दहेज एवं घरेलू हिंसा आदि आती है।

समाज में स्त्री हाशिये पर रखे जाते है। उसकी स्थिति को बदत्तर बना देते है। स्त्री को शोषित वर्ग में रखा जाता है। इस शोषित वर्ग की कहानी को भी साहित्य में दर्शाया है। स्त्री की दुखातं कहानी का चित्रण साहित्य के साथ–साथ सिनेमा जैसे माध्यमों से भी समाज के सामने आया है। भारतीय सिनेमा की मुख्य धारा में आज स्त्री शोषण भी एक प्रमुख मुद्दे के समान सामने आई है। 2023 में प्रदर्शित 'लापता लेडीस' इसी स्त्री मुद्दे पर बनाऐ गए फिल्म है। इसका निर्देशन किरण राऊ, आमिर खान और ज्योति देशपाण्डेय ने किया है। इसमें नितांशी गोयल, प्रतिभा रंता, स्पर्श श्रीवास्तव, रवि किशन और छाया कदम ने प्रमुख किरदार निभाया है।

'लापना लेडीस' हास्यपरक शैली में समाज में चल रहे अन्याय की ओर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। बहुत ही सरल शैली में इस फिल्म का एक–एक सीन को दर्शाया गया है। लेकिन सरलता में भी निर्देशक ने फिल्म के मुख्य विषय को छूटने नहीं दिया। जैसे–जैसे फिल्म आगे बढ़ती है हमे पता चलता है कि इस गड़बडी के पीछे की कहानी बिल्कुल भी सरल नहीं है। फिल्म की मुख्य कथावस्तु दो दुल्हनों की अदला बदली है। फूल (नितांशी गोयल) और दीपक (स्पर्श श्रीवास्तव) शादी करके ससुराल के लिए निकलते हैं। उनके गाँव की ओर जाने वाली ट्रेन पकड़ती है। उसी ट्रेन के डिब्बे में उनके अलावा दो–तीन ओर नया जोडा सफर कर रहे होता है। ट्रेन में भीड होने के कारण फूल और दीपक अलग–अलग जगह बैठते है। फूल के तरह सभी घूंघट ओढ रखे होते है। इसी के कारण कौन किसकी बीवी है, यह पहचानने में बहुत ही मुश्किल होता है। दीपक के गांव की स्टेशन पहुंचते ही गलती से प्रदीप की बीवी जया (प्रतिभा रंता) को लेकर जाती है। घर जाकर घूंघट उठाने पर समझ आती है कि दुल्हन बदल गयी है। दूसरी तरह फूल अकेली एक स्टेशन में पड़ जाती है। उसे घर वापस जाने का रास्ता या पता नहीं मालूम होता। यही से मनोरंजन पक्ष शुरू होता है। इस परिदृश्य में, जब दृढ़ निश्चयी जया लोहे के परदे में से एक रास्ता खोजती है, तो वह परंपरा की चट्टान की दरार से घास के एक ढर की तरह बच निकलती है। समानांतर जगह में, यह भोली–भाली फूल जो खो जाती है, वह संस्कृति के नाम पर पितृसत्तात्मक ढांचे से बंधी हुई है। वहीं एक सशक्त नारी के रूप में मंजू माई (छाया कदम) को प्रस्तुत किया है। मंजू माई के जरिए फूल के जीवन में आए परिवर्तन को भी फिल्म के अंत में दर्शाया है। फिल्म के कथावस्तु में एक बदलाव लाने वाली किरदार है पुलिस अफ्सर श्याम मनोहर (रवि किशन)। उन्होंने एक ऐसे पुलिस अधिकारी की भूमिका निभाई है, जिसका विवेक पूरी तरह से भ्रष्ट नहीं हुआ है। आखिर में समाज में एक नवजागरण का आवाज इस पुलिस अफ्सर करता है। 'लापता लेडीज' में बहुत सारे सामाजिक समस्याओं का जिक्र किया है जिसमें स्त्री और अन्न वर्ग भी शामिल है।

'लापना लेडीज' में घूंघट को एक मुख्य समस्या के रूप में दर्शाया गया है। ज्यादात्तर उत्तर भारत की ओर हम देखे तो घूंघट उनकी संस्कृति का एक प्रमुख अंग है। लेकिन घूँघट स्त्री के लिए एक अभिशाप के रूप धारण कर लेता है। इस पितृसत्तात्मक समाज में अपने नजर और आवाज को चुप करने के लिए यह घूंघट एक हद तक कामयाब हुआ है।

एक लड़की शादीशुदा होने के बाद से उसे घूंघट के अंदर जीने के लिए विवश कर देता है। फिल्म की शुरुआत में इससे संबंधित बात कहीं गई है। इस घूंघट समस्या का खुला चित्रण 'लापता लेडीज' में दिखाया गया है। फिल्म महिलाओं की पहचान पर सवाल उठाने के लिए घूंघट का इस्तेमाल करती है। उदाहरण के लिए फूल

की मां उसे अपने कदमों पर ध्यान रखने और आगे की ओर न देखने के लिए कहती है क्योंकि वह घर से निकलते समय अपना चेहरा ढके हुए रास्ते में लड़खड़ाती हुई आती है। वह फूल को याद दिलाती है कि एक महिला कि निगाह हमेशा नीचे होनी चाहिए, खासकर घूँघट डालने के बाद। इसी तरह जब दीपक अपनी खोई हुई पत्नी फूल को अपनी शादी की एक तस्वीर के साथ खोजता है, जिसमे फूल का चेहरा घूंघट से ढका हुआ है, तो पुलिस थाने के लोग उसकी मजाक उठाते है। बिना चेहरे के तस्वीर से फूल को ढूंढकर निकालने के बात से ही एक हास्यपरक घटना हो जाता है। 'लापता लेडीस' खूबसूरती और व्यंग्यात्मक ढंग से किसी के चेहरे को ढकने के कार्य के माध्यम से किसी की पहचान खाने के बोझ को दर्शाती है।

'लापता लेडीज' फिल्म में भी दहेज को एक मुद्दे के रूप में दिखाया गया है। समाज में प्रचलित दहेज प्रथा का तीव्र रूप हम फिल्म में देख सकते है। इस फिल्म में भी यह दर्शाया गया है कि दहेज लेना कितने गर्व की बात है। जहां इस मुद्दे को हास्यपरक शैली में दर्शाया है वहीं दूसरी तरफ इसकी गंभीर अवस्था को देखाने में निर्देशक ने कंजूसी नहीं दिखाई।

'लापता लेडीज' में कई सूक्ष्म दृश्य इस मुद्दे को प्रकाश में लाते है, जो हमारे समाज में हो रहे अपेक्षाओं की ओर विचार करने के लिए प्रोत्साहित करते है। सबसे पहले, जया को शिक्षा प्राप्ति के लिए संघर्ष करना पड़ता है। जया के मन में शिक्षा प्राप्त करके समाज में बदलाव लाने की आग है। लेकिन सामाजिक अव्यवस्था के कारण उसे अपने सपनों के साथ समझौता करना पड़ता है। जया स्कूल में अव्वल नंबर लेकर आने के बाद भी उसकी मेहनत की शाबाशी नहीं देती। शादी के नाम पर उसे शिक्षा छोडने के लिए मजबूर कर देती है। लड़की होने के कारण उसके हाथ पीली कर दिया जाता है। दूसरी तरफ दीपक की भाभी कला को बेफिसूल की चीज कहकर ठुकराया जाता है। लड़कियों को अपनी हुनर की पहचान नहीं है। उसे अपने काबिलियत पर गर्व करने का मौका भी नहीं दिया जाता। वह खुद को हमेशा पीछे की ओर खींच कर ले आता है।

समाज में ऐसे बहुत नियमों का गठन किया गया है जो, स्त्री की अस्मिता पर प्रहार करती है। प्राचीन काल से ही पति का नाम लेने से स्त्री को वंचित रखा गया है। यह एक सामाजिक नियम के रूप में स्त्री जीवन पर लागू होता है। इस फिल्म में भी नाम लेने की समस्या का और उसके प्रतिरोध करने का दृश्य भी दिखाया गया है। लड़कियों को बचपन से ही ऐसे नियमों के साथ सिखाया जाता है। जहां फूल अपने पति का नाम लेने से कतराती है वही दूसरी तरफ जया द्वारा अपने पति का नाम लेकर बदलाव दिखती है। जया ऐसे सामाजिक नियमों के खिलाफ आवाज उठाती है। शिक्षा ने ही उसे ऐसे एक सशक्त महिला बनायी है। वह दीपक के भाभी द्वारा पति का नाम न लेने पर भी उसे समझाती है। इस फिल्म में फूल के किरदार द्वारा पितृसत्तात्मक समाज के नियमों और बंधनों से बंधी एक साधारण लड़की को दिखाया है। छोटे उम्र में ही ऐसे सामाजिक मान्यताओं को सिखाकर उसकी शादी कर दिया जाता है। इसके कारण उसके हर एक बात पर वहीं नियमों का झलक हमें देखने को मिलता हैं।

स्त्री को एक त्याग के रूप में भी समाज में चित्रित किया गया है। वह पति और बच्चों के खातिर खुद ही भूल जाती है। पति और बच्चे की पसंद और नापसंद को ध्यान रखते खुद की पसंद को कुर्बान कर देती है। यहीं स्त्री अपने लिए जीना भूल जाती है। इसका एक उदाहरण दीपक की मां है। जब जया प्रश्न करती है तो मां हंसकर उसको टाल देती है। इस समाज पुरुष के स्वास्थ्य, पसंद, नापसंद के अनुसार ही यहां की

व्यवस्थाएं चलती है। लेकिन अफ्सोस की बात है कि स्त्री यह पहचान नहीं रही है।

पितृसत्तात्मक समाज में विवाह लैंगिक असमानता और घरेलू हिंसा को भी बढ़ावा देती है। जया के पति प्रतीप पितृसत्तात्मक समाज का एक प्रतिनिधि है। प्रतीप की पहली पत्नी की मौत हो गयी है। वह कैसे मर गयी यह कोई नहीं जानता। फिल्म में जया दवारा कहा जाता है कि बच्चे नहीं होने के कारण उसे जला दिया था। घरेलू हिंसा का एक तीव्र रूप यहां पर दिखाया गया है। प्रतीप के लिए स्त्री सिर्फ एक भोग की वस्तु है। अपने शारीरिक खुशी के लिए वह शादी करता है। प्रतीप जैसे लोग इस पितृसत्तात्मक समाज को आगे चला रहा है। फिल्म के अंत में प्रतीप के इस मनोभाव को दिखाया गया है। जब जया वापस मिल जाती है,जब भी उसे दहेज आदि नाम से धमकाता है। 'लापता लेडीज' विविध महिलाओं और उनके व्यक्तित्व संबंधित कहानियों को दर्शाती है। साथ बहुआयामी सामाजिक उपेक्षाओं और पूर्वाग्रहों को उजागर करती है। यह फिल्म महिला सशक्तिकरण का मामला बनती है।

फिल्म में जहां समस्या का चित्रण किया गया है। वहीं स्त्री का सशक्त रूप को भी बेहतरीन ढंग से दर्शाया गया है। शिक्षा ने स्त्री जीवन को सरल और आसान बनायी है। अस्मिता की भावना नारी के जीवन को ओर बेहत्तर बना देती है। नारीवाद का सबसे पहला और बड़ा पड़ाव ही अस्मिता का पहचान है। 'लापता लेडीज' के हर एक नारी पात्र अपने–अपने जिंदगी में अलग–अलग समस्याओं के साथ गुजरती है। स्त्री के जीवन में घटित समस्याओं को अलग–अलग नारी किरदार के माध्यम से सामने लायी गयी है। फिल्म में चित्रित हर एक स्त्री पात्र अंत की ओर जाते अपने अस्मिता को पहचानती है। इस पूरे फिल्म में मंजू माई का किरदार प्रतिरोध की भावना को जगाती है। इस पितृसत्तात्मक समाज में प्रचलित हर एक व्यवस्था का वह खुलके प्रश्न करती है। अपने दाम्पत्य जीवन में सहे शोषण का वह प्रतिरोध भी करती है। मंजू माई के किरदार के जरिए निर्देशक ने समाज को प्रभावित करने का प्रयास भी किया है। एक हद तक निर्देशक की वह कोशिश कामयाब भी हुई है। अपने सोच विचारों से मंजू माई फूल के जिंदगी में बदलाव लेकर आती है। जिस फूल ने पति के बिछड़ जाने से टूट जाती है, उसके मन में अपने पैरों पर खडे होने की इच्छा आयी। वह मंजू माई के दुकान में काम करती है। जब मंजू माई फूल की पहली कमाई उसके हाथों पर रख देती है जब उसके जीवन में और रोशनी आ जाती है। आखिर में इस सामाजिक व्यवस्था की ओर वह सवाल भी उठाती है। इस फिल्म के सबसे बड़ी बदलाव यहीं है कि आखिर में फूल अपने पति को नाम लेकर पूकारती है। फिल्म यहीं अपने उद्देश्य को दर्शकों के सामने पहुंचा देते है। इसी दृश्य में फिल्म की सफलता हो जाती है। जया उपने पिंजरे जैसा शादी से बचकर अपने सपना और शिक्षा प्राप्त करने की ओर जाना भी एक बहुत बड़ा बदलाव है। तब उसके साथ पूरे समाज भी शामिल है, जो कि एक बहुत बड़ी उतरजीवन है।

संदर्भ सूची :–

1. फिल्म लापता लेडीज।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 414-416
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बाल शिक्षा विषयक ओशो के विचार

डॉ. पार्वती गोसाई
असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर।

विश्वभर में भारत का स्थान अद्वितीय है। साहित्य दर्शन, धर्म, विज्ञान, अध्यात्म और अन्य तमाम क्षेत्रों में भारत का अमूल्य योगदान रहा है। भारत के उद्दात विचारों को जन–जन तक पहुँचाने में यहाँ के विचारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विश्व के अन्य देशो में भी अच्छे विचारक, दार्शनिक, समाज सुधारक हुए है, लेकिन भारत के विचारकों के सामने मुझे कोई ठहरता हुआ नहीं लगता। 'ओशो' ऐसे ही एक ध्रुवतारक है। क्योंकि वे 20वीं सदी के विश्व के सर्वश्रेष्ठ चिंतक के रुप में प्रसिद्ध हुए। ऐसे महान फिलोसोफर के बारे में जितनी बाते कही जाए, कम ही होगी। उनका हर विचार अलग और चिंतन भी अलग होता था। इसी भारत भूमि में महर्षि अरविंद, महर्षि रमण, गौतम बुद्ध, विवेकानंद, महात्मा गांधी आदि का जन्म हुआ, पर ओशो उन सब में मुझे एकदम आधुनिक विचारधारा वाले लगे है। उनके आदर्श मानव को साधारण से असाधारण बनाते है। और मानव को सही अर्थ में 'मानव' बनाते है। संसार में आज हर तरफ घृणा, अराजकता, आतंकवाद, अलगाववाद, सीमावाद, भ्रष्टाचार और अन्य अनेक समस्याओं ने घेर रखा है तब ऐसे महान पुरुषो के आदर्श विश्व को नया मार्ग बताने में सक्षम है। आज हर कहीं 'बालक' को केन्द्र में रखकर 'टार्गेट' हो रहा है। टी.वी., सोशल मीडिया, समाचार पत्र एवं सिनेमा–इन सब में 'बालक' हमेंशा केन्द्र में रहता है, क्योंकि यह भविष्य का निर्माता है। किसी देश, समाज, समुदाय को यदि खत्म करना हो तो उसके बालकों को बिगाडने के हर प्रयास करने से काम जल्दी से सफल हो जाए ऐसा सब मानने लगे है। वैसे हमारे यहाँ भी बालक 'सोफ्ट टार्गेट' बनते जा रहे है। अतः जरुरी है कि हम हमारे बच्चों को उचित वातावरण एवं संस्कार दे ताकि वे किसी के बहकावे में न आये और हमारे देश की शक्ति बनकर ऊभरे। इस दृष्टि से उसको उचित शिक्षा तथा संस्कार की आवश्यकता रहती है। औशो ने बाल शिक्षा विषयक गहरे विचार व्यक्त किए है। जिसे यहाँ देख सकते है :

ओशो रजनीस अपनी आध्यात्मिक ओर दार्शनिक शिक्षाओं के लिए विश्व प्रसिद्ध है। उन्होंने शिक्षा के पारंपरिक दृष्टिकोण को चुनौती दी और इसे एक नई दिशा देने का प्रयास किया। उनकी शिक्षा दृष्टि न केवल ज्ञान प्राप्ति पर बल देती है, बल्कि जीवन के सभी पहलुओं– भौतिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक के विकास पर केन्द्रित है। उन्होने बाल शिक्षा के बारे में अपने विचार दिए है। उनका स्पष्ट मानना था कि "प्रत्येक बच्चा अद्वितीय है, बालकों के कुछ गुण एक समान होते है, परंतु कुछ गुण विशेष होते है।"[1]

ओशो ने बालक के पालन–पोषण से लेकर उसके शारीरिक, भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास की बात कही है। ओशो का मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल बुद्धि का विकास नहीं, बल्कि व्यक्ति के समग्र

व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए। शिक्षा में भावनात्मक, शारीरिक और आध्यात्मिक विकास को महत्व दिया जाना चाहिए। उनकी नजर में प्रत्येक बच्चे का चेहरा, परमात्मा का चेहरा था। बालक की जीवंतता को व्याख्यायित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह सत्य है। हम केवल उसे महसूस कर सकते है। बच्चे तमाम प्रकार के सम्मान के अधिकारी होते है क्योंकि वे शुद्ध और मासूम होते है। ओशो भी बच्चों को आदर देने और उसे निडर बनाने पर जोर देते है। वे कहते है कि हम केवल उनके माता–पिता होने से उन पर अपने विचारों को थोप नहीं सकते। इससे बच्चों में परिवर्तन नहीं आता। ओशो के यह विचार आज के परिप्रेक्ष्य में भी उतने ही सार्थक लगते है। हम अपने सपनों को पूरा न कर सके तो बच्चों से पूरे करवाने की मानसिकता से बच्चों का पालन न करें। उन्हें स्वतंत्र होकर विकसित होने देना चाहिए। बच्चों को उनकी इच्छा विरुद्ध आध्य करने से वे अवरुद्ध हो जाते है। प्रेम और आदर उन्हें समझदार बनाने में मदद कर सकते है।

बच्चों का सार्वकालीक गुण है उनका हास्य। आज बच्चे बाहरी वातावरण एवं घर के कुंषित वातावरण के कारण छोटी उम्र से ही गंभीर बनते जा रहे है। ओशो इस विषय में कहते है कि– बिना बास्य का इंसान फूल बिना पेड जैसा है। हमें यंत्र नहीं चाहिए, मनुष्य चाहिए। यदि मनुष्य को जीवित रखना है तो बच्चों को मुक्त मन से हंसते रहने देना चाहिए। स्वतंत्रता और स्वाभाविकता पर भी ध्यान देना चाहिए। ओशो के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चों में स्वतंत्रता और स्वाभाविकता का विकास होना चाहिए। इससे व्यक्ति खूद को सत्य को खोजने में मदद करता है। बच्चों को कभी–कभी अकेले में रहने देना चाहिए। इससे वे अपने व्यक्तित्व का बेरोकटोक विकास कर सकते है। बच्चों को अकेले रहना बहुत पसंद होता है। उन्हें प्रश्न भी करने देना चाहिए। बच्चों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार भी बहुत महत्वपूर्ण है। ओशो कहते है कि बालक अत्यंत नाजुक होता है, उसका अनादर नहीं करना चाहिए। बड़े की तरह ही उसके साथ व्यवहार करने से वे भी उतने ही व्यवहार बनेंगे।

बच्चों को टी.वी., सोशल मीडिया की नकारात्मक बातों से दूर रखने का प्रयास करना चाहिए। ओशो का कहना है– टिलिविझन बच्चों पर, उनके व्यवहार पर, उनके स्वप्नों पर प्रभाव डालता है। क्योंकि स्वप्न और टेलीविजन दोनों एक जैसे लगते है। बच्चा इन दोनों के बीच भेद करना नहीं जानता इसके कारण उसके स्वप्न और व्यवहार में बदलाव आ जाता है। आज आए दिन छोटे–छोटे बच्चों से जूडी अपराध की घटनाएँ सुनने देश में आती है। छोटे बच्चे स्कूल की बेग में बंदूक, छूरी लेकर आते है और अपने साथी विद्यार्थी को मार डालने तक की घटना को अंजाम देते है। इसका कारण टी.वी., मीडिया प्लेटफोर्म पर खून खरावे के दृश्य देखते रहना बताया गया। ओशो इन सबसे चिंतित थे। छोटे बच्चों का ड्रग्स आदि का एडिक्ट हो जाना भी बड़ा खतरा है। बच्चा इन सबकी प्रेरणा टी.वी. तथा अन्य माध्यमों से ही लेता है। भारत जैसे देश को खत्म करने में बाहर की मल्टीनेशनल कंपनियाँ भी आज बच्चो को टार्गेट कर रही है। ये बच्चों की शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक संतुलन का नाश करती है। इस तरह ये भयानक समस्या को रोकने के लिए ओशो कहते है कि– मेरे मत से तमाम टी.वी. केन्द्र युनिवर्सिटी, कोलेज और स्कूल के अंदर ही होने चाहिए। उसमें ऐसे कार्यक्रम हो जो उन्हे शिक्षित करें, विज्ञापन बिल्कूल नहीं होने चाहिए। वे कोई शिक्षिका नहीं, कुशिक्षा है, शोषण है। छोटे बच्चे जो भाषा नहीं समझ सकते वे इतिहास, भूगोल और अन्य विषयों पर जानने के लिए उत्सुक हो जाएँगे। सभी वर्ग के बच्चों के लिए विज्ञान, साहित्य, कला, काव्य, चित्रकारी आदि प्रत्येक विद्या के कार्यक्रम दिखाने चाहिए।

आजकल बच्चे मोबाईल को कारण एक ही जगह चिंपक रहते है, इससे उनमें खेल का वास्तविक अनुभव

नहीं होता तथा अन्य विषयों में भी रुचि नहीं रखते। ओशो ने कहा कि ऐसे बच्चों को भी विषयों में रुचि जगा सकते है। यदि उन्हें संगीत में रुचि हो तो संगीत के वाद्य, चित्र में रुचि हो तो रंगों, मूर्तिकला आदि को सीखाया जा सकता है। बच्चों को मौलिक बनाना चाहिए। रटने की प्रणाली का ओशो विरोध करते है। ओशो ने पारंपरिक रटंत शिक्षा प्रणाली की कड़ी आलोचना की। उनके अनुसार इस प्रणाली से बच्चे केवल तथ्यों को याद करते है, जबकि शिक्षा का असली उद्देश्य समझ और विवेक का विकास होना चाहिए। ओशो ने सृजनात्मकता को प्रमुखता दी है। सृजनात्मकता ही वह माध्यम है जिससे बच्चा अपने भीतर छिपी क्षमताओं को प्रकट कर सकता है। उनके मानसिक विकास के लिए योग, प्राणायाम, मेडिटेशन से अवगत कराना भी आवश्यक है। मेडिटेशन को बच्चों की शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा बनाना चाहिए। उनका मानना था कि ध्यान व्यक्ति को वर्तमान में जीने और अपने अस्तित्व के गहरे आयाम को समझने मे मदद करता है।

बच्चें प्यार के अभाव में संकीर्ण व उदंड बन जाते है। उन्हें भरपूर प्यार तथा सहारा मिले ऐसी शिक्षा देनी चाहिए। ओशो का कहना था कि शिक्षा संस्थानों को डर और प्रतिस्पर्धा का माहौल खत्म करके प्रेम और समझ का माहौल विकसित करना चाहिए। शिक्षक में बच्चा अपने माता–पिता के दर्शन करता है। अतः बच्चों के प्रति शिक्षक संवेदनशील व प्यार भरा बर्ताव करे तो उनके भटकने के अवकाश नहीं रहेंगे। शिक्षा में वह जो भी नया विचार रखें, उसे सुनना चाहिए। उसे 'ना' कहकर नकारने से उसमें नकारात्मकता जन्मती है। उनकी बुद्धिमता को हमेशा सम्मानित करते रहने चाहिए। ओशो कहते है कि बच्चे समाज तथा देश में ऐसे व्यक्ति निर्माण की आशा है जो देश को आगे ले जाएंगे। बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा केवल एक पेशे के रुप में नहीं, बल्कि व्यक्ति के संपूर्ण विकास और मानवता की उन्नति का माध्यम हो। उनके अनुसार सच्ची शिक्षा वहीं है जो बच्चे के व्यक्ति निर्माण को अपने भीतर झांकने और अपने अस्तित्व के सत्य को पहचानने की शक्ति प्रदान करें।

आधार ग्रंथ :–

1. शिक्षा : ओशो की दृष्टि से, स्वामी आनंद वैराग्य, फ्यूजन बुक्स, न्यू दिल्ली।
2. मृत्योर्मा अमृतं गमय, भगवान श्री रजनीश।
3. भारतीय शिक्षण चिंतकोनुं शिक्षण दर्शन, जयेन्द्र दवे।

सम्पर्क : 9773230579

Email: parvgosai23@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 417-420

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बाल साहित्य में पर्यावरणीय मानवीकरण और उसका प्रभाव

आर. आर. सौमियाश्री

शोधार्थी, उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास।

प्रस्तावना :-

मानव जीवन और पर्यावरण का रिश्ता अविभाज्य है। प्रकृति हमारे अस्तित्व की आधारशिला है, किंतु औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और उपभोक्तावाद की अंधी दौड़ ने इस संबंध को असंतुलित बना दिया है। ऐसे समय में, आने वाली पीढ़ी के मन में पर्यावरणीय संवेदना और संरक्षण की भावना विकसित करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। इस दिशा में बाल साहित्य एक सशक्त माध्यम है, क्योंकि बाल्यावस्था ही वह अवस्था है जब मनुष्य का हृदय सबसे अधिक ग्रहणशील और संवेदनशील होता है।

बाल साहित्य का मूल उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं है, बल्कि बच्चों में नैतिकता, सामाजिकता और पर्यावरणीय चेतना का विकास करना भी है। जब साहित्य में प्रकृति को मानवीय रूप जैसे बोलते हुए पेड़, गाते हुए पक्षी, दुखी होती नदियाँ या मुस्कुराते फूल प्रदान किया जाता है, तो यह "पर्यावरणीय मानवीकरण" (Environmental Personification) कहलाता है। इस शैली से प्रकृति बच्चों के लिए एक जीवंत पात्र के रूप में सामने आती है, जिससे वे न केवल आनंदित होते हैं, बल्कि उसके प्रति करुणा, संवेदनशीलता और संरक्षण का भाव भी अनुभव करते हैं।

भारतीय बाल साहित्य परंपरा में पंचतंत्र, जातक कथाओं से लेकर आधुनिक बाल कहानियों तक पर्यावरणीय मानवीकरण के अनेक उदाहरण मिलते हैं। पेड़ों, नदियों और पशु–पक्षियों को मानवीय गुणों से संपन्न कर प्रस्तुत करने की यह परंपरा बच्चों को यह संदेश देती है कि वे भी मानव समाज की तरह हमारे साथी और सहयोगी हैं। आज के दौर में जब जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास वैश्विक संकट बन चुका है, तब बाल साहित्य के माध्यम से बच्चों को प्रकृति के सौंदर्य और उसकी महत्ता से जोड़ना और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है। पर्यावरणीय मानवीकरण बाल मनोविज्ञान को प्रभावित करते हुए बच्चों को संवेदनशील, कल्पनाशील और जिम्मेदार नागरिक बनने की दिशा में प्रेरित करता है।

मुख्य शब्द :- बाल साहित्य, पर्यावरण, मानवीकरण, पर्यावरणीय मानवीकरण, प्रकृति, पर्यावरणीय सौंदर्य, मनोवैज्ञानिक प्रभाव, पर्यावरण चेतना, नैतिक शिक्षा, बाल मनोविज्ञान, कल्पनाशीलता, संवेदनशीलता, सह–अस्तित्व, जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण संरक्षण।

पर्यावरणीय मानवीकरण की संकल्पना –

साहित्यिक परंपरा में मानवीकरण एक ऐसी अलंकारिक शैली है जिसमें निर्जीव वस्तुओं, प्राकृतिक तत्वों या अमानवीय शक्तियों को मानवीय गुण, भावनाएँ और व्यवहार प्रदान किए जाते हैं। जब यह शैली पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में प्रयुक्त होती है, तो उसे पर्यावरणीय मानवीकरण कहा जाता है। इसमें वृक्षों को बोलते हुए, नदियों को गाते हुए, बादलों को क्रोधित होते हुए या फूलों को मुस्कराते हुए प्रस्तुत किया जाता है। यह साहित्यिक तकनीक बच्चों को प्रकृति के साथ भावनात्मक रूप से जोड़ने का माध्यम बनती है। उदाहरणस्वरूप, बाल कहानियों और कविताओं में प्रायः वृक्ष बच्चों से संवाद करते हैं या पक्षी अपने दुख–सुख साझा करते हैं। इस प्रकार पर्यावरणीय मानवीकरण बच्चों के सामने प्रकृति को एक सजीव पात्र के रूप में उपस्थित करता है, जिससे वे न केवल उसके सौंदर्य का अनुभव करते हैं, बल्कि उसके संरक्षण और संवर्द्धन के प्रति उत्तरदायित्व भी महसूस करते हैं।

बाल साहित्य में मानवीकरण का महत्व –

बाल साहित्य में मानवीकरण का विशेष महत्व इसलिए है क्योंकि यह बच्चों की कल्पनाशील और संवेदनशील मानसिकता से सीधे जुड़ता है। बच्चे अमूर्त विचारों की अपेक्षा ठोस रूपों और सजीव संवादों को अधिक सहजता से समझते हैं। जब वृक्षों को बोलते हुए, नदियों को गाते हुए या पशु–पक्षियों को सोचते–विचारते दिखाया जाता है, तो यह प्रस्तुति उन्हें आकर्षक और रोचक लगती है। इससे न केवल उनके भीतर जिज्ञासा और आनंद की भावना उत्पन्न होती है, बल्कि वे प्रकृति के साथ भावनात्मक रूप से भी जुड़ जाते हैं। मानवीकरण के माध्यम से बाल साहित्य बच्चों को नैतिक शिक्षा, पर्यावरणीय चेतना और सह–अस्तित्व की भावना सहज रूप से प्रदान करता है। उदाहरणस्वरूप, पंचतंत्र की कथाओं में बोलते हुए जानवर बच्चों को चतुराई, सहयोग और नैतिकता का पाठ पढ़ाते हैं। इसी प्रकार, आधुनिक बाल कहानियों में वृक्ष और नदियाँ जब अपने दुख–सुख बाँटते हैं, तो बच्चों के मन में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता और संरक्षण की भावना प्रबल होती है। इस प्रकार, मानवीकरण न केवल साहित्य को रोचक और सजीव बनाता है, बल्कि यह बच्चों के संपूर्ण व्यक्तित्व विकास और पर्यावरणीय दृष्टिकोण निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रमुख रचनाएँ और उनमें पर्यावरणीय मानवीकरण –

बाल साहित्य में अनेक रचनाएँ ऐसी हैं जिनमें पर्यावरणीय मानवीकरण का अत्यंत सशक्त प्रयोग मिलता है। प्राचीन ग्रंथों पंचतंत्र और जातक कथाओं में पशु–पक्षियों को मानववत बुद्धि और व्यवहार से संपन्न दिखाया गया है। इनमें शेर और चूहे का संवाद, लोमड़ी की चालाकी या कबूतरों का सहयोग न केवल बच्चों का मनोरंजन करते हैं, बल्कि उन्हें जीवन–मूल्यों, सह–अस्तित्व और पर्यावरणीय संतुलन की शिक्षा भी देते हैं। आधुनिक बाल साहित्य में भी इस परंपरा को नए रूपों में आगे बढ़ाया गया है। जगत सिंह की प्रसिद्ध कहानी "चंपा का पेड़" में चंपा वृक्ष को मानवीय पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो बच्चों से संवाद करता है, अपनी पीड़ा और अकेलेपन को व्यक्त करता है तथा मनुष्यों की उपेक्षा पर नाराजगी प्रकट करता है। यहाँ पेड़ केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि कहानी का नायक बनकर सामने आता है। इसी प्रकार भारत ज्ञान विज्ञान समिति की "पानी की कहानी" कविता में पानी स्वयं अपनी यात्रा का वर्णन करता हैकृबादल बनना, वर्षा के रूप में गिरना, नदी में बहना और पुनः चक्र में लौटना। इस कविता में मानवीकरण के माध्यम से न केवल बच्चों को जल का महत्व और उसका चक्र सिखाया जाता है, बल्कि वे जल को एक जीवंत और मूल्यवान तत्व के रूप में अनुभव करते हैं। इन

रचनाओं के माध्यम से स्पष्ट होता है कि बाल साहित्य में पर्यावरणीय मानवीकरण बच्चों को प्रकृति के साथ आत्मीय संबंध बनाने और उसके संरक्षण की प्रेरणा देने का सशक्त साधन है।

पर्यावरणीय मानवीकरण का मनोवैज्ञानिक प्रभाव –

बाल साहित्य में पर्यावरणीय मानवीकरण बच्चों के मनोविज्ञान पर गहरा प्रभाव डालता है। जब वृक्षों को बोलते हुए, नदियों को गाते हुए या पशु–पक्षियों को सोचते और संवाद करते हुए प्रस्तुत किया जाता है, तो बच्चा उन्हें केवल निर्जीव या प्राकृतिक वस्तु नहीं मानता, बल्कि अपने समान जीवित और भावनाशील साथी के रूप में अनुभव करता है। इससे उनके भीतर संवेदनशीलता और करुणा विकसित होती है, जो आगे चलकर प्रकृति के संरक्षण की भावना में परिवर्तित हो सकती है। मनोविश्लेषणवादी दृष्टि से देखा जाए तो यह मानवीकरण बच्चों की कल्पनाशक्ति और भावनात्मक विकास को प्रोत्साहित करता है, क्योंकि वे अपनी भावनाओं को इन प्राकृतिक तत्वों पर आरोपित करके आत्मीय संबंध स्थापित करते हैं। जीन पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत के अनुसार, बाल्यावस्था में बच्चा एनीमिज्म (Animism) की प्रवृत्ति के कारण निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव मान लेता है। यही कारण है कि मानवीकरण उसे सहज और वास्तविक लगता है। इस प्रक्रिया से न केवल बाल मन में प्रकृति के प्रति प्रेम और उत्तरदायित्व का भाव उत्पन्न होता है, बल्कि नैतिक चेतना, सामाजिक आचरण और सृजनात्मक सोच के विकास में भी सहायक सिद्ध होता है।

बाल साहित्य में पर्यावरणीय शिक्षा का माध्यम –

बाल साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि बच्चों के लिए शिक्षा और जीवन मूल्यों का संवाहक भी है। जब कहानियों और कविताओं में पेड़ों, नदियों, पर्वतों, पशु–पक्षियों और ऋतुओं को मानवीय रूप देकर प्रस्तुत किया जाता है, तो यह बच्चों के लिए पर्यावरणीय शिक्षा का सहज और रोचक माध्यम बन जाता है। उदाहरणस्वरूप, प्राथमिक कक्षाओं की हिंदी पाठ्यपुस्तकों "रिमझिम" और "मुक्ताभारती" में अनेक ऐसे पाठ शामिल हैं जिनमें वृक्ष बच्चों से संवाद करते हैं, नदियाँ अपनी यात्रा सुनाती हैं और फूल संदेश देते हैं। इन रचनाओं से बच्चों को पेड़–पौधों का महत्व, जल संरक्षण और सह–अस्तित्व की सीख सहज रूप से मिलती है। इस प्रकार, बाल साहित्य में पर्यावरणीय मानवीकरण बच्चों को यह अनुभव कराता है कि प्रकृति केवल उपयोग की वस्तु नहीं, बल्कि जीवन–सहचरी है। शिक्षा शास्त्र की दृष्टि से यह शैली बच्चों के भीतर पर्यावरणीय चेतना, नैतिक उत्तरदायित्व और सामूहिक जीवन मूल्यों को विकसित करती है। वर्तमान समय में जब जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण जैसी समस्याएँ गहराती जा रही हैं, तब बाल साहित्य में पर्यावरणीय शिक्षा की यह भूमिका और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है।

पर्यावरणीय सौंदर्य का चित्रण –

बाल साहित्य में पर्यावरणीय सौंदर्य का चित्रण बच्चों को प्रकृति के सौंदर्य–बोध से जोड़ने का प्रभावी माध्यम है। कहानियों और कविताओं में नदियों की कलकल ध्वनि, पक्षियों की चहचहाहट, फूलों की रंगीन छटा, चाँदनी की शीतलता और पेड़ों की लहराती शाखाएँ जिस जीवंतता के साथ प्रस्तुत की जाती हैं, वह बच्चों की कल्पनाशक्ति और संवेदनशीलता को गहराई से प्रभावित करती है। उदाहरणस्वरूप, श्यामाचरण दुबे की कहानी "पेड़ ने कहा" में वृक्ष स्वयं अपनी सुंदरता और उपयोगिता का वर्णन करते हुए बच्चों को प्रकृति के महत्व से परिचित कराता है। इसी प्रकार, प्राथमिक कक्षाओं की "रिमझिम" पाठ्यपुस्तकों में बगीचे, तितलियों और ऋतुओं

का सौंदर्य इस प्रकार वर्णित है कि बच्चा स्वयं को उस वातावरण का हिस्सा अनुभव करने लगता है। इस सौंदर्यात्मक प्रस्तुति से बच्चों में प्रकृति के प्रति प्रेम, संरक्षण की भावना और सह–अस्तित्व का भाव पनपता है। बाल साहित्य में पर्यावरणीय सौंदर्य का यह चित्रण केवल दृश्य या श्रव्य आनंद तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह बाल मन में प्रकृति को मित्र और सहचर के रूप में स्थापित करता है।

बाल साहित्य में मानवीकरण की सीमाएँ –

यद्यपि मानवीकरण बाल साहित्य को रोचक, सजीव और शिक्षाप्रद बनाने की एक सशक्त शैली है, फिर भी इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। सबसे बड़ी सीमा यह है कि अत्यधिक मानवीकरण कभी–कभी बच्चों को वास्तविकता से दूर कर सकता है। उदाहरणस्वरूप, यदि बच्चा यह मान ले कि पेड़ सचमुच बात करते हैं या नदी सचमुच दुखी होकर रोती है, तो उसकी वैज्ञानिक समझ पर प्रभाव पड़ सकता है। इसी प्रकार, प्रकृति को लगातार मानव गुणों से जोड़ने से बच्चे उसकी वास्तविक जैविक और पारिस्थितिकीय विशेषताओं को कम महत्व दे सकते हैं। कुछ आलोचक यह भी मानते हैं कि मानवीकरण के अधिक प्रयोग से साहित्य तथ्यात्मक ज्ञान देने के बजाय कल्पना की ओर अधिक झुक जाता है, जिससे शिक्षा और वास्तविक पर्यावरणीय समस्याओं की गंभीरता कम हो सकती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि बाल साहित्य में मानवीकरण का प्रयोग संतुलित रूप से किया जाएकृजहाँ वह बच्चों की कल्पना को समृद्ध करे, वहीं उन्हें पर्यावरण की वास्तविकता और संरक्षण की व्यावहारिक जिम्मेदारी से भी जोड़ सके।

निष्कर्ष –

बाल साहित्य में पर्यावरणीय मानवीकरण बच्चों की कल्पनाशक्ति, नैतिक मूल्यों और पर्यावरणीय चेतना को विकसित करने का एक अत्यंत प्रभावशाली साधन है। जब पेड़, नदियाँ, पर्वत और पशु–पक्षी मानवीय रूप धारण कर बच्चों से संवाद करते हैं, तो वे केवल साहित्यिक पात्र नहीं रह जाते, बल्कि जीवन के सहचर बन जाते हैं। यह शैली बच्चों को पर्यावरण के साथ भावनात्मक जुड़ाव प्रदान करती है और उन्हें यह अनुभव कराती है कि प्रकृति मात्र उपयोग की वस्तु नहीं, बल्कि संरक्षित और सम्मानित करने योग्य अस्तित्व है। इससे बच्चों में जिम्मेदारी, सह–अस्तित्व और संरक्षण की भावना का विकास होता है, जो भविष्य में उन्हें संवेदनशील और जागरूक नागरिक बनने की दिशा में प्रेरित करता है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि पर्यावरणीय मानवीकरण न केवल बाल साहित्य को रोचक और शिक्षाप्रद बनाता है, बल्कि यह बच्चों के भीतर प्रकृति को "अपना" समझने का भाव भी गहराई से स्थापित करता हैकृएक ऐसा भाव जिसकी आज के संदर्भ में, जब पृथ्वी पर्यावरणीय संकटों से जूझ रही है, अत्यधिक आवश्यकता है।

संदर्भ –

1. Baldick, Chris. The Oxford Dictionary of Literary Terms. Oxford University Press, 2015.
2. दुबे, श्यामाचरण. पेड़ ने कहा. बालभारती प्रकाशन।
3. Piaget, Jean. The Origins of Intelligence in Children. International Universities Press, 1952.
4. सिंह, जगत (2011). चंपा का पेड़. बाल भारती प्रकाशन।
5. भारत ज्ञान विज्ञान समिति. पानी की कहानी।
6. NCERT (2019). रिमझिम भाग 3–5, हिंदी पाठ्यपुस्तकें।
7. दुबे, श्यामाचरण. पेड़ ने कहा. बाल भारती प्रकाशन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 421-425

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'गाँधी और सरलादेवी चौधरानी : बारह अध्याय' उपन्यास में अभिव्यक्त स्त्री अस्मिता

मिनी. एन
शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, तिरुवनंतपुरम, केरला।

शोध सार :–

समकालीन हिंदी साहित्य की जानी–मानी लेखिका अलका सरावगी उपन्यास साहित्य के अप्रतिम हस्ताक्षर है। आपका संपूर्ण उपन्यास सामाज एवं साहित्य को आगे बढ़ाने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। आपके उपन्यासों के हर एक स्त्री पात्रों ने हिन्दी साहित्य जगत में अपना अलग स्थान हासिल किया है। आपके उपन्यास स्त्री विमर्श का सशक्त उदाहरण हैं। अलका जी ने अपने हर उपन्यास स्त्रियों की समस्याओं पर प्रश्न करते हुए शुरू करती है तथा स्त्री के अस्तित्व की तलाश की पूर्ति पर खत्म कर देती है। आपके अधिकांश उपन्यासों के मूल शब्द है– 'अस्मिता की पहचान' यानी 'आइडेंटिटी क्राइसिस'। आपके नया और चर्चित उपन्यास 'गाँधी और सरलादेवी चौधरानी : बारह अध्याय' में स्त्री अस्मिता की पहचान को शब्दबद्ध करने का प्रयास किया गया है। साहित्य और समाज में हाशियएकृत स्त्रियों के स्मरण करके, उनकी अस्मिता पर गर्व करना, स्त्रियों को आगे बढ़ाने की शक्ति देना वर्तमान काल के जरूरत भी है।

बीज शब्द : समकालीन हिंदी साहित्य में अलका सरावगी – उपन्यासकार अलका सरावगी, साहित्य और समाज – पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री, समाज में स्त्री–पुरुष सहभागिता – मनुवादी समाज, परिवार में स्त्री की नियति – स्त्री की पारिवारिक संघर्ष, चंगुल में फसनेवाली स्त्री तथा उनकी मानसिक तनाव – भारतीय इतिहास में स्त्री, सशक्त स्त्री – स्त्री की स्वतंत्र और आत्मनिर्भर जीवन – राजनैतिक क्षेत्र में स्त्री – राजनैतिक कार्यकर्ता के रूप में स्त्री – स्त्री – उपहास के पात्र के रूप में – राजनीति के पितृसत्तात्मक तन्त्र – हाशियाकृत स्त्री – स्त्री अस्मिता की पहचान – अस्तित्व के लिए संघर्ष – स्त्री विद्रोह – वर्तमान समाज में स्त्री अस्तित्व – स्त्री के लिए शक्ति एवं प्रेरणा।

विषय चयन :–

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य क्षेत्र में अलका सरावगी का अप्रतिम स्थान है। समकालीन हिंदी साहित्य जगत के महत्वपूर्ण उपन्यासकार अलका सरावगी जी के प्रथम उपन्यास 'कलि–कथा : वाया बईपास' ने साहित्य जगत में काफी प्रशंसा पाई। अलका जी का नया और आठवां उपन्यास है 'गाँधी और सरलादेवी चौधरानी : बारह अध्याय'। वाणी प्रकाशन द्वारा 2023 जनवरी में इसका प्रकाशन हुआ। यह उपन्यास प्रकाशन से ही गर्म चर्चा का

विषय बना हुआ है।

इस उपन्यास के मुख्य पात्र के रूप में आते हैं भारतीय इतिहास के दो प्रमुख चरित्र गाँधी जी और सरलादेवी चौधरानी। गौण पत्र के रूप में आते हैं भारतीय स्वतंत्रीय संग्राम और पुनरुद्धोंनवादी आंदोलन के प्रमुख पात्र रामभजदत्त चौधरी, बंकिमचंद्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर, विवेकानंद, राजगोपालाचार्य, स्वर्णकुमारी देवी, कस्तूरबा गाँधी, ठाकुरमणि, दीपक जैसे अनेक पात्र। उपन्यास का समय बीसवीं सदी के ब्रिटिश भारत का बहुत छोटा सा हिस्सा है। उपन्यास 1919 अक्टूबर 24 से 1945 तक की गाँधी और सरला देवी की कथा है। इस उपन्यास में कुल बारह अध्याय है। पहला अध्याय– 'आपकी हँसी तो हिंदुस्तान की सम्पदा है' और अंत का अध्याय है – 'क्या तुम मेरी वैसी आध्यात्मिक पत्नी हो'।

मोहनदास करमचंद गाँधी और सरलादेवी के पत्रों एवं उनके मनोविचारों को काल्पनिकता की ध्वनि देकर अलका जी ने एम.के. गाँधी और सरलादेवी चौधरानी को साहित्य में उभारने का प्रयास किया है। इतिहास और कल्पना का संयोग इस उपन्यास की ख्याति को बढाता है। साथ–ही–साथ यह रचना सरलादेवी चौधरानी को इतिहास के पन्नों में अपनी जगह बनाने के लिए सहायक सिद्ध भी है।

गाँधीजी के बारे में एक भूमिका की जरूरत नहीं है क्योंकि वे इतिहास में भरे हुए हैं या फिर कह सकते हैं कि वे खुद एक इतिहास है। सरलादेवी चौधरानी भी इतिहास में एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति है किंतु उनकी पहचान बताने के लिए उनकी कुल, परिवार और अन्य नामी पुरुष व्यक्तित्व के भी नाम लेने होंगे, मगर उन्हें जानने के लिए इतिहास की गहराइयों में उतरना होगा।

सरलादेवी चौधरानी कलकत्ता के जोड़ासांको के टैगोर परिवार का हिस्सा है उनकी माँ स्वर्णकुमारी देवी है, जो रवीन्द्रनाथ टैगोर की बहन तथा बंगला की पहली महिला उपन्यासकार है। सरलादेवी जी को इतिहास के पन्नों में किसी कोने में गाँधीजी की 'आध्यात्मिक पत्नी' के नाम से संबोधित किया गया है। वे 'अग्निधर्म देशभक्त पंजाबी वकील' तथा उर्दू अखबार 'हिंदुस्तान' के संपादक रामभज दत्त चौधरी की बीवी है।

उपन्यास में सरलादेवी की पहचान अलका जी इस तरह देती है– "बंगाल के घर–घर में लोग उसे जानते रहे हैं। कोई उसे बंगाल की 'जॉन ऑफ अर्क' कहता था, कोई दुर्गा–काली का अवतार। अंग्रेजों ने बंगाली बाबू या क्लर्क की जो दब्बू, स्त्रीनुमा, नाजुक आदमी की छवि सबके दिमाग में बना दी थी, उसे बदलने के लिए सरलादेवी ने कलकत्ता के मोहल्ले–मोहल्ले में युवकों को व्यायाम, कुश्ती, तलवारबाजी और लटठबाजी सिखाने के लिए क्लब खुलवा दिए थे।"[1] ये सरलादेवी या 'बंगाल की बेटी', 'वंदेमातरम्' गीत का सुर पूरा करनेवाली व्यक्ति भी है।

इतने होने पर भी हमारे पुरुषसत्तात्मक समाज के इतिहास में उनका स्थान क्या है? स्वराज आंदोलन की महिला कार्यकर्ताओं में भगिनी निवेदिता और मीरा बेन जैसे विदेशी नामों का जिक्र है लेकिन इसमे 'सरलादेवी चौधरानी' जैसा नाम कहीं दिखा नहीं। गार्गी की तरह वह भी प्रश्न पूछती थी शायद इसलिए उसका स्थान था इतिहास से दूर। इतिहास ने बड़े नामों का गल्प लिखते समय हाशिए पर भी उसे जगह नहीं दी क्योंकि वह पुरुष सत्तात्मक समाज में पुरुषों पर सवाल उठाने वाली थी। उपन्यास में एक जगह वह सवाल करती है– "कांग्रेस में औरत को कानून तोड़ने के लिए आगे रखा कानून बनाते वक्त क्यों नहीं?"[2]

सरला देवी जी स्वतंत्र और आत्मनिर्भर जीवन जीना चाहती थी। उन्हें अपने भाइयों की तरह शिक्षा प्राप्त

कर लेने और उनकी तरह अपने पांव पर खड़े होने की इच्छा थी। यह प्रमाणित करना भी वह जरूर चाहती थी। शादी न कर अकेले, नौकरी के लिए घर से जाना टैगोर परिवार की औरतों के लिए क्रांति से कम बात नहीं थी। इसके लिए पहला कदम सरला ने रखा।

समाज हमेशा मनुवादी ही निकलता है। क्योंकि स्त्री अपने इच्छानुसार नहीं दूसरे की धारणाओं के अनुसार जीने के लिए बाध्य हो जाती है। उपन्यास में एक जगह स्वतंत्र जीवन बिताने वाले सरलादेवी माँ से कहती है– "लोगों की बातों से मुझे फर्क नहीं पड़ता, तो माँ ने साफ कहा लेकिन मुझे और पिता को फर्क पड़ता है।"[3] इसी तरह कहते–कहते स्त्री के उपर सारे उत्तरदायित्व को थोप देते हैं। उन्हें 'शक्तिशाली' कहकर 'सहनशक्ति का प्रतीक' बताकर सभी उत्तरदायित्यों से उनके पैर जंजीरों से बांध देते हैं तथा 'पूर्ण स्त्री' बनाने की कोशिश भी करते हैं। यहां सरलादेवी को भी अपने इच्छानुसार काम करने के लिए माँ–बाप, दादा जैसे पूरे परिवार से इजाजत लेनी पड़ती है फिर स्वतंत्रता आंदोलन की कार्यकर्ता बनाते वक्त भी अपने पति और पति के परिवारवालों की निगाहों से तनावग्रस्त होती है। कभी–कभी सब कुछ छोड़कर कहीं भागने का निर्णय भी लेती है। कभी महसूस करती है 'अपनी अस्मिता को गिराकर इंसान मरे हुए सामान हो।"[4] सरलादेवी अस्तित्व होते हुए भी अस्तित्वहीन जीवन बिताती हैं। उनकी समस्या उनकी 'कोई न होने' की समस्या है यानी 'आइडेंटिटी क्राइसिस'। अस्मिता का अर्थ है स्वयं ही पहचान। यह एक संस्कृत शब्द है, शाब्दिक अर्थ का तात्पर्य है– व्यक्ति या समुदाय की अपनी विशिष्ट पहचान। स्त्री अस्मिता का अर्थ होता है– स्त्रियों में स्वत्व, स्वाभिमान और अपनी अस्तित्व की भावना होना। पुरुषसत्तात्मक समाज में स्त्री आत्मसम्मान से जिन चाहती है। अतः वे अपने अस्तित्व को स्थापित करने के लिए संघर्ष करना पड़ती है। स्त्री के लिए अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व को खोना पीड़ादायक स्थिति जरूर है। यह तो छोटी बात नहीं है, जो स्त्री कलकत्ता और पंजाब के युवा लड़कियों की प्रेरणा स्रोत बनी, उस सरलादेवी के लिए अपने अस्तित्व को खो देना मुत्यु के समान वेदना देता है।

सरलादेवी जी को अपने अस्तित्व की गरिमा पर गर्व है उन्हें राजगोपालाचार्य ने एक ऐसे अपमानजनक पत्र के द्वारा 'शैतान' की संबोधना की थी। पत्र का छोटा सा भाग इस तरह है "......सरला आश्रम की मिस फायरिंग के जूतों की रस्सी बांधने लायक भी नहीं है........ सूर्योदय के सूरज–सी श्रीमती गाँधी के सामने किरासन के तेल की ढिबरी के सामान है। महादेव देसाई जिसे सरला की सुंदरता और महानता समझने की भूल कर रहे हैं, वह कोबरा सांप के सिर की सुन्दरता जैसी है। गाँधी ने न सिर्फ खुद को, बल्कि संपूर्ण साधुता को, पवित्रता को, वैराग्य को, हिंदुस्तान की सारी आशाओं को अकथनीय लज्जा और नष्ट होने के कगार पर खड़ा कर दिया है"[5]। राजगोपालाचारी के शब्द सरलादेवी की "आंखो के सामने जैसे खडे हुए उस पर अंगुली उठा रहे हैं"[6]। यह पत्र उसकी अस्मिता को, उसकी वजूद को तार–तार करने का हेतु बनती हैं। इसी संदर्भ में हमे यही याद करना चाहिए कि पुरातन समय से ही परंपरागत रीति से हटकर चलनेवाली स्त्रियों को डायन, राक्षसी, कुल्टा, पिशाचिनी, शैतान जैसे शब्दों से नीचा दिखाया जाता है। ये 'नीचे दिखानेवाले काम' तो समाज में सही ढंग से चल रही है। इसका उत्तम उदाहरण है सरलादेवी तथा सरलादेवी जैसे अनेक महनीय व्यक्तित्व।

उपन्यास में सरलादेवी की बंगाली दाई ठाकुरमणि सरलादेवी से प्रश्न करती है– "दीदी, तुम बंकिमचंद्र की देवी चौधरानी हो तुम्हें किसी की इतनी बातों क्यों सुननी–चाहे वह महात्मा ही क्यों न हो....?"[7] यहां ठाकुरमणि द्वारा अलका जी कहती हैं कि 'अपने अस्तित्व के दीपक को किसी भी वजह से बुझाने की आवश्यकता नहीं है'।

यहां यह भी जोड़ा जा सकता है कि हमेशा हम कहते हैं कि शिक्षा और यात्राएं स्त्री को स्वतंत्र बनाती है लेकिन यहाँ सरलादेवी तो टैगोर परिवार की सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत व्यक्तित्व है, उनको देश–दुनिया की तमाम बातों की विशेष जानकारी है। उसी समय में हिंदुस्तान में इतनी यात्राएं कर चुकी शायद कोई स्त्री नहीं था फिर भी वो तो हाशिए पर हैं।

सरलादेवी चौधरानी की जिदगी का प्रमाण है कि समाज में पढ़ी–लिखी हो कर किसी क्षेत्र में पुरुष के बराबर हो या उससे अलग कुछ बने तो स्त्री को सचमुच इसकी कीमत देनी पड़ती है। क्योंकि "कोई पुरुष स्त्री को अपने बराबर खड़ा हुआ नहीं देख सकता"[8]। जैसे हम सरलादेवी चौधरानी को अपनी जिंदगी की सारी खुशियां न्योछावर कर देनी पड़ी और अंत में "भारतीय राजनीति के पित्तृसत्तात्मक तन्त्र और नारी–प्रश्न की अवहेलना से क्षुब्ध होकर सक्रिय राजनीति से संन्यास ले लिया और आचार्य विजय कृष्णदेव शर्मा को अपना गुरु मानकर आध्यात्मिक जीवन अपना लिया"[9]। सरलादेवी के प्रतिभा धनी व्यक्तित्व एवं अस्मिता मनुवादी चिंतकों एवं व्यक्तियों को ईर्ष्यालु और भयालु बना। इस कारण सक्रिय राजनीति में कही वे पुरुष के समान या पुरुषों से आगे बढ़ जाए, इस बात के डर ने ही उन्हें हाशिए में किया। खुद को हाशिए में रखने वाले पुरुषवर्चस्ववादी समाज से मुक्ति एवं विरक्ति के रूप में सरलादेवी चौधरानी ने सक्रिय राजनीति से संन्यास लिया था वह भी एक तरह का विद्रोह है, आंदोलन है।

ऐसी बहुत सारी सरलादेवी हमारे आसपास है जिनकी कहानी अभी भी अनकही है वे ऐसी ही जीते है और अपनी कहानी समाज के सामने बिना बताए मर जाते हैं। ऐसी सरलादेवी स्त्रियों का एक उदाहरण तो आपके सामने प्रस्तुत करना इस उपन्यास का उद्देश्य ही रहा। इस उपन्यास में अस्तित्व की समस्या मुख्य विषय है। यहाँ सरलादेवी चौधरानी की तरह स्वर्णकुमारी देवी, कस्तूरबा गांधी, कादंबरी, अनसूया बेन, जैसे अनेक स्त्रियों का जिक्र किया गया है वे सब अपने आप में अस्मिता की तलाश कर रही हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि आज का समाज पुरुषवर्चस्ववादी मानसिकता को अपनाए हुए है और स्त्री को हाशिए में रखा हुआ है। यह एक नई कहानी नहीं है। इसी कारण किसी भी स्त्री का नाम हमेशा एक पुरुष के नाम के बाद लिया जाता है, 'चाहे वह पिता हो, पति हो, भाई हो, पुत्र हो' लेकिन हम आशा कर सकते हैं कि भविष्य में ऐसा न हो और हाशिएकृत स्त्री उससे ऊपर उठकर अपनी अस्मिता में किसी भी कुल, जाति, वर्ण या पुरुष के नाम से ऊपर अपने नाम से जानी जाये। इसके लिए 'सरलादेवी चौधरानी' की कहानी एक नई प्रेरणा बने।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. गांधी और सरलादेवी चौधरानी : बारह अध्याय –वाणी प्रकाशन, प्र.सं–2023, पृ–5
2. गांधी और सरलादेवी चौधरानी : बारह अध्याय – पृ–1
3. वही, पृ–130
4. वही, पृ–204
5. वही, पृ–164
6. वही, पृ–164

7. वही, पृ–168
8. वही, पृ–189
9. वही, पृ–215
10. हिंदी उपन्यास समकालीन विमर्श : डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 2000
11. स्त्री अध्ययन की बुनियाद : प्रमिला के. पी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं– 2015
12. महिला उपन्यासकार : एक मूल्यांकन– प्रो. इशरत खान, विद्या प्रकाशन, कानपुर, सं– 2014
13. भारतीय नारी अस्मिता की पहचान : उमा शुक्ल, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं– 2009
14. आठवें दशक की लेखिकाओं के उपन्यासों में व्यक्त स्त्री चरित्रय डॉ. सविता चोखोबा कीर्त, विनय प्रकाशन, कानपुर, प्र. 2007
15. हिन्दी उपन्यास समकालीन विमर्श : डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, अमन प्रकाशन, प्र.सं–2000
16. Feminism : A very short introduction – Margret Walters, Oxford University Press, New York, Ed-2005
17. Gandhi – The years that changed the world - Macmillan India Ltd, Delhi, Ed-2006
18. Bengali Culture : Over A Thousand Years – Gulam Murshid- Niyogi Books, Block-D, New Delhi, Ed-2018

PH: 8086146689

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 426-428
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान परंपरा और लोक संस्कृति का हिंदी साहित्य में महत्व

Vinitha K.
Research Scholar, Dakshin Bharath Hindi Prachar Sabha, Chennai.

भारतीय ज्ञान परंपरा और लोक संस्कृति का हिंदी साहित्य में अत्यधिक महत्व है। यह न केवल भारत की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करता है, बल्कि समाज के मूलभूत तत्वों, मान्यताओं और जीवन दृष्टिकोण को भी उजागर करता है। इसे समझने के लिए हमें भारतीय ज्ञान परंपरा और लोक संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को विस्तार से देखना होगा।

भारतीय ज्ञान परंपरा : एक परिचय –

भारतीय ज्ञान परंपरा दो प्रमुख धाराओं में प्रवाहित होती है : वाचिक (मौखिक) परंपरा और लिखित परंपरा।

1. वाचिक परंपरा :

वाचिक परंपरा में बोला गया शब्द महत्वपूर्ण होता है। यह पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से प्रसारित होता रहा है। इसमें वेद, उपनिषद, पुराण, लोकगीत, लोककथाएँ आदि शामिल हैं। यह ज्ञान अनुभव आधारित होता है और इसे समाज ने अपनी कसौटी पर खरा पाया है।

उदाहरण : ऋग्वेद जैसे ग्रंथों में मौखिक रूप से संरक्षित मंत्र और स्तोत्र।

2. लिखित परंपरा :

लिखित परंपरा में अनुभव और चिंतन को लिपिबद्ध किया गया। महाभारत, रामायण, गीता जैसे महाग्रंथ इस श्रेणी में आते हैं। ये ग्रंथ न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं बल्कि इनमें सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक शिक्षा भी समाहित है।

3. प्राकृतिक तत्वों का महत्व :

भारतीय ज्ञान परंपरा प्रकृति के साथ गहरे संबंध को दर्शाती है। पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) को मानव अस्तित्व का आधार माना गया है। यह विचारधारा हिंदी साहित्य में बार–बार प्रकट होती है।

लोक संस्कृति : एक परिचय :

लोक संस्कृति का अर्थ सर्वसामान्य जनता की संस्कृति से है जो उनके जीवन के हर पहलू को प्रभावित करती है। यह संस्कृति सामूहिक पहचान का प्रतीक होती है और इसमें रीति–रिवाज, त्योहार, गीत–कथाएँ आदि

शामिल होते हैं।

1. **लोक साहित्य का स्वरूप :**

लोक साहित्य वह साहित्य है जो "लोक द्वारा", "लोक के लिए" तथा "लोक की भाषा" में रचा जाता है। इसमें लोकगीत (सोहर, कजरी), लोककथाएँ (पंचतंत्र), कहावतें (घाघ–भड्डरी की कहावतें), लोकोक्तियाँ आदि शामिल हैं।

यह साहित्य समाज की भावनाओं और मान्यताओं का दर्पण होता है।

2. **लोक संस्कृति के तत्व :**

आध्यात्मिक तत्व : इसमें स्वर्ग–नरक की धारणा, पुनर्जन्म, कर्मकांड आदि आते हैं।

लौकिक तत्व : इसमें सामाजिक उत्सव, पर्व–त्योहार (होली, दिवाली), वेशभूषा, कला–कौशल आदि शामिल हैं।

3. **लोक जीवन की अभिव्यक्ति :**

लोक गीतों और कथाओं में ग्रामीण जीवन की सरलता झलकती है।

उदाहरणस्वरूप सोहर गीत जन्मोत्सव के समय गाए जाते हैं, चैता गीत फसल कटाई के समय गाए जाते हैं।

4. **संस्कृति का सामाजिक पक्ष :**

- जन्म से मृत्यु तक होने वाले संस्कार जैसे नामकरण संस्कार या विवाह संस्कार।
- रीति–रिवाज जैसे पूजा–पाठ या तीज–त्योहार।

5. **संस्कृति का साहित्यिक पक्ष :**

इसमें सोहर गीत (जन्मोत्सव), निर्गुण भजन (आध्यात्मिक चिंतन), छठ गीत (धार्मिक अनुष्ठान) आते हैं।

हिंदी साहित्य में इनका योगदान :

1. **ज्ञान परंपरा का प्रभाव :**

तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस भारतीय आध्यात्मिकता एवं नैतिकता का प्रतीक बनकर उभरी। कबीरदास ने अपने दोहों में भारतीय दर्शन एवं भक्ति आंदोलन को प्रस्तुत किया।

2. **लोक संस्कृति का प्रभाव :**

प्रेमचंद जैसे लेखकों ने अपने उपन्यासों (गोदान, गबन) में ग्रामीण भारत की समस्याओं एवं उनकी सांस्कृतिक जड़ों को चित्रित किया।

सूरदास ने अपने पदों में ब्रज क्षेत्र की लोक संस्कृति को अमर कर दिया।

3. **समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण :**

हिंदी साहित्य ने समाजशास्त्रीय अध्ययन हेतु एक आधार प्रदान किया। इसके माध्यम से इतिहासकारों एवं समाजशास्त्रियों ने भारत की प्राचीन सभ्यता एवं सांस्कृतिक मूल्यों को समझा।

4. वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं चिकित्सा पद्धति :

घाघ–भड्डरी जैसे कवियों द्वारा रचित कहावतें आज भी कृषि विज्ञान एवं मौसम विज्ञान के संदर्भ में उद्धृत होती हैं।

5. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान :

भारतीय लोक साहित्य अब वैश्विक मंचों तक पहुँच चुका है। सिनेमा एवं दूरदर्शन ने इसे प्रचारित करने में अहम भूमिका निभाई।

निष्कर्ष :

भारतीय ज्ञान परंपरा और लोक संस्कृति हिंदी साहित्य की आत्मा मानी जा सकती हैं। ये दोनों ही न केवल हमारे अतीत को संरक्षित करती हैं बल्कि वर्तमान पीढ़ी को अपनी जड़ों से जोड़ने का कार्य करती हैं। हिंदी साहित्य इन दोनों धाराओं को समेटकर एक ऐसा माध्यम बनाता है जो सत्यं शिवं सुंदरम् के आदर्शों को जीवंत रखता है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 429-432
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. मुकेश कुमार ऋषि वर्मा और डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की कविताओं में सामाजिक यथार्थ और मानवीय चेतना का स्वर

डॉक्टर सुषमा रानी
अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
स्नातन धर्म हिन्दी महाविद्यालय, पलवल।

सारांश :

डॉ. मुकेश कुमार ऋषि वर्मा और डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट समकालीन हिंदी कविता के दो सशक्त हस्ताक्षर हैं, जिनकी कविताएँ न केवल जीवन के गूढ़ यथार्थ को उद्घाटित करती हैं, बल्कि समाज, मनुष्य और मूल्यबोध की संवेदना को भी जीवंत बनाती हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में इन दोनों कवियों की चुनी गई कविताओं के माध्यम से मनुष्य की अंतःपीड़ा, सामाजिक असमानता, नैतिक पतन, संवेदना के ह्रास तथा आत्मबोध के स्वर को विश्लेषित किया गया है। इनकी कविताएँ सामाजिक चेतना के साथ–साथ आत्मसाक्षात्कार की यात्रा भी हैं।

मुख्य शब्द : सामाजिक यथार्थ, मानवीय मूल्य, संवेदना, आत्मबोध, नैतिकता, जीवन–दर्शन।

प्रस्तावना :

समकालीन हिंदी कविता ने बीते कुछ दशकों में जीवन के विविध पहलुओं को बड़ी सजीवता से अभिव्यक्त किया है। डॉ. मुकेश कुमार ऋषि वर्मा और डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की कविताएँ इसी परंपरा की प्रखर कड़ी हैं, जिनमें व्यक्ति, समाज, समय और संवेदना के बीच जूझता हुआ मनुष्य दिखाई देता है।

डॉ. वर्मा की कविता में जहां आमजन के संघर्ष और सामाजिक विषमता की पीड़ा झलकती है, वहीं डॉ. सिहाग की कविता में मानवीय करुणा, समय–बोध, आत्ममंथन और नैतिक प्रश्नों का गहरा प्रतिबिंब है।

डॉ. मुकेश कुमार ऋषि वर्मा की कविताओं में जीवन और समाज का द्वंद्व :

(क) कैसा ये जीवन : भौतिकता और संतोष का प्रश्न :

कविता "कैसा ये जीवन" में कवि आधुनिक मनुष्य की असंतोषजन्य स्थिति पर तीखा प्रहार करते हैं। भौतिक संपन्नता के बावजूद मनुष्य के भीतर की रिक्तता और आत्मसुख का अभाव कवि की प्रमुख चिंता है–

ईश्वर ने हाथ दिए, हृदय दिया, पेट दिया,
दी सुंदर आंखें, परंतु हुजूर को संतोष कहां?

यह प्रश्न आधुनिक सभ्यता के खोखलेपन को उजागर करता है। मनुष्य भौतिक इच्छाओं की मृग–मरीचिका

में इतना उलझ चुका है कि आत्मशांति उससे दूर होती जा रही है।

(ख) जो कभी न डूबे : संघर्ष और परिवर्तन की आकांक्षा :

यह कविता जन–संवेदना की गहराई से जुड़ी है। कवि स्वयं को समाज की पीड़ा का प्रवक्ता मानता है–

गरीब की क्या पीड़ा होती है,

ए संसद! तुझे बताना चाहता हूं।

यहां कवि सत्ता से प्रश्न करता है, और अपने लेखन के माध्यम से सामाजिक न्याय का संदेश देता है। कविता का समापन अत्यंत प्रेरक है –

अंधेरों से लड़कर प्रकाश आएगा,

जो कभी न डूबे, ऐसा सूरज उगाना चाहता हूं।

यह पंक्तियाँ कवि के सामाजिक आशावाद और परिवर्तन की दिशा में उसके विश्वास को प्रकट करती हैं।

(ग) दर्द अपना छिपाकर : आत्मबल और सहनशीलता की कविता :

इस कविता में कवि ने जीवन की कठिनाइयों को झेलते हुए मुस्कुराने की कला को जीवन–सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया है।

दर्द अपना छिपाकर हम मुस्कुराते रहे..।

यहां कवि मानवीय धैर्य का महत्त्व रेखांकित करते हैं। यह कविता पीड़ा में भी जीवटता का प्रतीक है।

(घ) दौलत : नैतिक पतन पर प्रहार :

कविता "दौलत" में डॉ. वर्मा ने समाज के उन वर्गों को लक्ष्य किया है जो धनलिप्सा में नैतिकता खो चुके हैं –

चस्का लगा जिन्हें काले धन का,

लूट–लूट स्विस बैंक हैं भरते...।

कविता समाज के आर्थिक अन्याय, भ्रष्टाचार और अमीर–गरीब के बढ़ते अंतर को उद्घाटित करती है। कवि का नैतिक आग्रह स्पष्ट है कि अंततः धन और शोहरत मिट्टी में मिल जाते हैं।

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की कविताओं में मानवीय चेतना और सामाजिक सरोकार :

(क) बरसात की बात : विनम्रता और अहंकार का पाठ :

यह नज़्म प्रकृति और जीवन के दर्शन का अद्भुत उदाहरण है। बरसात के बहाने कवि यह संदेश देते हैं कि कोई भी स्थिति स्थायी नहीं –

बरसात आई तो बस इतना समझा गई

किसी की भी गर्मी, हमेशा नहीं रहती।

यह पंक्तियाँ जीवन में नम्रता और परिवर्तनशीलता के महत्व को उजागर करती हैं।

(ख) समय की सदी एवं समय : अस्तित्व और कालचेतना :

डॉ. सिहाग की "समय" विषयक कविताएँ मानव जीवन की गति और परिवर्तन के गहरे दार्शनिक पक्ष को सामने लाती हैं–

समय कल भी था – मौन सा खड़ा,
कुछ कह न सका, मगर बहुत कुछ जता गया।

समय यहां केवल भौतिक प्रवाह नहीं बल्कि आत्मनिरीक्षण का प्रतीक है। कवि के अनुसार जो व्यक्ति समय को समझ लेता है, वही जीवन को सार्थक बना सकता है।

(ग) विश्व बाल श्रम दिवस : सामाजिक अन्याय के विरुद्ध स्वर :

इस कविता में कवि ने बाल श्रम जैसी अमानवीय सामाजिक समस्या को गहन संवेदना के साथ उठाया है–

छोटे–छोटे हाथों में, ना हो बोझ मजदूरी का,
हर बच्चा हकदार है, बचपन की मजबूरी का।

कवि समाज से आग्रह करता है कि बच्चों को शिक्षा, खेल और मुस्कुराहट का अधिकार मिले। यह कविता सामाजिक सुधार की दिशा में एक सार्थक हस्तक्षेप है।

(घ) हर जर्रे में तेरा नाम है : ईश–भक्ति और प्रेम का विस्तार :

यह नज्म भक्ति और प्रेम के सम्मिलित भाव का प्रतीक है –

हर सांस में तू बसा हुआ,
हर धड़कन तेरा गाने है।

यहां कवि ईश्वर और सृष्टि के एकत्व की अनुभूति करता है। यह कविता आत्मिक शांति और विश्वप्रेम का संदेश देती है।

तुलनात्मक विश्लेषण :

- डॉ. मुकेश कुमार ऋषि वर्मा और डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट, दोनों कवि सामाजिक चेतना के कवि हैं।
- 'डॉ. वर्मा' की कविता जहां यथार्थ की कठोरता और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का स्वर है,
- वहीं 'डॉ. सिहाग' की कविता आत्मचिंतन, नैतिक पुनर्जागरण और मानवता के पुनर्निर्माण की दिशा में अग्रसर है।
- दोनों कवि जीवन के दो छोरों को जोड़ते हैं – एक ओर पीड़ा और अन्याय के विरुद्ध आवाज, दूसरी ओर प्रेम, करुणा और समय की चेतना।

निष्कर्ष :

- दोनों कवियों की रचनाएँ आधुनिक हिंदी कविता को नयी दिशा प्रदान करती हैं।

- जहां डॉ. वर्मा समाज के निचले तबके की पीड़ा, असमानता और नैतिक प्रश्नों को अपनी कविताओं में उकेरते हैं, वहीं डॉ. सिहाग जीवन–दर्शन, समय–चेतना, और मानवीय करुणा के माध्यम से संवेदना को विस्तार देते हैं।
- दोनों के काव्य में एक साझा बिंदु है – "मनुष्य के भीतर का मनुष्य" खोजने की ईमानदार कोशिश।

संदर्भ सूची :

1. Mukesh Kumar Rishi Verma. (2025). कैसा ये जीवन, जो कभी न डूबे, दर्द अपना छिपाकर, दौलत [Unpublished poems].
2. Naresh Sihag, Dr. (2025). बरसात की बात, समय की सदी, समय, विश्व बाल श्रम दिवस पर कविता, हर जर्रे में तेरा नाम है [Unpublished poems].
3. Gandhi, M. K. (1927). My Experiments with Truth. Navjivan Publishing House.
4. Prasad, J. (1952). Chhayavad aur uske baad. Rajpal & Sons.
5. Rai, A. (2018). Samkaleen Kavita Mein Samvedna aur Vimarsh. Vani Prakashan.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 433-436
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्वंय प्रकाश की कहानियों में समकालिनता

लूर्द मेरी
पीएच डी शोधार्थी,
उच्च शिक्षा विभाग और शोध संस्थान,
दक्षिण भारतीय हिन्दी प्रचार सभा, चेन्नै–600077

स्वयं प्रकाश हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण समकालीन कथाकारों में एक प्रमुख नाम हैं। समकालीन लेखक की सबसे पहली पहचान यह है कि वह अपने समय के सवालों के प्रिं किस तरह के क्रिया प्रतिक्रिया करता है। उठाये गये सवालों के प्रति वह कितना गंभीर हैं रचनात्मक प्रतिक्रिया और सवालों के प्रति गंभीरता जितनी गहन होगी, उतनी ही उसकी समकालीनता सुनिश्चित होगी।

उनकी कहानियाँ समाज की जटिलताओं, राजनीतिक विडंबनाओं, सामाजिक विसंगतियों और आम आदमी की पीड़ा को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती हैं। उनकी कहानियाँ केवल मनोरजंन नहीं करती, बल्कि समकालिन यथार्थ को चुनौती देती है और पाठकों को सोचने पर मजबूर करती है। वे कहानी को बेहद साधारण जीवन से उठाते हैं, एक ऐसा जीवन जो हमारा अत्यंत परिचित और अनुभवों की दृष्टि से बेहद नजदीकी हैं। अपने से लगते जीवन और चरित्रों को उठाकर वे किसी अतिनाटकीय वातावरण या घटनाओं की रचना नहीं करते। उनकी कहानियाँ साधारण जीवन के साधारण चरित्रों, जीवन–स्थितियों, घटनाओं और उतार–चढ़ावों से बुनी जाती हैं। किसी तरह के विशिष्ट या विचित्र चरित्रों के मनोविज्ञान को व्यक्त करने का आकर्षण भी उनमें नहीं मिलता।

अपने समय और समाज की प्रतिनिधि कथा या रूपक की ओर स्वयं प्रकाश की रूझान नहीं हैं। वे कविताई से परहेज करने वाले कहानीकार हैं। इस तरह वे पक्की और शुद्ध कहानियाँ रचते हैं।

इस शोध का मूल उद्देश्य स्वंय प्रकाश की कहानियों में समकालिनता बोध की खोज और विश्लेषण है, जो वर्तमान समाज, राजनीति, संस्कृति और मानव संबंधों की गहराइयों में पैठ रखता है।

समकालिनता का अर्थ किसी विशेष काल, समाज या प्रवृति से जुड़ी वर्तमान स्थिति और चेतना से होता है। यह शब्द सामान्यः साहित्य, कला, दर्शन और समाजशास्त्र में प्रयोग किया जाता है जहाँ इसका प्रमुख अर्थ अपने समय के साथ जुड़ा हुआ या अपने समय से संबंधित होना होता है। साहित्यिक दृष्टि से समकालीनता का अर्थ अपने समय की सच्चाइयों, समस्याओं, संघर्षो और परिवर्तनशील मान्यताओं का कलात्मक चित्रण। यानी लेखक का अपने समय के सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भो से जुड़ाव।

स्वयं प्रकाश की कहानियाँ अपने समय के सामाजिक यथार्थ को ईमानदारी से प्रस्तुत करती हैं– जैसे

आर्थिक असमानता, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, स्त्री की स्थिति, नैतिक मूल्यों का पतन आदि।

स्वंय प्रकाश की कहानियों में समकालीनता के कुछ प्रमुख संदर्भ :

पार्टीशन कहानी के द्वारा लेखक ने इस बात को उजागर किया है कि कैसे एक सलझा हुआ और सामान्य व्यक्ति धीरे–धीरे एक सांप्रदायिक इंसान में बदल जाता है। यह कहानी कुर्बान अली नामक एक ऐसे भारतीय की कहानी है, जो यहाँ की मिट्टी से प्रेम के कारण विभाजन के समय पाकिस्तान नहीं गया, जो यहाँ अपना सब कुछ लुट जाने के बाद भी सबसे हिलमिल कर रहता है, समाज में अपना स्थान बनाता है। यह सब सांप्रदायिक ताकतों को नागवर गुजरता है, परिस्थितियाँ ऐसी बनाई जाती हैं कि वह नितांत अकेला रह जाता है – लुटा–पिटा। यह कहानी दो भयावह तथ्यों को उजागर करती है। पहला लंबे समय से सांप्रदायिकता का घोला हुआ नफरत का जहर और दूसरा मध्यवर्गीय बुद्धिवादियों की कायरता, जिनकी वजह से हमारी साझा संस्कृति का ताना–बाना बिखर रहा है।

'क्या तुमने कोई सरदार भिखारी देखा?' यह कहानी इंदिरा गांधी की हत्या के बाद उपजे माहौल के बीच सरदारों की मानसिकता को केंद्र में रखकर लिखी गई कहानी है। किस प्रकार राजनीतिक षडयंत्र के तहत उन्माद फैलाया जाता है, सत्तर वर्षीय बुजुर्ग सरदार को लूटती– पीटती है और बाकी सभी लोग बेबस–से तमाशा देखते हैं। इस कहानी में आभिजात्य वर्ग की स्वार्थपरक तटस्थता और मध्यवर्ग की कायरता की बहुत ही निकट पहचान होती है। विडंबना यह है कि जो लोग सरदार जी के साथ दुर्व्यवहार करते हैं, मार–पीट करते हैं, वे निम्न, मध्यवर्ग के लोग ही हैं। आदमी, रशीद का पजामा' और 'उल्टा पहाड़' जैसी कहनियाँ भी इसी विषय पर केंद्रित हैं।

उनकी कहानियों में समकालीन राजनीतिक माहौल और बाजारवाद का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वे उन शक्तियों की आलोचना करते हैं जो समाज को बाजार में बदल रही हैं और असमानता बढ़ा रही है। उनकी कहानी "आएँगे अच्छे दिन भी' जैसे शीर्षकों के माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक नारों और आम जनता पर उसके प्रभाव पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करती हैं।

उनकी कहानियों का केंद्र अक्सर भारतीय मध्यवर्ग होता है,जो स्वतंत्रता के बाद के दौर और वैश्वीकरण के समय में छोटी–छोटी आकांशाओं और संघर्षो में उलझा हुआ है। वे इस वर्ग की छोटी–छोटी इच्छाओं, संघर्षो और उन्हें स्थगित कर देने की मानसिकता को दर्शाते है। उनकी कहानियों में ऐसे पात्र मिलते है जो अपने सीमित साधनों के बावजूद गरिमापूर्ण जीवन जीने का प्रयास करते हैं लेकिन सामाजिक और आर्थिक दबावों के कारण समझौता करने पर मजबूर होते हैं।

उनकी कहानियों में मध्यवर्ग की हताशा, डर और निम्न वर्ग के प्रति उसकी घृणा को दिखाया गया है। गैर–बराबरी, शोषण, गरीबी और भूख जैसे रोजमर्रा के सामाजिक–आर्थिक मुद्दे प्रमुखता से उभरते है।

'नीलकांत का सफर" जैसी कहानियों में तत्कालीन सामाजिक–राजनीतिक परिवेश की विसंगतियों और आम आदमी की मुश्किलों को दर्शाया गया है। उनकी कहानियाँ जहाँ एक ओर मानवीय मूल्यों के पतन और अमानवीयता को दिखाती हैं, वहीं दूसरी ओर वे आशा, मासूमियत और संघर्ष की भावना को भी जीवंत रखती है। कहानी "तलबी' में दो विचारधाराएँ– वैज्ञानिक दृष्टिकोण और धर्म आस्था के बीच टकराव को दिखाया गया है, जहाँ तर्कशीलता धर्मधता को चुनौती देती है। यह संघर्ष आज के युग में शिक्षा, राजनीति और संस्कृति के बीच

वैचारिक द्वंद्व को रूपात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है।

राजस्थान की धरा स्वंय प्रकाश की कर्म स्थली रही है। उनके लेखन में राजस्थान के विभिन्न अंचलों का परिवेश रचा–बसा है। यहाँ के मध्य–वर्गीय जीवन,निम्न–वर्गीय जीवन के साथ उभरी है, जिसे हम उनकी कहानियों– 'अगले जनम', सूरज कब निकलेगा,' नैनसी का धूड़ा,' 'बिछुड़ने से पहले' आदि में देख सकते हैं। स्वंय प्रकाश ने स्थानीय जन–जीवन की रंगत के साथ–साथ राजस्थान की लोक–कथा से प्रेरणा लेकर भी कहानियाँ लिखी हैं। यहाँ 'जंगल का दाह', नैनसी का धूड़ा', 'कानदाँव, 'गौरी का गुस्सा' आदि कहानियों का संदर्भ लिया जा सकता है।

"नैनसी का धूड़ा" इस संदर्भ में अलग तरह की कहानी है कि आदमी और पशु दोनों को एक समांतर रखकर अलग तरह की पैदा हुई मार्मिकता को हमारे सामने लाती है।

उन्होंने अपनी कहानियों में भाषा को वर्णित परिवेश के अनुसार बड़े ही जतन से बेहद कलात्मक ढ़ंग से ढाला है। यही कारण है कि उनके पात्र सजीव एवं विश्वसनीय लगते हैं।

समकालीन कहानी की अन्य प्रवृत्तियों की तरह, स्वंय प्रकाश की कहानियों में भी दलितों और महिलाओं से जुड़े विमर्श दिखाई देते हैं, जहाँ वे शोषण और गैर–बराबरी के विरूद्ध आवाज उठाते हैं।

उनकी कहानियाँ में स्त्री जीवन की वास्तविकता को भी उजागर किया गया है।

"सुनो किन्नरी" में स्त्री के अस्तित्व और पहचान की जटिलताओं को चित्रित किया गया है।

"भाई साहब सन ऑफ बंधनलाल" में व्यक्ति अपने नैतिक मूल्य और सामाजिक दबाव के बीच झूलता दिखता है। यह हमारे समय की नैतिक उलझनों का प्रतिनिधित्व करता है।

भ्रष्टाचार और सामाजिक अन्याय के बारे में भी उनकी कहनियों के द्वारा खुलासा हुआ है कि कैसे समाज में ईमानदार व्यक्ति संघर्ष करता है जबकि भ्रष्ट लोग फलते–फूलते हैं। "प्रतिहिंसा'' और ईश्वर की आँख" जैसी कहानियाँ सत्ता, व्यवस्था और नैतिक की आँख "जैसी कहानियाँ सत्ता, व्यवस्था और नैतिक पतन की आलोचना करती हैं। ये कहानियाँ आज के राजनीतिक और सामाजिक वातावरण से गहराई से जुड़ी हैं।

उनकी कहानी 'नेताजी का चश्मा' देशभक्ति की भावना को दिखाती है, लेकिन इसके माध्यम से देशभक्ति को एक्व व्यवसाय बना देने की प्रवृति पर भी व्यंग्य करती है, यह दर्शाती है कि कैसे लोग देशभक्ति का दिखावा तो करते हैं, पर इसके वास्तविक मूल्यों को भूल जाते हैं, दूसरी ओर कैप्टन चश्मे वाला जैसे साधारण व्यक्ति के ह्र्दय में सच्ची देशभक्ति होती है।

'धूप में नंगे पाँव' उनकी लिखित अंतिम पुस्तक है। यह आत्मकथा संस्मरण पुस्तक उनके द्वारा नौकरी करते हुए बिताए 36 वर्षो के कालखंड पर आधारित है। इन 36 वर्षो के दरमिआ स्वयं प्रकाश से अनगिनत दिलचस्प लोग मिले, उन्हें अनेक खट्टे–मीठे अनुभव हासिल हुए, जो उनकी स्मृति के स्थाई अंग बन गए।

हालांकि स्वयं प्रकाश द्वारा लिखी ढाई सौ से ऊपर कहानियों में अधिकांश पात्र उनके आस–पास के लोग रहे हैं। फिर भी कुछ लोग,कुछ घटनाएँ, कुछ किस्से उनके कथा–संसार का हिस्सा नहीं बन पाए, उन्हें स्वयं प्रकाश ने अपनी कथा–यात्रा के अंतिम पड़ाव पर इस पुस्तक में आत्मीयता से याद किया है।

स्वयं प्रकाश की कहानियों का मुख्य संदेश सामाजिक रूढ़िवादिता, साम्प्रदायिकता, जाति, छुआछूत, लिंग भेद और अन्य सामाजिक असमानताओं के खिलाफ चेतना जगाना हैं। वे संघर्षशील जनता को संकीर्णता और

जकड़बंदी से बाहर निकालने का प्रयत्न करते है। स्वयं प्रकाश की भाषा सरल, संवादात्मक और यथार्थपरक है। वे बनावटीपन से दूर रहते है और पात्रों की भाषा उनके सामाजिक स्तर के अनुसार रखते हैं। यह आधुनिक शहरी और ग्रामीण दोनों भारत की आवाज को प्रकट करती है।

स्वयं प्रकाश की कहानियों में समकालीनता केवल कालगत नहीं,बल्कि बौद्धिक और नैतिक सरोकारों से जुड़ी है। वे न केवल अपने दौर की सामाजिक विसंगतियों को प्रस्तुत करते है, बल्कि मनुष्य की नैतिक और वैचारिक स्वतंत्रता के लिए आंदोलनरत दिखाई देते है। उनकी कहानियाँ इस दृष्टि से आधुनिक भारतीय समाज के आत्मसंघर्ष और पुनजागरण की अभिव्यक्ति बनती हैं।

संदर्भ :–

1. स्वयं प्रकाश : "धार पर" राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. स्वयं प्रकाश : "ईश्वर की आँख", भारतीय ज्ञानपीठ।
3. आलोचक पत्रिका : "स्वयं प्रकाश की कहानियों में सामाजिक यथार्थ" (विशेषांक)
4. नामवर सिंह– कहानी : नई कहानी और उसके बाद।
5. अशोक वाजपेयी– समकालीन हिंदी कहानी के सरोकर।
6. विस्मृति से एतराज : स्वंय प्रकाश की कहानियाँ/बालमुकुंद नंदवाना।
   चर्चित अनिवादक, पुस्तक 'हिंदू धर्म प्रवेशिका।

ई मेल आईडी– lurdhmarya@gmail.com
Mobile 9940719290

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 437-442

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कुसुम खेमानी के उपन्यास 'लावण्या देवी' में चित्रित वृद्ध विमर्श

Saimeera Joshi
Research Scholar, Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha, Madras.

भूमिका :

वृद्ध विमर्श का साहित्यिक इतिहास आधुनिक हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण सामाजिक विमर्श है। वृद्ध विमर्श की शुरुभात बीसवीं सदी के आरंभ में मानी जाती है, जब औपनिवेशिक और आधुनिक भारत में समाज की संरचना तेजी से बदल रही थी। वृद्ध विमर्श ने भारतीय संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला है। इस विमर्श ने समाज में बुजुर्गों की स्थिति, उनके सम्मान, अनुभव और पीढीगत संवाद की अवश्यकता को केन्द्रीयता दी है। भारतीय संस्कृति में सदियों से बुजुर्गों को अनुभव के स्त्रोत, संस्कार प्रदाता और मार्गदर्शक के रूप में आदर सम्मान मिलता रहा है। शास्त्रों और धर्मग्रंथों में वरिष्ठजनों को पूज्य परिवार का आधार बताया गया है, माता–पिता की सेवा करना और उनके अनुभवों से सीखना सामाजिक मूल्य का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। महाभारत, रामायण, यजुर्वेद आदि में वृद्धों के प्रति सम्मान का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

हिंदी साहित्य में वृद्ध विमर्श :–

हिंदी साहित्य में वृद्ध पात्रों का चित्रण विशेष रूप से माजिक बदलाव पीढी–अंतराल, अकेलापन, आर्थिक असुरक्षा मानवीय संबंधों की जटिलताओं को उजागर करने के लिए किया गया है। इन पात्रों के माध्यम से साहित्यकार न सिर्फ वृद्धावस्था की समस्याओं और संवेदना को सामने लाते हैं, बल्कि बदलते पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों की भी गहरी पड़ताल करते है। इसके कुछ उदाहरण है :–

1) प्रेमचंद की कहानी 'बूढी काकी' इसमें एक वृद्धा जिसे संपत्ति देने के बाद उपेक्षा और अपमान का सामना करना पड़ता है।
2) माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' में वृद्ध विधवा की पीड़ा का चित्रण।
3) उषा प्रियंवदा की 'वापसी' में बुजुर्गों के मनोवैज्ञानिक द्वंद्व।
4) भीष्म सहानी की 'चीफ की दावत, में आधुनिकता में बदलता संवेदनहीन पारिवारिक व्यवहार।

समकालीन लेखक जैसे चित्रा मुद्गल, सुषम बेदी, ममता कालिया ने आर्थिक, सामाजिक, मानसिक असुरक्षा और वृद्धाश्रमों की स्थितियों को दर्शाया।

वर्तमान में वृद्ध विमर्श महज पीड़ा या उपेक्षा का चित्रण न होकर उनके अनुभवो, मानवता की आवश्यकता और पीढीगत संवाद की आवश्यकता को भी रेखांकित करता है। यह विषय आज के साहित्य में समानांतर विमर्श

के रूप में स्थापित हो चुका है और समाज में बुजुर्गों के प्रति दृष्टिकोण को बदलने का एक सशक्त साहित्यिक औजार बन गया है।

कुसुम खेमाणी के उपन्यास 'लावण्यादेवी' में वृद्ध विमर्श : विस्तृत विश्लेषण :

वृद्ध विमर्श : साहित्य में एक महत्वपूर्ण विमर्श :

वृद्ध विमर्श समकालीन हिंदी साहित्य में एक विस्तारित विषय है, जो वृद्धावस्था के सामाजिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक पक्षों को समेटता है। यह विमर्श वृद्ध व्यक्तियों की सामाजिक उपेक्षा, अकेलापन, पीढ़ीगत अंतर, स्वाभाविक दुर्बलता तथा मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए जागरूकता उत्पन्न करता है। इसे हिंदी कथा साहित्य में कई लेखकों ने उठाया है, जो वृद्धों के अस्तित्व के सवालों को सामने लाते हैं। उदाहरण के तौर पर, प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' जैसी कहानियां वृद्ध विमर्श के प्रखर नमूने हैं। इन कहानियों में वृद्ध व्यक्तियों की लड़ाई उनके अस्तित्व और सम्मान के लिए होती है, जो उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से सामाजिक मुद्दा बन चुका है।

भूमिका :

साहित्य केवल कहानियों का संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि यह समय, समाज, संस्कृति और विचारधाराओं का दर्पण भी है। कुसुम खेमाणी का उपन्यास 'लावण्यादेवी' इसी श्रेणी का एक महत्त्वपूर्ण रचना–कर्म है, जिसमें पाँच पीढ़ियों के परस्पर संवाद के माध्यम से स्त्री–जीवन, परिवार, परंपरा और परिवर्तन का बहुआयामी चित्रण मिलता है।

इस उपन्यास का एक खास पहलू है वृद्ध विमर्श – यानी वृद्ध पात्रों की स्थिति, अनुभव, स्मृतियाँ, चुनौतियाँ, और उनके माध्यम से समय व समाज के बदलते स्वरूप की पड़ताल। यहाँ 'वृद्ध' केवल आयु में बड़े पात्र नहीं हैं, वे अनुभव, परंपरा और सांस्कृतिक धरोहर के वाहक हैं।

लेखिका का परिचय एवं पृष्ठभूमि :

कुसुम खेमाणी हिन्दी साहित्य में एक संवेदनशील और प्रखर कथाकार के रूप में जानी जाती हैं। वे ऐसे विषयों को चुनती हैं जो न केवल पारिवारिक और स्त्री–संबंधी प्रश्नों को उभारते हैं, बल्कि समाज की संरचना और समय के प्रवाह में बदलाव को भी गहराई से पकड़ते हैं। "लावण्यादेवी" में उन्होंने बंगाल–मारवाड़ी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का उपयोग करते हुए स्त्री–जीवन और वृद्ध अनुभव का एक जीवंत दस्तावेज रचा है।

उपन्यास का कथानक और पृष्ठभूमि :

'लावण्यादेवी' एक बहु–पीढ़ी गाथा है, जिसमें एक समृद्ध बंगाली–मारवाड़ी परिवार की कथा बुनी गई है। केंद्र में हैं लावण्यादेवी एक ऐसी स्त्री जो परंपरा और आधुनिकता के संगम पर खड़ी है। कथा में अतीत और वर्तमान को जोड़ने का पुल बनता है ज्योतिर्मोयी देवी की डायरी से, जिसे लावण्यादेवी पढ़ती है। कहानी में पहले पीढ़ी के बुजुर्ग (दादी, नानी, आदि) परंपरा और पुरानी रीति–नीति के प्रतिनिधि हैं। बीच की पीढ़ी (जैसे लावण्यादेवी) अतीत की स्मृति और बदलते वर्तमान के बीच संतुलन बनाने वाली है। नई पीढ़ी आधुनिक मूल्यों, स्वतंत्रता और पितृसत्ता–विरोध की आवाज बुलंद करती है।

'लावण्यादेवी' और वृद्ध विमर्श की आधारभूत परतें :

कुसुम खेमाणी के 'लावण्यादेवी' में वृद्ध विमर्श का विस्तार न केवल सामाजिक बल्कि सांस्कृतिक और

आध्यात्मिक स्तर पर भी मिलता है। उपन्यास में वृद्ध पात्र जैसे ज्योतिर्मोयी देवी, दादी, नानी और स्वयं लावण्यादेवी अपने–अपने दौर की स्मृतियां, अनुभव तथा पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियां व्यक्त करते हैं। उनके संवाद और संस्मरण जीवन के विभिन्न जुड़ावों को प्रतिबिंबित करते हैं। यह उपन्यास वृद्धावस्था के सूक्ष्म पक्षों जैसे अकेलापन, सामाजिक विसंगति, जीवन–दर्शन, और परंपरा बनाम आधुनिकता के द्वंद्व की छानबीन करता है।

लावण्यादेवी में वृद्ध विमर्श : उद्धरण और पात्र संवादों का विश्लेषण

ज्योतिर्मोयी देवी की डायरी से उद्धरण :

'अब जब मैं बूढ़ी हो चली हूँ, तो इस जीवन की हर खुशी और दर्द स्मृति में सिमट कर रह गए हैं। पर यादें ही हमारे अस्तित्व का अनमोल निधि हैं, बिना यादों के हम अधूरे हैं।'

यह उद्धरण वृद्धावस्था की स्मृति के महत्व और उसके साथ जुड़ी भावनाओं को दर्शाता है। डायरी के माध्यम से ज्योतिर्मोयी देवी अपनी भावनात्मक यात्रा को साझा करती हैं, जो वृद्धावस्था में अनुभव की गई एकाकीपन और जीवन के अर्थ की खोज को प्रकट करता है। यह स्मृति और आत्म–दर्शन वृद्ध विमर्श का मूल हिस्सा है।

लावण्यादेवी और अपनी माता के संवाद का अंश :

लावण्यादेवी अपनी माँ से कहती है, 'माँ, वे दिन तो लौटकर नहीं आते, पर आपकी वो यादें, आपकी बातें, हमारे लिए रास्ता दिखाती हैं, हमें जोड़ती हैं उस समय से जब सब कुछ सरल था।'

यह संवाद पीढ़ियों के बीच की समझ और वृद्ध पात्रों की स्मृतियों के महत्व को प्रमाणित करता है। यहाँ लावण्यादेवी वृद्धा की भूमिका को नयी पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार करती है।

दादी के अनुभव और परंपरा की भूमिका :

दादी का एक कथन – 'हमारी उम्र हो गई है पर हम अपनी कहानियों के जरिए ही तो जिंदा हैं। परंपराओं में ही हमारी पहचान बसती है, और यादों में हमारी आत्मा।'

यह कथन वृद्ध विमर्श के सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष को उद्घाटित करता है। वृद्धों की परंपरा और संस्कृति के वाहक भूमिका को उजागर करता है, जो परिवार और समाज के लिए अनमोल है।

अकेलापन और उपेक्षा :

लावण्यादेवी की दादी अपने अकेलेपन के बारे में कहती हैं, 'मुझे लगता है जैसे अभाव में जी रही हूँ, बहुएं, बच्चे सब अपनी दुनिया में डूबे हैं, और मैं इस घर की खामोशी में खो जाती हूँ।'

यह संवाद वृद्धावस्था की सामाजिक अस्वीकृति और भावनात्मक तन्हाई को संक्षिप्त रूप में दर्शाता है, जो वृद्ध विमर्श का केंद्र विषय है।

आध्यात्मिक अनुभूति :

ज्योतिर्मोयी देवी डायरी में लिखती हैं, 'जैसे–जैसे उम्र बढ़ती है, ईश्वर की ओर खिंचाव बढ़ता जाता है। जीवन के अर्थ को समझने की लालसा, मन की शांति की खोज यही है वृद्धावस्था की सीख।'

यह उदाहरण आध्यात्मिक विमर्श को प्रकट करता है, जो वृद्ध पात्रों के जीवन में गहरे स्तूति–भाव और जीवन–दर्शन का परिचायक है। ये उद्धरण वृद्ध पात्रों की आंतरिक मनोस्थिति, पीढ़ियों के संवाद, सामाजिक

स्थिति और आध्यात्मिकता के विभिन्न पहलुओं को उद्‌घाटित करते हैं। उनकी स्मृतियाँ, संघर्ष, अकेलापन और जीवन–दर्शन 'लावण्यादेवी' के वृद्ध विमर्श को समृद्ध बनाते हैं। ये पात्र संवाद उपन्यास की सामाजिक और भावात्मक गहराई को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं।

स्मृति और परंपरा में वृद्ध पात्रों की भूमिका :

लावण्यादेवी के माध्यम से लेखिका ने वृद्ध पात्रों की स्मृति और परंपरा के संवाहक के रूप में विशेष भूमिका प्रदर्शित की है। ज्योतिर्मोयी देवी की डायरी उपन्यास में स्मृति का स्रोत बनी है, जिससे न केवल व्यक्तिगत इतिहास बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत भी युवाओं तक पहुंचती है। वृद्ध पात्र अतीत को निरंतर वर्तमान से जोड़ते हैं, जिससे परिवार की जड़ें मजबूत होती हैं और पीढ़ीगत यादें बनी रहती हैं। इसलिए, वृद्ध पात्र उपन्यास में केवल 'जिसे हम बूढ़ा कहते हैं' मात्र नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक इतिहास के वाहक हैं, जिसकी पहचान से परिवार का अस्तित्व जुड़ा होता है।

वृद्धावस्था की मानसिक और सामाजिक चुनौतियां :

'लावण्यादेवी' में वृद्ध पात्र अनुभव करते हैं कि जैसे–जैसे उम्र बढ़ती है, वे सामाजिक उपेक्षा, अकेलेपन और संवेदनहीनता का सामना करते हैं। बदलते संयुक्त परिवार से एकाकी जीवन की ओर बढ़ते संबंध, मानसिक तनाव और खुद को समाज से अनुपयोगी महसूस करना वृद्धावस्था की सच्चाई है। उपन्यास में इसका चित्रण इस प्रकार है कि वृद्ध पात्र अपनी जरूरतों, अनुभवों और उपस्थिति के लिए सदस्यों का सहारा ढूंढ़ते हैं, परन्तु कई बार अस्वीकृति और उपेक्षा के कारण आहत होते हैं। यह युग बदलने की प्रक्रिया में वृद्धों की मानसिक पीड़ा को स्पष्ट करता है, जो आधुनिकीकरण की छाया में अक्सर दब जाती है।

आध्यात्मिकता एवं जीवन-दर्शन में वृद्ध विमर्श :

कुसुम खेमाणी ने वृद्ध पात्रों के जीवन–दर्शन तथा आध्यात्मिकता पर भी विशेष ध्यान दिया है। उपन्यास में वृद्ध पात्र अपनी उम्र के फलस्वरूप जीवन की क्षणभंगुरता, मरण–सन्निधि और ईश्वर की भव्यता पर चिंतन करते हैं। यह आध्यात्मिक विमर्श उन्हें न केवल मानसिक शक्ति देता है, बल्कि जीवन की अंतिम यात्रा के लिए भी तैयारी कराता है। इस दृष्टिकोण से वृद्ध पात्र उपन्यास के गूढ़ एवं गम्भीर विचारों के वाहक बनते हैं, जो परिवर्तनशील समाज में स्थायित्व की अनुभूति कराते हैं।

पितृसत्ता, महिलाओं की भूमिका और वृद्धावस्था :

'लावण्यादेवी' में पितृसत्ता और महिलाओं की भूमिका को देखते हुए वृद्ध विमर्श में यह देखने को मिलता है कि वृद्ध महिलाएं पितृसत्ता के दबाव और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच एक संघर्ष करती हैं। लावण्यादेवी स्वयं को पुराने मूल्य–निर्धारणों और निजी स्वतंत्रता के बीच पाती हैं, जबकि उनकी मां ज्योतिर्मोयी देवी और वृद्ध महिलाएं परंपराओं का पालन करते हुए भी बदलाव के संकेत देती हैं। वृद्ध महिलाओं के संघर्ष से उपन्यास में पितृसत्ता के यथार्थ और उसमें वृद्धावस्था की जटिलताओं का पूरा दृश्य उभरता है।

उपन्यास में वृद्ध विमर्श के मुख्य आयाम :

स्मृति और परंपरा का संवहन :

वृद्ध पात्र केवल भूतकाल के वाहक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक शिक्षा के जीवित स्रोत हैं। ज्योतिर्मोयी देवी की डायरी एक 'स्मृति–ग्रंथ' है जो लावण्यादेवी को न केवल निजी रिश्तों को बल्कि समाज की पुरानी संरचना

को समझने में मदद करती है।

अकेलापन और मानसिक द्वंद्व :

वृद्धावस्था में बच्चों की व्यस्तता, बढ़ते अलगाव, और बदलते पारिवारिक ढांचे के बीच बुजुर्ग पात्र अक्सर भावनात्मक एकाकीपन झेलते हैं। उपन्यास में यह मनोदशा संवेदनशील ढंग से उभरती है – जैसे कि पुराने कमरों की खामोशी, त्यौहारों का छोटा होता दायरा, और रिश्तों में संवाद की कमी।

आध्यात्मिकता और जीवन–दर्शन :

वृद्ध पात्रों के विचारों में जीवन की क्षणभंगुरता, ईश्वर में विश्वास, और विदा लेने की तैयारी का भाव आता है। यह केवल धार्मिकता नहीं है, बल्कि जीवन के संघर्षों को स्वीकारने का मानसिक बल है।

पितृसत्ता और परिवर्तन :

वृद्ध महिलाएं पितृसत्ता की पीड़ित भी रही हैं और उसकी आलोचक भी। लावण्यादेवी का जीवन–पथ यह दिखाता है कि वृद्ध अनुभव केवल परंपरा को ढोना नहीं, बल्कि समय की जरूरत पर बदलाव को स्वीकारना भी है।

अस्तित्व और पहचान का प्रश्न :

वृद्धावस्था में व्यक्ति की पहचान अक्सर 'किसकी मांध्दादी' के रूप में सीमित हो जाती है। उपन्यास में यह प्रश्न उपस्थित है कि क्या उनके सपने, उनकी इच्छाएं, उनकी पहचान भी मान्य हैं?

भाषा एवं शैली में वृद्ध विमर्श का सजीव चित्रण :

डायरी और संस्मरण शैली वृद्ध दृष्टिकोण को विश्वसनीय और आत्मीय बनाने के लिए प्रयुक्त की गई है। अतीत का पुनर्निर्माण व्यक्तिगत अनुभवों से। फ्लैशबैक तकनीक में स्मृतियाँ अतीत के घटनाचक्र को वर्तमान में जीवंत कर देती हैं। संवाद और आत्मसंवाद का प्रयोग पीढ़ियों के टकराव और संगति को प्रकट करने के लिए किया गया है।

उपन्यास की भाषा और शैली वृद्ध विमर्श को जीवित बनाए रखने में सहायक हैं। डायरी, पत्राचार, स्मृतियाँ, संवाद और अंतर्संस्मरण जैसी तकनीकों के माध्यम से वृद्ध पात्रों के अनुभव, भावनाएँ और सामाजिक संदर्भ गहरे प्रभाव के साथ प्रकट होते हैं।

यह साहित्यिक उपकरण वृद्धावस्था के अनुभव को व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर प्रामाणिकता प्रदान करते हैं। इस प्रकार भाषा और शैली उपन्यास के वृद्ध विमर्श को बोधगम्य और संजीव बनाते हैं।

समकालीन सामाजिक यथार्थ में वृद्ध विमर्श की प्रासंगिकता :

आज के परिवेश में संयुक्त परिवार व्यवस्था टूटने लगी है, जिससे वृद्धों की सामाजिक स्थिति और भी कमजोर हुई है। 'लावण्यादेवी' इस यथार्थ को अपनी कथा में प्रभावी ढंग से चित्रित करती है। उपन्यास के माध्यम से लेखिका एक संदेश देती हैं कि वृद्धों का सम्मान, उनसे संवाद और उनके अनुभवों को स्वीकारना समाज के स्थायित्व और नैतिकता से जुड़ा मुद्दा है। यह विमर्श आज के समाज के लिए जागरूकता का परिचायक है।

निष्कर्ष :

कुसुम खेमाणी के उपन्यास 'लावण्यादेवी' में वृद्ध विमर्श विस्तृत, गहराईपूर्ण और समकालीन सामाजिक

प्रासंगिकता लिए हुए है। वृद्ध पात्र स्मृति, परंपरा और अनुभव के संवाहक हैं। उनके जीवन की मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जटिलताओं को उपन्यास गहराई से उजागर करता है। पितृसत्ता के युग में उनकी भूमिका, अधिकार और संघर्ष उपन्यास की तंतु में बुने गए हैं। भाषा और शैली में वृद्ध के अनुभवों की मौलिक प्रस्तुति उपन्यास को प्रभावी बनाती है। समकालीन समाज में वृद्ध विमर्श इस तरह सामाजिक चेतना जगाने का माध्यम है। इस प्रकार 'लावण्यादेवी' केवल पारिवारिक कथा नहीं, वरन् एक सामाजिक दस्तावेज भी है जो वृद्धावस्था के सार्थक विमर्श और उसकी मानवीय जटिलताओं को सशक्त रूप देती है। कुसुम खेमाणी ने संवेदनशीलता और विस्तार से इस विमर्श को रूपायित किया है। इस उपन्यास से यह शिक्षा मिलती है कि किसी भी समाज की सच्ची प्रगति केवल युवाओं की ऊर्जा से नहीं, बल्कि वृद्धों के अनुभव और स्मृति–धान्य से संभव है।

संदर्भ :–

1. लावण्या देवी, कुसुम खेमानी, पृ.स. 1 से 175
2. https://www.apnimaati.com
3. वृद्धावस्था केंद्रित प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास, अंकिता शर्मा, पृ. सं. 118
4. https://www.deshbandhu.co
5. https://mlsu.ac.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 443-445
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

२१वीं सदी की महिला लेखिकाओं के साहित्य में स्त्री विमर्श

पद्मश्री चौगुले
के. एल. इ. संस्थान बसवप्रभु कोरे कला विज्ञान तथा वाणिज्य महाविद्यालय चिकोड़ी करणाटक।

प्रस्तावना :–

२१वीं सदी की महिला लेखिकाओं के साहित्य में स्त्री विमर्श यह एक महत्वपूर्ण और व्यापक विषय है। नारी की सामाजिक, मानसिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति को बयाँ करती है। कुछ रचनाओं के माध्यम से मैं ने यँहा पर स्त्री विमर्श से जुड़े कुछ जानकारी आपके सम्मुख रख रही हूँ।

स्त्री विमर्श की परिवेश :

स्त्री विमर्श का उद्देश्य यह है कि समाज में महिलाओं की स्थिति को उजागर करना। स्त्री विमर्श संबंधित साहित्य २१वीं सदी में और भी व्यापक हुआ है। शोषण, उत्पीड़न के साथ–साथ स्त्री सशक्तिकरण, आत्मनिर्भरता और आत्म–अभिव्यक्ति के विषयों पर लेख लिखे जा चुकें हैं।

२१वीं सदी की प्रमुख कुछ महिला लेखिकाओं का नाम तथा रचनाएँ कुछ इस तरह से है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ –

इनकी रचनाएँ शिगाफ, पाँच फूलों की रपटन, स्वप्न पाश आदि।

मनीषा की कहानियाँ महिलाओं के अंतर्मन की आवाज को साहित्य के माध्यम से सामने लाती है। स्त्री की यौनिकता, देह, सामाजिक बंधनों और आत्म–अभिव्यक्ति पर आधारित रचनाएँ देखने को मिलतें हैं।

'शिगाफ' यह हिंदी साहित्य का प्रभावशाली स्त्री–केंद्रित उपन्यास है। शिगाफ का अर्थ है 'दरार'।

यह रचना आधुनिक स्त्री विमर्श को दर्शाता है। इस रचना की सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह कश्मीरी पृष्ठभूमि, राजनीतिक उथल–पुथल, और स्त्री की आत्म चेतना पर नजर डालती है। आतंकवाद, अस्थिरता और सांस्कृतिक पहचान के संकट से जूझते हुए इस कहानी की नायिका अपनी अस्मिता की तलाश करती है। यह उपन्यास केवल एक स्त्री की आत्मकथा नहीं है, बल्कि इसमें समूचे कश्मीर की पीड़ा, अस्थिरता और स्त्री की संघर्ष पूर्ण यात्रा को दर्शाया गया है।

इस उपन्यास की नायिका न केवल व्यक्तिगत पीड़ा से जूझती है, बल्कि एक कश्मीरी महिला के रूप में राजनीतिक और सामाजिक उथल–पुथल का भी सामना करती है। कश्मीर की अस्थिरता ने वहां की स्त्रियों को दहशत, बलात्कार, निगरानी और असुरक्षा के बीच जीने को मजबूर किया है। यह यथार्थ इसमें गहराई से चित्रित हुआ है। इसमें आत्मचेतना और स्त्री विमर्श की अगर बात की जाए तो, परंपराओं और सामाजिक बंधनों को

'शिगाफ' की नायिका तोड़ती है। अपने फैसले खुद लेना चाहती है, अपने शरीर, सोच और जीवन पर नियंत्रण चाहती है, जो एक मजबूत स्त्री विमर्श की उपस्थिति दर्शाता है।

आतंकवाद पूरी दुनियां के लिए ही एक यक्ष प्रश्न बन गया है। इस उपन्यास में कश्मीरी आतंकवाद, धार्मिक कट्टरता, और सांप्रदायिक तनाव का चित्रण है। मनीषा जी ने राजनीति के स्त्री पर प्रभाव को गहराई से समझाने का प्रयास किया है। स्त्री के भीतर, समाज में, रिश्तों में और राष्ट्र में पड़ी 'दरारों' का बिम्बात्मक तथा विमर्श रूपी चित्रण इस में देखने को मिलता है। इसमें मनीषा जी की भाषा बेहद काव्यात्मक, भावनात्मक और गहन है। उनकी शैली पाठक को भीतर तक झकझोर देती है। 'शिगाफ' में स्त्री की देह केवल भोग की वस्तु नहीं, बल्कि उसकी सत्ता और अस्मिता का हिस्सा है।

अनामिका –

इनकी रचनाएँ टोकरी में दिगंत, दुर्गा वह सब औरतें आदि है। इनकी कविताएँ स्त्री जीवन के संघर्षों को उजाग रकरती है।

नासिरा शर्मा –

नासिरा शर्मा इनकी उपन्यास कागज की नाव, पारिजात, ठीकरे की मंगनी आदि। नासिरा का लेखन मुस्लिम महिलाओं की समस्याओं, घुटन और आत्म संघर्ष को रेखांकित करती है।

नासिरा शर्मा जी की प्रसिद्ध रचना 'कागज की नाव' हिंदी साहित्य की उन उल्लेखनीय कृतियों में से है जो स्त्री विमर्श, मुस्लिम समाज की जटिलता, और महिला अस्मिता के सवालों को बड़ी संजीदगी से उठाती है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी खासियत यह है कि यह मुस्लिम समाज की स्त्री, उसकी भीतरी पीड़ा, और समाज में उसकी अस्थिर स्थिति को बेहद यथार्थवादी और मानवीय दृष्टि से सामने लाता है।

इस कथानक की नायिका फिरोजा है। इस नायिका के जीवन के माध्यम से एक शिक्षित, आत्मनिर्भर लेकिन पारिवारिक, धार्मिक और सामाजिक बंधनों में उलझी हुई मुस्लिम महिला का संघर्ष दर्शाया गया है। उसकी कहानी आंतरिक द्वंद्व, सामाजिक विडंबना और आत्मसंघर्ष का जीवंत चित्र प्रस्तुत करती है।

इसमें मुस्लिम समाज में स्त्रियों की स्थिति—हिजाब, पर्दा, शिक्षा, विवाह और अधिकार—इन सभी पर बहुत ही सशक्त और संवेदनशील दृष्टिकोण से विमर्श किया गया है।

ममता कालिया –

इनकी कृतियाँ दौड़, दिल्ली की दीवार, बेघर, आदि है।

ममता कालिया जी ने साहित्य में मध्यवर्गीय महिलाओं की आकांक्षाएँ, संघर्ष और सामाजिक विडंबनाओं को दर्शाने का प्रयास किया है।

ममता कालिया की चर्चित रचना 'बेघर' हिंदी साहित्य की एक प्रभावशाली स्त्री—केंद्रित सामाजिक उपन्यास है, जो आधुनिक समाज में कामकाजी महिलाओं की स्थिति, उनकी पहचान, और आत्म—संघर्ष को उजागर करती है। यह उपन्यास मध्यवर्गीय जीवन, नारी स्वाभिमान, और पितृ सत्तात्मक मानसिकता के विरुद्ध प्रतिरोध को बेहद सशक्त ढंग से प्रस्तुत करता है।

ममता कालिया की एकांकी 'यँहा रोना मना है।' इसमें कालिंदी नामक स्त्री पात्र पूर्ण एकांकी का केंद्र बिंदु है। अपनी माँ को याद कर रोने का भी उसे हक नहीं। आधुनकि सोच की नायिका को कहा जाता है कि बहुत

हो चुकी पढ़ाई–लिखाई। पहले बर्तन माँजना तो सीख लो।

एक स्त्री की सोच तथा आशाओं पर वार करता साथ में परंपरा के नाम पर मन पर बीतने वाली दुःख को भी व्यक्त न करने की सजा मिलती है।

एक स्त्री की मन की दुःख दर्द था सम्प्रदाय के नाम की बेड़ियों से बाँधने का एक भावणात्मक विमर्श हम इसमें देख सखते हैं। और एक रचना 'मुखोटा' जिसमें नायक को जीवनोपाय के लिए नोकरी हेतु रेजर्व कैटेगरी के तहत अपने जात बदलवाना पड़ता है। उसी के चलते अपने प्यार को भी गवाना पड़ता है इसका बहोत सटीक चित्रन देखने को हमें मिलेगा। यह कहानी पुरुष केंद्रित रचना है परंतु एक स्त्री चाहकर भी किसी को अपने से दूर करने पर मजबूर होती है. वह इस में दिखाया गया है। कारण जात–पात के नाम पर अंध श्रद्धा को माना जाता था। उस विषय पर चित्रण हमें देखने को मिलता है। ममता कालिया ने यह दिखाया है कि आधुनिक शिक्षा और नौकरी ने भले ही स्त्री को आर्थिक स्वतंत्रता दी हो, लेकिन समाज की सोच अब भी वहीं है।

स्त्री जितनी आगे बढ़े, पुरुष उतना ही असहज होता है – यह पितृसत्ता की मानसिक संरचना का यथार्थ चित्र है।

प्रगति राय, कृष्णा अग्निहोत्री, नंदा देवी वर्मा, अनिता भारती जैसी लेखिकाएं भी दलित स्त्री विमर्श, हाशिए की महिलाओं की पीड़ा और अस्मिता को उभारने में योगदान दे रही हैं।

स्वानुभूति से यथार्थ तक – लेखिकाएं अब व्यक्तिगत अनुभवों को सामाजिक विमर्श से जोड़ रही हैं।

स्त्री की उपस्थिति –

अब 'एक तरह की स्त्री' नहीं बल्कि विभिन्न वर्गों, जातियों, लिंग–परिवर्तन और पृष्ठभूमियों से स्त्रियाँ सामने आ रही हैं।

भाषा में परिवर्तन –

अब भाषा में संकोच नहीं है, खुले तौर पर यौनिकता, हिंसा, शोषण पर बात होती है।

नारी का 'विक्टिम' से 'एजेंट' बनना –

महिलाएं अब केवल पीड़िता नहीं, बदलाव की वाहक हैं।

निष्कर्ष :–

21वीं सदी का स्त्री विमर्श महिला लेखन में एक क्रांतिकारी बदलाव का संकेत देता है। यह विमर्श अब केवल शोषण और पीड़ा तक सीमित नहीं, बल्कि नारी की आत्म–चेतना, आत्मबल, और समाज के पुनर्निर्माण में उसकी भूमिका को भी दर्शाता है। आज की लेखिकाएँ पितृसत्ता को चुनौती देने के साथ–साथ एक नए सामाजिक विमर्श की रचना कर रही हैं।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. दौड़– ममता कालिया– वाणी प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली–आवृत्ति संस्करण 2010
2. कथा दर्पण–डॉ. राजेन्द्र पोवार–लोकभारती प्रकाशन– पहला संस्करण 2021
3. गद्य विविधा– डॉ. राजेन्द्र पोवार– राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जगतपुरी, दिल्ली, पहला संस्करण 2021

Mail ID : padmashreep556@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh
SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115